शिव पुराण

(प्रथम खण्ड)

(सरल हिन्दी भाष्य सहित जनोपयोगी संस्करण)

294

•

सम्पादक :
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट् दर्शन, २० स्मृतियों, १८ पुराणों,
के भाष्यकार, गायत्री महाविद्या के विशेषज्ञ और
बहुसंख्यक हिन्दी ग्रन्थों के रचयिता

•

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजाकुतुब, वेदनगर, बरेली-२४३००१ (उ० प्र०)

81, 89, 152
236,



श्रीशिवपुराण

[प्रथम खण्ड]

(सरल भाषानुवादसहित जनोपयोगी संस्करण)



सम्पादक :

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद, षट्दर्शन, योग वासिष्ठ, २० स्मृतियाँ और १८ पुराणों के प्रसिद्ध भाष्यकार।

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब, (वेदनगर), बरेली-२४३००१ (उ० प्र०)

प्रकाशक :

डा० चमन लाल गौतम

संस्कृति संस्थान,

ख्वाजा कुतुब, (वेदनगर)

बरेली-२४३००१ (उ०प्र०)

सम्पादक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

द्वितीय संशोधित जनोपयोगी संस्करण

सन् १९७६

मुद्रक :

शैलेन्द्र बी. माहेश्वरी

नव ज्योति, प्रेस

भीकचन्द मार्ग, मथुरा

मूल्य :

दस रुपये मात्र ।

भूमिका

प्राचीन भारतीय साहित्य में पुराणों का एक विशेष स्थान है। यद्यपि आधुनिक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति इनको अधिक महत्व देना नहीं चाहते, पर इतना तो उनको भी स्वीकार करना पड़ता है कि पुराणों में भारतीय संस्कृति और धर्म के मूल तत्वों का लोकोपयोगी रूप में संकलन किया गया है और उनके कारण पिछले दिनों सर्वसाधारण को नीति, चरित्र, सदाचार आदि की शिक्षा मिलती रही है। वास्तव में पुराणों की रचना का मूल उद्देश्य धर्म और अध्यात्म के गूढ़ तत्वों को सामान्य जनता के लिए सरल भाषा और सुगम शैली में उपस्थित करना था। वेद और उपनिषदों का ज्ञान सदा से थोड़े विद्वानों तक सीमित रहा है और उसे प्राप्त करने के लिए वर्षों तक सुयोग्य आचार्यों के चरणों में बैठकर परिश्रमपूर्वक अध्ययन करना अनिवार्य था। फिर भी सभी विद्यार्थी उसके गूढ़ धर्म को समझने में समर्थ नहीं होते थे। अनेक तो शास्त्रों को तोते की तरह रट लेने मात्र से ही अपनी गणना विद्वानों की श्रेणी में करने लग जाते थे।

इस दृष्टि से 'पुराण' कोई नवीन या अल्प समय पूर्व रचना नहीं है। जन समूह में सामान्य बुद्धि के लोगों की अधिकता सदा से रही है, और उनको समझाने के लिए अति प्राचीन काल से कथा, कहानी, दृष्टान्त, रूपक, अलंकारों का प्रयोग होता आया है। इसी तथ्य को प्रकट करने के लिए 'पद्म पुराण' में कहा गया है—

पुराण सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
उत्तमं सर्वलोकानां सर्व ज्ञानोपपादकम्॥

"ब्रह्मा ने समस्त शास्त्रों से पहले पुराणों का स्मरण किया। ये संसार में सर्वश्रेष्ठ ज्ञान के उत्पादक और प्रचारक हैं।"

ब्रह्माजी इस सृष्टि के रचयिता हैं, अतएव विश्व में जितने साधन है उनका उत्पन्न करने वाला भी उनको ही मानना होगा। यद्यपि

वेदों को संसार का आदि-ज्ञान माना गया है और वे ही सृष्टि के आरंभ में चारों मुखों से निकले, यह जनश्रुति प्रसिद्ध है, पर हम यह भी जानते हैं कि यह ज्ञान उस समय भी उच्च कोटि के अध्यात्म शक्ति सम्पन्न ऋषियों को ही महान् तपस्या करने पर प्राप्त हुआ था। यह कहना और समझना कि उस समय सभी लोग ऋषि, महर्षि और वैदिक ज्ञान के अधिकारी थे, वस्तुस्थिति से आँखें मूँद लेना है। ज्ञानियों की अपेक्षा अज्ञानियों अथवा साधारण बुद्धि के लोगों की संख्या सदैव अधिक रही है, चाहे कोई इतिहासकार या लेखक उनमें कोई विशेषता न देखकर उनका उल्लेख करना आवश्यक न समझे। ऐसी अवस्था में अपने सिद्धान्तों को जन-साधारण को समझाने के लिए उनको लोक कथाओं का सरल रूप देना नितान्त आवश्यक है। यही एक तरीका है जिससे कम बुद्धि वाले उच्च तत्त्वों के आशय को न्यूनाधिक रूप में समझकर तदनुसार आचरण कर सकते हैं। इसलिए यदि 'पद्मपुराणकार' ने पुराणों का आविर्भाव वेदों से भी प्राचीन बतलाया तो उसकी बात तात्विक दृष्टि से सर्वथा निर्मूल नहीं है। चाहे लिखित ग्रन्थों का अस्तित्व दो-चार हजार वर्ष से पूर्व कहीं नहीं था, पर वेद उपनिषदों के साथ–पुराण' का प्रचलन भी उस आदिम काल में था इससे इनकार नहीं किया जा सकता। 'अथर्व वेद' में कहा है—

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाजज्ञिरे सर्व दिवि देवा विपाश्चितः॥ (११-७-२४)

"ऋक्, यजु, साम और अथर्व वेद के साथ उच्छिष्ट ब्रह्म ने पुराणों का भी आविर्भाव किया।"

ये आसीद् भूमिः पूर्वाः यामद्धातय इद्विदुः।
यो वै तां विद्यान्नामथा स मन्येत पुराणवित्॥

'जैसी यह भूमि पहले थी, जैसी ज्ञानी ऋषि इसे जानते हैं, उसके उस स्वरूप को जो समझता है, वही पुराणवित् है।"

इसमें सन्देह नहीं कि आज हम पुराणों को जिस रूप में देख रहे है। उनमें और उन आदिकालीन पुराणों में बहुत अधिक अन्तर हैं जसे

जैसे भाषा शैली, सभ्यता, संस्कृति, लोकरुचि में अन्तर होता गया वैसे-वैसे ही पुराणों के रूप में भी परिवर्तन होता चला गया। वेदों की भाषा को अपरिवर्तनीय माना गया है, इसलिए आज उसका प्रचार अवरुद्ध हो गया है और वेदों के अर्थ के विषय में विद्वानों में सर्वदा मतभेद होता रहता है। पुराण लौकिक भाषा या जनवाणी में रचे जाते हैं, इसलिए उनमें समयानुसार परिवर्तन होता चला जाता है और मूल तत्वों के ज्यों के त्यों रहने पर भी उनके वाह्यावरण में बहुत अधिक परिवर्तन हो जाता है। खोज करने वाले विद्वानों के मतानुसार वर्तमान पुराण पिछले दो-डेढ़ हजार वर्ष के भीतर की रचनायें हैं, पर उनमें जिन सृष्टि रचना, प्रलय, आत्मा का निरूपण, अध्यात्म, नीति सम्बन्धी तत्वों का विवेचन किया गया है, वह प्राचीन स्रोतों से ही प्राप्त हुआ है।

पुराण में वैदिक-तत्वों का प्रतिपादन—

जिन विद्वानों ने वैदिक और पौराणिक दोनों साहित्यों का गहरा अध्ययन किया है, उनकी सम्मति है कि वास्तव में पुराण वैदिक तत्वों की विस्तृत और लोकोपयोगी व्याख्या ही हैं। वेद की भाषा, शैली और निगूढ़ विवेचन सदा से विद्वानों के लिए भी कठिन रहा है तो सर्वसाधारण उससे किस प्रकार लाभान्वित हो सकते थे। पर साथ ही उन तत्वों का परिचय प्राप्त किये बिना उनको न्यूनाधिक परिणाम में अपने आचरण में लाये बिना कोई व्यक्ति भारतीय धर्म और संस्कृत का अनुयायी नहीं कहा जा सकता। बस, इस कठिन समस्या को हल करने के लिए पुराणकारों ने एक नवीन साहित्यिक शैली का अवलम्बन किया और रोचक कथाओं, प्रभावशाली दृष्टान्तों और कवित्वमय वर्णनों के रूप में वेदों के गहन सिद्धान्तों को उपस्थित करके उन्होंने उनको सर्व साधारण के लिए बोधगम्य बना दिया। इसी का यह परिणाम हुआ कि सामान्य बुद्धि और प्रतिभा के व्यक्ति भी धर्म के उच्च सिद्धान्तों को हृदयङ्गम करके अपने जीवन में नीति, सदाचार परोपकार, उदारता के देव-दुर्लभ गुणों को चरितार्थ कर सके। पुराण और वेदों के इस सम्बन्ध का विवेचन करते हुए एक विद्वान् ने लिखा है—

"यह बात बहुत आश्चर्यजनक प्रतीत होती है कि पुराण लेखकों के सामने वेदों की अध्यात्म विद्या की परम्परा अक्षुण्ण थी। कहीं तो वेद के पारिभाषिक शब्द में ही और कहीं नई परिभाषा द्वारा पुराणों में सृष्टि-तत्व का वर्णन किया गया है। वेदों का 'संवत्सर-चक्र' ही पुराणों में 'विष्णु-चक्र' बन गया। वेद की छन्द विद्या पुराणों का 'सौपर्ण-उपाख्यान है। पुराणों की हयग्रीव-विद्या वेद की दध्यङ् अथर्वा विद्या है। वेद की अग्नि सोम विद्या पुराणों की हरिहर मूर्ति है। वेद का 'पंचचितिक' या 'पांक्ति-यज्ञ' पुराणों का 'पंचब्रह्म सिद्धान्त' है। वेदों की त्रयी-विद्या पुराणों की सूर्योपासना में तत्वतः पाई जाती हैं। इसी प्रकार वेद की हिरण्यगर्भ विद्या पुराणों में अण्डसृष्टि के रूप में मिलती है। वेदों की त्रिक विद्या पुराणों में भी ज्यों की त्यों मिलती है। इस सम्बन्ध में निम्न श्लोक पुराणों के दृष्टिकोण की सबसे अधिक व्यापक और सरल कुंजी है–

एत एव त्रयो देवा एत एव त्रयोऽग्नयः।
एत एव त्रयो वेदा एत एव त्रयो गुणाः॥

"तीन देव (ब्रह्मा विष्णु, महेश) यज्ञ की तीन अग्नियाँ (आहवनीय, गार्हपत्य, क्रव्यादि) तीन वेद, तीन गुण (सत्व, रज, तम) ये सब एक ही तत्व पर आधारित हैं।"

पुराणों में साम्प्रदायिकता की छाया—

पर एक बहुत बड़ा आक्षेप जो पुराणों पर किया जाता है, जिनमें साम्प्रदायिक विरोध के आधार पर परस्पर विरोधी वचनों का पाया जाना है। एक तरफ तो यह कहा जाता है कि समस्त पुराण मूल में ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न किये गये हैं और व्यासजी ने उनकी ग्रन्थ के रूप में रचना की है, और दूसरी ओर किसी एक देवता को सर्व प्रधान बता कर दूसरे देवों को हीन सिद्ध करने की चेष्टा है। इतना ही नहीं, कई पुराणों में अन्य पुराणों को पढ़ना घोर पातक ही बतालाया गया है। उदाहरणार्थ एक वैष्णव सम्प्रदाय के पुराण में कहा गया है—

शिवार्चनाद् ब्राह्मणस्तु शूद्रेण समतामियात् ।
तिर्यक्पुण्ड्रधरं विप्रं चाण्डालमिव संत्यजेत् ॥
वैष्णवः पुरुषोयस्तु, शिव ब्रह्मादि देवताः ।
प्रणमेदर्चयेद्वापि विष्ठाया जायते कृमिः ॥

अर्थात् "शिव के पूजन करने से ब्राह्मण शूद्र के समान हो जाता है। त्रिपुण्ड्रधारी ब्राह्मण को चाण्डाल के समान त्याग दे। जो वैष्णव शिव, ब्रह्मा आदि देवताओं को प्रणाम या उनका पूजन करता है वह मरने पर विष्ठा का कीड़ा होता है।"

इन्हीं के जोड़-तोड़ के किसी शैव लेखक ने वैष्णव सम्प्रदाय पर आक्रमण करते हुए लिख मारा—

विष्णुदर्शन मात्रेण शिव द्रोहः प्रजायते ।
शिवद्रोहान्न सन्देहो नरकं याति दारुणम् ।
तस्माच्च विष्णु नामापि न वक्तव्ये कदाचन ।
यस्तु सन्तप्त शंखादि लिगांकिततनुर्नरः ॥
स सर्वयातना भोगी चाण्डालः कोटि जन्मसु ।

अर्थात् "विष्णु के दर्शन मात्र से शिव का द्रोह होता है और शिव के द्रोह से अवश्य दारुण नरक प्राप्त होता है। इसलिए विष्णु का नाम कभी न लेना चाहिए। जो व्यक्ति वैष्णव धर्म के तप्त शखादि चिन्हों से अङ्कित होता है वह सम्पूर्ण नरक की यातना भोग कर कोटि जन्म तक चाण्डाल होता है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार के द्वेषपूर्ण वचन कभी प्रामाणिक नहीं माने जा सकते। वे निश्चय ही अत्यन्त सकीर्ण मनोवृत्ति के सम्प्रदायवादियों के कलुषित हृदयोद्गार हैं, जो वैष्णवों और शैवों के संघर्ष काल में प्रक्षिप्त रूप से पुराणों में मिला दिए गए। अन्यथा एक तरफ तो गोस्वामी तुलसीदास जैसे सर्वोच्च वैष्णव सन्त की यह घोषणा कि 'शिव द्रोही मम दास कहावै। ते नर मोहि सपनेहु नहि भावै।" और दूसरी ओर किसी वैष्णव नामधारी का यह कहना कि शिव का पूजन करने से 'विष्ठा-कीट' बनना पड़ता है, कैसे बुद्धिसंगत हो सकता है? साम्प्रदायवादियों ने इस प्रकार केवल दो-चार श्लोक

ही शामिल नहीं किये हैं वरन् उन्होंने कहीं-कहीं अन्य सम्प्रदायों के देव-ताओं की हीनता दिखलाने वाली बड़ी-बड़ी कथायें भी गढ़कर घुसेड़ दी हैं। इससे पुराण पाठकों के हृदय में यह भ्रम उत्पन्न होता है कि वे किसको सत्य मानें और किसको झूँठ ? इतना ही नहीं इस प्रकार के असंगत विवरणों को पढ़कर उनकी श्रद्धा समस्त ग्रन्थों पर से ही हट जाती है और वे सभी पुराणों को द्वेषयुक्त अथवा स्वार्थी मनुष्यों की निरर्थक बकवास समझने लगते हैं।

पुराणों के निर्माणकर्ता—

इस बातों को स्वीकार करने में हमको कोई विशेष आपत्ति नहीं जान पड़ती कि पुराणोंका आरंभ व्यासजी द्वारा किया गया था और ये वे ही व्यास थे जो वेदों के संकलन कर्ता तथा महाभारत के रचयिता माने जाते हैं। पर उस समय पुराण अपने वर्तमान स्वरूप में अठारह विभागों में बँटे हुए नहीं थे वरन् 'वायु पुराण' के कथनानुसार उस समय समस्त विषय को एक ही ग्रन्थ में संग्रह किया गया था- "वह 'पुराण संहिता' केवल चार सहस्र श्लोकों की थी। व्यासजी ने उसे अपने छः शिष्यों को पढ़ाया जिनके नाम (१) अत्रि गोत्रीय सुमति, (२) कश्यप गोत्री अकृतव्रण, (३) भारद्वाज गोत्रीय अग्निवर्चः, (४) वसिष्ठ गोत्रीय मित्रयु, (५) सावर्णि सोमदत्ति और (६) सुशर्मा शाँशपायन थे। इनमें से तीन शिष्यों, कश्यप, सावर्णि तथा शाँशपायन ने मूल संहिता के आधार पर तीन संहिताओं की रचना की अर्थ की निगाह से समान थी किन्तु भाषा और शैली में विभिन्नता थी। इनमें लोमहर्षण की संहिता ही मुख्य है। इसके पश्चात् काश्यप, सावर्णि का स्थान था।" इन्हीं संहिताओं को लेकर लोमहर्षण सूत ने कथावाचकों के योग्य नवीन संहिताओं का निर्माण किया। लोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा द्योति द्वारा गृहपति शौनक के यज्ञ में उन पुराणों का आद्यन्त वाचन किया गया और तभी से कथा की परम्परा प्रचलित हो गई। इन पौराणिक कथावाचकों को गुजरात तथा महाराष्ट्र में 'पुराणी' तथा उत्तर भारत में

'व्यास' के नाम से पुकारते हैं। उनके द्वारा पुराण-साहित्य की कैसी वृद्धि हुई, इस विषय में प्राचीन साहित्य के एक महान् ज्ञाताका कथन है।

'इन पौराणिकों में अधिकांश कथावाचक या वाचक होते थे। किन्तु उन्हीं में कुछ ऐसे मेधावी और प्रतिभाशाली भी होते थे जो नवीन मौलिक काव्य-रचना करके पुराणों में नये विषय और रोचक उपाख्यान जोड़ते रहते थे। उन्हें हम 'उपबृंहक' कह सकते हैं। ये लोग नई रचना को अपनी पोथी में लिख लेते थे और उन पोथियों के आधार पर जो नई प्रतिलिपियाँ तैयार की जाती थीं उनमें वे नये परिवर्द्धित अंश भी सन्नि-विष्ट हो जाते थे। अन्य पुराणों के कथावाचक भी लाभदायक होने पर अंशों को प्रकरण तथा सन्दर्भ की संगति के अनुसार अपने-अपने पुराण में परिगृहीत कर लेते थे। उदाहरण के लिए तण्डिकृत 'शिवसहस्र नाम लिंग पुराण' और महाभारत के अनुशासन पर्व' में ज्यों का त्यों पाया जाता है। इसी प्रकार दक्ष कृत सहस्रनाम 'वायु-पुराण' (अध्याय ३०) ('ब्रह्मपुराण' अध्याय ४०) 'वामन पुराण' (अध्याय ४७ और 'शांति पर्व' (अध्याय ?८) में पाया जाता है और भी 'मथुरा माहात्म्य' काशी माहात्म्य आदि प्रकरणों को एक से अधिक पुराणों में स्थान मिला है।

इसका कारण यही है कि किसी उपबृंहक आचार्य ने उसकी रचना की और वहीं से वह विभिन्न पुराणों में लिया गया। इससे यह भी अनु-मान होता है कि व्यास या पौराणिकों के विभिन्न परिवारों में भिन्न-भिन्न पुराणों के बाँचने की परम्परा का पालन होता था। वे ही परिवार अपने-अपने पुराणों की आदर्श प्रतियों की रक्षा करते थे और नये-नये अंशों को जोड़कर उनको अद्यावधिक (अप टू डेट) बनाये रहते थे। इस प्रकार लोक में पुराण-विद्या का बहुत प्रचार और वृद्धि हुई। महा-पुराणों के बाद जो इसी परम्परा की रचनाएँ हुईं वह साहित्य उप-पुराणों के नाम से अभिहित हुआ।'

एक अन्य विद्वान् लेखक ने पुराणों में होने वाले परिवर्तनों और उपबृंहणों (क्षेपकों) के सम्बन्ध में विचार करते हुए कहा है—

पुराणों की कहानी स्वयं पुराण ही कहते हैं। उनके अध्ययन से यह स्पष्ट है कि पुराण वस्तुतः वैदिक कथाओं, जनश्रुतियों एवं सृष्टि, विसृष्टि, प्रलय, मन्वन्तर आचार वर्णन, राजवंश वर्णन के प्रतीक हैं। पौराणिक सूतों के कथनानुसार भगवान वेद व्यास ने आख्यान, उपाख्यान, गाथा, कल्प शुद्धि के साथ पुराण संहिताओं की रचना की। पुराणों के इस कथन से हम इस नतीजे पर पहुँच सकते हैं कि वेदों की भाँति इधर-उधर बिखरी हुई पौराणिक सामग्री को संग्रह करके व्यासजी ने अपनी मान्यता के अनुसार उसका सम्पादन किया। वेद की भाँति आदिकाल में पुराण भी एक ही था (पुराणो एकमेवासीत) कालान्तर में पुराणों का विभाजन सूतों द्वारा हुआ। सूत, एक जाति या सम्प्रदाय था, जो वंश परम्परा से घूम-घूम कर कथाओं द्वारा समाज का संशोधन एवं मनोरंजन करता था। विभिन्न सूतों के मुख से उद्‌गीर्ण पौराणिक कथाओं में काल क्रमानुसार पाठान्तर और प्रक्षेप का होना स्वतः सिद्ध है। कालान्तर में स्वार्थ निरत व्यासों और सूतों ने अपनी-अपनी मान्यता का समावेश करके धीरे-धीरे पुराणों को तिल का ताड़ बना दिया। उनकी शाखायें–प्रशाखायें उत्पन्न हुईं। साम्प्रदायिक घृणा और द्वेष की प्रवृत्तियाँ समाविष्ट हुईं। पाठान्तर और प्रक्षेप उत्तरोत्तर बढ़ते ही गए। पर फिर भी पुराणों की मौलिकता और वास्तविकता समूल नष्ट नहीं हुई, हाँ उसके कारण विवेचना शून्य पाठकों के लिये भ्रम और विवाद का हेतु उत्पन्न हो गया।"

पुराणों में वर्णित विषय—

पुराणों का सामान्य अर्थ प्राचीन काल की घटनाओं का वर्णन करना है। स्वयं पुराणों में उनके वर्णन योग्य विषयों का परिचय इस प्रकार दिया है—

सर्ग प्रतिसर्गश्च वंशौ मनवन्तराणि च।
वंशानुचरित विप्र पुराणं पंच लक्षणम्॥

"सृष्टि, प्रलय, राजवंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित—ये ही पुराण के पाँच लक्षण हैं।"

इसी पुराण में अन्य स्थान पर पुराणों के विषयों की सूची इस प्रकार दी है—

सृष्टिचापि विसृष्टिश्चेत स्थितिस्तेषां च पालनम् ।
कर्मणा वासना वार्ता चामूनां च क्रमेण च ॥
वर्णनं प्रलयानां च मोक्षस्य च निरूपणम् ।
उत्कीर्तन हरे रेव देवानां च पृथक् पृथक् ॥

"भौतिक सृष्टि, चेतन सृष्टि, स्थित, पालन, कर्म और वासना का वर्णन, प्रलय और मोक्ष का निरूपण, भगवान और देवताओं को पृथक्-पृथक् कीर्तन—ये ही पुराणों के वर्ण्य विषय हैं।"

'वायु पुराण' में ऋषियों ने व्यासजी से प्रश्न करते हुए पुराणों में आये हुए मुख्य-मुख्य विषयों की गणना इस प्रकार कराई—

पुराणे ष्वेषु बहवो धर्मास्ते विनिरूपताः ।
रागिणां च विरागाणां यतीनां ब्रह्मचारिणां ॥
गृहस्थानां वानप्रस्थानां स्त्रीशूद्राणां विशेषतः ।
ब्राह्मण क्षत्रिय विशां ये च संकर जातयः ॥
गंगाद्या या महानद्यो यज्ञव्रत तपांसि च ।
अनेक विधदानानि याताश्च नियमैः सह ॥
योगधर्मा बहुविधाः सांख्या भागवतास्तथा ।
भक्तिमार्गा ज्ञानमार्गा वैराग्य निल नीरजा ॥
उपासना विधिश्चोक्तः कर्म संशुद्धि चेतसाम् ।
ब्राह्मं शैवं वैष्णवं च सौरं शक्तं तथाऽऽर्हतम् ॥
षड्दर्शनानि चोक्तानि स्वभाव निपतानी च ।
एतदन्यच्च विविधं पुराणेषु निरूपितम् ॥
(१०४ । १-१७)

अर्थात्—'अपने पुराणों में बहुत से धर्मों का निरूपण किया है। रागी, विरागी, यती, ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थ, स्त्री, शूद्र, विशेषतया ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अन्यान्य सकर जातियों द्वारा विधेय धर्मों का उनमें वर्णन है। गङ्गा आदि महान् नदियों एवं विविध प्रकार के यज्ञों, तपों एवं व्रतों के नियम उनमें वर्णित हैं। अनेक प्रकार के दान, यम, नियम, योग धर्म, सांख्य धर्म, भागवत धर्म, भक्तिमार्ग, ज्ञानमार्ग, वैराग्य मार्ग, अनित्य, नीरज, विविध उपासनाएँ, चित्त की कर्म सशुद्धि आदि का विधि समेत वर्णन किया गया है। ब्राह्म, शैव, वैष्णव, सौर, शक्ति, आर्हत, षडदर्शनादि विविध विषयों का उन पुराणों में पर्यालिनोच किया गया है।

इसी से मिलती जुलती विषय-सूची 'भागवत महापुराण', 'विष्णु-महापुराण' आदि में भी दी गई है जिनसे विदित होता है कि सृष्टि की उत्पत्ति, मन्वन्तर तथा अवतारों के चरित्रों के अतिरिक्त तरह-तरह की आध्यात्मिक तथा लौकिक विद्याओं का वर्णन करना भी पुराणों का एक उद्देश्य रहा है और इस दृष्टि से वे भारतीय जन-जीवन को सदा प्रभावित करते आये हैं।'

पुराणों की उपयोगिता—

पुराणों में वर्णित विषयों पर विचार करने से यह निश्चय हो जाता है कि वास्तव में उनकी गणना वैसे हल्के अथवा निरर्थक श्रेणी के साहित्य में नहीं की जा सकती जैसे कुछ विरोधी अथवा अनजान व्यक्तियों ने बिना उनका अध्ययन, मनन किये ही मान रखा है। यह सत्य है कि किन्हीं नीच प्रकृति के सम्प्रदायवादियों द्वारा अन्य देवताओं पर किये गये घृणित आक्षेपों अपने उपास्य देवता की अतिशयोक्ति पूर्ण प्रशंसा, तीर्थों, पर्वों आदि को बहुत ही बढ़ा चढ़ा कर कहा गया माहात्म्य और उनमें दान देने की अपार महिमा आदि बातों ने पुराणों का महत्व बहुत कुछ घटा दिया है, पर इससे उनकी उपयोगिता सर्वथा नष्ट नहीं हो सकती। स्वमताभिमानी अहकारी पण्डितों अथवा दान-लोलुप भिक्षुक श्रेणी के ब्राह्मणों की इन करतूतों को कुछ विद्वानों ने 'रस

में विष' मिला देने की उपमा दी है, जो अधिकांश में ठीक ही है। यदि इस आक्षेप योग्य मिलावटी सामग्री को पृथक् कर दिया जाय तो पुराणों के द्वारा आज भी जीवन के सभी क्षेत्रों से काम आने वाली जो अमूल्य शिक्षायें प्राप्त होती हैं, उनके कारण भारतीय धार्मिक साहित्य में उनको उच्च स्थान देने में आनाकानी नहीं की जा सकती। दया, क्षमा, उदारता, परोपकार, सज्जनता, आपत्तियों का सहन करना, वीरता धैर्य, धर्मनिष्ठा सत्य का पालन आदि का जैसा सजीव और सहज में हृदयंगम हो जाने वाला चित्रण पौराणिक उपाख्यानों में किया है, वैसा अन्यत्र मिल सकना दुर्लभ है। स्वार्थ को त्यागकर पारमार्थिक जीवन व्यतीत करने की, गृहस्थी और परिवार के उत्तरदायित्वों का पालन करते हुए भी उच्च से उच्च त्यागमय जीवन व्यतीत करने की, नीच से नीच अवस्था में पहुँच जाने पर भी आन्तरिक निष्ठा और साधन के बल पर पुनः सर्वोच्च पद कर प्रतिष्ठित होने की जैसी प्रेरणायें पुराणों से मिलती हैं वे निस्सन्देह अनुपम हैं। और इसमें सन्देह नहीं कि उनके द्वारा आज तक करोड़ों व्यक्ति अपने जीवन को ऊँचा उठाकर अपने को समाज के लिये सार्थक बना चुके हैं।

उदाहरण के लिये हरिश्चन्द्र के उपाख्यान को ही ले लीजिये। उसमें वास्तविकता का अंश चाहे कितना भी कम या ज्यादा क्यों न माना जाय और उसकी घटनाओं के सम्भव या असम्भव माने जाने के सम्बन्ध में कितना भी मतभेद क्यों न हो, पर इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि उनसे अनगिनती व्यक्ति सत्य की महिमा का उपदेश ग्रहणकर चुके हैं और अनेक व्यवहार रूप में भी उसका पालन कर चुके हैं। हमारे युग के सर्वश्रेष्ठ महामानव महात्मा गांधी ने अपनी 'आत्मकथा' में बतलाया है कि बालकपन में हरिश्चन्द्र का नाटक देखकर उनके हृदय पर कितना अधिक प्रभाव पड़ा, किस प्रकार वे उनके सत्यव्रत पालन से अभिभूत हो गये और आगे चलकर किस प्रकार यह उदाहरण उनको सत्य का पालन करने के लिये प्रेरणा देता रहा। महात्माजी ने अपने सत्य पर अडिग रहने का बहुत कुछ श्रेय इस उपाख्यान को दिया है।

इसी प्रकार 'श्रवण कुमार' के कथानक से कितने व्यक्ति माँ बाप के भक्त बने रहने की शिक्षा प्राप्त कर चुके होंगे। भगवान् राम की शरणागत रक्षा, कृष्णजी का न्याय पक्ष का समर्थन, हनुमान की स्वामिभक्ति, भीष्म का ब्रह्मचर्य व्रत पालन, कर्ण की दानशीलता, दधीचि का आत्मत्याग आदि बहुसंख्यक पौराणिक प्रसङ्ग सामान्य व्यक्तियों को चरित्र निर्माण, नैतिकता का पालन, समाज-सेवा,स्वार्थ-त्याग, परोपकार आदि की शिक्षा देकर जन-जीवन को कितना उच्च बनाते रहे हैं, उसका अनुमान कौन लगा सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि ये पौराणिक कथायें चाहें वे सत्य हों या कल्पित, हिन्दू-जाति के सम्मुख ऐसे उच्च आदर्श उपस्थित करती रही हैं, जिनके प्रभाव से उसे सदैव श्रेष्ठ और पवित्र जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा प्राप्त होती रही है और वह संसार में एक सम्माननीय स्थान प्राप्त कर सकी है। पुराणों के विशाल ज्ञान-भण्डार का अवलोकन करके किसी लेखक ने ठीक ही कहा है—

"पुराण भारतीय संस्कृति के भण्डागार हैं। इनमें भारत की सत्य और शाश्वत आत्मा निहित है। इन्हें पढ़े बिना भारत का यथार्थ चित्र सामने नहीं आ सकता,भारतीय-जीवन का दृष्टिकोण स्पष्ट नहीं हो सकता। मनुष्य के गन्तव्य और पाथेय का ज्ञान नहीं हो सकता इसमें आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक सभी विद्याओं का विशद् वर्णन है। लोक-जीवन के सभी पक्ष इनसे भली प्रकार प्रतिपादित हैं। संसार में ऐसा कोई ज्ञान-विज्ञान नहीं, मानव-मस्तिष्क की कोई ऐसी कल्पना व योजना नहीं, मनुष्य-जीवन का ऐसा कोई अंग नहीं जिसका निरूपण पुराणों में न हुआ हो। जिन विषयों को अन्य माध्यमों से समझाने में बहुत कठिनाई होती है, वे बड़े रोचक ढंग से, सरल भाषा से, आख्यान आदि के रूप से इनमें वर्णित हुए हैं।"

वास्तव में द्वेषयुक्त साम्प्रदायिकता तथा अतिशयोक्तियों के होते हुए भी पुराणों में मानव-जीवन के उत्कर्ष योग्य बहुत सी सामग्री मिलती है। विशेषतः सामान्य बुद्धि के पुरुष जिनकी संख्या सौ से नव्वे से अधिक होती है, व जो वेद, उपनिषद,स्मृतियों के गूढ़ तत्वों के रहस्य को

समझ सकने में असमर्थ होते हैं, वे पुराणों के द्वारा धर्म के मूल सिद्धान्तों और तदनुसार आचरण के नियमों को जानने में समर्थ हो सकते हैं। इस दृष्टि से यदि प्रक्षिप्त और पुनरावृत्ति के अंशों को हटाकर पुराणों की उपयोगी सामग्री का अध्ययन और मनन किया जाय तो निस्सन्देह पाठक उनसे बहुत लाभ उठा सकते हैं। 'शिवपुराण' के इस संस्करण में हमने इसी दृष्टिकोंण से वर्णित विषयों का संकलन किया है। इसमें सम्पूर्ण शिव-कथा और उसका माहात्म्य का सुचारु रूप से सन्निवेशित है, जिससे पाठकों को शिव-तत्व की वास्तविक अनुभूति हो सकेगी और वे दृष्टान्त उदाहरण, रूपक, अलंकार आदि के मध्य में निहित मूल तत्व को हृदयगम कर सकेंगे। अप्रासंगिक और कम महत्व के विषयों को छोड़ दिया गया है।

शिव महापुराण के मुख्य विषय—

शिव पुराण का उद्देश्य शिव की भक्ति का प्रचार करके लोगों में परमार्थ की भावनायें जागृत करना है। सभी पुराणों और शास्त्रों में शिव का चरित्र परम त्याग, तपस्या, परोपकार, दीन-वत्सलता के गुणों से युक्त चित्रित किया गया है। जहाँ अन्य देवताओं को वैंभवयुक्त अवस्था में दिखलाया है, वहाँ शिवजी को सर्वत्यागी, श्मशानवासी, महाकाल होने पर भी लोक कल्याणकारी रूप,में प्रस्तुत किया है। समुद्रमन्थन की कथा में जब कि अन्य देवों ने बढ़िया-बढ़िया उपहार ग्रहण किये, शिवजी ने सर्वनाशक कालकूट को स्वीकार करके लोगों की रक्षा की। अन्य देवों के रेशम सुवर्णरत्नों के आभूषणों के मुक़ाबले में शिवजी बाघम्बर और रुद्राक्ष की माला से ही विभूषित होना पसन्द करते हैं। दूसरे देवताओं को जहाँ मिष्ठान्न, पकवान, व्यञ्जन आदि की आवश्यकता हुई,यहाँ शिवजी विल्व-पत्र और धतूरा जैसे सामान्य पूजा उपकरणों से ही सन्तुष्ट हो गये। इस प्रकार शिवजी का चरित्र परमोदार, परमार्थ-परायण और अपरिग्रही प्रकट होता है। ऐसे आदर्श-चरित्र देव को यदि सर्वोच्च आसन देकर देव और दानव दोनों उनकी उपासना और भक्ति करें तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है?

विद्येश्वर संहिता –

इसमें सर्वप्रथम कलियुग में पापों की घोर वृद्धि तथा आचार-विचार के नष्ट होने का वर्णन करके परित्राण पाने के लिए शिवभक्ति का उपदेश किया गया है। जब ऋषियों ने ब्रह्माजी से विश्व के आदि कारण को जानने तथा प्राप्त करने के सम्बन्ध में प्रश्न किया तो उन्होंने यही कहा कि मनुष्य का साध्य शिवपद (मुक्ति) प्राप्त करना है और उसका साधन उनकी पूजा, अर्चना करना है। साधक का कर्त्तव्य है कि कर्म के फल कामना न करते हुए निस्पृह भाव से उस महेश्वर की आराधना करे। वेदोक्त कर्म करके उसका फल जब शिव को ही समर्पण कर दिया जाय तो सायुज्यादि मुक्ति की प्राप्ति होती है। कानों से उनका गुण सुनना, वाणी से कीर्तन करना और मन से उनका मनन करना यही महासाधन कहलाता है। यह मार्ग सर्वथा वेदानुकूल है जैसा कि "आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः" श्रुति में कहा गया है।

आत्मा की उन्नति तथा साक्षात्कार के लिये शिव पुराण में भी वेद, उपनिषद् आदि की तरह 'ॐ' अर्थात् प्रणव को सर्वश्रेष्ठ जप बतलाया है। इस सम्बन्ध में कहा है, "प्रणव का अर्थ है– (प्र) प्रगति से उत्पन्न हुए संसार सागर को (नवम्) नौका रूप है। इसी से पंडित इसको प्रणव कहते हैं। अथवा (प्र) प्रपंच (न) नहीं है (व, तुम में अर्थात् आत्मा में कुछ प्रपंच नहीं है। तीसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि (प्र) प्रकृष्टता से जपने वाले को मोक्ष देता है। प्रणव का जप करने वालों को सब कर्मों का क्षय होकर दिव्य ज्ञान प्राप्त होता है। यह प्रणव स्थूल (प्रकट) और सूक्ष्म (अव्यक्त) दो प्रकार का होता है। सूक्ष्म एकाक्षर और स्थूल पंचाक्षर होता है। (आउम्) इन तीन अक्षरों के संयोग को दीर्घ प्रणव कहते हैं और यह योगियों के हृदय में निवास करता है। दूसरा (आउम्) से ह्रस्व प्रणव बनता है जो अपने उपास्यदेव के जप के लिये उपयुक्त होता है। जिनकी संसार में प्रवृत्ति है उनको ह्रस्व ॐकार का और निवृत्ति की इच्छा वालों को दीर्घ का जप

करना चाहिए। वेद के आदि ॐकार का ही प्रयोग करना चाहिए। दोनों सन्ध्यावादन में भी ॐकार का ही प्रयोग किया जाता है।

तेरहवें अध्याय में सदाचार का जो वर्णन हुआ है वह भी अन्य शास्त्रों की तरह मानव चरित्र का उत्थान करने वाला और शुद्ध पवित्र बनाने वाला है। गायत्री की महिमा को 'शिव पुराण' ने अधिक माना है और उसके द्वारा सब प्रकार के कार्यों की सिद्धि बतलाई है:—

"सब देवताओं को नमस्कार कर स्थिर बुद्धि और स्थिर आसन से प्रथम ओंकार और फिर गायत्री का अभ्यास करे, जीव और ब्रह्म की एकता देखकर ॐकार का जप करे। त्रिलोकी के सृष्टिकर्ता ब्रह्मा और स्थितिकर्ता नारायण और संहारकर्ता भगवान् रुद्र की हम उपासना करते हैं। हमारी ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों मन की वृत्ति और बुद्धि को वह परमात्मा भोग और मोक्ष देने वाले धर्म में सदा लगावे। ब्राह्मणत्व की पूर्ति के निमित्त श्रेष्ठ ब्राह्मण नित्य प्रति उठकर एक सहस्र गायत्री जप करे। क्षत्रिय और वैश्य मध्याह्न में सौ बार गायत्री का जप करें। मूलाधार चक्र से आरम्भ करके ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त स्थित चक्रों में वित्तेश, ब्रह्मा, विष्णु, ईश जीवात्मा परमेश्वरों को ब्रह्म-बुद्धि से एक ही जानकर सोहं-भावना से जप करे। महतत्व [प्रकृति] से आरम्भ करके प्रारब्ध भोगवश से प्राप्त हुए सहस्रों शरीरों के समूह की प्राप्ति को एक जप से एक-एक शरीर को अतिक्रमण कर शनैः-शनैः जीव को परब्रह्म में लगावें। यह जप दो हजार आठ की संख्या तक किया जाय।

(२) रुद्र-संहिता—

इस पुराण की सबसे बड़ी और शिव-परिवार की कथा को प्रकट करने वाली रुद्र-संहिता ही है। उसके प्रथम 'सृष्टि खण्ड' में जगत के आदि कारण निर्गुण ब्रह्म का वर्णन, उससे साकार शिव तथा आद्या-शक्ति (माया) का आविर्भाव, फिर शिव के द्वारा विष्णु तथा विष्णु से ब्रह्मा की उत्पत्ति की गई है। यद्यपि जगह-जगह विष्णु और ब्रह्मा की प्रशंसा भी पाई जाती है और इन दोनों देवताओं के सम्बन्ध में जो

कथाएँ अन्य पुराणों में हैं वे भी मिलते-जुलते रूप में वर्णन की गई हैं, पर शिव की प्रधानता सर्वत्र बतलाई गई है। पूजा और उपासना का पात्र एक मात्र शिव को ही कहा गया है और उसका मुख्य रूप लिंगार्चन बतलाया है।

सृष्टि-रचना से पूर्व जब सर्वत्र एक अव्यक्त तत्व ही व्याप्त था उस का वर्णन करते हुए कहा है कि जब महाप्रलय-काल में स्थावर, जंगम सब नष्ट हो गये तब ग्रह, नक्षत्र, तारा, सूर्य कुछ भी न होने से सब अन्धकार रूप था। चन्द्रमा, दिन-रात, अग्नि, वायु, पृथ्वी जल कुछ भी नहीं था, तब प्रधान आकाश तथा किसी प्रकार का तत्व भी नहीं था। शब्द, स्पर्श तथा दृष्ट पदार्थ कुछ भी नहीं था। गन्ध, रूप, रस आदि सब अव्यक्त (अप्रकट) था। उस प्रकार सूचीभेद अन्धकार में केवल वह सद्ब्रह्म ही था। जिसको 'सत्' कहते हैं। उस समय सद् असदात्मक भी कुछ नहीं था जिसको योगी अपने हृदयाकाश में निरन्तर अवलोकन करते हैं, जो मन वाणी के अगोचर हैं, किसी इन्द्रिय का विषय नहीं है, जो नाम रूप, वर्ण से रहित स्थूल और सूक्ष्म में नहीं है। जो ह्रस्व, दीर्घ, लघु गुरुत्व से वर्जित है, जिसमें उपचय और अपचय नहीं है। श्रुति भी जिसको सत्य-स्वरूप, ज्ञान-स्वरूप, अनन्त-स्वरूप, निर्विकल्प, निरारम्भ, माया रहित, उपद्रव रहित, विकार रहित कहती है।"

सृष्टि-रचना के पूर्व की स्थिति ऐसी है जिसे हिन्दू धर्म शास्त्रों ने ही नहीं वरन् सभी विचारशील व्यक्तियों ने स्वीकार किया है और वर्तमान समय में विज्ञान भी खोज करते-करते वहीं जाकर पहुँच गया है। यह बात दूसरी है कि वैज्ञानिक उसका वर्णन भिन्न शब्दों में और भिन्न नाम से करते हों। ऐसे निराकार ब्रह्म की कल्पना अविकसित मत मतान्तरों के अनुनाइयों के लिए असम्भव है और विद्वान् कहलाने वाले भी उसका वास्तविक रूप में अनुमान नहीं कर सकते। इसलिये भारतीय ऋषियों ने उसका बहुत कुछ वर्णन करके भी अन्त में 'नेति-नेति' कह दिया है कि उसका पूर्ण परिचय दिया जा सकना या उसे समझ सकना

मानव-मस्तिष्क के लिए किसी प्रकार सम्भव नहीं है क्योंकि वह हमसे भिन्न जातीय तत्त्व है।

पर जब निराकार से साकार होने का विषय उपस्थित होता है तब समस्त सम्प्रदाय और मजहब उसका वर्णन करने में अपनी प्रधानता स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं। वैष्णव उनको विष्णु कहते हैं, दर्शन-शास्त्र वाले ब्रह्म पुकारते हैं, शैव उसे शिव अथवा रुद्र के नाम से अभिहित करते हैं। इसी प्रकार पारसी, 'आहरमज्द', यहूदी 'यहोवा', ईसाई 'गाड' मुसलमान 'खुदा' के नाम से प्रकट करते हैं। इसमें तो संदेह किया ही नहीं जा सकता कि निर्गुण से सगुण की उत्पत्ति किसी एक ही रूप में हुई. दुनियाँ के मनुष्य उसका वर्णन चाहे जिन शब्दों में और चाहे जिस नाम से करते रहें। इस सृष्टि से यदि 'शिव-पुराण' के रचयिता ने उसे 'शिव' का नाम दिया है तो इसे किसी प्रकार असत्य अनुचित मानने की कोई बात नहीं है। निर्गुण से सगुण ब्रह्म की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उसका कथन सर्वथा युक्तियुक्त है—

"उस नाम रूप रहित निर्गुण ब्रह्म को कुछ काल में दूसरे की इच्छा हुई। तब उस अमूर्त ने इच्छा से ही अपनी मूर्ति कल्पित की जो सब ऐश्वर्य गुणों से युक्त, सर्वज्ञानमयी, शोभायमान है। जो सर्वगामिनी, सर्वरूपा, सबको देखने वाली, सबकी करने वाली है। सबकी वन्दनीया, सबकी आद्या, सबका संस्कार करने वाली है। इस ऐश्वर्ययुक्त शुद्ध रूप वाली मूर्ति की कल्पना करके वे अद्वितीय, अनादि, अनन्त, सर्वाभास, चिदाम्मा, सर्वगामी अविनाशी पराख्य ब्रह्म अन्तर्धान हो गये। जो अमूर्त परतत्व हैं उसी की मूर्ति 'सदाशिव' है जिसको पण्डितगण 'ईश्वर' कहते हैं। इस ईश्वर ने अपने शरीर से ही स्वच्छन्द शरीर वाली अनपायिनी शक्ति प्रकट की। जिसे 'प्रधान प्रकृति' या 'परामाया' कहते हैं। यही बुद्धि तत्व की जननी है। वही शक्ति अम्बिका प्रकृति सब लोकों की ईश्वरी, तीनों देवताओं (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र) की जननी, नित्या और मूल कारण कही जाती है।"

इस प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में 'शिव पुराण' को अन्य मतावलम्बियों से कोई मतभेद नहीं है। एक परमेश्वर से ब्रह्मा, विष्णु, महेश की तीन शक्तियों के प्रकट होने की कल्पना निराधार नहीं है क्योंकि उत्पत्ति, पालन और संहार का कार्य प्रत्येक पदार्थ और अवस्था के लिए अनिवार्य है। इसलिये ईसाई आदि धर्मों में भी 'ट्रिनिटी' (त्रिमूर्ति) की कल्पना की गई है। यदि 'शिव पुराण' इनको 'परमशिव' 'अम्बिका' 'शिवलोक' आदि के नाम से पुकारता हैं तो वह भी अन्य सम्प्रदायों की तरह इसका अधिकारी है।

रुद्र-संहिता का दूसरा भाग 'सती-खण्ड' है इसमें सती के जन्म, शिवजी के साथ विवाह और अन्त में दक्ष के यज्ञ में देह-त्याग करने की कथा विस्तार पूर्वक कही गई है। दक्ष को ब्रह्मा का पुत्र माना गया है और उसी से प्रजा की उत्पत्ति का क्रम आरम्भ हुआ। पुराण लेखक ने सती की कथा द्वारा बतलाया है कि जब दक्ष ने अभिमानवश शिव की अवज्ञा की तो उसका घोर पतन हो गया और जब अपनी भूल को समझ कर वह उनकी भक्ति करने लगा तो अपने यज्ञ को सफल करके सबका अधिपति बन गया। दक्ष के यज्ञ का वर्णन ध्यान पूर्वक पढ़ने से वह विष्णु और शिव के अनुयाइयों का संघर्ष ही प्रतीत होता है जिसमें अन्त में शिव के पक्ष की विजय हुई।

तीसरे 'पार्वती-खण्ड' की कथा लोक में बहुत प्रसिद्ध है। पार्वती द्वारा शिव के साथ विवाह करने का दृढ़ निश्चय और उसके अभूतपूर्व तप की कथा अनेक ग्रन्थों में पाई जाती है। पार्वती ने बाह्य रूप के बजाय गुणों का महत्व समझ कर शिव को पति रूप में वरण करने का विचार किया था और एक बार निश्चय कर लेने पर वह बड़ी से बड़ी बाधा की परवाह न करके भी अपने लक्ष्य पर ही स्थिर रही। उसके माता-पिता तथा अन्य हिताचिन्तकों ने उसे महादेव जैसे सर्वत्यागी और अकिंचन को छोड़कर अन्य ऐश्वर्य सम्पन्न व्यक्ति से विवाह कर लेने को बहुत समझाया, पर वह अपने ग्रहण किये गये व्रत पर अडिग रही और अन्त में उसे संसार में 'नारि शिरोमणि' की पदवी प्राप्त हुई।

चौथे 'कुमार खण्ड' में स्कन्द के जन्म तथा पालन-पोषण की कथा है । शिव-पार्वती के विवाह का उद्देश्य एक ऐसा पुत्र उत्पन्न करना ही था जो संसार को अपने कठोर शासन से त्रस्त करने वाले तारकासुर का वध कर सके । देवताओं की अभिलाषानुसार स्कन्दकुमार एक बहुत चतुर और साहसी सेनापति सिद्ध हुए और उन्होंने अपनी सैनिक योग्यता से तारकासुर के आतंक का कर दिया । इसी काण्ड में गणेश-जन्म की विचित्र कथा भी आ गई है जिससे पार्वती जी की शक्ति की वृद्धि और अतुलित प्रभाव का परिचय मिलता है । महादेव ने आरम्भ में गणेश का तिरस्कार किया पर अन्त में उसको सर्वपूज्य स्थान देना पड़ा । गणेशजी यद्यपि स्कन्दकुमार के कनिष्ठ थे, पर अपनी बुद्धिमानी के फलस्वरूप उन्होंने शिव-परिवार में सबसे प्रथम पूज्य पदवी प्राप्त करली । इसकी परीक्षा के लिए महादेव जी ने दोनों पुत्रों को पृथ्वी-परिक्रमा करने की आज्ञा दी थी । स्कन्दकुमार तो अपनी शक्ति पर भरोसा करके यात्रा पर तुरन्त रवाना हो गये, पर गणेश ने बुद्धिमत्ता से काम लेकर महादेव और पार्वती की पूजा करके उनकी सात परिक्रमा की । उनका कहना था कि माता-पिता का दर्जा पृथ्वी से बड़कर है और जब मैंने उनकी परिक्रमा करली तो मुझे पृथ्वी-परिक्रमा का फल स्वयमेव प्राप्त हो गया । उन्होंने कहा—

"मैंने आप दोनों माता-पिता का पूजन किया है, इसलिए मैंने तो अपने विचारानुसार समस्त पृथ्वी की परिक्रमा कर ली । वेद, शास्त्र भी इस मत का समर्थन करते हैं कि जो माता-पिता की परिक्रमा करता है वह समस्त पृथ्वी की परिक्रमा का पुण्य प्राप्त कर लेता है । जो माता-पिता को छोड़कर तीर्थ को जाता है उसे माता-पिता के मारने का पाप लगता है । पुत्र का सबसे बड़ा तीर्थ यही है कि माता-पिता के चरणों की सेवा करे । दूसरे तीर्थ तो दूर जाने से प्राप्त होते हैं, पर माता-पिता रूपी तीर्थ सदा निकट, सुलभ और धर्म का साधन है । पुत्र की स्त्री को भी घर में इसी तीर्थ की सेवा करनी चाहिए । यही बात वेद-शास्त्र निरन्तर कहते हैं और आपको भी इसी के अनुसार

कार्य करना चाहिए, अन्यथा शास्त्र झूँठे हो जायेंगे।" गणेशजी के तर्क-युक्त कथन को शिवाजी ने हीं वरन् सभी देवों ने सत्य बतलाया और उनको प्रत्येक कार्य में प्रथम पूज्य स्थान देना स्वीकार कर लिया।

पाँचवें 'युद्ध-खण्ड' में शिवजी द्वारा अनेक दैत्यों के वध का वर्णन किया गया है। दैत्य-गण विशेष रूप से शिव के ही उपासक थे, पर अनीति पर चलने के कारण अथवा संसार की शान्ति को भंग करने के दोष के आधार पर वे उनके विरुद्ध युद्ध-क्षेत्र में उतरते थे। इन दैत्यों में शंखचूड़ सबसे अधिक बलशाली और बुद्धिमान था। उसने त्रिलोकी का अधिपति होने महत्वाकांक्षा से देवलोक पर चढ़ाई करके इन्द्रासन पर अधिकार कर लिया था और देवताओं को यज्ञ में मिलने वाले भाग को स्वयं ग्रहण करना आरम्भ कर दिया था। इस पर देवताओं ने ब्रह्मा और विष्णु से अपने कष्टों को दूर करने की प्रार्थना की और वे शंखचूड़ का वध कठिन समझ कर शिवजी की शरण में गये। शिवजी ने देव-पक्ष को न्याययुक्त समझ कर शंखचूड़ का दमन करने का आश्वासन दिया। पहले उन्होंने दूत भेजकर शंखचूड़ को देवताओं का राज्य उनको वापिस करने को समझाया और जब वह इसके लिए राजी न हुआ तो घोर संग्राम करके उसे मार दिया।

(३) शतरुद्र संहिता --

इसमें शिवजी द्वारा जगत में किये गये अनेक चरित्रों का वर्णन है जिनको पुराणाकार ने शिव का अवतार कहा है। इसमें कहा गया है कि हनुमानजी शिव के अवतार थे। समुद्र मंथन के समय देवताओं को अहङ्कार होने पर शिवजी ने यक्षेश्वर का रूप धारण कर उन सबका गर्व दूर किया। यह कथा ठीक वैसी ही है जैसी कि वेदों में यक्ष द्वारा इन्द्रादि का गर्व दूर करने के विषय में कही गई है। इसमें प्रकट किया है कि संसार में जहाँ कहीं जिस प्रकार की शक्ति अथवा महत्ता दिखलाई पड़ती है, उस सबका स्रोत एक मात्र परमात्मा है ही। उसके बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता और वह चाहे तो क्षण भर में पर्वतों को धूल के रूप में परिणित कर सकता है। यह जान कर

मनुष्य को सदा निरंहकार रहकर न्याय और नम्रता का ही पालन करना चाहिये ।

(४) कोटिरुद्र संहिता—

इसमें शिव के द्वादश ज्योतिर्लिंगों का वर्णन है जो देश के विभिन्न भागों में स्थापित हैं और जिनकी अर्चना से सदैव अनगिनती व्यक्ति संतुष्ट होते हैं । सौराष्ट्र में सोमनाथ, श्रीशैल में मल्लिकार्जुन, उज्जैन में महाकाल, ओंकार में अमरेश्वर, हिमालय में केदार, डाकिनी के भीम शंकर, काशी में विश्वनाथ, गौतमी के तट पर त्र्यम्बक, चिताभूमि में वैद्यनाथ, दारुकवन में नागेश, सेतुबन्ध में रामेश्वर तथा शिवालय में घुश्मेव—ये बारह ज्योतिर्लिङ्ग प्रसिद्ध हैं शिवजी के बारह अवतार माने जाते हैं । इन बारह ज्योतिर्लिगों का इतना अधिक प्रभाव बतलाया गया है कि "जो मनुष्य हृदय में जिस-जिस मनोरथ के उद्देश्य से इन द्वादश शम्भु के शुभ नामों का पाठ एवं स्मरण करेंगे वे उन मनोरथों को इस लोक और परलोक में अवश्य ही प्राप्त कर लेंगे । जो मानव निष्काम भावना से ही अपना कर्त्तव्य समझते हुए उपास्य देह श्री महादेव के इन बारह नामों का स्मरण करते रहेंगे उनको फिर संसार में माता के गर्भ आकर कष्ट नहीं भोगना पड़ेगा ।"

इन द्वादश ज्योतिर्लिंगों का माहात्म्य तो विशेष रूप से प्रसिद्ध ही है पर शैव सिद्धान्त के अनुसार 'भगवान् शिव के समस्त लिंगों की संख्या बतला सकना असम्भव है । संसार में कोई उसका पूर्ण रूप से वर्णन नहीं कर सकता क्योंकि समस्त भूमण्डल तथा विश्व लिंगमय ही है । समस्त तीर्थ लिंगमय हैं और जो कुछ श्रेष्ठ है वह सब लिंग द्वारा ही प्रतिष्ठित है । इस जगतीतल में जो भी दर्शनीय तथा वर्णन करने योग्य है, जो कुछ स्मरण किया जाता है वह सब भगवान् शंकर का ही स्वरूप है । उसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है । भगवान् शिव के लिंग पृथ्वी, स्वर्ग, पाताल सर्वत्र विद्यमान हैं और वे देव, असुर तथा मनुष्यों के द्वारा सभी स्थानों में पूजित तथा वन्दित होते हैं । देव

दैत्य और मानवों सहित यह त्रिभुवन महेश्वर से व्याप्त है और भगवान् शंकर संसार के कल्याण के लिए अनुग्रह करते हुए सर्वत्र लिंग रूप में विराजमान रहते हैं। सांसारिक प्राणियों का उपकार करने के लिए महेश्वर ने अपना लिंग-स्वरूप प्रकट कर दिया है उसी लिंग-प्रतिमा का समार्चन करके संसार में मनुष्य अनेकानेक सिद्धियों की प्राप्ति किया करते हैं।"

शिव पुराण में दिये वर्णन को पढ़कर तथा देश के विभिन्न भागों में सर्वत्र पाये जाने वाले विशाल शिव मन्दिरों को देखकर स्वभावतः यह विश्वास होने लगता है कि भगवान् शंकर का प्रभाव सर्वव्यापी रहा है और उनमें मनीषियों ने बहुत बड़े आध्यात्मिक-तत्व को अनुभव किया है। दक्षिण भारत में तो शिव की महिमा अकथनीय है और वहाँ के शिव मन्दिरों का वर्णन हमारे लिए आश्चर्यजनक जान पड़ता है। पर दक्षिण के सम्बन्ध में उत्तर-भारतीय जनता की जानकारी अल्प है वहाँ के जन-जीवन में शिव पूजा कितनी अधिक व्याप्त है उसका अनुमान हम नहीं लगा सकते। पर उत्तर और मध्य भारत के सुप्रसिद्ध शिवालयों पर भी जब हम दृष्टिपात करते हैं तो शिव-पुराण में वर्णित शिव की सर्व व्यापकता का स्वयमेव आभास होने लगता है। बारह ज्योतिर्लिंगों के अतिरिक्त इस पुराण में जिन अन्य प्रसिद्ध शिवलिंगों का परिचय दिया है उनकी संक्षिप्त नामावली से ही शिव पूजा के असीम विस्तार का कुछ अनुमान किया जा सकता है।

"मल्लिकार्जुन' में रुद्रेश्वर नर्मदा तट पर महाकाल के निकट दुग्धेश्वर, ओंकारजी में कर्दमेश्वर, यमुनातट पर भूतेश्वर, सरस्वती के तट पर नागेश्वर और रामेश्वर के निकट गुप्तेश्वर तथा घुश्मेश के समीप व्याघ्रेश्वर नाम के उपलिंग हैं जिनका महत्व ज्योतिर्लिंगों के समान ही माना जाता है और जिनकी बड़े समारोह से पूजा होती रहती है। इनके अतिरिक्त काशी के तिल भाण्डेश्वर, गंगासागर के संगमेश्वर कौशिका नदी के तट पर नारीश्वर, गण्डकी तट पर बटुकेश्वर फल्गु नदी के किनारे सुरेश्वर, उत्तर नगर में सिद्धनाथेश्वर

तथा वर, श्रेदूदधीचि मुनि ने युद्ध स्थल में शृंगेश्वर तथा जप्येश्वर, गोपेश्वर, रंगेश्वर, वामेश्वर, कामेश्वर, विमलेश्वर, व्यासेश्वर, सुकेश्वर, भाण्डेश्वर, हुंकारेश्वर नाम की प्रतिमाएँ हैं। तसका नदी पर कुमारेश्वर तथा सिद्धेश्वर हैं। पूर्णा में कुम्भेश्वर, नन्दीश्वर पुंजेश्वर हैं। प्रयाग में ब्रह्माजी द्वारा स्थापित ब्रह्मेश्वर, सोमेश्वर, भारद्वाजेश्वर, शूलटंकेश्वर, माधवेश्वर, विराजमान हैं। अयोध्या में नागेश्वर परम प्रसिद्ध हैं जो सूर्यवंशियों को विशेष रूप से सुख सौभाग्य प्रदान किया करते हैं। पुरुषोत्तमपुरी में भुवनेश्वर, लोकेश्वर, गंगेश्वर, शुक्रेश्वर हैं। बटेश्वर भगवान समस्त कामनाओं के सिद्ध करने वाले हैं। सिन्धु नदी पर कपालेश्वर, वक्रेश्वरे, धौत पापेश्वर, भीमेश्वर, सूर्येश्वर, नन्देश्वर, नाकेश्वर स्थित हैं। पूर्ण सागर के निकट कण्टकेश्वर धर्तकेश्वर, चन्द्रेश्वर हैं। जहाँ अन्धक दैत्य का वध किया गया था, उसके निकट अन्धकेश्वर, विल्वेश्वर शरणेश्वर की प्रतिमायें हैं। आवू पर्वत पर कर्दमेश्वर, कोटीश्वर और अचलेश्वर हैं। अनन्तेश्वर, योगीश्वर, सप्तेश्वर, भद्रेश्वर, चण्डीश्वर भी बड़े विख्यात हैं।" इस प्रकार शिव के प्रसिद्ध लिंग प्रतिमाओं की नामावली निस्सन्देह इतनी विस्तृत है कि उसका उल्लेख कर सकना कठिन ही है।

(५) उमा-संहिता—

इसमें विभिन्न पापों तथा उनके दण्ड स्वरूप मिलने वाले नरकों की यातनाओं का विस्तार से वर्णन किया गया है। पापों का प्रतिकार कुछ अंशों में दान द्वारा कहा गया है, पर उसका मुख्य उपाय 'तप' ही है। तप का अर्थ यह होता है कि मनुष्य से परिस्थितिवश जो पाप बन पड़ा, उसका दण्ड उसने स्वेच्छापूर्वक सहन कर लिया। इस सम्बन्ध में सनत्कुमार ने कहा—'तप को ही बड़ा कहा गया है, तप से ही अति-फल मिलता है। तप से स्वर्ग मिलता है, यश मिलता है, कामनायें पूर्ण होती हैं, अर्थ प्राप्त होता है और मोक्ष भी मिल जाती है। बिना तप के न ब्रह्मलोक मिलता है न शिव-लोक में प्रवेश हो सकता है। और तपी या सबके स्वामी शिव तथा सनातन विष्णु, ब्रह्मा, अग्नि, इन्द्र आदि

भी तप के द्वारा ही अपने महान् कार्यों को पूरा करते हैं। सब लोगों का हित करने वाले सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, ग्रह आदि भी तप से ही प्रकाशित होते हैं। ज्ञान, विज्ञान, आरोग्य, सौन्दर्य, सौभाग्य तप से ही निरन्तर प्राप्त होते हैं।" यदि हम तप का अर्थ निष्काम भावना से या कर्त्तव्य समझ कर किये गए वास्तविक श्रम को समझ लें तो संसार में उसकी महिमा प्रत्यक्ष ही दिखाई पड़ती है। हृदय से किया हुआ श्रम कभी निष्फल नहीं जाता और वही सब प्रकार के शुभ फल प्रदान करने वाला होता है।

तप का एक रूप ज्ञान-यज्ञ या ज्ञान-प्रचार भी है। आजकल हम स्थूल पदार्थों के मोह में पड़कर ज्ञान की महिमा को बहुत कुछ भूल गए हैं। इस समय अधिकांश मनुष्य ज्ञान या विद्या प्राप्ति का फल किसी प्रकार की जीविका मिल जाना, धन कमा लेना समझने लगे हैं, और इसलिये तरह-तरह के कष्ट सहन कर रहे हैं। 'शिवपुराण' के मतानुसार 'अज्ञान के कारण ही लोक में विभिन्न प्रकार के कष्ट सहन करने पड़ते हैं और उनका निराकरण ग्रन्थों का अध्ययन करके ज्ञान प्राप्त करने से ही हो सकता है। समस्त देवता भेंट-पूजा और यज्ञों में हवि प्रदान से उतने सन्तुष्ट नहीं होते जिस प्रकार ग्रन्थ के पढ़ने से होते हैं। जो कोई शिव, विष्णु, सूर्य या किसी अन्य देवता के मन्दिर में किसी शास्त्र पुराण को बचवाता है वह राजसूय और अश्वमेध यज्ञों के फल को प्राप्त करता है। शिवजी के शुभ मन्दिर में इतिहास और पुराणों की गाथा के अतिरिक्त भगवान् को प्रसन्न करने का और कोई उपाय नहीं है। विशेषकर कलियुग में धर्म शास्त्रों का पठन-पाठन कल्पवृक्ष के समान सर्व फलदाता होता है। कलियुग में धर्म और आचार का त्याग करने वाले दुर्बुद्धि मनुष्यों के हित के लिए शिवजी ने पुराण (शास्त्र) नामक अमृत-रस का विधान किया है। अमृत को पीकर तो एक ही मनुष्य अजर-अमर होता है परन्तु भगवान् की कथा रूपी अमृत का पान करने से समस्त कुल ही नहीं, इष्ट-मित्र भी अमर हो जाते हैं।"

निस्सन्देह संसार में ज्ञान की बड़ी महिमा है। पापाताप का मूल प्रायः अज्ञान ही होता है। उसके प्रभाव से मनुष्य बुराई में भलाई की कल्पना करने लगता है और कुमार्ग पर चल पड़ता है। इसलिए विद्वानों ने कल्याण का सबसे बड़ा साधन सदा से ज्ञान को ही बतलाया है। इसी कारण गीता में बड़े स्पष्ट रूप से घोषणा कर दी गई है—

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

अर्थात् इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला अन्य कोई साधन नहीं है। ज्ञान सब प्रकार के कुविचारों और विचारों को उसी प्रकार जलाकर भस्म कर देता है जिस प्रकार यज्ञकुण्ड की अग्नि समिधा को भस्म कर डालती है। यद्यपि ज्ञान प्राप्ति के विभिन्न साधन बतलाये गये हैं पर सद्ग्रन्थों के अध्ययन, मनन से बढ़कर सर्व सुलभ और निश्चित साधन दूसरा नहीं मिल सकता। पुराणों में मनुष्यों के कल्याण करने वाले ज्ञान को कथाओं के रूप में और भी सरल तथा मनोरंजक रूप में उपस्थित किया गया है, इसीलिए शिवपुराणकार ने पुराण कथा को विशेष महत्व दिया है।

(६) कैलाश-संहिता—

इसमें योगशास्त्र के आसन, प्राणायाम, जप, ध्यान के द्वारा आत्म-ज्ञान प्राप्त करके सांसारिक बन्धनों से छुटकारा पाने का मार्ग-दर्शन है। इसमें पुराणकर्त्ता ने 'ओंकार' या प्रणव को ही समस्त जपों में श्रेष्ठ बतलाया है और उसी को पूर्ण विधान के साथ जमकर संसार-सागर से पार हो जाने को मनुष्य का सबसे बड़ा पुरुषार्थ माना है। इस सम्बन्ध में पार्वतीजी को समझाते हुए स्वयं शिवजी कहते हैं कि 'प्रणव के अर्थ का जानना ही मेरा ज्ञान है और वह प्रणवात्मक मन्त्र ही सब विद्याओं का बीज है। यह वट वृक्ष और उसके बीज के समान बहुत सूक्ष्म और मेरा रूप है। यह तीनों गुणों से परे, सर्वज्ञ सबका कर्त्ता 'ॐ' के रूप में एकाक्षर मन्त्र है। यह एक अक्षर समस्त ब्रह्मज्ञान का साधक है। इसी 'ॐ' से शिव सर्व प्रथम जगत का निर्माण करते हैं। वैसे तो शिव स्वयं

प्रणव स्वरूप है, अथवा प्रणव ही शिव हैं, क्योंकि वाच्य और वाचक में कोई अन्तर नहीं होता। हे परमेश्वरि ! इस कारण प्रणव (ओंकार) को सबका कर्त्ता जानो। हे देवि ! सब मंत्रों के शिरोमणि इस 'ओंकार' को ही मैं काशी में प्राण त्यागने वाले जीवों को देता हूँ। ब्रह्म से लेकर स्थावर सम्पूर्ण प्राणियों तक का यह प्राण है, इसी से इसको 'प्रणत' कहते हैं।" प्रत्येक आश्रम तथा प्रत्येक स्थिति के व्यक्ति के लिये 'ओंकार' के तत्व को समझकर उसका हृदय में ध्यान करते रहना निस्सन्देह आत्मोत्थान का बहुत प्रभावशाली उपाय है।

(८) वायु संहिता—

इन ऋषियों ने यह प्रश्न उठाया है कि निराकार शिव साकार रूप ग्रहण करके मनुष्यों के समान किसी से वैर, किसी से प्रीत, किसी को दण्ड किसी को पुरस्कार आदि जो कार्य करते है उससे क्या उनके 'परब्रह्म' होने में कोई दोष उत्पन्न नहीं होता ? इस पर वायुदेव से विस्तार के साथ निर्गुण और सगुण ब्रह्म का विवेचन करते हुए कहाकि 'भगवान शिव का यदि कोई कर्त्तव्य है तो वह जीवों पर दया करना ही है। पर यह कार्य किसी मूर्त शक्ति से ही हो सकता है, जिसमें स्वभाव पाया जाय स्वभावसे रहित कार्य कर ही नहीं सकता। इसलिये सच्चिदानन्द होते हुए भी जीवों पर अनुग्रह करने के निमित्त मूर्त रूप में भी आना पड़ता है पर वह मूर्ति भगवान् का उपलक्षण ही होती है। जिस प्रकार यदि यह कहा जाय कि 'अग्नि लाओ' तो कोई व्यक्ति अग्नि तत्व को नहीं लायेगा वरन् जलती हुई लकड़ी का टुकड़ा ही लेकर उपस्थित होगा। इसलिए लिंगरूप या अन्य किसी मूर्ति के रूपमें भगवान् की पूजा-उपासना वास्तव में परब्रह्म का ही पूजन किया जाना समझना चाहिए।"

परम-शिव को सर्वव्यापक और सबका कर्ता सिद्ध करके पुराणकार ने उसका जो व्यवहारिक निष्कर्ष निकाला है वह सब सिद्धान्तों और ज्ञान का सार रूप है। उसने कहा है कि जब परम शिव ही अपनी आठ मूर्तियों द्वारा जगत में व्याप्त है और समस्त मनुष्य तथा अन्य

प्राणी उन्हीं के रूप हैं तो मनुष्य का सर्वप्रथम कर्तव्य यही है कि वह प्राणीमात्र को आत्म-स्वरूप समझे और उनके हित का ध्यान रखे। "सबको अभय देना, सब पर अनुग्रह करना, सबका उपकार करना ही शिव की सबसे बड़ी आराधना-पूजा है। जिस प्रकार पुत्र और पौत्र आदि से प्रीति रखने के कारण पिता प्रसन्न होता है उसी प्रकार सब प्राणियों से प्रेम करने के कारण शिव भी प्रसन्न होते हैं। और जब कोई किसी देहधारी को कष्ट देता है तो वह शिव की अष्ठ मूर्तियों को ही कष्ट देने वाला हो जाता है।"

जैसा हम आरम्भ में बतला चुके हैं,'पुराण' साहित्य की रचना बहुत प्राचीन काल में हुई और उसका उद्देश्य सृष्टि रचना, पृथ्वी पर विभिन्न स्थावर और जंगम पदार्थों तथा प्राणियों की उपत्ति, मानव-सभ्यता का आरम्भ और विस्तार तथा प्रलयकाल में सृष्टि-संहार आदि का ज्ञान सामान्य जनता में फैलाना था। यदि निष्पक्ष भाव से विचार किया जाय तो यह सृष्टि-विज्ञान एक उच्चकोटि की विद्या है जिसमें आधुनिक विज्ञान को थोड़ी ही सफलता प्राप्त हो सकी है। पुराणकारों ने इस रूखे विषय को रोचक बनाने के लिये रूपक, अलङ्कार, उपमा अतिशयोक्ति आदि का बहुत अधिक उपयोग किया है। इसके साथ ही उन्होंने स्थावर पदार्थों तथा जड़ तत्वों का वर्णन भी सजीव पदार्थों की भाँति किया है। पर इसका कारण यही है कि अल्प विद्या-बुद्धि का मनुष्य अधिक गम्भीर ग्रन्थों को न तो अच्छी तरह समझ सकता है और न उसमें उसकी रुचि हो सकती है। अद्भुत कथाओं, दृष्टान्त रूपक आदि के द्वारा ही वह इन तथ्यों को मोटे रूप में जान सकने में समर्थ हो सकता है।

पर इस शैली को अपनाने का परिणाम यह अवश्य हुआ कि पुराणों के लेखक और कथा-वाचक उसमें बराबर नवीन कथा, दृष्टान्त और रूपक आदि का समावेश करते गये और पुराणों का विस्तार हजारों की संख्या से बढ़कर लाखों श्लोकों तक पहुँच गया। जैसा 'वायु पुराण' में लिखा है कि आरम्भ में व्यासजी ने चार सहस्र श्लोकों की 'पुराण-

संहिता' की रचना की, पर फिर उनके शिष्यों ने उसके आधार पर भिन्न शैली में तीन अलग-अलग संहितायें बनाईं। तत्पश्चात् इनका सबसे अधिक विस्तार लोमहर्षण (सूतजी) और उनके पुत्र उग्रश्रवा ने किया। अधिकांश पुराण इन्हीं सूतजी द्वारा कथित बतलाये गये हैं। इनके पश्चात् भी जो अधिक विद्या-बुद्धि सम्पन्न कथा-वाचक होते गये वे अपने श्रोताओं की रुचि और समयानुकूल आवश्यकताओं के अनुसार उनकी भाषा, शैली और विस्तार में और भी परिवर्तन करते गये। इस दृष्टि से इस सम्बन्ध में एक सनातनधर्मी आलोचक का यह कहना युक्तियुक्त ही है—

"पुराण-विद्या, वेद-विद्या के समान अनादि है, पौराणिक वाङ्मय, वैदिक वाङ्मय के समान सर्व प्रथम ब्रह्मा से प्राधुर्भूत हुआ है। अन्तर केवल यह है कि वैदिक वाङ्मय की प्रथम उपलब्धि जिस रूप में हुई, बाद में भी उसकी ज्यों की त्यों रक्षा की गई। उसकी पदावली में किसी प्रकार के परिवर्तन को अग्राह्य माना, वह जिस रूप में पहली बार सुना गया, उसी रूप में बाद में भी बराबर कहा-सुना जाता रहा। इसीलिए उसका दूसरा नाम 'अनुश्राव' या श्रुति पड़ा। पर पौराणिक वाङ्मय के सम्बन्ध में यह बात नहीं है, पुराणों की रक्षा शब्दों में नहीं अपितु अर्थ में की गई। उनकी भाषा बदलती रही पर अर्थ वही रहा। इस प्रकार वेद में जो कुछ उपलब्ध है, वह अपने आदिम शब्द और अर्थ दोनों रूपों में ज्यों का त्यों आज भी सुरक्षित है. पर पुराण केवल अपने मूल में ही सुरक्षित है।

यही कारण है कि हजारों वर्षों में भाषा और सामाजिक परिस्थितियों में अन्तर पड़ते जाने से पुराणों के बाह्य कलेवर और शैली में भी अन्तर पड़ता गया। उनका परिणाम दिन पर दिन बढ़ता गया, उनमें नये-नये समयानुकूल विषयों का समावेश होता रहा और आज कई पुराण पचास हजार और अस्सी हजार श्लोकों के विशालकाय महाग्रन्थ के रूप में पहुँच गये। पर इसका नतीजा यह भी हुआ है कि उनमें अनेक बातों को दुहरा दिया गया है और अनेक स्थानों पर

अनावश्यक अति विस्तार कर दिया है। उदाहरण के लिए इसी 'शिव-पुराण' की प्रथम 'विद्येश्वर संहिता' में ब्रह्मा-विष्णु का विवाद और उनके मध्य में ज्योतिर्लिङ्ग का प्रादुर्भाव वर्णन किया गया है। वायुवीय संहिता' में भी जैसे का तैसा वर्णन मिलता है। इसी प्रकार 'शतरुद्र संहिता' के ज्योतिर्लिंगों का-सा वर्णन अधिक विस्तार के साथ 'कोटिरुद्र संहिता' में भी दिया गया है। विभिन्न पुराणों में तो सृष्टि-उत्पत्ति, प्रलय, नरक आदि के वर्णन ज्यों के त्यों उन्हीं शब्दों में मिलते हैं। जब हम सब पुराण का अध्ययन करते हुए एक ही विषय और एक जैसे श्लोकों को बार-बार पढ़ते हैं तो अनेक समय भ्रम होने लगता है कि अभी तो ये ही बातें पढ़ी थीं, वे फिर से यहाँ कैसे आ गई ?

दूसरा विचारणीय विषय है—दूसरे देवता की निन्दा करना। जो कि अनुचित जान पड़ता है। उदाहरण के लिये 'विद्येश्वर संहिता' में शिवजी के गण भैरव ब्रह्मा को मारने के लिये तैयार हो गये और उन्होंने उनका एक शिर काट भी डाला। तब विष्णु के अत्यन्त दीनभाव से प्रार्थना करने पर उनकी प्राण-रक्षा हो सकी। यद्यपि यहाँ लेखक का उद्देश्य शिवजी की सर्वोच्च महिमा और प्रभाव दिखलाना है, पर इससे दूसरी प्रम्प्रदाय वालों के चित्त को चोट लगती है और फिर वे भी वैसा ही अनर्गल बातें गढ़कर शिव तथा शैव धर्म की निन्दा में प्रवृत्त हो जाते हैं।

इन बातों पर विचार करते हुए हमको पुराणों के एक ऐसे संस्मरण की आवश्यकता जान पड़ी जिनमें उनके सारभूत विषयों को एकत्रित करके सुबोध और सरल शैली में उपस्थित किया जाय। इस समय जिन पुराणों का आकार अस्सी हजार, पचास हजार या तीस-पेंतीस हजार श्लोकों तक पहुँच गया है, उनको उपलब्ध कर सकना या अध्ययन कर सकना एक समस्या की तरह हो गया है। यही कारण है कि पुराणों का प्रवचन इन दिनों निरन्तर कम होता जाता है और लोगों उनके प्रति उदासीनता का भाव उत्पन्न होता जाता है। हम बता चुके हैं कि पुराणों में स्थान-स्थान पर अनगिनती उपयोगी विषय भरे हैं जिन्हें

ज्ञान-विज्ञान का 'भाण्डागार' ही कहा जा सकता है। उनमें केवल धर्म, नीति, चरित्र की शिक्षा देने वाली कथायें और उपदेश ही नहीं, वरन् राजनीति शास्त्र, ज्योतिष-शास्त्र, स्वर-शास्त्र, आयुर्वेद वृक्ष-विज्ञान, गृह निर्माण-शास्त्र, मूर्तिकला आदि सैकड़ों विषय भरे पड़े हैं।

इसलिये इस बात की बहुत अधिक आवश्यकता है कि पुराणों का एक 'सुलभ संस्करण' ऐसा प्रस्तुत किया जाय जिसमें उनकी समस्त उपयोगी सामग्री आ जाय और जिस जन-साधारण खरीदने और पढ़ने में भी समर्थ हो सकें। ऐसे संस्करण में से बार-बार दुहराये जाने वाले विवरणों और साम्प्रदायिक द्वेषपूर्ण कटूक्तियों को पृथक् करने से उनकी एक ऐसी त्रुटि का भी, जिसके कारण अनेक सुशिक्षित व्यक्ति उन पर आक्षेप करते रहते हैं, निवारण हो जायगा। लोग अपने-अपने साम्प्रदाय का प्रचार करें, उसकी विशेषताओं, महत्व का वर्णन करें, इसमें कोई एतराज की बात नहीं है, पर धार्मिक क्षेत्र में द्वेषयुक्त वातावरण उत्पन्न करना सत्पुरुषों का लक्षण नहीं माना जा सकता।

बहुत बड़े और विस्तारयुक्त ग्रन्थों के संशोधित तथा सारांश रूप में
उपलब्ध हो सकने से उनके प्रचार और उपयोगिता में वृद्धि हो जाती है।
'महाभारत' का परिचय अधिकांश व्यक्तियों को उसके संक्षिप्त संस्करणों
से ही हुआ है। 'विष्णु पुराण' को सभी जगह २३ हजार श्लोकों का
लिखा है, पर उसके वर्तमान संस्करण में सात हजार श्लोक हैं और उसी
को पूर्ण माना जाता है। यही बात 'कूर्म पुराण' आदि के विषय में भी
देखी जा रही है। इससे विदित होता है कि इन ग्रन्थों के वृहत् और
लघु-संस्करण हमेशा से होते रहे हैं। स्मृतियों में भी हारीत, यम आदि
स्मृतियों के छोटे-बड़े संस्करण प्राचीन काल से चले आ रहे हैं। इसलिये
हमको पूरा विश्वास है कि हमारी यह संशोधित 'पुराण-माला' अपने ढंग
की अनुपम सिद्ध होगी और इस महत्वपूर्ण साहित्य को लोक-प्रिय और
बहुचर्चित बनाने में सफल होगी।

—श्रीराम शर्मा आचार्य

विषयानुक्रमणिका

रुद्र-संहिता—सृष्टि खण्ड

रुद्र-संहिता—सती खण्ड

रुद्र-संहिता—पार्वती खण्ड

रुद्र-संहिता– कुमार खण्ड

रुद्र-संहिता-युद्ध-खंड

शत रुद्र-संहिता

श्री शिवपुराण

* प्रथम खण्ड *

शिवपुराण—महात्म्यम्

* शिवपुराण-महत्व *

हे हे सूत महाप्राज्ञ सर्वसिद्धान्तवित्प्रभो ।
आख्याहि मे कथासारं पुराणानां विशेषतः ॥१
सदाचारश्च सद्भक्तिर्विवेको वर्द्धते कथम् ।
स्वविकारनिरासश्च सज्जनैः क्रियते कथम् ॥२
जीवाश्च सुरतां प्राप्तः प्रायो घोरे कलाविह ।
तस्य संशोधने किं हि विद्यते परमायनम् ॥३
यदस्ति वस्तु परमं श्रेयसां श्रेय उत्तमम् ।
पावनं पावनानां च साधनं यद्वदाधुना ॥४
येन तत्साधनेनाशु शुद्ध्यत्यात्मा विशेषतः ।
शिवप्राप्तिर्भत्तात सदा निमलचेतसः ॥५

शौनकजी ने कहा—हे सूतजी ! हे सर्वसिद्धान्तों के ज्ञाता महा-पंडित ! आप विशेषकर पुराणों की कथा का सार मेरे प्रति कहिये ।१। सदाचार, भक्ति के द्वारा विवेक की वृद्धि किस प्रकार होती है और सज्जन अपने विकारों को किस प्रकार शान्त करते हैं सो कहिये ।२। इस घोर कलि-काल में प्राणी असुरत्व को प्राप्त हये हैं, इनका शोधन किस प्रकार हो सो आप कहने की कृपा करें ।३। जो वस्तु अत्यन्त श्रेष्ठ और कल्याण देने वाली है तथा जो पवित्रों से भी पवित्र है उत्तम साधन रूप है सो आप मुझसे कहें ।४। आत्मा जिस साधन के द्वारा शुद्ध हो जाता है और सदा निर्मल चित्त वाले व्यक्तियों को भगवान् शिव प्राप्त हो जाते हैं ।५।

धन्यस्त्वं मुनिशार्दूल श्रवणप्रीतिलालसः ।
अतो विचार्य्य सुधिया वच्मि शास्त्रं महोत्तमम् ॥६
सर्वसिद्धांतनिष्पनं भक्त्यादिकविवर्द्धनम् ।
शिवतोषकरं दिव्यं शृणु वत्स रसायनम् ॥७
कलि० ।लमहात्रासविध्वंसकरमुत्तम् ।
शैव पुराण परमं शिवेनोक्तं पुरा मुने ॥८
जन्मान्तरे भवेत्पुण्यं महद्यस्य सुधीमत ।
तस्य प्रीतिर्भवेत्तत्र महाभाग्यवतो मुने ॥९
एतच्छिवपुराणं हि परमं शास्त्रमुत्तमम् ।
शिवरूपं क्षितौ ज्ञेय सेवनीयं च सर्वथा ॥१०
पठनाच्छ्रवणादस्य भक्तिमान्नरसत्तमः ।
सद्यः शिवपदप्राप्ति स्त्रभते सर्वसाधनात् ॥११
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कांक्षित पठनं नाभिः ।
तथास्य श्रवणं प्रेम्णा सर्वं कामफलप्रदम् ॥१२

सूतजी ने कहा - हे मुनिवरों ! तुम्हारी प्रीति कथा सुनने में है । इसलिए तुम धन्य हो । इसी कारण मैं बुद्धिपूर्वक विचार करके यह श्रेष्ठ शास्त्र कहता हूँ ।६। यह सर्व सिद्धान्त से सम्पन्न भक्ति आदि की आदि करने वाला तथा शिवजी का सन्तोष करने वाला परम दिव्य रयासन स्वरूप है ।७। कालरूपी महासप का विध्वंधक यह परम श्रेष्ठ शिवपुराण है । हे मुने ! यह भगवान् शिव के द्वारा कहा गया है ।८। जिसने जन्म जन्मान्तर अत्यन्त श्रेष्ठ और पुण्यकर्म किये हों, उस मनुष्य की अत्यन्त प्रीति इस महापुराण के श्रवण में होती है ।९। यह शिवपुराण परमश्रेष्ठ शास्त्र है । पृथिवी में इसे शिव स्वरूप ही जाककर श्रद्धापूर्वक इसका सदा सेवन करे ।१०। इसके पढ़ने और श्रवण करने से मनुष्य शीघ्र ही श्रेष्ठ भक्ति से सम्पन्न होता और उसे शिव-साधन रूप परम पद की शीघ्र प्राप्ति होती है ।११। इसलिये मनुष्यों को इसे सब प्रकार से पढ़ना ही उचित है । क्योंकि इसके प्रेमपूर्वक पढ़ने से सभी कामनाओं की पूर्ति होती है ।१२।

पुराणश्रवणाच्छम्भोर्निष्पापो जायते नरः ।
भुक्त्वा भोगान्सुविपुलञ्छिवलोकमवाप्नुयात् ॥१३
राजसूयेन यत्पुण्यमाग्निष्टोतशतेन च ।
तत्पुण्यं लभते शम्भोः कथाश्रवणमात्रतः ॥१४
ये शृण्वन्ति मुने शैवं पुराणं शास्त्रमुत्तमम् ।
ते मनुष्या न मन्तव्या रुद्रा एव न संशयः ॥१५
शृण्वतां तत्पुराणं हि तथा कीर्तययां च तत् ।
पादाम्बुजरजांस्येव तीर्थानि मुनयो विदुः ॥१६
गन्तुं निःश्रेयस स्थान येऽभिवाञ्छंति देहिनः ।
शैवम्पुराणममलं भक्त्या शृणुवन्तु ते सदा ॥१७
सदा श्रोतुं यद्यशक्तो भवेत्स मुनिसत्तम् ।
नियतात्मा प्रतिदिनं शृणुयाद्वा मुहूर्तकम् ॥१८
यदि प्रतिदिनं श्रोतुमशक्तो मानवो भवेत् ।
पुण्यं मासादिषु मुने श्रूयाच्छिवपुराणकम् ॥१६

शिव पुराण का श्रवण करने से मनुष्य सभी पापों से छूट जाता और अनेक भोगों का उपभोग करने पर अन्त में उसे शिवलोक की प्राप्ति होती है।१३। राजसूय यज्ञ या सौ अग्निष्टोम से पुण्य प्राप्त होता है, वह पुण्य शिवजी की कथा सुनने मात्र से ही मिल जाता है।१४। हे मुने ! श्रेष्ठ शिव पुराण का जो मनुष्य श्रवण करते हैं, वे मनुष्य नहीं वरन् साक्षात् रुद्र रूप ही हैं, इसमें सन्देह नहीं है।१५। इसके सुनने वालों और कीर्तन करने वालों की चरणरज भी तीर्थ स्वरूप हैं, ऐसा मुनि-जनों का कथन है।१६। कल्याणप्रद स्थान की कामना वाले जीवों को नित्य शिवजी के निर्मल पुराण का श्रवण करना चाहिए।१७। यदि सब काल सुनने में समर्थ न हो तो नियमपूर्वक दो घड़ी ही इसे सुने।१८। यदि प्रतिदिन सुनने में समर्थन न हो तो पवित्र महीनों में श्रवण करे।१६।

मुहूर्तं वा तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा क्षणं च वा ।
ये शृण्वन्ति पुराणं तन्न तेषां दुर्गतिर्भवेत् ॥२०

तत्पुराणं च श्रृण्वानः पुरुषो यो मुनीश्वर ।
स निस्तरति संसारं दग्ध्वा कर्ममहाटवीम् ॥२१
तत्पुण्यं सर्वदानेषु सर्वयज्ञेषु वा मुने ।
शम्भोः पुराणश्रवणात्तत्फलं निश्चल भवेत् ॥२२
विशेषतः कला शैवपुराण श्रवणादृते ।
परो धर्मो न पुसां हि मुक्तिसाधनकत्मुने ॥२३
पुराश्रवणं शम्भोर्नामसंकीर्तनं तथा ।
कल्पद्रु मफल सम्यङ् मनुष्याणां व संशयः ॥२४
कलौ दुर्मेधसां पुर्सां धर्माचारोज्जितात्मनाम् ।
हिताय विदधे षम्भुः पुराणाख्यं सुधारसम् ॥२५
एकोऽजरामरः स्याद्वै पिवन्नेवामृतं पुमान् ।
शम्भो कथामृतं कुर्यात्कुलमेवाजरामरम् ॥२६

जो व्यक्ति एक मुहूर्त, उससे आधा या क्षणमात्र को भी सुनते हैं, वे दुर्गति को प्राप्त नहीं होते ।२०। हे मुनीश्वर ! इस महा पुराण को जो प्राणी सुनते हैं, वे कर्म रूपी विकराल वन को भस्म कर संसार-सागर से पार हो जाते हैं ।२१। हे मुने ! सम्पूर्ण यज्ञों से जो फल प्राप्त होता है, वह शिव पुराण के सुनने से अवश्य मिल जाता है ।२२। विशेषकर कलि-काल में मुक्ति का साधन रूप शिवपुराण के अतिरिक्त कोई अन्य धर्म नहीं है ।२३। सुनना या उनका नाम संकीर्तन करना, मनुष्यों के लिये कल्प वृक्ष के समान फलदायी है, इसमें सन्देह नहीं है ।२४। कलियुग के जिन दुर्मेधी पुरुषों ने अपने धर्म को छोड़ दिया है, उनके लिए भी यह अमृत रूप हित करने वाला है ।२५। इस अमृत को जो पुरुष पीता हैं, वह अजर अमर हो जाता है और शिवजी के कथा-मृत से कुल को भी अजर अमर कर देता है ।२६।

सदा सेव्या सदा सेव्या सदा सेव्य विशेषतः ।
एतच्छिवपुराणस्य कथा परमपावनी ॥२७
एतच्छिवपुराणस्य कथाश्रवणमात्रः ।
किंब्रवीमि फलं तस्य शिवश्चित्तं समाश्रयेत् ॥२८

एतच्छिवपुराणस्य कथा भवति यद्गृहे ।
तीर्थभूतं हि तद्गेहं बसतां पापनाशनम् ॥२९
अश्वमेधसहस्राणि बाजतेयशतानि च ।
कलां शिवपुराणस्य नार्हन्ति खलु षोडशीम् ॥३०
गंगाद्याः पुण्यनद्यश्च सप्तपुर्यो गया तथा ।
एतच्छिवपुराणस्यसमतां यांति न क्वचित् ॥३१
नित्यं शिवपुराणस्य श्लोकार्द्धमेव च ।
स्वमुखेन पठेद्भक्त्या यदीच्छेत्परमां गतिम् ॥३२
एतच्छिवपुराणं यो वाचयेदर्थतोऽनिशम् ।
पठेद्वा प्रीतितो नित्यं स पुण्यात्मा न संशयः ॥३३

विशेषकर इसका सर्वदा सेवन करे । इसकी कथा परम पवित्र करने वाली है ।२७। इस कथा के सुनने मात्र से ही जो फल प्राप्त होता है, उसे मैं क्या कहूँ ? शिवजी में अपने मन को समर्पण करदे ।२८। जिस गृह में शिवपुराण की कथा होती है, वह साक्षात् तीर्थ के समान है, उसमें निवास करने से पापों का नाश हो जाता है ।२९। हजार अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञ भी शिवपुराण की सोलहवीं कला के समान नहीं है ।३०। सहस्र गङ्गा आदि सप्त नदी, सप्तपुरी तथा गया भी इसकी समता नहीं कर सकती ।३१। परमगति की कामना वाले पुरुष को भक्तिपूर्वक नित्यप्रति शिवपुराण का एक या आधे श्लोक का पाठ करना चाहिये ।३२। इसका जो पुरुष भक्तिपूर्वक पाठ करता और नित्य श्रवण करता है, उसके पुण्यात्मा होने में संदेह नहीं है ।३३।

एतच्छिवपुराणं यः पूजयेन्नित्तमादरात् ।
स भुक्त्वेहाखिलान्कामानते शिवपदं लभेत् ॥३४
एतच्छिवपुराणस्य कुवन्नित्यमतन्द्रितः ।
पट्टवस्त्रादिना सम्यक् सत्कारं स सुखी सदा ॥३५
शैव पुराणममलं शैवसर्वस्वमादरात् ।
सेवनीयं प्रयत्नेन परत्रेह सुखेप्सुना ॥३६
चतुर्वर्गप्रदं शैवं पुराणममलं परम् ।

श्रोतव्यं सर्वदा प्रीत्वा पठितव्यं विशेषतः ॥३७
देवेतिहासशास्त्रेषु परं श्रेयस्करं महत् ।
शैवं पुराणं विज्ञेयं सर्वथा हि मुमुक्षिभिः ॥३८
शैवपुराणमिदमात्मविदांवरिष्टं सेव्यंसदापरमवस्तुसतांसमर्च्यम् ।
तापत्रयाभिशमनंसुखदंसदैवप्राणप्रियं विधिहरीशमुखामराणाम् ॥
वन्दे शिवपुराणं हि सर्वदाऽह प्रसन्नधीः ।
शिवः प्रपन्नतां यायाद्दद्यात्स्वपदयो रतिम् ॥४०

इसका आदर पूर्वक नित्य प्रति पूजन करने वाले मनुष्य सभी कामनाओं को भोग कर अन्त में शिवपद को प्राप्त होते हैं ।३४। नित्यप्रति निरालस्य होकर इसका पाठ करने से तथा नित्य पट्ट वस्त्रादि से सत्कार करने से सर्वदा सुख की प्राप्ति होती है ।३५। यह अत्यन्त स्वच्छ एवं सर्वस्व है । जिसे दोनों श्लोकों में सुख प्राप्ति की इच्छा हो उसे आदर पूर्वक इसका पाठ करना चाहिए ।३६। यह निर्मल शिवपुराण चतुर्वर्ग का दाता है । इसका पाठ एवं श्रवण सदा प्रीतिपूर्वक करना चाहिए ।३७। वेद, इतिहास तथा शास्त्रों में यह परम श्रेय प्रदायक है इसलिए मुमुक्ष जनों को सदा शिव पुराण का ज्ञान आवश्यक है ।३८। आत्म ज्ञानियों के लिये यह शिवपुराण अत्यन्त उत्तम है । परम वस्तु सदा सेवनीय और सत्पुरुषों को पूजनीय है । त्रिताप नाशक, सुखदायक है तथा ब्रह्मा, विष्णु और देवतागणों के लिए प्राणों के समान प्रिय है ।३९। मैं प्रसन्न होकर शिवपुराण को सदा प्रणाम करता हूँ । शिवजी इसके द्वारा प्रसन्न होकर अपने चरणों की प्रीति मुझे प्रदान करें ।४०।

॥ देवराज मुक्ति वर्णन ॥

ये मानवाः पापकृतो दुराचाररताः खलाः ।
कामादिनिरता नित्यं तेऽपि शुद्धचन्त्यनेन वै ॥१
ज्ञानयज्ञः परोऽयं वै भुक्तिमुक्तिप्रदः सदा ।
शोधनः सर्वपापानां शिवसन्तोषकारकः ॥२
तृष्णाकुलाः सत्यहीनाः पितृमातृविदूषकाः ।
दाम्भिका हिंसका ये च तेऽपि शुद्धयन्त्यनेन वै ॥३

स्ववर्णाश्रमधर्मेभ्यो वर्जिता मत्सरान्विताः ।
ज्ञानेयज्ञेन तेऽनेत सम्पुनन्ति कलावपि ।।४
छलच्छद्मकरा ये च ये च क्रूराः सुनिर्दयाः ।
ज्ञानयज्ञेन तेऽनेन सम्पूनन्ति कलावपि ।।५
ब्रह्मस्वपुष्टाः सततं व्यभिचाररताश्च ये ।
ज्ञानयज्ञ न तेऽनेन सम्पुनन्ति कलावपि ।।६
सदा पापरता ये च ये शठाश्च दुराशयाः ।
ज्ञानयज्ञेन तेऽनेन सम्पुनन्ति कलावपि ।।७
मलिना दुर्धियोऽशान्ता देवताद्रव्यभोजिनः ।
ज्ञानयज्ञेन तेऽनेन सम्पुनन्ति कलावपि ।।८

सूतजी ने कहा—जो मनुष्य पाप, दुराचार, कामादिक से डूबे हुए हैं, वे भी इसके द्वारा शुद्ध हो जायेंगे ।१। यह परम भक्ति और मुक्ति का दाता ज्ञान यज्ञ है । सब पापों का शोधनकर्त्ता और शिवजी का संतोष कराने में समर्थ है ।२। तृष्णा और व्याकुल और सत्य से हीन तथा माता पिता की हँसी उड़ाने वाले एवं हिंसक मनुष्य भी इसके द्वारा सुधर जाते हैं ।३। वर्णाश्रम धर्म से रहित तथा मत्सर युक्त प्राणी भी कलिकाल में इस ज्ञान यज्ञ के द्वारा संसार सागर के पार हो जायेंगे ।४। जो पुरुष छल करने वाले, क्रूर एवं निर्दय स्वभाव के हैं वे भी कलिकाल में इस ज्ञान यज्ञ के द्वारा पार हो जायेंगे ।५। जो व्यक्ति ब्राह्मणों के धन के द्वारा पुष्ट हुए तथा निरन्तर व्यभिचार कर्म में लगे रहते हैं, वे भी इस ज्ञान यज्ञ के प्रभाव से तर जायेंगे ।६। जो सदा पाप कर्म में रत, शठ एवं दुराशा से युक्त हैं वे भी कलियुग से इस ज्ञान यज्ञ के द्वारा पार हो जायेंगे ।७। मलीन एवं बुरी बुद्धि वाले अशान्त तथा देवताओं के द्रव्य को हड़पने वाले मनुष्य भी कलियुग में इस ज्ञान यज्ञ के द्वारा पार हो जायेंगे ।८।

।। चचुला वैराग्य वर्णन ।।

श्रृणु शौनक वक्ष्यामि त्वदग्रे गुह्यमप्युत ।
यतस्त्वं शिवभक्तानामग्रणीर्वेदवित्तमः ।।१

समुद्रनिकटे देशे ग्रामो बाष्कलसञ्ज्ञकः ।
वसन्ति यत्र पापिष्ठा वेदधर्मोज्झिता जनाः ॥२
दुष्टा दुर्विषयात्मानो निर्दैवा जिह्मवृत्तयः ।
कृषीवलाः शस्त्रधराः परस्त्रीभोगिनः खलाः ॥३
ज्ञानवैराग्यसद्धर्मं न जानान्ति परं हिते ।
कुकथाश्रवणाढयेषु निरताः पशुबुद्धय ॥४
अन्ये वर्णाश्च कुधियः स्वधर्मविमुखाः खला ।
कुकर्मनिरता नित्यं सदा विशयिणश्चते ॥५
स्त्रियः सर्वाश्च कुटिलाः स्वैरिण्यः पापलालसाः ।
कुधियो व्यचारिण्यः सद्व्रताचारवर्जिताः ॥६
एवं कुंजनसंवासे ग्रामे वाष्कलसंज्ञिते ।
ततैको बिन्दुगोनाम विप्र आसीन्महाधमः ॥७

सूतजी ने कहा—हे शौनक ! मैं तुमसे अत्यन्त गुह्य कथा कहता हूँ, क्योंकि तुम शिव भक्तों में सर्व प्रथम हो ।१। समुद्र के निकट एक देश में बाष्कल नामक ग्राम था, उसमें वेद-धर्म से विमुख पापीजन रहते थे ।२। दुष्ट, दुर्विषयी तथा कुटिल वृत्ति वाले, कृषि कर्म में लगे हुए, शस्त्र बल पर निर्भर रहने वाले और पर-स्त्री भोगी थे ।३। वे ज्ञान-वैराग्य स्वरूप अपने धर्म से अज्ञान, पशुबुद्धि व्यक्ति बुरी वार्ता सुनने में ही रुचि रखते थे, क्योंकि उनकी बुद्धि पशु से समान थी ।४। अन्य वर्ण के लोग भी कुबुद्धि वाले थे । सदा अपने धर्म के विमुख रहते और विषय भोगों में रत तथा कुकर्म करने वाले थे ।५। सभी स्त्रियां स्वैरिणी, कुटिल और पापकर्म की इच्छा वाली थीं । सत् व्रत और आचार से रहित तथा व्यभिचारिणी थी ।६। बुरे व्यक्तियों वाले उस ग्राम में बिदुग नामक अत्यन्त अधर्मी ब्राह्मण भी निवास करता था ।७।

स दुरात्मा महापापी सुदारोऽपि कुमार्गगः ।
वेश्यापतिर्बभूवाथ कामाकुलितमानसः ॥८
स्वपत्नीं चंचुलां नाम हित्वा नित्य सुधर्मिणीम् ।
रेमे स वेश्यया सुष्टः स्मरबाणप्रपीडितः ॥९

एवं कालो व्यतीयाय महास्तस्य कुकर्मणः ।
सा स्वधर्मभयात्क्लेशात्स्मरार्तापि च चंचुला ॥१०
अथ तस्याङ्गना सापि प्ररूढनवयौवना ।
अविषह्यस्मरावेशा स्वधर्माद्विराम ह ॥११
जारेण संगता रात्रौ रेमे पापेन गुप्ततः ।
पतिदृष्टिं वञ्चयित्वा भ्रष्टसत्वा कुमार्गगा ॥१२
कदाचित्तां दुराचारां स्वपत्नीं चंचुलां मुने ।
जारेण संगतां रात्रौ ददर्श स्मरविह्वलाम् ॥१३
दृष्टा तां दूषितां पत्नीं कुकर्मासक्तमानसाम् ।
जारेण संगतां रात्रौ क्रोधाद्द्रुदाव वेगतः ॥१४

वह अत्यन्त पापी, दुरात्मा और स्त्री सहित कुमार्ग पर चलने वाला काम से व्याकुल होकर वेश्या का पति बना ।८। वह चंचुता नामक से अपनी पत्नी का त्याग कर काम-बाण से पीड़ित होकर वेश्या के साथ रहने लगा ।९। इस प्रकार उस कुकर्मी को बहुत समय व्यतीत हो गया। उसकी पत्नी चंचुला अपने धर्म और क्लेश का भय होते हुए भी काम से आक्रान्त हो गई ।१०। वह अत्यन्त तरुणाई को प्राप्त थी, उसने कामदेव से महान् पीड़ित होकर अपने धर्म का त्याग कर दिया ।११। हजार की संगति में अपने पति की दृष्टि बचाकर रहने लगी । वह अपने सत से भ्रष्ट तथा कुमार्ग-गामिनी हो गई ।१२। एक समय उसके पति ने उस दुराचारिणी को रात्रि के समय जार के साथ देख लिया ।१३। वह उस कुमार्ग गामिनी दुष्टा को जार के साथ रमण करती देखकर अत्यन्त क्रोध पूर्वक उसकी ओर दौड़ा ।१४।

तमागतं गृहे दुष्टमाज्ञाय बिन्दुगं खलः ।
पलायितो द्रुतं जारो वेगतच्छद्मवाग्स वै ॥१५
अथ स बिन्दुगः पत्नी गृहीत्वा सुदुराशयः ।
मुष्टिबन्धेन संतर्ज्य पुनः पुनरताडयत् ॥१६
सा नारी ताडिता भर्त्रा चंचुला स्वैरिणी खला ।
कुपिता निर्भया प्राह स्वपतिं बिन्दुगं खला ।

भवान्प्रतिदिनं कामं रमते वेश्यया कुधीः ।
मां विहाय स्वपत्नीं च युवतीं पतिसेविनीम् ॥१८
रूपपत्या युवत्याश्च कामाकुलितचेतसः ।
विना पति विहारं स्यात्का गतिर्मे भवान्वदेत् ॥१९
अहं महारूपवती नवयौवनविह्वला ।
कथ सहे कामदुःखतव सङ्गं विनाऽऽर्तधीः ॥२०
इत्युक्तः स तया मूर्खो मूढधीर्ब्राह्मणोऽधर्मः ।
प्रोवाच बिन्दुगः पापो स्वधर्मविमुखः खल ॥२१

पति को रात्रि के समय घर में आया देखकर स्त्री ने जार को संकेत किया और वह छली वहाँ से भाग गया ।१५। तब बिन्दुग ने उसे पकड़ लिया और मुष्टिका प्रहार से बारम्बार मारने लगा ।१६। अपने पति के द्वारा पिटी हुई चंचुला क्रोध से भय-रहित होती हुई इस प्रकार कहने लगी ।१७। चंचुला बोली—आप जो नित्यप्रति वेश्या के प्रेम में फँसे रहते हो और मैं नित्यप्रति तुम्हारी सवा करती हूँ। तुम मेरा त्याग करते हो ।१८। बताओ जो सौन्दयमयी काम से व्याकुल है, उसकी पति से रमण करने के बिना क्या गति होगी ? ।१९। मैं अत्यन्त रूपवती, नवयौवन से युक्त तथा काम से व्याकुल हूं। तुम्हारे साथ रमण किए बिना मैं काम का सन्तान किस प्रकार सहन कर सकती हूं ? ।२०। सूतजी ने कहा—चचुला के ऐसा कहने पर ब्राह्मणों में नीच एवं अपने धर्म से हीन मति वाले पापी बिन्दुग ने उससे कहा ।२१।

सत्यमेतत्त्वयोक्तं हि कामव्याकुलचेतसा ।
हित वक्ष्यामि तस्मात्ते शृणु कान्ते भय त्यज ॥२२
जारैर्विहर नित्य त्व चेतसा निर्भयेन व ।
धनमाकर्ष तेभ्यो हि दत्त्वा तेभ्यः परांरतिम् ॥२३
तद्धनं देहि सव मे वेश्यासंसक्त चेतसः ।
महत्स्वार्थं भवेन्नूनं तवापि च ममापि च ॥२४
इति भर्तृवचः श्रुत्वा चचुला तद्वधूश्य सा ।
तथेपि भर्तृवचन प्रतिजग्राह हृष्टधीः ॥२५

कृत्वैवं समयं तौ वै दम्पती दुष्टमानसौ ।
कुकर्मनिरतौ जातो निर्भयेन कुचेतसा ॥२६
एवं तयोस्तु दम्पत्योर्दु र:चारप्रवृत्तयोः ।
महान्कालो व्यतीयाय निष्फलो मूढचेतसोः ॥२७

विन्दुग ने कहा—हे काम से व्याकुल चित्त वालो ! मैं हित की बात कहता हूँ, उसे भय छोड़कर सुन ।२२। तू निर्भय मन से जार के साथ समागम कर, परन्तु उसे प्रसन्न करके धन भी तो प्राप्त कर ।२३। और उस सम्पूर्ण धन को मुझ वेश्या के साथ गमन करने वाले अपने पति को दे दे । इस कार्य में मेरा और तेरा, दोनों का ही स्वार्थ निहित है ।२४। सूतजी ने कहा—अपने पति की बात सुनकर चंचुला ने 'बहुत अच्छा' कहा और फिर अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक दोनों ही दुष्ट हृदय परस्पर निर्भय चित्त होकर अत्यन्त कुकर्म में संलग्न हो गये ।२५-२६। इस प्रकार दूराचार में लगे रहने वाले उन दोनों स्त्री-पुरुषों को बहुत-सा समय व्यतीत हो गया और वे मूढ़ मन वाले नितान्त निष्फल रहे ।२७।

अथ विप्रः स कुमतिर्बिन्दुगो वृषलीपतिः ।
कालेन निधनं प्राप्तो जगाम नरकं खलः ॥२८
भुक्त्वा नरकदुःखानि वह्वहानि स मूढधीः ।
विन्ध्येऽभवत्पिशाचो हि गिरौ पापी भयङ्करः ॥२९
मृते भर्तरि तस्मिन्वै दुराचाररेऽथ विन्दुगे ।
उवास स्वगृहे पुत्रैश्चिरकालं विमूढधीः ॥३०
एवं विहरती जारैः स नारी चचुलताह्वया ।
आसीत्कामरता प्रीता किञ्चिदुत्क्रान्तयौवना ॥३१
एकदा दैवयोगेन सम्प्राप्ते पुण्यपर्वणि ।
सा नारी बन्धुभिः साद्धं गोकर्ण क्षेत्रमाययौ ॥३२
प्रसङ्गात्सा तदा त्वा कस्मिश्चित्तीर्थपाथसि ।
सस्नां सामान्यतो यत्र तत्र बभ्राम बन्धुभिः ॥३३

समय पाकर वह मूढ़ वृषलीपति मृत्यु को प्राप्त हो गया और उसे घोर नरक की प्राप्ति हुई । ।२८। बहुत काल तक नरक दुःख भोग कर

वह मूढ़ बड़ा भयंकर एवं महापापी पिशाच होकर विंध्य पर्वत में रहने लगा ।२६। जब उस दुराचारी की मृत्यु हो गयी तब वह चंचुला पुत्रों के साथ बहुत समय तक अपने गृह में निवास करती रही ।३०। वह जारों के साथ निरन्तर-सम्पर्क बनाये रही। परन्तु काम से सुख मानने वाली उस स्त्री का यौवन कुछ-कुछ व्यतीत हो गया ।३१। दैवयोग से एक समय पुण्य पर्व के आने पर वह नारी अपने बान्धवों के साथ गोकर्ण क्षेत्र में जा पहुंची ।३२। प्रसंगवश उसने किसी एक तीर्थ के जल में स्नान किया और बन्धुजनों के साथ इस क्षेत्र में भ्रमण करने लगी ।३३।

देवालयेऽथ कस्मिश्चिद्दैवज्ञमुखतः शुभाम् ।
शुश्राव सत्कथां शम्भोः पुण्यां पौराणिकीं च सा ॥३४
योषितां जारसक्तानां नरके यमकिंकरा ।
संतप्तलोहपरिघं क्षिपन्ति स्मरमन्दिरे ॥३५
इति पौराणिकेनोक्तां श्रुत्वा वैराग्यवर्द्धिनीम् ।
कथामासीद्भयोद्विग्ना चकम्पे तत्र सा च वै ॥३६
कथासमाप्तौ सा नारी निर्गतेषु शनेषु च ।
भीता रहसि तं प्राहभैवं स वाचकं द्विजम् ॥३७
ब्रह्मंस्त्वं श्रृणवसद्वृत्तमजानन्त्या स्वकर्मकम् ।
श्रुत्वा मामुद्धर स्वामिकृन्कृपां कृत्वातुलामपि ॥३८
चरितं रूण्वणं पापं मया मूढधिया प्रभो ।
नीतं पौश्चल्यतः सर्वं यौवनं मदनान्धया ॥३९
श्रुत्वेदं वचनं तेऽद्य वैराग्यरसजम्भितम् ।
जाता महाभया साऽहं सकम्पात्तयियोगिका ॥४०

वहां किसी देवालय में किसी पण्डित के मुख से उसने शिव पुराण की कथा श्रवण की ।३४। कि जो नारी जार के साथ रमण करती है उसे यमदूत नरक में ले जाते और उसके यौन स्थान में लोहे का बनातप्त मुसल प्रविष्ट करते है ।३५। इस प्रकार वैराग्य की वृद्धि करने वाली पुराणकथा को सुनकर चंचुला अत्यन्त भय से उद्विग्न होकर कांपने लगी ।३६। जब कथा पूरी हो गई और सभी श्रोता वहाँ से चले गये तब

वह भयभीत उस कथावाचक से एकान्त में प्रश्न करने लगी।३७। चंचुला ने पूछा—हे ब्रह्मन् ! आप मुझे असत् वृत्त वाली स्त्री समझकर मेरा वृत्तान्त सुनें और अत्यन्त कृपापूर्वक मेरा उद्धार करें।३८। मेरा चरित्र अत्यन्त घृणित है। मुझ मूर्खा ने अपना यौवन अज्ञान के कारण व्यभिचार में व्यतीत कर डाला। मैं उस समय मदान्ध हो चुकी थी।३९। आपके वैराग्य रस से परिपूर्ण वचन सुनकर मैं अत्यन्त भयभीत हो उठी हूँ और मेरा हृदय कम्पायमान हो रहा है।४०।

धिङ्मां मूढधियं पापां काममोहितचेतसम्।
निन्द्यां दुर्विषयासक्तां विमुखीं हि स्वधर्मतः ॥४१
यदल्पस्य सुखस्यार्थे स्नकायस्य विनाशिनः।
महापापं कृतं घोरमजानन्त्याऽतिकष्टदम् ॥४२
यास्यमिदुर्गतिं कां कां घोरां हा कष्टदायिनीम्।
को ज्ञो यास्यति मां तत्र कुमारगतमानसाम् ॥४३
मरणो यमदूतांस्तान्कथं द्रक्ष्ये भयंकरान्।
कथं पाशैर्बलात्कण्ठे बध्यमाना धृतिं लभे ॥४४
कथं सहिष्ये नरके खंडशो देहकृन्तनम्।
यातनां तत्र महतीं दुःखदां च विशेषतः ॥४५
दिवा चेष्टामिन्द्रियाणां कथं प्राप्स्यामि शोचती।
रात्रौ कथं लभिष्येऽहं निद्रां दुःखपरिप्लुता ॥४६
हा हतास्मि च दग्धामि विदीर्णहृदयास्मि च।
सर्पथाऽहं विनष्टाऽस्मि पापिनी सर्वथाप्यहम् ॥४७

मैं काम से भ्रमित चित्त हुई मूढ़ बुद्धि वाली स्त्री हूँ। मुझे धिक्कार है जो मैंने अपने धर्म से विमुख होकर निंदित कुधर्म को प्राप्त किया है।४१। जो मैं स्वल्प सुख के आकर्षण में अपने कार्य को नष्ट कर देने वाले अत्यन्त कष्टकारी घोर दुष्कर्म में प्रवृत्त हो गयी।४२। अब मैं किस घोर कष्ट देने वाली दुर्गति को पाऊँगी और मुझ कुमार्ग में मन रमाने वाली स्त्री की रक्षा वहाँ कौन करेगा ? ।४३। मृत्यु को प्राप्त करने पर मैं उन यमदूतों को किस प्रकार देखूँगी। जब वे यमदूत मुझे

कठोर पाशों में बांधेंगे तब मुझे विश्राम कैसे प्राप्त होगा ? ।४४। जब नरक में देह के टुकड़े टुकड़े हो जायेंगे, तब मैं उसे किस प्रकार सहन करूँगी ? वहाँ तो अत्यन्त दुःसह्य यातना प्राप्त होती हैं।४५। उन इन्द्रियों की चेष्टा का ध्यान करती हुई मैं किस प्रकार देख सकूँगी ? दुःख से युक्त हुई मैं रात्रि में किस प्रकार सो सकूँगी ? ।४६। मैं विदीर्ण हृदय वाली सब प्रकार दग्ध और नष्ट हो चुकी हूं, क्योंकि मैं अत्यन्त पाप कर्म वाली हूँ ।४७।

हा विधे मां महापापे तत्वा दुःशेमुषीं हठात् ।
अपैति यत्स्वधर्माद्व सर्व सौख्यकरादहो ।।४८
शूलप्रोतस्य शैलाग्रात्पततस्तुङ्गसो द्विज ।
यद्दुःखं देहिनो घोरं तस्मात्कोटिगुणं मम ।।४९
अश्वमेधशतं कृत्वा गंगा स्नात्वा शतं समाः ।
न शुद्धिर्जायते प्रायो मत्पापस्य गरीयस ।।५०
किं करोमि क्व गच्छामि कं वा शरणमाश्रये ।
कस्त्रायेत मां लोकेऽस्मिन्पतन्तीं नरकार्णवे ।।५१
त्वमेव मे गुरुर्ब्रह्मं स्त्वं माता त्वं पिताऽसि च ।
उद्धरोद्धर मां दीनां त्वमेव शरणं गताम् ।।५२
इति संजातनिर्वेदां पतिमाश्चरणद्वये ।
उत्थाप्य कृपया धीमान्बभाषे ब्राह्मणः स हि ।।५३

हा विधना ! तुमने हठपूर्वक यह घोर पापमयी बुद्धि प्रदान कर क्या किया, जो सब सुखों को प्रदान करने वाले धर्म से ही बना देती है ।४८। हे महात्मन् ! शूल से गोदने पर और पर्वत से गिरने पर जो पीड़ा होती है, मुझे उससे करोड़ गुनी हो रही है ।४९। सौ अश्वमेध यज्ञ कर लेने पर तथा सौ वर्ष तक निरन्तर गंगा स्नान करने पर भी मेरे घोर पाप का शोधन नहीं हो सकता ।५०। मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? किसकी शरण में पहुँचूँ ? मुझ नरक सागर में गिरी हुई स्त्री की रक्षा करने में इस लोक में समर्थ कौन है ? ।५१। हे ब्रह्मन् ! आप ही मेरे गुरु और माता-पिता हैं। कृपा कर आप मुझ दीन का उद्धार

कीजिये। मैं आपकी शरण को प्राप्त हुई हूँ।५२। सूतजी ने कहा—जब चंचुला इस प्रकार निर्वेद को लाभ होकर ब्राह्मण के चरणों में गिर पड़ी तब कृपापूर्वक उसे उठाकर ब्राह्मण ने कहा।५३।

॥ चंचुला की सद्गति ॥

दिष्ट्या काले प्रबुद्धासि शिवानुग्रहतो वराम्।
इमां शिवपुराणस्य श्रुत्वा वैराग्यवत्कथाम् ॥१
मा भैषीर्द्विजपत्नि त्वं शिवस्य शरणं व्रज।
शिवानुग्रहतः सर्वं पापं सद्यो विनश्यति ॥२
सत्कथाश्रवणादेव जाता ते मतिरीदृशी।
पश्चात्तापान्विता शुद्धा वैराग्यं विषयेषु ॥३
पश्चात्तापः पापकृतां निष्कृतिः परा।
सर्वेषां वर्णितं सद्भिः सर्वपापविशोधनम् ॥४
पश्चात्तापेनैव शुद्धिः प्रायश्चित्तं करोति सः।
यथोपदिष्टं सद्भिर्हि सर्वपापविशोधनम् ॥५
प्रायश्चित्तमधीकृत्य विधिवन्निर्भयः पुमान्।
स याति सुगतिं प्रायः पश्चात्तापी न संशयः ॥६
एतच्छिवपुराणस्य कथाश्रवणतो यथा।
जायते चित्त शुद्धिर्हि न तथान्यैरुपायतः ॥७

ब्राह्मण ने कहा—तू भाग्यवश ही ज्ञान को प्राप्त हुई है। शिवजी का तेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह है जो तू शिवपुराण की वैराग्यमयी कथा सुनकर ही ज्ञान को प्राप्त कर सकी।१। हे विप्रपत्नी! भय मत करो और शिवजी की शरण में जा। शिवजी के अनुग्रह से सब पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।२। उनकी सत्कथा सुनने से ही तेरी मति ऐसी हुई है, जिससे तू पश्चात्ताप करके शुद्ध हुई और विषयों से विरक्त हो गई है।३। पश्चात्ताप ही पापों की परम निष्कृति है। विद्वज्जनों ने पश्चात्ताप करने सब प्रकार के पापों की शुद्धि होना कथन किया है।४। पश्चात्ताप करने से जिसके पापों का शोधन न हो, उसे प्रायश्चित करना चाहिए। विद्वानों ने इससे सब पापों का शोधन होना कहा है।५। विधिपूर्वक अनेक प्रकार

के प्रायश्चित करने पर भी मनुष्य भयभीत नहीं हो पाता। परन्तु पश्चाताप करने वाले को सुगति की प्राप्ति होती है ।६। इसके सुनने से जैसी चित्त शुद्धि है, वैसी अन्य उपायों से नहीं होती ।७।

अतः सर्वस्व वर्गस्यैतत्कथासाधनं मतम् ।
एतदर्थं महादेवी निर्ममे त्वाग्रहादिमाम् ।।८
कथया सिद्ध्यति ध्यानमनया गिरिजापतेः ।
ध्यानाज्ज्ञानं परं तस्मात्कैवल्यं भवति ध्रुवम् ।।९
असिद्धशंकरध्यानः कथामेव शृणोति यः ।
स प्राप्यान्यभवे ध्यानं शंभोर्यातिः परां गतिम् ।।१०
एतत्कथाश्रवणतः कृत्वा ध्यानमुमापतेः ।
ते पश्चात्तापिन पापा बहवः सिद्धिमागताः ।।११
सर्वेषां बीजं सत्कथाश्रवणं नृणाम् ।
यथावत्मसमाराध्यं भवबन्धगदापहम् ।।१२
कथाश्रवणतः शम्भोर्मननाच्च ततो हृदा ।
निदिव्यासनतश्चैव चित्तशुद्धिर्भवत्यलम् ।।१३
ध्यायतः शिवपदाब्जं चतसा निर्मलेन वै ।
एकेन जन्मना मुक्तिः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।।१४

इसलिये सभी को शिवपुराण की कथा सुननी चाहिए । इसी उद्देश्य से शिवजी ने इसे बनाया है। क्योंकि यह सभी वर्ग का साधक है ।८। इस कथा के द्वारा शिवजी का ध्यान सिद्ध हो जाता हैं। ध्यान से ज्ञान की सिद्धि होती और ज्ञान से कैवल्य प्राप्त होता है ।९। जिसे शंकर का ध्यान सिद्ध नहीं है, वह यदि इस कथा को सुने तो उसे शिवजी के ध्यान की सिद्धि होती है और वह परमगति को प्राप्त होता है ।१०। इस कथा को सुनकर भगवान शिवजी का ध्यान करके पश्चात्ताप करने वाले पुरुष सिद्धि को प्राप्त हो चुके हैं ।११। इस सत्कथा को सुनने वाले पुरुष सभी प्रकार के मङ्गल को प्राप्त होते और शिवजी की आराधना करने से उनकी संसार व्याधि छूट जाती है ।१२। शिव की कथा सुनकर मनन करने से तथा निदिध्यासन के द्वारा चित्त की पूर्ण शुद्धि

हो जाती है ।१३। स्वच्छ चित्त से शिवजी के चरणकमल का ध्यान कर एक जन्म में ही तू मुक्ति को प्राप्त हो जायगी यह में सत्य कहता हूँ ।१४।

अथ विदुगपत्नी सा चचुलाह्वा प्रसन्नधीः ।
इत्युक्ता तेन विप्रेण समासीद्वाण्पलोचना ॥१५
पपातारं द्विजेन्द्रस्य पादयोस्तस्य हृष्टधीः ।
चञ्चुला साञ्जलिः सा च कृयार्थास्मीत्यभाषत ॥१६
अथ सोत्थाय सातका साञ्चलिर्गद्गदाक्षरम् ।
तमुवाच महाशैवं द्विजं वैराग्ययुक्सुधीः ॥१७
ब्रह्मञ्छैववर स्वामिन्धन्यस्त्वं परमार्थदृक् ।
परोपकार निरतो वर्णनीयः सुसाधुषु ॥१८
उद्धरोद्धर मां साधो पतन्ती नरकार्णवे ।
श्रुत्वा यां सुकथां शवीं पुराणार्थविजृम्भिताम् ॥१९
विरक्तधीरहं जाता विषयेभ्यश्च सवतः ।
सुश्रद्धा महती ह्येतत्पुराणश्रवणेऽधुना ॥२०
इत्युक्त्वा साञ्जलिः सा वै संप्राप्य तदनुग्रहम् ।
तत्पुराणं श्रोतुकामाऽतिष्ठत्तत्सेवने रता ॥२१
अथ शैववरो विप्रस्तस्मिन्नेव स्थले सुधीः ।

तब चंचुला उसके बचनों से प्रसन्न हुई और उसके नेत्रों में आनन्दाश्रु आ गये ।१५। वह प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मण के चरणों में गिर गई और हाथ जोड़कर बोली, हे ब्रह्मन् ! मैं कृतार्थ हो गई हूं ।१६। और अत्यन्त शान्ति-पूर्वक उठकर प्रसन्न होती हुई गद्‌गद वाणी द्वारा वैराग्यमय वचन उस महाशैव्य से बोली ।१७। चंचुला ने कहा—हे ब्रह्मण ! आप शिवभक्तों में श्रेष्ठ हैं । परमार्थ के देखने वाले, परोपकार में निरत तथा साधुओं में उत्तम हैं ।१८। हे भगवन् ! मैं नरक सागर में गिरती जा रही हूँ आप मेरा उद्धार करिये । जिस पुराण के अर्थ वाली शिव कथा को सुनकर मैं पाप कर्मों से विरक्त हुई हूँ, उस कल्याणकारी पुराण को श्रवण करने की मुझे अत्यन्त श्रद्धा उत्पन्न हुई है ॥१९—२०॥

सत्कथां श्रावयामास तत्पुराणस्य तां स्त्रियम् ॥२२
इत्थं तस्मिन्महाक्षेत्रे तस्मादेव द्विजोत्तमात् ।
कथां शिवपुराणस्य सा शुश्राव महोत्तमाम् ॥२३
भक्तिज्ञानविरागाणां वर्द्धिनीं मुक्तिदायिनीम् ।
बभूव सुकृतार्था सा श्रुत्वा तां सत्कथां पराम् ॥२४

सूतजी ने कहा — चंचुला हाथ जोड़कर इस प्रकार कहती हुई ब्राह्मण की कृपा को प्राप्त हुई और शिवपुराण सुनने की कामना से उसके समीप जा बैठी ।२१। वह शैव्यों में श्रेष्ठ विप्र उस पवित्र स्थान में उस स्त्री को शिवपुराण की पवित्र कथा सुनाने लगे ।२२। उस विप्र श्रेष्ठ के मुख से चंचुला ने उस महान क्षेत्र में बैठकर परमोत्तम शिवपुराण की कथा सुनी ।२३। वह कथा भक्ति, ज्ञान और वैराग्य की वृद्धि करने वाली और मोक्षदायिनी थी । चंचुला उस कथा को सुनकर कृतार्थ हो गई ।२४।

॥ बिन्दुग सद्गति ॥

सा कदाचिदुमां देवीमुपगम्य प्रणम्य च ।
सुतुष्टाव करौ बद्ध्वा परामानन्दसंप्लुता ॥१
गिरिजे स्कन्दमातस्त्वं सेविता सर्वदा नरैः ।
सर्वसौख्यप्रदे शम्भुप्रिये ब्रह्मस्वरूपिणि ॥२
विष्णुब्रह्मादिभिः सेव्या सगुणा निर्गुणापि च ।
त्वामाद्या प्रकृतिःसूक्ष्मा सच्चिदानन्दरूपिणौ ॥३
सृष्टिस्थितिलयकरी त्रिगुण त्रिसुरायला ।
ब्रह्मविष्णुमहेशानां सुप्रतिष्ठाकरा परा ॥४
इति स्तुत्वा महेशीं तां चंचुला साप्तसद्गतिः ।
विरराम नतस्कन्धा प्रेमपूर्णाश्रुलोचना ॥५
ततः सा करुणाविष्ठा पार्वती शंकरप्रिया ।
तामुवाच महाप्रीत्या चंचुला भक्तवत्सला ॥६
चंचुले सखि सुप्रीतानया स्तुत्यास्मि सुन्दरि ।
किं याचसे वरं ब्रूहि नादेयं विद्यते तव ॥७

सूतजी ने कहा—एक समय चंचुला भगवती उमा के पास पहुँची और उन्हें प्रणाम कर परमानन्द पूर्वक कर जोड़कर प्रसन्न करने लगी।१। चंचुला ने कहा-हे गिरजे ! हे स्कन्द माता ! आपकी मनुष्य सदा सेवा करते हैं। आप ही सदा सुख के देने वाली तथा साक्षात् ब्रह्म स्वरूप हो ।२। ब्रह्मा, विष्णु आदि के द्वारा सेवनीय आप सगुण निर्गुण स्वरूप आद्या प्रकृति एवं सूक्ष्म सच्चिदानन्द स्वरूप वाली हो।३। आप ही सृष्टि स्थिति और लय करने वाली त्रिगुणात्रिसुरालया एवं ब्रह्मा, विष्णु, महेस की सुप्रतिष्ठा करने वाली हो।४। सूतजी ने कहा—सद्गति प्राप्त चंचुला ने भगवती उमा की इस प्रकार स्तुति की और नेत्रों में अश्रु लाती हुई शान्ति को प्राप्त हुई।५। तब करुणामयी गिरिजा ने उस भक्त-वत्सला चंचुला से कहा—हे चंचुले ! मैं तेरी स्तुति से अत्यन्त प्रसन्न हुई हूँ। तुझे जो कुछ वर मांगना हो माँग ले, तेरे लिए कोई भी वस्तु अदेय नहीं है।६-७।

इत्युक्ता या गिरिजया चंचुला सुप्रणम्यताम् ।
पर्यपृच्छत सुप्रींत्या साञ्जलिर्नतमस्तका ॥८
मम भर्ताभुना क्वास्ते नैव जानामि तद्गतिम् ।
तेन युक्ता यथाहं वै भवामि गिरिजेऽनघे ॥९
तथैव कुरु कल्याणि कृपया दींनवत्सले ।
महादेवि महेशानि भर्ता मे वृषलीपति ।
ततः पूर्वं मृतः पापी न जाने कां गतिं गतः ॥१०
इत्याकर्ण्य वचस्तस्याश्चंचुलाया हि पार्वती ।
प्रत्युवाच सुसंबीत्या गिरिजा नयवत्सला ॥११
सुते भर्ता बिन्दुगाह्वो महापापी दुराशयः ।
वेश्याभोगी महामूढो मृत्वा स नरकं गतः ॥१२
भुक्त्वा नरकदुःखानि विविधान्यमिताः समाः ।
पापशेषेण पापात्मा विन्ध्ये जातः पिशाचकः ॥१३
इदानीं स पिशाचोऽस्ति नानाक्लेशसमन्वितः ।
तत्रैव वातभुग्दुष्टः सर्वकष्टवहः सदा ॥१४

सूतजी ने कहा—पार्वती जी की बात सुनकर चंचुला ने हाथ जोड़े और प्रणामपूर्वक शिर झुकाकर उनसे प्रश्न किया ।८। हे भगवती ! मेरा स्वामी इस समय कहाँ है ? मैं उसके विषय में नहीं जानती । हे कल्याणी ! वह मुझे मिल सके, ऐसी कृपा करिये ।९। हे महादेवी ! मेरा स्वामी वृषलीपति था । वह पापी मुझ से पहले ही मर गया, न जाने उसे कौन-सी गति प्राप्त हुई ।१०। सूतजी ने कहा—चंचुला की यह बात सुनकर भगवती पार्वतीजी प्रसन्न होकर कहने लगीं ।११। हे पुत्री ! तेरा पति बिन्दुग घोर पापी और वेश्यागामी था । वह महामूढ़ मरने के पश्चात् नरक में गिरा ।१२। उसने बहुत वर्षों तक नरक के दुःख भोगे और बचे हुए पाप के कारण वह विंध्याचल में जाकर पिशाच हुआ ।१३। इस समय वह अनेक क्लेशों में पड़ा हुआ पिशाच है और वायु भक्षण करता हुआ अनेक कष्टों को भोगता है ।१४।

इति गौर्य्या वचः श्रुत्वा चंचुलां सा शुभव्रता ।
पतिदुःखेन महता दुःखिताऽऽसीत्तदा किल ॥१५
समाधाय ततश्चित्त सुप्रणम्य महेश्वरीम् ।
पुनः पप्रच्छ सा नारी हृदयेन विदूयता ॥१६
महेश्वरी महादेवि कृपां कुरु ममोपरि ।
समुद्धर पतिं मेऽद्य दुष्टकर्मकरं खलम् ॥१७
केनोपायेन मे भर्ता पापात्मा स कुबुद्धिमान् ।
सद्गतिं प्राप्नुयाद्देवि तद्वदाशु नमोस्तु ते ॥१८
इत्याकर्ण्य वचस्तस्याः पार्वती भक्तवत्सला ।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा चंचुलां स्वसखीं च ताम् ॥१९
शृणूयाद्यादि ते भर्ता पुन्यां शिवकथा परामु ।
निस्तीर्य दुर्गतिं सर्वा सद्गतिं प्राप्नुयादिति ॥२०
इति गौर्य्या वचः श्रुत्वाऽमृताक्षरमथादरात् ।
कृताञ्जलिर्नतस्कन्धा प्रणनाम पुनःपुनः ॥२१
तत्कथाश्रवणं भर्तुः सर्वपापविशुद्धये ।
सद्गतिप्राप्तये चैव प्रार्थयामास तां तदा ॥२२

सूतजी ने कहा—पार्वती जी की बात सुनकर उत्तम व्रत वाली चंचुला अपने पति के दुःख से अत्यन्त दुःखी हो गई ।१५। अपने स्वामी में चित्त लगाकर पार्वती जी को प्रणाम कर वह दुःखित हृदय से उनसे पुनः प्रश्न करने लगी ।१६। हे महादेवी ! मुझ पर कृपा करिये । दुष्कर्म के फल से कष्ट भोगते हुए मेरे स्वामी का उद्धार कीजिए ।१७। मेरा पापात्मा स्वामी किस प्रकार बुद्धिमान हो सद्गति को प्राप्त हो, मेरे प्रति वह कहिये । मैं आपको प्रणाम करती हूँ ।१८। सूतजी ने कहा—उसकी बात सुनकर भक्त-वत्सल पार्वतीजी ने प्रसन्न होकर अपनी सखी चंचुला से कहा ।१९। यदि तेरा पति पवित्र शिव कथा सुने तो दुर्गति से पार होकर श्रेष्ठ गति प्राप्त करेगा ।२०। पार्वतीजी के अमृत समान शब्दों को श्रवण कर आदर पूर्वक हाथ जोड़ती हुई चचुला अपने स्वामी के पाप की निवृत्ति के लिए शिव कथा की इच्छा करती हुई, कथा का सुयोग प्राप्त करने के निमित्त भगवती से पुनः प्रार्थना करने लगी ।२१-२२।

तयामुहुर्नार्या प्राथ्र्यमाना शिवप्रिया ।
गौरी कृपान्वितासीत्सा महेशी भक्तवत्सला ।।२३
अथ तुम्बुरमाहूय शिवसत्कीर्तिगायकम् ।
प्रीत्या गन्धर्वराजं हि गिरिकन्येदमब्रवीत् ।। २४
हे तुं बुरो शिवप्रीत मन मानसकारक ।
सहानया विन्ध्यशलं भद्रं ते गच्छ सत्वरम् ।।२५
आस्ते तत्र महाघोरः पिशाचोऽतिभयंकरः ।
तद्वृ‌ड श्रृणु सुप्रीत्याऽऽदितः सर्वं ब्रवीमिते ।।२६
पुराभवे पिशाचा स बिन्दुगाह्वोऽभवद्द्विजः ।
अस्या नार्याः पतिर्दुष्टो मत्सख्या वृषलोपतिः ।।२७
स्नानसंध्याक्रियाहीनोऽशोचः क्रोधविमूढधीः ।
दुर्भक्षो सज्जनद्वेषी दुष्परिग्रहकारकः ।।२८
हिंसकः शस्त्रधारी च सव्यहस्तेन भोजनी ।
दीनानां पीडकः क्रूरः परवेश्मप्रदीपकः ।।२९
चाण्डालाभिरतो नित्य वेश्याभोगी महाखलः ।

स्वपत्नीत्यागकृत्पापी दुष्टसं रतस्तदा ॥३०

सूतजी ने कहा—जब उसने पार्वती जी की बारम्बार प्रार्थना की तब भक्तवत्सला पार्वतीजी कृपा से युक्त हो गई ।२३। उन्होंने शिव की सत्कीर्ति का गान करने वाले तुम्बरु गन्धर्व को बुलाया और उससे प्रीतिपूर्वक कहने लगीं ।२४। पार्वतीजी ने कहा—हे तम्बरु ! तुम शिवजी की प्राप्ति करने वाले और मेरे वचन मानने वाले हो । इसके साथ विंध्याचल पर्वत को जाओ ।२५। वहाँ एक अत्यन्त भयङ्कर पिशाच निवास करता है । मैं तुमसे उसकी बात कहती हूँ, तुम प्रसन्न होकर उसे श्रवण करो ।२६। पिशाच योनि को प्राप्त होने से पूर्व बिन्दुग नामक ब्राह्मण था । वह दुष्ट इसी स्त्री का स्वामी था । वेश्यागामी, स्नान एवं संध्या की क्रिया से रहित, पवित्रता से हीन, क्रोध से मूर्ख बुद्धि वाला, दुर्भक्षी, सज्जनों से द्वेष रखने वाला और दुष्परिग्रह वाला था ।२७-२८। वह सहस्रधारी, हिंसक, बाये हाथ से भोजन करने वाला, दोनों को पीड़ित करने वाला, क्रूर पीड़क तथा लोगों के घर में आग लगाने वाला था ।२६। चाण्डाल से प्रीति करने वाला, वेश्यागामी, अत्यन्त पापी, पत्नी का त्याग करने वाला और दुष्ट सङ्ग से प्रीति करने वाला था ।३०।

तेन वेश्याकुसगेन सुकृतं नाशितं महत् ।
वित्तलोभेन महषी निभया जारिणी कृता ॥३१
आमृत्योः स दुराचारी कालेन निधनं गतः ।
ययौ यमपुरं घोरंभोगस्थानं हि पापिनाम् ॥३२
तत्र भुक्त्वा स दुष्टात्मा नरकानि बहूनि च ।
इदानीं स पिशाचोऽस्ति विंध्येऽद्रौ पाप भुक्खलः ॥३३
तस्याग्रे परमां पुण्यां सर्वपापविनाशिनीम् ।
दिव्यां शिवपुराणस्य कथांकथय यत्नतः ॥३४
दुतं शिवपुराणस्य कथा श्रवणतः परात् ।
सर्वपाप विशुद्धात्मा हास्यति प्रेततां च सः ॥३५
मुक्तं च दुर्गतेस्तवै बिन्दुगं त्वं पिशाचकम् ।

मदाज्ञया विमानेन समानय शिवान्तिकम् ॥३६

उसने वेश्या-सङ्ग से अपने सभी सुकृतों को नष्ट कर डाला और धन के लोभ से अपनी पत्नी को भी व्यभिचारिणी बना दिया ।३१। मरने के समय तक वह दुराचार मे लगा रहा और मृत्यु होने पर यमलोक को गया जहाँ से उसे पापियों के घोर स्थान की प्राप्ति हुई ।३२। वहाँ उस दुष्टात्मा को अनेक नरक भोगने पड़े और अब विंध्याचल पर्वत में जाकर पिशाच हो गया है ।३३। तुम वहाँ जाकर परम पवित्र शिवपुराण की कथा, जो सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने में समर्थ है, उस पिशाच को श्रवण कराओ ।३५। वह उस पवित्र कथा सुनते ही पाप-रहित होकर अपने प्रेतत्व का त्याग कर देगा ।३५। तब वह दुर्गति से छूट कर अपने पिशाचत्व को छोड़ देगा। उस समय तुम उसे विमान पर बैठा कर मेरी आज्ञा से शिवजी के पास ले जाना ।३६।

इत्यादिष्टो महेशान्या गन्धर्वेन्द्रश्च तुंबुरुः ।
मुमुदेऽतीव मनसि भाग्यं निजमवर्णयत् ॥३७
आरुह्य सुविमानं स सत्या तत्प्रियया सह ।
ययौ विंध्याचले सोऽर यत्रास्ते नारदप्रियः ॥३८
तत्रापश्यत्पिशचं तं महाकायं महाहनुम् ।
प्रहसन्तं रुद्रन्तं च वल्गतं विकटाकृतिम् ॥३९
बलाज्जग्राह तं पाश पिशाचं चातिभीकरम् ।
तुम्बुरुश्शिवंसत्कीर्तिगायश्च महाबली ॥४०
अथोशिवपुराणस्य वाचनार्थं स तुम्बुरुः ।
निश्चित्य रचनां चक्रे महोत्सवसमन्विताम् ॥४१
पिशाचं तारितुं देव्याः शासनात्तुम्बुरुगतः ।
विंध्यं शिवपुराणं स ह्यद्रि श्रावयितु परम ॥४२
इति कोलाहलो जातः सवलोकेषु वै महान् ।
तत्र तच्छ्रवणार्थाय ययुर्देवर्षयो द्रुतम् ॥४३

सूतजी ने कहा — तुम्बुरु गन्धर्व से जब पार्वती जी ने इस प्रकार कहा, तब वह अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने भाग्य को सराहने लगा ।३७।

चंचुला को साथ लेकर वह गन्धर्व विमान में बैठा और तब उनसे विंध्याचल पर्वत को प्रस्थान किया ।३८। वहाँ वह विकराल हनु वाला महाकाय पिशाच उन्हें दिखाई दिया । वह विकट आकार वाला कभी हँसता रोता कभी कूदता और चाहे जो कुछ बकता था ।३९। तुम्बरु ने उस पिशाच को बलपूर्वक पाशों के द्वारा पकड़ा और फिर उसके समक्ष शिवजी की कीर्ति का गान प्रारम्भ किया ।४०। फिर तुम्बरु ने शिवपुराण पढ़ने के लिए एक महोत्सव के वातावरण का आयोजन किया ।४१। पार्वतीजी की आज्ञा से उस पिशाच को संकट मुक्त करने के लिए तुम्बरु गया, वह शिवपुराण की कथा विंध्याचल में कहेगा ।४२। सब लोगों में यह विज्ञप्ति प्रसारित हो गई तब शिवपुराण का श्रवण करने के लिए वहाँ देवता और ऋषि भी आ गये ॥४३॥

समाजस्तत्र परमोऽद्भुतश्चासीच्छुभावहः ।
तेषां शिवपुराणस्यागतानां श्रोतुमादरात् ॥४४
पिशाचमथ तं पाशैर्बद्ध्वा समुपवेश्य च ।
तुं बुरुर्वल्लकीहस्तो जगौ गौरीपतेः कथाम् ॥४५
आरभ्य संहितामाद्यां सप्तमीसंहितावधि ।
स्पष्टं शिवपुराणं हि समाहात्म्यं समावदत् ॥४६
श्रुत्वा शिवपुराणं तु सप्तसहितमादरात् ।
बभूवुः सुकृतार्थास्ते सर्वे श्रोतार एव हि ॥४७
स पिशाचौ महापुण्यं श्रुत्वा शिवपुराणकम् ।
विधूय कलुषं सव जहौ पैशाचिकं वपुः ॥४८
दिव्यरूपो वभूवाशु गौर वर्णः सितांशुकः ।
सर्वालंकारदीप्तांगस्त्रिनेत्रश्चन्द्रशेखरः ॥४९

उस समय वहाँ श्रेष्ठ और अद्भुत समाज हुआ सभी, आदरपूर्वक शिवपुराण सुनने को एकत्र हुए थे ।४४। पाशों से वंधा वह पिशाच भी वहाँ बैठा । उस समय तुम्वरु ने वीणा लेकर पार्वतीपति शिवजी का कीर्ति-गान प्रारम्भ किया ।४५। उसने प्रथम संहिता से प्रारम्भ कर

सातवीं संहिता तक महात्म्य सहित सम्पूर्ण शिवपुराण की कथा का वर्णन किया ।४६-४७। कथा श्रवण के फल से पिशाच ने भी पाप रहित होकर अपने शरीर का त्याग कर दिया ।४८। वह तत्काल गौर वर्ण का होकर श्वेत वस्त्रधारी दिखाई देने लगा । सम्पूर्ण अलंकारों से जगमगाता हुआ वह तीन नेत्र युक्त चन्द्रशेखर रूप हो गया ।।४९।।

शिवपुराण श्रवण बिधि

श्रीमच्छिवपुराणस्य श्रवणस्य विधिं वद ।
येन सर्वं लभेच्छ्रोता सम्पूर्णं फलमत्तमम् ।।१
अथ ते संप्रवक्ष्यामि संपूर्णं फलहेतवे ।
विधिं शिवपुराणस्य शौनक श्रवणे मुने ।।२
देवज्ञ च प्रमाहूय सन्तोष्य च जनान्वितः ।
मुहूर्तं शोधयेच्छुद्धं निर्विघ्नेन समाप्तये ।।३
वार्ता प्रेष्यां प्रयत्नेन देशे देशे च सा शुभा ।
भविष्यति कथा शेवी आगन्तव्यं शुभार्थिभिः ।।४
दूरे हरिकथाः केचिद्दूदूरे शंकरकीर्तनाः ।
स्त्रियः शूद्रःदयो ये च वोधस्तेषां भवेद्यत ।।५
देशे देशे शांभवा थे कीर्तन श्रवणोत्सुकाः ।
तेषामानयनं कार्यं तत्प्रकारार्थमादरात् ।।६
भत्रिष्यति समाजोऽत्र साधूनां परमोत्सवः ।
परायणे पुराणस्य शैवस्य परामाद्भुतः ।।७

शौनकजी ने कहा—हे सूतजी ! आप शिवपुराण के सुनने की विधि मेरे प्रति कहिये, जिसे श्रोताओं को श्रेष्ठ फल की प्राप्ति हो सके ।१। सूतजी ने कहा—मैं फल के लिए शिवपुराण की विधि तुमसे कहता हूँ । हे शौनक तुम इसे ध्यान से श्रवण करो ।२। शिवपुराण की कथा सुनने के लिए ज्योतिषी को बुलावें और कुटुम्ब सहित सन्तुष्ट कर पुराण के निर्विघ्न पूर्ण होने के लिए मुहूर्त निकाले ।३। फिर देश-देश में समाचार भेजें कि अमुक स्थान पर शिवपुराण की कथा होगी, उसे सुनने के लिए सबको सम्मिलित होना चाहिए ।४। जो शिवजी की कथा अथवा उनके कीर्तन से रहित हो ऐसे स्त्री, शूद्र आदि अज्ञानियों को भी बोध हो

सके ।५। देश-देश में जो शिव भक्त कीर्तन और श्रवण के लिए उत्कण्ठित हों, उनको आदरपूर्वक आमन्त्रित करना चाहिए ।६। इस स्थान पर साधुओं का परम मंगल प्रदान करने वाला समाज होगा तथा अत्यन्त अद्भुत शिवपुराण का पारायण होगा ।७।

नावकाशो यदि प्रेम्णागन्तव्यं दिनमेककम् ।
सर्वथाऽऽगमनं कार्यं दुर्लभा च क्षणस्थितिः ।।८
तेषामाह्वानमेवं हि कार्यं सविनयः मुदा ।
आगतानां च तेषां हि सर्वथा कार्य्य आदरः ।।६
शिवालये च तीर्थे वा वने वापि गृहेऽथवा ।
कार्य शिवपुराणस्य श्रवणस्थलमुत्तमम् ।।१०
कार्य संशोधन भूमेर्लेपनं धातुमण्डनम् ।
विचित्रा रचना दिव्या महोत्सवपुरासरम् ।।११
कर्तव्यौ मण्डपाऽत्युच्चैः कदलोस्तं भमंडितः ।
फलपुष्पादिभि सम्यग्विष्वग्वितानराजितः ।।१२
चतुर्दिद्क्षु ध्वजारोपः सपताक सुशोभनः ।
सुभक्तिः चर्वथा कार्या सर्वानन्दविधायिनी ।।१३
सकल्यमानसं दिव्य शंकरस्य परमात्मनः ।
वक्तुश्चापि तथा दिव्यमासनं सुखसाधनम् ।।१४

यदि अवकाश न हो तो एक दिन के लिए ही प्रेम पूर्वक आईये । यहाँ अवश्य आना चाहिए । क्योंकि एसे कार्य क्षणमात्र के लिए भी दुर्लभ हैं ।८। इस प्रकार विनयपूर्वक लोगों को आमन्त्रित करना चाहिए और आगत व्यक्तियों का आदर एवं सम्मान करना चाहिए ।६। यदि शिवालय रूप तीर्थ की स्थापना कराये और वहाँ शिवपुराण की कथा करावे तो वह स्थान इसके लिए सर्वश्रेष्ठ है ।१०। जहाँ शिवपुराण की कथा हो, वहाँ पहिले पृथ्वी को लीपे और धातुओं से आच्छादित करे । इस प्रकार विचित्र रचना पूर्वक महोत्सव करे ।११। केला ऊँचा मण्डप निर्मित करे और फल पुष्पादि का अर्पण करते हुए भले प्रकार पूजन करना चाहिए ।१२। चारों ओर ध्वजा पताका फहराये और सब

प्रकार से आनन्द प्रदान करने वाली श्रेष्ठ भक्ति का आश्रय ग्रहण करे ।१३। संकल्प कर भगवान शङ्कर को दिव्य आसन पर प्रतिष्ठापित करे और भक्त को बैठने के लिए भी श्रेष्ठ आसन दे ।१४।

श्रोतृणां कल्पनीयानि सुस्थलानि यथार्हतः ।
अन्येषां च स्थलान्येव साधारणतया मुने ॥१५
विवाहे यादृश चित्त तादृशं कार्यमेव हि ।
अन्य चिन्ता विनिर्वार्य्या सर्वा शौनक लौकिकी ॥१६
उदङ्मुखो भवेद्वक्ता श्रोता प्राग्वदनस्थता ।
व्युत्क्रमः पावयोर्ज्ञेयो विरोधो नास्ति कश्चन ॥१७
अथवा पूर्वदिग्ज्ञेया पूज्यपूजकमध्यतः ।
अथवा सम्मुखं वक्तुः श्रोतृणामाननं स्मृतम् ॥१८
नींचबुद्धि न कुर्वीत पुराणज्ञे कदाचन ।
यस्य वक्त्रोद्गता वाणी कामधेनुः शरीरिणाम् ॥१९
गुरुवत्सन्ति वहवो जन्मतो गुणतश्च वै ।
परो गुरु पुराणज्ञास्तेषां मध्ये विशेषतः ॥२०
पुराणज्ञः शुचिर्दक्षः शान्तो विजितमत्सरः ।
साधुः कारुण्यवान्वाग्मी वदेत्पुण्यकथामिमाम् ॥२१
आसूर्योददमारभ्य सार्द्ध द्विप्रहरान्तकाम् ।
कथा शिवपुराणस्य वाच्यसम्मक् सुधीमता ॥२२

श्रोताओं के बैठने के लिए भी योग्य एवं सुन्दर स्थान रखे तथा सभी स्थान साधारण रूप से निश्चित करे ।१५। शिवपुराण की कथा में वैसा ही उत्साह रखे जैसा विवाहित अन्य मङ्गल कार्यों के करने में होता है । हे शौनक ! सभी लौकिक चिन्ताओं को उस समय त्याग दे ।१६। वक्ता का मुख उत्तर दिशा में रहे और श्रोता पूर्वाभिमुख होकर पालथी मारकर बैठे । कथा के सम्मुख पाँव न रखे और किसी प्रकार का भी विरोध न हो ।१७। अथवा पूज्य पूजक के बीच में पूर्व दिशा होनी चाहिए अथवा श्रोताओं के मुख कथा वाचक के सम्मुख होने चाहिए ।१८। पुराण के जानने वाले के प्रति शंका युक्त बुद्धि न करे, क्योंकि

उसके मुख के निकलने वाले वचन देहधारियों के लिए कामधेनु के समान है ।१६। जन्म से और गुण से अनेक गुरु होते हैं, परन्तु उन सभी में शिवपुराण का ज्ञाता विशिष्ट प्रकार का गुरु होता है ।२०। पुराण का जानने वाला पवित्र, चतुर, शान्त, मन्द-रहित, साधु, दयावान और वाग्मी हो जो इस पुराण कथा को कहता है ।२१। शिवपुराण की कथा का आरम्भ सूर्योदय से पूर्व कर दें और बुद्धिमान कथावाचक उसे साढ़े दो पहर तक बाँचे ।।२२।।

कथां शिवपुराणस्य शृणुयाददरात्सुधीः ।
श्रोता सुविधिना शुद्धः शुद्धचित्तः प्रसन्नधी ।।२३
अनेककर्म विभ्रान्तः का मादिषड्विकारवान् ।
स्त्रैणः पाखण्डवादी च वक्ता श्रोता न पुण्यभाक् ।।२४
लोकचिन्त्तां धनागारपुत्रचिंता व्युदस्यान ।
कथाचित्त शुद्धमतिः स लभेष्फलमुत्तमम् ।।२५
श्रद्धाभक्तिसमायुक्ता नान्यकार्येषु लालसः ।
वाग्यताः शुचयोऽव्यग्राः श्रोतारः पुण्यभागिनः ।।२६
कथायां कथ्यमावायां गच्छन्त्य यत्र ये नराः ।
भोगान्तरे प्रणश्यन्ति तेषां दारादिसम्पदः ।।२७
असम्प्रणम्य वक्तारं कथां शृण्वन्ति ये नराः ।
भुक्त्वा ते नरकान्सर्वान्भवत्यर्जुनपादपाः ।।२८
अनातुरा श्याना ये शृण्वतीमां कथां नराः ।
भुक्त्वा ते नरकान्सर्वान्भवत्यजगरादयः ।।२९

शिवपुराण की कथा बुद्धिमान श्रोता आदर पूर्वक सुनें और शुद्ध तथा प्रसन्नचित्त रहे ।२३। अनेक कर्मों से भ्रान्ति को प्राप्त तथा कामादि छः विकारों से युक्त, चोर, पाखण्डी वक्ता या श्रोता पुण्य के भागी नहीं होते ।२४। उत्तम फल की प्राप्ति उसी को होती है जो लोक चिन्ता, धन, गृह,या पुत्र की चिन्ता त्याग कर केवल शिव कथा में चित्त लगाता है ।२५। श्रद्धा भक्ति से युक्त तथा अन्य कार्यों की लालसा से मुक्त पुरुष मौन रहकर और व्यग्रता को छोड़कर कथा सुनते हैं, वही पुण्य

भागी होते हैं ॥२६॥ कथा होते हुये जो मनुष्य उसे बीच में छोड़कर अन्य स्थान को चले जाते हैं, उनके भोगान्तर में स्त्री, धन आदि का नाश हो जाता है ॥२७॥ जो मनुष्य कथा वाचक को प्रणाम किये बिना कथा श्रवण करते हैं, वे नरक में दुःख पाकर अर्जुन वृक्ष की योनि प्राप्त करते हैं ॥२८॥ जो मनुष्य निरोग होते हुए भी लेटकर कथा श्रवण करते है, वे नरकों के दुःख भोगने के पश्चात् अजगर आदि होते हैं ॥२९॥

वक्तुः समासनारूढ़ा ये श्रृण्वन्ति कथामिमाम् ।
गुरुतल्पसम पाप प्राप्यते नारकैः सदा ॥३०
ये निंदति च वक्तारं कथां चेमां सुपावनीम् ।
भवंति शनका भुक्त्वा दुःखं जन्मशतं हि ते ॥३१
कथायां वर्तमानायां दुर्वादं ये वदति हि ।
भुक्त्वा ते नरकान्घोरान्भवति गर्दभास्ततः ॥३२
कदाचिन्नापि श्रृण्वन्ति कथामेतां सुपावनीम् ।
भुक्त्वा ते नरकान्घोरान्भवंति वनसूकराः ॥३३
कथायां कोत्यमानायां विघ्नं कुर्वन्ति ये खलाः ।
कोटचब्दं नरकाम्भुक्त्वा भवति ग्रामसूकराः ॥३४
एवंविचार्य शुद्धात्मा श्रोता वक्तुसुभक्तिमान् ।
कथाश्रवणहेतोर्हि भदेत्प्रीत्योद्यतः सुधीः ॥३५
कथाविघ्नविनाशार्थं गणेशं पूजयेत्पुरा ।
नित्य संपाद्य संक्षेपात्प्रायश्चित्तं सपाचरेत् ॥३६

जो किसी अहं-भावना वंश वक्ता के बराबर, ऊँचे आसन पर बैठ कर कथा श्रवण करते हैं, उनको गुरु शय्या पर चढ़ने का पाप होता है ॥३०॥ जो वक्ता इस पवित्र कथा की निन्दा करते हैं वे दुःख भोगते हुये सौ जन्म तक श्वान योनि को प्राप्त होते हैं ॥३१॥ जो कथा होते के समय मुख से दुर्वचन निकालते हैं, वे घोर नरक के दुःखों को भोगकर गधे की योनि में जाते हैं ॥३२॥ इस पवित्र कथा को जो कभी भी श्रवण नहीं करते, वे घोर नरक में जाकर दुःख भोगते और फिर वन शूकर होते है ॥३३॥ कथा होते समय जो दुष्ट मनुष्य विघ्न उपस्थित करते हैं, वह

करोड़ वर्षों तक नरक भोगने के उपरान्त ग्राम शूकर बनते हैं।३४। इसलिये श्रोता और वक्ता दोनों ही विचार पूर्वक शुद्धात्मा होकर भक्ति भाव सहित कथा सुनने के लिये बुद्धिपूर्वक तत्पर हों।३५। कथा में विघ्न उपस्थित न हो, इसके लिये प्रथम गणेशजी का पूजन करे, फिर संक्षेप में नित्य कर्म करके प्रायश्चित करे।३६।

नवग्रहांश्च सम्पूज्य सर्वतोभद्रदैवतम् ।
शिवपूजोक्तविधिना पुस्तकं तत्समर्चयेत् ॥३७
पूजनांते महाभक्त्या करौ बद्ध्वा विनीतकः ।
साक्षाच्छिवस्वरूपस्य पुस्तकस्य स्तुतिं चरेत् ॥३८
श्रीमच्छिवपुराणाख्य प्रत्यक्षस्त्व महेश्वरः ।
श्रवणार्थं स्वीकृतोऽसि सन्तुष्टो भव वै मयि ॥३९
मनोरथ मदीयोऽय कर्तव्यः सफलस्त्वय ।
निर्विघ्नेन सुसम्पूर्णं कथाश्रवणमस्तु मे ॥४०
भवाब्धिमग्न दीन मां समुद्धर भवार्णवात् ।
कर्मग्राहगृहीतागं दासोऽहं तव शकर ॥४१
एवं शिवपुराणं हि साक्षाच्छिवस्वरूपकम् ।
स्तुत्वा दीनवचः प्रोच्य वक्तुः पूजां समारभेत् ॥४२
शिवपूजोक्ताविधिना वक्तारं च समर्चयेत् ।
सपुष्पवस्त्रभूषाभिर्धूपदीपादिनाऽर्चयेत् ॥४३
तदग्रे शुद्धचित्तेन कर्तव्यो नियमस्यदा ।
आसमाप्ति यथाशक्त्या धारणीयः सुयत्नतः ॥४४
व्यासरूप प्रबोधाग्य शिवशास्त्रविशारद ।
एतत्कथाप्रकाशेन मदज्ञान विनाशयं ॥४५

नवग्रह और सर्वतोभद्र के देवताओं को पूजकर शिवजी की पूजन विधि के अनुसार पुराण-पुस्तक का पूजन करना चाहिये।३७। पूजन के अन्त में भक्ति पूर्वक दोनों हाथ जोड़कर साक्षात् शिवजी स्वरूप पुराण-पुस्तक की स्तुति करे।३८। यह श्री शिवपुराण प्रत्यक्ष शिवजी का

स्वरूप है सुनने के लिये यह सत्कार करने से मेरे ऊपर प्रसन्न हों ।३६। मेरे इन मनोरथों को आप पूर्ण कीजिये । मेरी यह कथा निर्विघ्न सम्पूर्ण हो जाय, ऐसी कृपा करिये ।४०। हे शङ्कर ! मैं आपका दास हूं । कर्म रूपी ग्राह के द्वारा पकड़ा हुआ संसार सागर में पड़ा हूं । इस सागर से आप मुझे पार लगाइये ।४१। इस प्रकार इस साक्षात् शिव स्वरूप शिवपुराण का स्तवन करता हुआ नम्रतायुक्त वाणी से व्यास पूजन से वक्ता का पूजन करे । वस्त्राभूषण, पुष्प और धूप दीप से पूजन करे ।४३। उसके सम्मुख शुद्ध चित्त से नियम ले और जब तक कथा सम्पूर्ण हो तब तक अपने सामर्थ्यानुसार नियमों का पालन करे ।४४। हे व्यास स्वरूप ! हे ज्ञान के देने वाले ! हे सम्पूर्ण शास्त्र विशारद ! आप इस कथा को कहकर मेरे अज्ञान का हरण कीजिये ।४५।

शिवपुराण के श्रोताओं के विधि निषेध और पूजाविधि

पुंसां शिवपुराणस्य श्रवणव्रतिनां मुने ।
सर्वलोकहितार्थाय दयया नियम वद ।।१
नियमं शृणु सद्भक्त्या पुंसां तेषां च शौनक ।
नियमात्सत्कथां श्रुत्वा निर्विघ्नफलमुत्तमम् ।।२
पुंसां दीक्षाविहीनानां नाधिकारः कथाश्रवे ।
श्रोतुकामैरतो वक्तुर्दीक्षा ग्राह्या च तैर्मुने ।।३
ब्रह्मचर्यमधः सुप्ति पत्रावल्यां च भोजनम् ।
कथासमाप्तौ भुक्ति च कुर्यान्नित्य कथाव्रती ।।४
आसमाप्तपुराणं हि समुपोष्य सुशक्तिमान् ।
शृणुयाद्भक्तिः शुद्धः पुराणं शैवमुत्तमम् ।।५
घृतपानं पयःपानं कृत्वा वा शृणुयात्सुखम् ।
फलाहारेण वा श्राव्यमेकंभुक्तं न वाहितत् ।।६
एकवारं हविष्यान्न भुंज्यादेतत्कथाव्रती ।
सुखसाध्यं यथा स्यात्तच्छ्रवणं कार्यमेवं च ।।७

शौनकजी ने कहा – हे सूतजी ! शिवपुराण का व्रत करने वालों के सम्पूर्ण लोकहित के लिये नियम कहिये ।१। सूतजी ने कहा–हे शौनक ! भक्तिपूर्वक उनके नियमों को सुनो । नियम से सत्कथा को सुने, जिससे निर्विघ्नता पूर्वक श्रेष्ठ फल प्राप्त हो ।।२।। कथा सुनने में दीक्षा-रहित का अधिकार नहीं है । इसलिये वक्ता से दीक्षा लेनी चाहिए ।।३।। ब्रह्मचर्य पूर्वक पृथिवी में शयन, पत्तल में भोजन तथा कथा समाप्त होने पर आहार ग्रहण करे ।।४।। श्रोता को उचित है कि पुराण-कथा के सम्पूर्ण होने पर्यन्त सामर्थ्यानुसार व्रत पालन करते हुए श्रद्धा सहित शिवपुराण का श्रवण करे ।।५।। घृत या दुग्ध का पान करके या फलाहार करके अथवा एक समय भोजन करके कथा सुने ।।६।। इस कथा के सुनने वाले को एक बार हविष्यान्न को भोजन करना चाहिये जिस प्रकार कथा श्रवण सुखसाध्य हो सके वैसा ही करे ।।७।।

भोजनं सुकरं मन्ये कथासु श्रवणप्रदम् ।
नोपवासो वरश्चेत्स्यात्कथाश्रवणविघ्नकृत् ।।८
गरिष्ठं द्विदलं दग्धं निष्पावांश्च मसूरिकाम् ।
भावदुष्टं पर्युषितं जग्ध्वा नित्यं कथाव्रती ।।९
वार्ताकं च कलिंदं च चिचण्डं मूलकं तथा ।
कूष्माण्डं नालिकेरं च मूलं जग्ध्वा कथाव्रती ।।१०
पलाण्डुं लशुनं हिंगुं गृजनं मादकं हि तत् ।
वस्तुन्यामिषसंज्ञानि वर्जयेद्यः कथांव्रती ।।११
कामादिषड्विकारं च द्विजनां च विनिन्दनम् ।
पतिव्रतासतां निन्दां वर्जयेद्यः कथाव्रती ।।१२
सत्य शौचं दयां मौनमार्जवं विनयं तथा ।
औदार्यं मनसश्चैव कुर्यान्नित्यं कथाव्रती ।।१३
निष्कामश्च सकामश्च नियमाच्छृणुयात्कथाम् ।
सकामः काममाप्नोति निष्कामो मोक्षमाप्नुयात् ।।१४

भले प्रकार कथा में मन लग सके, इसलिये थोड़ा बहुत भोजन अवश्य कर ले । उपवास करने से कथा में मन न लगने के कारण विघ्न होता

है ॥८॥ गरिष्ठ दालें, दग्ध निष्पाप मसूरिका अथवा वासी और दोषयुक्त भोजन को कथाव्रती ग्रहण न करे ॥९॥ बैंगन, कलिंद, चिचैड़ा मूली, पेठा आदि शाक मूल का सेवन भी कथाव्रती को नित्य प्रति नहीं करना चाहिए ॥१०॥ प्याज, लहसुन, गाजर तथा मादक द्रव्य और आमिष वस्तुओं का भोजन की कथाव्रती के लिए त्याज्य कहा गया है ॥११॥ कामादि षट् विकारों का त्याग करे। सत्पुरुषों और ब्राह्मणों की कभी निन्दा न करे तथा पतिव्रता की भी निन्दा न करे ॥१२॥ सत्य, शौच, दया, मौन, आर्जव, विनय, उदारता आदि का पालन कथाव्रती पुरुष को नित्य प्रति करना चाहिए।१३। निष्काम या साकाम किसी भी भाव से कथा नियमपूर्वक सुननी चाहिए। सकाम पुरुष कामना को और निष्काम श्रवण वाला पुरुष मोक्ष को प्राप्त होता है ॥१४॥

दरिद्रश्च क्षयी रोगी पापी निर्भाग्य एव च।
अनपत्योऽपि पुरुषः शृणुयात्सत्कथामिमाम् ॥१५
काकवन्ध्यादयः सप्तविधा अपि खलस्त्रियः।
स्रवद्गर्भा च या नारी ताभ्यां श्राव्या कथा परा ॥१६
शिवपूजनवत्सम्यक्पुस्तकस्य पुरो मुने।
पूजा कार्यो सुविधिना वक्तुश्च तदनन्तरम् ॥१७
पुस्तकाच्छादनार्थं हि नवीनं चासनं शुभम्।
समर्चयेद्दृढं दिव्यं बन्धनार्थं च सूत्रकम् ॥१८
पुराणार्थं प्रयच्छन्ति ये सूत्रं वसनं नवम्।
योगिनो ज्ञानसम्पन्नास्ते भवंति भवे भवे ॥१९
स्वर्गलोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान्।
स्थित्वा ब्रह्मपदे कल्पं यान्ति शैवपदं ततः ॥२०

दरिद्री, क्षयी, रोग, पापी भाग्यहीन एवं सन्तानहीन पुरुष भी अपने दुःखों के निवारणार्थ इस कथा को श्रवण करे ॥१५॥ सातों प्रकार की बंध्या स्त्रियों अथवा जिन स्त्रीयों का गर्भ-स्राव हो जाता हो उन्हें निरन्तर शिव कथा को श्रवण करना चाहिये।।१६॥ हे मुने ! शिवजी

का पूजन करने के समान पुस्तक के सम्मुख विधिवत् पूजन करे और फिर वक्ता का पूजन करे।१७। पुस्तक के आच्छानार्थ नवीन वस्त्र प्रदान करे और उसे बाँधने के निमित्त सुन्दर रेशमी डोरा देना चाहिए, ।१८। जो पुरुष पुराण के निमित्त नवीन वस्त्र और सूत्र प्रदान करते हैं, वे सभी युगों में योगी और ज्ञान-सम्पन्न होते हैं।१९। वे स्वर्ग लोक में जाकर वहाँ के अनेक भोगों का उपभोग कर ब्रह्मलोक को प्राप्त होते और कल्प के अन्त में शिवलोक में जाते है।२०।

विरक्तश्च भवेच्छ्रोता परऽहनि विशेशतः।
गीता वाच्या शिवेनोक्ता रामचन्द्राय या मुने ॥२१
गृहस्थश्केद्भवेच्छ्रोता कर्तव्यस्तेन धीमता।
होमः शुद्धेन हविषा कर्मणस्तस्य शान्तये ॥२२
रुद्रसंहितया होमः प्रतिश्लोकेन वा मुने।
गायत्र्यास्तन्मयत्वाच्च पुराणस्यास्य तत्वतः ॥२३
दोषयोः प्रशमार्थं च न्यूनताधिताख्ययौः।
पठेच्च श्रृणुयाद्भक्तया शिवनामसहस्रकम् ॥२४
एवं कृते विधारे च श्रीमच्छिवपुराणकम्।
संपूर्णफलदं स्याद्वै भुक्तिमुक्ति प्रदायकम् ॥२५

यदि श्रोता विरक्त हो तो द्वितीय दिवस शिव गीता का विशेष करके पाठ करे। उसका उपदेश शिवजी ने श्रीरामचन्द्रजी को दिया था।२१। यदि श्रोता गृहस्थ हो तो उसे शुद्ध हवि के द्वारा उस कर्म की शान्ति के निमित्त हवन करना चाहिये।२२। अथवा रुद्र संहिता के प्रत्येक श्लोक से हवन करे या तन्मय गायत्री से अथवा पुराण के तत्व से हवन करे।२३। न्यूनाधिक दोषों की शान्ति के लिये भक्तिपूर्वक शिव-सहस्र नाम का पाठ करना चाहिये।२४। इस प्रकार विधानपूर्वक श्रवण करने से शिवपुराण पूर्ण फलदाता होता है तथा भुक्ति और मुक्ति दोनों फलों की प्राप्ति होती है।२५।

— —

श्री शिवपुराण

विद्येश्वरसंहिता

सूतजी से मुनियों का प्रश्न

आद्यन्तमंगलमजातसमानभावमार्यतमीशमजरामरमात्मदेवम् ।
पंचाननंप्रबलपंचविनोदशीलसं भावयेमनसिशंकरमम्बिकेशम् ॥

धर्मक्षेत्रे महाक्षेत्रे गङ्गाकालिन्दिसंगमे ।
प्रयागे परमे पुण्ये ब्रह्मलोकस्य वर्त्मनि ॥१
मुनयः शंशितात्मनः सत्यव्रतपरायणाः ।
महौजसो महाभागो महासत्रं वितेनिरे ॥२
तत्र सत्रं समाकर्ण्य व्यासशिष्यो महामुनिः ।
आजगाममुनीन्द्रष्टु सूतः पौराणिकोत्तमः ॥३
तं दृष्ट्वा सूतमायांतं हर्षिता मुनयस्तदा ।
चेतसा सुप्रसन्नेन पूजां चक्रुर्यथाविधि ॥४
ततो विनयसंयुक्ताः प्रोचुः सांजलयश्च ते ।
सुप्रसन्ना महात्मनः स्तुति कृत्वा यथाविधि ॥५
रोमहर्षण सर्वज्ञ भवान्वै भाग्यगौरवात् ।
पुराणविद्यामखिलां व्यासात्प्रर्थमीयिवान् ॥६
तस्मामाश्चर्य्यभूतानां कथानां त्व हि भाजनम् ।
रत्नानामुरुसाराणां रत्नकार इवार्णवः ॥७

व्यासजी ने शिवजी की ब्रह्मत्व प्राप्ति के लिए उपायभूत विद्येश्वर संहिता का वर्णन करने हेतु मङ्गल विधान किया। सृष्टि के आदि-अन्त में जो मङ्गलस्वरूप हैं. जिनके समान सम-भाव किसी में नहीं है, जिनमें विश्व स्थित है, जो जरा मृत्यु से रहित, स्वप्रकाश स्वरूप, पंचमुख,

प्रबल पंच महापापों के हरने वाले, भक्तों के मोक्ष में बाधक शब्दादि पंच विषयों को शान्त करने वाले एवं भक्तों के लिए कल्याणकारी पार्वती पति शिवजी का मैं ध्यान करता हूँ। व्यासजी ने कहा—धर्म के उस महान्क्षेत्र में जहाँ गङ्गा और कालिंदी मिली हैं, उस ब्रह्मलोक के मार्ग-भूत परम पवित्र प्रयाग नाम प्रदेश में ॥१॥ सत्यव्रत में रत, ज्ञानी एवं महान् व्रती अत्यन्त पराक्रमी और महान् भाग्यवान, ऋषि दीर्घ यज्ञ का अनुष्ठान करने लगे ॥२॥ व्यासजी के शिष्य महामुनि उस यज्ञ को सुन करके पुराण ज्ञाताओं में सर्वश्रेष्ठ सूतजी उस स्थान में आये ॥३॥ सूतजी को वहाँ आया हुआ देखकर मुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने चित्त से उनका विधिवत् पूजन किया ।४। तब विनय युक्त होकर वह मुनिजन हाथ जोड़कर उन प्रसन्न हुए महात्मा का विधिवत् स्तवन करने लगे ।५। हे सर्वज्ञ ! आपने भाग्य से गौरवपूर्वक व्यासजी से सम्पूर्ण पुराण विद्या का अर्थ रहित ज्ञान प्राप्त किया है ॥६॥ इसलिये आप आश्चर्य भूत कथाओं के उसी प्रकार पात्र हैं, जिस प्रकार श्रेष्ठ रत्नों का स्थान समुद्र है ॥७॥

यच्च भूतं च भव्यं च यच्चान्यद्वस्तु वर्तते ।
न त्वयाऽविदितं किंचित्त्रषु लोकेषु विद्यते ॥८
त्वं मद्दिष्टवशादस्य दर्शनार्थमिहागतः ।
कुर्वन्किमपि नः श्रेयो न वृथा गंतुमर्हसि ॥९
तत्वं श्रुतं स्म नः सर्वं पूर्वमेव शुभाशुभम् ।
न तृप्तिमधिगच्छामः श्रवणेच्छा मुहुर्मुहुः ॥१०
इदानी मेकमेवास्ति श्रोतव्यं सूत सन्मते ।
तद्रहस्यमपि ब्रूहि यदि तेऽनुग्रही भवेत् ॥११
प्राप्ते कलियुगे घोरे नराः पुण्यविवर्जिताः ।
दुराचाररताः सर्वे सत्यवार्तापराङ्मुखः ॥१२
परापवादनिरताः परद्रव्याभिलाषिणः ।
परसक्तस्त्रीतमनसः परहिंसापरायणाः ॥१३

देहात्मदृष्टयो मूढ़ा नास्तिकाः पशुबुद्धयः ।
मातृपितृकृतद्वेषा स्त्रीदेवाः कामकिंकराः ॥१४

भूत, भविष्यत, वर्तमान जो कुछ त्रैलोक्य में है, उसमें ऐसा कुछ भी नहीं है जो आपसे छिपा हुआ हो ।८। हमारे सौभाग्य से ही आप इन स्थान में पधारे हैं । आप हमारे मंगल किये बिना, यहाँ से नहीं जायेगें ॥९॥ पहले भी हमने आपसे अनेकानेक कथाऐं सुनी हैं, फिर भी उनसे हमारी तृप्ति नहीं हुई । हमें उनके बारम्बार श्रवण करने की इच्छा होती है ॥१०॥ हे अत्यन्त मेधावी मुने ! इस समय जो रहस्यमय वार्ता सुनने के योग्य हो उसे आप कृपा पूर्वक हमारे प्रति कहिये ॥११॥ इस घोर कलिकाल के उपस्थित होने पर पुण्यहीन मनुष्य ही प्रकट हुए हैं । सबकी प्रीति दुराचार में है तथा सत्य और पुण्य कर्मों से रहित हैं ॥१२॥ परनिन्दा करने में रत रहते हैं । पराये द्रव्य की अभिलाषा और परनारियों में चित्त लगाने वाले लोग दूसरों की हिंसा को सदा तत्पर रहते ॥१३॥ देह में आत्मा का भ्रम रखने वाले नास्तिक बुद्धि वाले मूर्ख माता पिता से द्वेष रखने वाले, काम के किंकर और स्त्री के वशीभूत रहने वाले हैं ॥१४॥

विप्रा लोभग्रहग्रस्ता वेदविक्रयजीविनः ।
धनार्जनार्थमभ्यस्तविद्या मदविमोहिताः ॥१५
त्यक्तस्वजातिकर्माणः प्रायशः परवचकाः ।
त्रिकालसंध्यया हीना ब्रह्मबोधविवर्जिताः ॥१६
अदयाः पंडितंमन्याः स्वाचारव्रतलोपकाः ।
कृष्युद्यमरताः क्रूरस्वभावा मलिनाशयाः ॥१७
क्षत्रियाश्च तथा सर्वे स्वधर्मत्यागशीलिनः ।
असत्संगाः पापरता व्यभिचारपरायणाः ॥१८
अशूरा अरणप्रीताः पलायनपरायणाः ।
कुचौरवृत्तयः शूद्राः कामकिंकरचेतसः ॥१९
शस्त्रास्त्रविद्यया हीना धेनुविप्रावनोज्झिताः ।
शरण्यावनहीनाश्च कामिन्यूतिमृगाः सदा ॥२०

प्रजापालनसद्धर्मविहीना भोगतत्पराः ।
प्रजासंहारका दुष्टा जीवहिंसाकरा मुदाः ॥२१

ब्राह्मण लोभ में फंस रहे हैं, वेदों के विक्रय से आजीविका चलाते हैं, धन के लिए विद्या का अध्ययन करते हैं और विद्या के मद से मोहित हैं, ।१५। अपने स्वाभाविक कर्म का त्याग करने वाले, दूसरों को ठगने वाले, त्रिकाल संध्या से रहित तथा ब्रह्मज्ञान से शून्य हैं ।१६। स्वयं को पण्डित समझने वाले, दया-रहित आचार और व्रत से हीन, कृषि-कर्म में लगे हुए, क्रूर स्वभाव के तथा मलीन चित्त वाले हैं ।१७। इसी प्रकार क्षत्रियों ने भी अपना धर्म छोड़ रखा है । वे कुसङ्गति में पड़े हुए हैं और पाप कर्म तथा व्यभिचारी परायण हैं ।१८। शूद्रों से प्रीति रखने वाले, कायर, युद्ध में पीठ दिखाने वाले, चोरों की वृत्ति में लगे हुए तथा कामदेव के दास हैं ।१९। शस्त्रास्त्र की विद्या से अनजान, गौ ब्राह्मणों का पालन न करने वाले, शरणागतों को दुत्कारने वाले, कामिनी के लीला हरिण तथा धन से हीन हैं ।२०। प्रजा के पालन रूप श्रेष्ठ धर्म से विमुख, भोगों से संलग्न, प्रजा की हिंसा करने वाले और जीव हिंसा में प्रसन्न रहने वाले हैं ।२१।

वैश्याः संस्कारहीनास्ते स्वधर्मत्यागशीलिनः ।
कुपथाः स्वाजनरतास्तुलाकर्मकुवृत्तयः ॥२२
गुरुदेवद्विजातीनां भक्तिहीनाः कुबुद्धयः ।
अभोजितद्विजाः प्रायः कृपणा बद्धपुष्टयः ॥२३
कामिनीजारभावेषु सुरता मलिनाशयाः ।
लोभमोहविचेतसकाः पूर्तादिषु वृषोज्झिताः ॥२४
तद्वच्छूद्राश्च ये केचिद्ब्राह्मणाचारतत्पराः ।
उज्ज्वलाकृतयो मूढ़ाः स्वधर्मत्यागशीलिनः ॥२५
कर्तारस्तपसां भूयो द्विजतेजोपहारकाः ।
शिश्वल्पमृत्युकाराश्च मंत्रोच्चारपरायणाः ॥२६
शालग्रामशिलादीनां पूजका होमतत्पराः ।
प्रतिकूलविचाराश्च कुटिला द्विजदूषका ॥२७

धनवंत कुकर्माणो विद्यावन्तो विवादिनः ।
आख्यानोपासनाधर्मवक्तारो धर्मलोपकाः ।।२८

वैश्य संस्कारहीन, धर्मविमुख, कुमार्ग से द्रव्योपार्जन में तत्पर, तुला कर्म और कुत्सित आजीविका वाले गुरु ब्राह्मण की भक्ति से विमुख ब्राह्मणों को भोजन न कराने वाले बुद्धिहीन, लोभी एव कंजूस हैं ।२२-२३। नारियों से जार भाव से रमण करने वाले, अस्वच्छ मन वाले, लोभ-मोह से भ्रमित पूर्तादि में धर्म का त्याग कर देने वाले हैं, ।२४। शूद्र भी अपने धर्म से विमुख हैं · ब्राह्मणों जैसा आचार करने वाले उज्ज्वल आकृति वाले, धर्म से हीन एवं मूढ़ हैं ।२५। तप में संलग्न, ब्राह्मणों का तेज हरने की इच्छा में रत, बालक की अल्प मृत्यु में मारणादि मन्त्रों में चतुर हैं ।२६। शालिग्राम आदि की पूजा करके हवन करने वाले, प्रतिकूल विचार वाले कुटिल तथा ब्राह्मण द्वेषी हैं ।२७। धनवान, विद्यमान, कूकर्मी, विवादी, कथा. धर्म तथा उपासना का उपदेश करने वाले और धर्म को नष्ट करने वाले हैं ।२८।

सुभूपाकृतयो दंभाः सुदातारो महामदाः ।
विप्रादीन्सेवकान्मत्वा मन्यमाना निज प्रभुम् ।।२९
स्वधर्मरहिता मढ़ा संकरः क्रूरबुद्धयः ।
महाभिमानिनो नित्यं चतुर्वर्णविलोपकाः ।।३०
सुकुलीनन्निजानमत्वा चतुवर्णैविवर्तनाः ।
सर्ववर्णभ्रष्टकरा मूढ़ाः असत्कर्मकारिणः ।।३१
स्त्रिश्च प्रायसो भ्रष्टा भर्त्रवत्रानकारिकाः ।
श्वसुरद्रोहकारिण्यो निर्भया मलिनासनाः ।।३२
कुहावभावनिरताः कुशीला स्मरविह्वलाः ।
जारसंगरता नित्यं स्वस्वाभिविमुखास्तथा ।।३३
तनया मातृपित्रौश्च भक्तिहीनादुराशयाः ।
अविद्यापाठका नित्यं रोगग्रसितदेहकाः ।।३४
एतेषां नष्टबुद्धीनां स्वधर्मत्यागशीलिनाम् ।
परलोकेऽपीह लोके कथं सूत गतिर्भवेत् ।।३५

राजाओं जैसी चेष्टा वाले, पाखण्डी, दाता के समान आडम्बर करने वाले, महामद से युक्त, ब्राह्मणों को सेवक और स्वयं को स्वामी समझने वाले हैं ।।२६।। अपने धर्म से शून्य, मूढ़, वर्णसंकर क्रूर बुद्धि वाले, घोर अभिमानी तथा चारों वर्णों का लोप करने में निरत हैं ।।३०।। अपने को कुलीन समझते हुए चारों वर्णों की वृत्ति वाले, सभी वर्णों को भ्रष्ट करने वाले हैं ।।३१।। स्त्रियाँ भी अपने स्वामी आज्ञा पालन करने से विमुख तथा सास-श्वसुर से द्रोह करने वाली हैं । ३२।। बुरे हाव-भाव वाली, कुत्सत स्वभाव वाली, कामविह्वला, जाट के सङ्ग को चाहने वाली तथा पति-द्रोहणी हैं ।।३३।। कन्या भी माता-पिता को न चाहने वाली, बुरे आशय वाली, अविद्या से घिरी हुई तथा रोग से ग्रसित देह वाली हैं ।।३४।। हे सूतजी ! इन बुद्धिहीन, धर्म से विमुख मनुष्यों को इहलोक और परलोक में कौन सी गति प्राप्त होगी ? ।।३५।।

इति चिंताकुलं चित्तं जायते सततं हि न ।
परोपकारसदृशो नास्ति धर्मोऽपर खलु ।।३६
लघूपायेन येनैषां भवेत्सद्योऽघनाशनम् ।
सर्वं सिद्धान्तवित्वं हि कृपया तद्वदाधुन ।।३७
इत्याकर्ण्य वचस्तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ।
मनसा शंकरं स्मृत्वा सूतः प्रोवाच तान्मुनीन् ।।३८

हमारा मन इन चिन्ताओं से सदा व्याकुल रहता है । परोपकार के समान विश्व में अन्य कोई धर्म नहीं है ।३६। जिन न्यून उपाय से इनका पाप शीघ्र ही मिट जाय उसे कृपा कर कहिये । आप सम्पूर्ण सिद्धान्तों के जानने वाले हैं ।।३७।। व्यासजी ने कहा कि ज्ञानमय आत्मा वाले उन मुनियों के ऐसे वचन सुनकर सूतजी ने मन में शिवजी का स्मरण किया और उन मुनियों से कहने लगे ।।३८।।

।। शिवपुराण द्वारा कलि-कल्मष विध्वंस वर्णन ।।

साधु पृष्टं साधवो वस्त्रैलोक्यहितकारकम् ।
गुरुं स्मृत्वा भवत्स्नेहाद्वक्ष्ये तच्छृणुतादरात् ।।१

वेदांतसारसर्वस्व पुराणं चैवमुत्तमम् ।
सर्वाघोद्धारकर पगत्र परमार्थदम ॥२
कलिकल्मषविध्वंसि यस्मिञ्छिवयश: परम् ।
विजृम्भते सदा विप्राश्चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥३
तस्याध्ययनमात्रण पुराणस्य द्विजोत्तमा ।
सर्वोत्तमस्य शैवस्य ते यास्यति सुसद्गतिम् ॥४
तावद्विजृम्भते पापं ब्रह्महत्यापुर सरम् ।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति जगत्यहो ॥५
तावत्कलिमहोत्पाता: संचरिष्यंति निर्भयो: ।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति जगत्यहो ॥६
तावत्सर्वाणि शास्त्राणि विवदते परस्परम् ।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यहि जगत्यहो ॥७

सूतजी ने कहा—हे महात्माओं ! आपने उत्तम प्रश्न किया है। इसके द्वारा विश्व का कल्याण होगा। मैं गुरुदेव का स्मरण कर स्नेहपूर्वक कहता हूं तुम आदर सहित श्रवण करो ॥१॥ वेदान्त का सार रूप शिव पुराण सभी पापों को नष्ट करने वाला तथा परलोक में परमार्थ को प्रदान करने वाला है ॥२॥ उसमें शिवजी का यश है, वह कलियुग के पापों को दूर कर देता है। हे विप्रो ! यह पुराण सदा चारों वर्ग का फल प्राप्त कराने वाला है ॥ ॥ हे विप्रगण ! उस पुराण का अध्ययन करने मात्र से ही प्राणी को सर्वोत्तम सद्गति की प्राप्ति हो जाती है।४। ब्रह्म-हत्या आदि के पाप भी तभी तक विद्यमान रहते हैं, जब तक संसार में आश्चर्य रूप शिव पुराण का प्राकट्य नहीं होता ॥५॥ कलियुग के घोर उत्पात भी तभी तक टिक पाते हैं, जब तक कि ससार में शिव पुराण का प्राकट्य नहीं हो जाता ॥६॥ सभी शस्त्र तब तक परस्पर में विवाद करते प्रतीत होते हैं, जब तक कि विश्व में शिव पुराण का उदय नहीं हो जाता ॥७॥

तावत्स्वरूप दुर्बोधं शिवस्य महतामपि ।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति जगत्यहो ॥८

तावद्यमभटाः क्रूराः संचरिष्यंति निर्भयाः ।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति जगत्यहो ॥९
तावत्सर्वाणि तीर्थानि विवदंते महीतले ।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति जगत्यहो ॥१०
तावत्सर्वे मुदा मंत्रा विवदते महीतले ।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति महीतले ॥११
तावत्सर्वाणि क्षेत्राणि विवदंते महीतले ।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति महीतले ॥१२
तावत्सर्वाणि पीठानि विवदते महीतले ।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति महीतले ॥१३
तावत्सर्वाणि दानानि विवदंते महीतले ।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति महीतले ॥१४

शिवजी का स्वरूप महान् पुरुषों को भी तभी तक दुर्बोध दिखाई देता है, जब तक संसार में शिवपुराण का प्राकट्य नहीं हो जाता ।७। यमराज के क्रूर दूत भी तभी तक निर्भय विचरण करते हैं, जब तक कि यह आश्चर्य स्वरूप सूर्य रूपी पुराण उदय नहीं हो जाता ।९। सम्पूण तीर्थ भी पृथिवी में तभी तक विवाद करते हैं, जब तक कि विश्व में शिव पुराण प्रकट नहीं हो जाता ।१०। सब मन्त्र तभी तक इस लोक में विवादास्पद प्रतीत होते हैं जब तक कि शिव पुराण का उदय नहीं हो जाता ।११। सब क्षेत्र पृथिवी में तभी तक विवादग्रस्त रहते हैं, जब तक विश्व में शिव पुराण का प्राकट्य नहीं हो जाता ।१२। सम्पूर्ण पीठ भी पृथिवी पर तभी विवाद करते हैं जब तक कि संसार में शिव पुराण का उदय नहीं हो जाता ।१३। सब दान तभी तक पृथिवी पर विवादास्पद हैं जब तक कि शिवपुराण का प्राकट्य संसार में नहीं हो जाता ।१४।

तावत्सर्वे च ते देवा विवदंते महीतले ।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति महीतले ॥१५
तावत्सर्वे च सिद्धान्ता विवदंते महीतले ।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति महीतले ॥१६

अस्य शैवपुराणस्य कीर्तनश्रवणाद्द्विजाः ।
फलं वक्तुं न शक्नोमि कार्त्स्न्येन मुनिसत्तमाः ॥१७
तथापि तस्य माहात्म्यं वक्ष्ये किंचित्तु वोऽनघाः ।
चित्तमाधाय शृणुत व्यासेनोक्तं पुरा मन ॥१८
एतच्छिवपुराणं हि श्लोकं श्लोकार्द्धमेव च ।
यः पठेत्भक्तिसंयुक्तः स पापान्मुच्यतेक्षणात ॥१९
एतच्छिवपुराणं हि यः प्रत्यहमतन्द्रितः ।
यथाशक्ति पठेद्भक्त्या स जीवन्मुक्त उच्यते ॥२०
एतच्छिवपुराणं हि यो भक्त्यार्चयते सदा ।
दिने दिनेऽश्वमेधस्य फल प्राप्नोत्यसंशयम् ॥२१

पृथिवी में यह देवता भी तभी तक विवाद करते हैं, जब तक कि शिव पुराण का उदय इस विश्व में नहीं हो जाता ।१५। सभी सिद्धान्त पृथिवी में तभी तक विवादास्पद रहते हैं, जब तक कि शिव पुराण का उदय इस विश्व में नहीं हो जाता ।१६। हे विप्रगण ! इस शिव पुराण के सुनने या कीर्तन करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उसका पूरी तरह वर्णन मैं नहीं कर सकता ।१७। हे पापरहित ! मैं तुम्हारे प्रति उसका कुछ माहात्म्य कहता हूँ। इसे मुझे व्यासजी ने कहा था, तुम उसे सावधान चित्त से श्रवण करो ।१८। इस शिव पुराण का एक या आधा श्लोक भी जो भक्ति पूर्वक श्रवण करते हैं, वे उसी समय पापोंसे मुक्त हो जाते हैं ।१९। इस पुराण का आलस्य त्याग कर प्रतिदिन भक्ति सहित यथाशक्ति पाठ करते हैं, वे जीवनमुक्त हो जाते हैं ।२०। भक्ति सहित जो पुरुष इस शिवपुराण का पूजन करते हैं, वे दिनों अश्वमेध के फल को प्राप्त करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है ।२१।

एतच्छिवपुराणं यः साधारणपदेच्छया ।
अन्यतः शृणुयात्सोऽपि मत्तो मुच्येत पातकात् ॥२२
एतच्छिवपुराणं यो नमस्कुर्याद्दूरतः ।
सर्वदेवार्चनफलं प्राप्नोति न संशयः ॥२३
एतच्छिवपुराणं हि चतुर्दश्यामुपोषितः ।

शिवभक्तसभायां यो व्याकरोति स उत्तमः ॥२४
उपोषितश्चतुर्दश्यां रात्रौ जागरणान्वितः ।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि तस्त पुण्यं वदाम्यहम् ॥२५
कुरुक्षेत्रादिनिखिलपुण्यतीर्थेष्वनेकशः ।
आत्मतुल्यधनं सूर्यग्रहणे सर्वतोमुखे ॥२६
विप्रेभ्यो व्यामुख्येभ्यो दत्वा यत्फलमश्नुते ।
तत्फलं सभवेत्तस्य सत्यं सत्यं न संशयः ॥२७
एतच्छिवपुराणं हि गायते योऽप्तहर्निशम् ।
आज्ञां तस्य प्रतीक्षेरन्देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥२८

जो इस शिवपुराण के साधारण पद के अक्षरों को भी दूर से सुनता है, वह मत्त व्यक्ति भी पापाप-दोष से मुक्त हो जाता है ॥२२॥ इस शिव पुराण के समीप जाकर जो इसे नमस्कार करते हैं, देवार्चन के फल को प्राप्त होते हैं, इसमें संशय नहीं है ॥२३॥ चतुर्दशी के दिन व्रत रखकर सभा में जो पुरुष शिवपुराण का व्याख्यान करते हैं, वे पुरुष अत्यन्त श्रेष्ठ हैं ॥२४॥ चतुर्दशी के दिन व्रत पूर्वक रात्रि में जो पुरुष इसे पढ़ते या सुनते है उनके पुण्य का फल मैं तुम्हारे प्रति कहता हूँ ॥२५॥ कुरुक्षेत्र आदि अनेक पुण्य स्थानों से जाकर सूर्य ग्रहण के अवसर पर अपने समान धन कथा-वाचक ब्राह्मणों को देने पर जो फल प्राप्त होता है, वह फल कथा-श्रवण करने वालों को अवश्य प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं है ।२६-२७। जो मनुष्य इस पुराण को दिन रात्रि निरन्तर पढ़ते हैं उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा इन्द्रादि देवतागण भी सदा करते रहते हैं ॥२८॥

एतच्छिवपुराणं यः पठञ्छृण्वन्हि नित्यशः ।
यद्यत्करोति सत्कर्म तत्कोटिगुणितं भवेत् ॥२९
समाहितः पठेद्यस्तु तत्र श्रीरुद्रसंहिताम् ।
स ब्रह्मघ्नोऽपि पूतात्मा त्रिभिरेवादनैर्भवेत् ॥३०
ता रुद्रसंहितां यस्तु भैरवप्रतिमांतिके ।
त्रिः पठेत्प्रत्यहं मौनी स कामानखिलांल्लभेत् ॥३१

तां रुद्रसंहिता यस्तु संपठेद्वटविल्वयोः।
प्रदशिक्षां प्रकुर्वाणो ब्रह्महत्या निवर्तते ।।३२
कैलाससंहिता तत्र ततोऽपि परमा स्मृता।
ब्रह्मस्वरूपिणो साक्षात्प्रणवार्थप्रकाशिका ।।३३
कैलाशसहितायास्तु माहात्म्य वेत्ति शङ्करः।
कृत्स्नं तदर्द्ध व्यासश्च तदर्द्धं वेद्म्यहं द्विजाः ।।३४
तत्र किंचित्प्रवक्ष्यामि कृत्स्नं वक्तुं न शक्यते।
यज्ज्ञात्वा तत्क्षणाल्लोकश्चित्तशुद्धिमवाप्नुयात् ।।३५

जो पुरुष इस शिवपुराण का नित्य पाठ एवं श्रवण करते हैं, उनके द्वारा किये सत्कर्मों का फल कोटि गुणा होता है।२९। इसको रुद्र संहिता को सावधानी पूर्वक पढ़ने वाला मनुष्य तीन दिन के भीतर ही ब्रह्महत्या से छुटकारा प्राप्त कर लेता है।३०। जो पुरुष इसकी रुद्र संहिता का भैरव जी की मूर्ति के समक्ष प्रतिदिन तीन बार मौन होकर पाठ करता है, वह अपने मनोरथों को प्राप्त होता है।३१। वट और विल्व की प्रदक्षिणा करके जो कोई इसकी रुद्र संहिता का पाठ करता है, उसको ब्रह्महत्या से छुटकारा मिल जाता है।३२। इसके अतिरिक्त कैलाश संहिता का इससे भी अधिक माहात्म्य है, वह सहिता साक्षात् ब्रह्म-स्वरूपिणी है तथा ओंकार के अर्थ को प्रकाशित करने वाली है।३३। हे विप्रो! कैलाश संहिता का सम्पूर्ण माहात्म्य स्वय शिवजी जानते हैं। उनसे आधा व्यासजी और व्यासजी से आधा मैं जानता हूँ।३४। मैं सम्पूर्ण तो नहीं कह सकता, उसमें से कुछ अंश कहता हूँ, उसका ज्ञान होने से तत्काल ही चित्त शुद्ध हो जाता है।३५।

न नाशयति यत्पापं सा रौद्री संहिता द्विजाः।
तन्न पश्याम्यहं लोके मार्गमाणोऽपि सर्वदा ।।३६
शिवेनोपनिषत्सिधुमन्थनोत्पादितां मुदा।
कुमारायार्पितां तां वै सुधां पीत्वामरो भवेत् ।।३७
ब्रह्महत्यादिपापानां निष्कृतिं कर्तुमुद्यतः।
माससमात्रं संहितां तां पठित्वा मुच्यते ततः ।।३८

दुष्प्रतिग्रहदुर्भोज्यदुरालापादिसंभवम् ।
पापं सकृत्कीर्तनेन संहिता सा विनाशयेत् ॥३९
शिवालये बिल्ववने संहितां तां पठेत्तु यः ।
स यत्फलमवाप्नोति तद्वाचोऽपि न गोचरे ॥४०
संहितां तां पठन्भक्त्या यः श्राद्धे भोजयेद्द्विजान् ।
तस्य ये पितरः सर्वे यांति शंभोः परं पदम् ॥४१
चतुर्दश्यां निराहारो यः पठेत्संहितां च ताम् ।
बिल्वमूले शिवः साक्षात्स देवैश्च प्रपूज्यते ॥४२

हे मुनिवरो ! जिस पाप नाश रुद्र संहिता नहीं करती, वह तो ढूँढ़ने के लिए भी उपलब्ध नहीं हो पाता ।३६। वह संहिता शिवजी ने उपनिषद् रूपी समुद्र से मथ कर निकाली और कुमार को देदी । उसके ज्ञानामृत का पान करने पर जीव अमृत्व को प्राप्त होता है ।७। ब्रह्महत्या आदि पापों से छुटकारा प्राप्त करने के लिए एक महिने तक पाठ करने वाला प्राणी अपने पापों से छूट जाता है ।३८। दुष्प्रतिग्रह, दुर्भोजन और दुर्वचन आदि के द्वारा उत्पन्न पाप इस संहिता के पाठ करने के फलस्वरूप नाश को प्राप्त होता है ।३९। किसी शिवालय में अथवा बिल्व पत्र के मन में इस संहिता का भक्तिभाव पूर्वक पाठ करने वाले को अकथनीय फल की प्राप्ति होती है ।४०। इस संहिता का भक्ति का पूर्वक पाठ करते हुए श्राद्ध में ब्राह्मणों को भोजन कराने वाले के सभी पितर शिवजी के लोक को गमन करते हैं ।४१। चतुर्दशी के दिन निराहार व्रतपूर्वक जो इस संहिता का पाठ करता है तथा जो बिल्व-मूल में पढ़ता है, वह साक्षात् शिव से पूजित होता है । देवता भी उसे पूजते हैं ।४२।

अप्यन्याः संहितास्तत्र सर्वकामफलप्रदाः ।
उभे विशिष्टे विज्ञेये लीलाविज्ञानपूरिते ॥४३
तदिदं शैवमाख्यातं पुराणं वेदसंहितम् ।
निर्मितं तच्छिवेनैव प्रथमं ब्रह्मसंमितम् ॥४४
ससप्तसंहितं दिव्यं पुराणं शिवसंज्ञकम् ।

वरीवर्ति ब्रह्मतुल्यं सर्वोपरि गतिप्रदम् ॥४५
एतच्छिवपुराणं हि सप्तसंहितमादरात् ।
परिपूर्णं पठेद्यस्तु स जीवन्मुक्त उच्यते ॥४६
शैवंपुराणममलंशिवकीर्तितंतद्व्यासेनशैवप्रवणेनचसंगृतम् ।
संक्षेपतःसकलजीवगुणोपकारंतापत्रयघ्नमतुलशिवदंसतांहि।४७
विकैतवो धर्म इह प्रगीतो वेदान्तविज्ञानमयः प्रधानः ।
अमत्सरांतर्बु धवेद्यवस्तुसत्सक्लृप्तमन्त्रौघविवर्गयुक्तम् ॥४८
शैवंपुराणतिलकखलुसत्पुराणवेदांतवेदविलसत्परवस्तुगीतम् ।
यौवेंपठेच्चश्रृणुयात्परमादरेणशंभुप्रितःसहिलभेत्परमांगतिंवै।।

और दूसरी संहिता भी सम्पूर्ण कामनाओं और फलों के देने वाली हैं । इन दोनों में ही शिवजी की श्रेष्ठ लीला वर्णन है, इसलिए दोनों ही श्रेष्ठ हैं ।४३। इस शिवपुराण को वेदसम्मत माना है । इस पुराण का निर्माण पूर्व काल में भगवान् शिवजी ने स्वयं किया था ।४४। यह दिव्य शिव पुराण सात संहिताओं से युक्त सर्वोपरि प्रतिष्ठित है । यह सर्वश्रेष्ठ गति देने वाला और ब्रह्मा के समान है ।४५। इस शिव पुराण की सातों संहिताओं को पूर्ण रूप से आदर पूर्वक पढ़ने वाला मनुष्य की सातों संहिताओं को पूर्ण रूप से आदर पूर्वक पढ़ने वाला मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है ।४६। इस निर्मल पुराण को शिवजी ने कथन किया है तथा शिव-धर्मों में कुशल व्यास जी ने इसका संग्रह किया तथा सम्पूर्ण जीवों के हितार्थ संक्षिप्त किया । यह तीनों पापों को नष्ट करने वाला तथा सत्पुरुषों के लिए मंगलदायक है ।४७। इसमें छलरहित धर्म का वर्णन है । यह वेदान्त के विज्ञान से युक्त एवं प्रमुख है । यह मत्सरता से रहित विज्ञों के लिए ज्ञातव्य है । सत्पुरुषों के कृत्यों से सम्पन्न तथा त्रिवर्ग का दाता है ।४८। यह शिवपुराण सत्पुराणों में तिलक के समान है । इसमें वेद वेदान्त में वर्णित सद् वस्तु का वर्णन किया गया है । इन पुराण को आदर पूर्वक और श्रवण करने वाला मनुष्य शिवजी का प्रीतिपात्र होकर परम गति को प्राप्त होता है ।४९।

॥ साध्य-साधन विचार ॥

इत्याकर्ण्य वचः सौतं प्रौचस्ते परमर्षयः ।

वेदान्तसारसर्वस्वं पुराण श्रावयाद्भुतम् ।।१
इति श्रुत्वा मुनीनां स वचनं सुप्रहर्षितः ।
संस्मरञ्छंकर सूतः प्रोवाच मुनिसत्तमान् ।।२
शृण्वंतु ऋषयः सर्वे स्मृत्वा शिवमनामयम् ।
पुराणप्रवणं शैवं पुराणं वेदसारजम् ।।३
यत्र गीतं त्रिकं प्रीत्या भक्तिज्ञानविरागकम् ।।४
वेदांतवेद्य तद्वस्तु विशेषेण प्रवर्णितम् ।५।
शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे पुराणं वेदसारजम् ।
पुराकालेन महता कल्पेऽतीते पुनः पुनः ।।६
अस्मिन्नुपस्थिते कल्पे प्रवृत्ते सृष्टिकर्मणि ।
मुनीनां षडकुलोनानां ब्रुवतामितरेततम् ।।७

व्यास जी ने कहा—सूतजी के इस प्रकार वचन सुनकर वे परम ऋषि वोले कि आप वेदान्त सार का सर्वस्वरूप पुराण हमारे प्रति कहिये ।१। उन श्रेष्ठ मुनियों की बात सुनकर सूतजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और भगवान् शंकर का स्मरण करते हुए बोले ।२। सूतजी ने कहा—मुनियों ! मैं आनामय भगवान् शिव को प्रणाम कर वेदों के सार रूप एवं पुराणों में सर्वश्रेष्ठ शिवपुराण तुम्हारे प्रति कहता हूँ, ध्यान देकर सुनो ।३। उस शिवपुराण में प्रीति सहित भक्ति ज्ञान और वैराग्य का वर्णन किया गया है और विशेष करके वेदान्त के द्वारा ज्ञातव्य सद् वस्तु का वर्णन इसमें हुआ है ।४-५। सूतजी ने कहा हे ऋषियों ! वेद के सार रूप शिवपुराण का श्रवण करो। प्राचीन काल में इस महान् कल्प के बार-बार व्यतीत होने पर श्वेत वाराह कल्प के होन तथा सृष्टि की उत्पत्ति होने के विषय में त्रिवेणी के समीप षटकुल में उत्पन्न हुए मुनियों में पारस्परिक विवाद चला ।६-७।

इदं परमिदं नेति विवादः सुमहानभूत् ।
तेऽभिजग्मुर्विधातार ब्रह्माणं प्रष्टुमव्ययम् ।।८
वाग्भिर्विनयगर्भाभिः सर्वैः प्रांजलयाऽब्रूवन् ।
त्वं हि सर्व जगद्धाता सर्वं कारणकारणम् ।।९

कः पुमान्सर्वतत्वेभ्यः पुराणः परत परः ।
यतो वाचो निवर्तंते अप्राप्य मनसा सह ॥१०
यस्मात्सर्वमिदं ब्रह्माविष्णु रुदेंद्रपूर्वकम् ।
सहभूतेंद्रियै सर्वं प्रथमं संप्रसूयते ॥११
एष देवो महादेवः सर्वज्ञो जगदीश्वरः ।
अयं तु परया भक्त्या दृश्यते नान्यथा क्वचित ॥१२
रुद्रो हरिर्हरश्चैव तथाऽन्ये च सुरेश्वराः ।
भक्त्या परमया तस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः ॥१३
बहुनाऽत्र किमुक्तेन शिवे भक्त्या विमुच्यते ।
प्रसादाद्देवताभक्तिः प्रसादो भक्तिसंभवः ।
यथेहांकुरतो बीजं बीजतो वा यथांकुरः ॥१४

यही पर' है 'ब्रह्म' है, ऐसा नहीं है,इत्यादि प्रकार से अत्यन्त विवाद होने लगा, तब वे सब अविनाशी ब्रह्माजी से यह प्रश्न लेकर उनके समीप गये ।८। वहाँ जाकर सबने विनययुक्त वाणी में हाथ जोड़कर कहा कि तुम ही सम्पूर्ण विश्व के विधाता तथा कारण के भी कारण हो ।९। वह कौन है जो पुराण-पुरुष तथा प्रकृति और महत्व से उत्पन्न हुए तत्वों से परे हैं, जिसके निकट मन वाणी की पहुँच नहीं है । इस पर ब्रह्माजी ने कहा कि जिसके प्राप्त न होने पर मन सहित वाणी भी निवृत्त हो जाती है । ।१०। जिससे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र भूतेन्द्रियों सहित प्रथम प्रकट होते हैं, वही देव महादेव सम्पूर्ण विश्व के अधिपति और सर्वज्ञ हैं । यह शिवजी परम-भक्ति से दिखाई देते हैं, अन्यथा नहीं ।११-१२। रुद्र, हरि, हर तथा अन्य देवेश्वर भी उनके दर्शन की परम भक्तिपूर्वक ही इच्छा करते हैं । उन शिवजी की भक्ति करने वाला प्राणी मोक्ष को प्राप्त हो जाता है । प्रसाद से भक्ति और भक्ति से प्रसाद की प्राप्ति होती है । उसी प्रकार जैसे अंकुर से बीज उत्पन्न होता और बीज से अंकुर की उत्पत्ति होती है ।१३-१४।

तस्मादीशप्रासादार्थं यूयं गत्वा भुवं द्विजाः ।
दीर्घसत्रं समाकुध्वं यूयं वर्षसहस्रकम् ॥१५

अमुष्यैवाध्वरेशस्य शिवस्यैव प्रसादतः ।
वेदोक्तविद्यासारं तु जायते साध्यसाधनम् ॥१६
अथ किं परमं साध्यं किं वा तत्साधनं परम् ।
साधकः कीदृशस्तत्र तदिदं ब्रूहि तत्वतः ॥१७
साध्यं शिवपदप्राप्तिः साधनं तस्य सेवनम् ।
साधकस्तत्प्रसादाद्यो नित्यादिफलनिस्पृहः ॥१८
कर्म कृत्वा तु वेदोक्तं तदर्पितमहाफलम् ।
परमेशपदप्राप्तिः सालोक्यादिक्रमात्ततः ॥१९
तत्तद्भक्त्यनुसारेण सर्वेषां परमं फलम् ।
तत्साधनं बहुविधं साक्षादीशेन बोधितम् ॥२०
संक्षिप्य तत्र वः सारं साधनं प्रब्रवीम्यहम् ।
श्रोत्रेणं श्रवणं तस्य वचसा कीर्तन तथा ॥ १

हे ब्राह्मणो ! इस कारण शिवजी को प्रसन्न करने के लिए हजार वर्ष वाले दीर्घ सत्र यज्ञ का अनुष्ठान करो ।५। इसी यज्ञ में भगवान शंकर की प्रसन्नता प्राप्त होने पर वेदोक्त विद्या का सार एवं साध्य के साधक का ज्ञान हो जायगा ।१६। मुनियों ने कहा परम साध्य क्या है ? उसका साधन क्या है ? साधक के लक्षण क्या हैं ? इन प्रश्नों का तत्व रूप से समाधान कीजिए ।१७। ब्रह्माजी ने कहा–शिवपद की प्राप्ति साध्य और उनकी सेवा ही साधन है । नित्य नैमित्तिक कर्मों के फल रूप स्वर्ण आदि की स्पृहा न करने वाला उनके प्रसाद से ही साधक हो पाता है ।१८। वेदोक्तो कर्म का फल परमपद की प्राप्ति के लिए शिवजी को समर्पित किया जाता है, उसके क्रम से हीं सायुज्य आदि पद की प्राप्ति होती है । ।१९। भक्ति के अनुसार ही सबको परम फल की प्राप्ति होती है । उनके अनेक प्रकार के साधन स्वयं भगवान् शंकर ने कहे हैं ।२०। उनको संक्षिप्त रूप में सारमात्र ही तुम्हारे प्रति कहता हूँ । उनका गुण कानों द्वारा श्रवण करे तथा वाणी से कीर्तन करे ।२१।

मनसा मननं तस्य महासाधनमुच्यते ।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च मंतव्यश्च महेश्वरः ॥२२

इति श्रुतिः प्रमाणं नः साधने नामुना परम् ।
साध्यं व्रजत सर्वार्थसाधनैकपरायणाः ॥२३
प्रत्यक्षं चक्षुषा दृष्ट्वा तत्र लोकः प्रवर्तते ।
अप्रत्यक्षं हि सर्वत्र ज्ञात्वा श्रोत्रेण चेष्टते ॥२४
तस्माच्छ्रवणमेवादौ श्रुत्वा गुरुमुखाद्बुधः ।
ततः संसाधयेदन्यत्कीर्तनं मननं सुधीः ॥२५
क्रमान्मननपर्यंते साधनेऽस्मिन्सुसाधिते ।
शिवयोगी भवेत्तेन सालोक्यादिक्रमाच्छनैः ॥२६
सर्वांगव्याधयः पश्चात्सर्वानंदश्च लीयते ।
अभ्यासात्क्लेशमेतद्वै पश्चादाद्यंतमंगलम् ॥२७

मन द्वारा मनन करे, यही महान् साधन कहा गया है। भगवान् शंकर के गुणों का श्रवण, कीर्तन और मनन करे ।२२। श्रुति ही इसमें प्रमाण है। इससे परे अन्य कोई साधन नहीं है। इसलिए सभी प्रकार से शिव के परायण होकर साध्य की प्राप्ति करे ।२३। वेद में आत्मा को देखने, सुनने तथा प्रथम देखकर फिर सुनने को कहा है, तो पहले देखे बिना किस प्रकार सुने ? इसका समाधान है कि नेत्रों द्वारा देखकर ही पदार्थ में प्रवृत्ति होती है परन्तु, उसके सर्वत्र अप्रत्यक्ष होने से श्रवण से ही आरम्भ करना उचित है ।२४। बुद्धिमान मनुष्य पहले गुरु-मुख से उसको सुन, फिर कीर्तन और मनन रूप साधन करे ।२५। क्रमपूर्वक जब मनन का साधन हो जायगा तब शिव-योग की प्राप्ति होगी और शिवजी की सालोक्य आदि मुक्ति की प्राप्ति होगी ।२६। पहिले सम्पूर्ण अङ्ग की व्याधि और फिर सर्व आनन्द भी ब्रह्म में लीन हो जाता है। फिर आदि और अन्त में मंगल होता है ।२७।

॥ शिवरात्रि व्रत का महाफल ॥

तत्रांतरे तौ च नाथं प्रणम्य विधिमाधवौ ।
बद्धांजलिपुटौ तूष्णीं तस्थतुर्दक्षवामगौ ॥१

तत्र संस्थाप्य तौ देवं सकुटुम्बं बरासने ।
पूजहामासतुः पूज्यं पुण्यैः पुरुषवस्तुभिः ॥२
तुष्टौऽहमद्य यां वत्सौ पूजयाऽस्मिन्महादिने ॥३
दिनमेतत्ततः पुण्यं भविष्यति महत्तरम् ।
शिवरात्रिरिति ख्याता तिथरेषा मम प्रिया ॥४
एतत्कालें तुः यः कुर्यात्पूजां मल्लिगवेरयोः ।
कुर्यात्स जगतः कृत्यं स्थितिसर्गादिमाकंपुमान् ॥५
शिवरात्रावहोरात्रं निराहारो जितेन्द्रियः ।
अर्चयेद्वा यथान्यायं यथाबलवंचकः ॥६
यत्फलं मन पूजायां वषमेक निरन्तरम् ।
यत्फलं लभते सद्यः शिवरात्रौ मदर्चनात् ॥७

इस समय ब्रह्मा, विष्णु ने शंकर को प्रणाम कर, हाथ जोड़कर तथा मौन रहते हुए उनके दाँये और बाँये भाग में स्थित हो, उन दोनों ने सकुटुम्ब देव को श्रेष्ठ आसन पर प्रतिष्ठित कराकर पुरुषों के योग्य पवित्र पदार्थ से उनकी पूजा की ।१-२। भक्ति की वृद्धि करने वाले शिवजी ने विनम्र ब्रह्मा और विष्णु से प्रसन्न होकर कहा । वे बोले — हे वत्स ! आज मैं इस महा दिवस में तुम्हारे पूजन और उत्सव से प्रसन्न हुआ हूँ । यह दिवस महा पवित्र होगा और यह तिथि हमारी परम प्रिय शिवरात्रि होगी ।३-४। इस समय जो हमारे लिंग का पूजन करेगा, वह पुरुष जगत में स्थित सर्गादि कर्मों को करने में समर्थ होगा ।५। जो पुरुष जितेन्द्रिय रहकर एक दिन रात्रि निराहार रहकर यथाशक्ति प्रपंच त्याग कर पूजा करेगा ।६। निरन्तर एक वर्ष तक मेरा पूजन करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, वह फल केवल एक शिव रात्रि के पूजन से मिल जायगा ।७।

मद्धर्मवृद्धिकालोऽयं चन्द्रकाल इवाबुधेः ।
प्रतिष्ठाद्युत्सवो यत्र मामको मंगलायनः ॥८
यत्पुनः स्तंभरूपेण स्वाविरासमहं पुरा ।
स कालो मार्गशीर्षे तु स्यादार्द्राऋक्षमर्भकौ ॥९

आर्द्रायां मार्गशीर्षे तु यः पश्येन्मामुमासखम् ।
मद्बेरमपि वा लिंग स गुहादपि मे प्रियः ॥१०
अलं दर्शनमात्रेण फलं तस्मिन्दिने शुभे ।
अभ्यर्चनं चेदधिक फलं वाचामगोचरम् ॥११
रणरंगतलेऽमुष्मिन्यदहं लिंगवर्ष्मणा ।
जृम्भितो लिंगवत्तस्माल्लिंगस्थानमिदं भवेत् ॥१२

जैसे चन्द्रमा को देखकर समुद्र बढ़ता है, वैसे ही मेरी वृद्धि का यही समय है। जहाँ-जहाँ मङ्गल को देने वाले प्रतिष्ठा आदि उत्सव होते हैं।८। और जो स्तम्भ रूप से मेरा आविर्भाव हुआ है, यह समय मार्ग शीर्ष में आर्द्रा नक्षत्र से युक्त है ।९। मार्गशीर्ष में आर्द्रा नक्षत्र में पार्वती सहित जो मेरा लिंग का दर्शन करता है,वह पुरुष मुझे कार्तिकेय से भी अधिक प्रिय है ।१०। उस श्रेष्ठ दिवस में दर्शन से ही अधिक फल की प्राप्ति होती है। उस दिन पूजन करने से होने वाले महाफल का वर्णन वाणी से नहीं हो सकता ।११। इस रणभूमि में मैं लिंग-देह सहित प्रकट हुआ हुआ हूँ, इसलिये यह लिंग स्थान कहा जायगा ।१२।

रथोत्सवादिकल्याण जनावसं तु सर्वतः ।
अत्र दत्तं हुतं जप्तं सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥१३
मत्क्षेत्रादपि सर्वस्मात्क्षेत्रमेतन्महत्तरम् ।
अत्र संस्मृतिमात्रेण मुक्तिर्भवति देहिनाम् ॥१४
तस्मान्महत्तरमिदं क्षेत्रमत्यतशोभनम् ।
सर्वकल्याणसंपूर्णं सर्वमुक्तिकर शुभम् ॥१५
अर्चयित्वाऽव मामेव लिंगे लिंगिनमीश्वरम् ।
सालोक्यं चैव सामीप्यं सारूप्यं सार्ष्टिरेवं च ॥१६
सायुज्यमिति पंचैते क्रियादीनां फलं मतम् ।
सर्वेऽपि यूयं सकलं प्राप्स्यथाशु मनोरथम् ॥१७

यह स्थान रथ यात्रा के उत्सव और निवास स्थान योग्य होगा। यहाँ किया हुआ जप, तप, हवन साधारण से कोटि से गुणा होगा ।१३। यह

स्थान हमारे सब क्षेत्रों में श्रेष्ठ होगा। यहाँ मेरा स्मरण करने मात्र से प्राणी को मोक्ष की प्राप्ति होगी ।१४। इसलिये यह क्षेत्र महान् और अत्यन्त शोभा युक्त होगा। सब प्रकार के कल्याण देने वाला तथा मोक्ष प्रदायक होगा ।१५। यहाँ जो व्यक्ति लिंग में मुझ लिंगेश्वर की भावना से पूजन करेंगे, उन्हें सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सृष्टि तथा सायुज्य यह पाँचों प्रकार की मुक्ति का फल प्राप्त हो जायगा और यहाँ पूजन करने से तुम्हें भी सब मनोरथों की प्राप्ति होगी ।१६-१७।

॥ ब्रह्मा-विष्णु को पंचकृत्य तथा ओंकार का उपदेश ॥

सर्गादिपंचकृत्यस्यलक्षण ब्रूहि नौ प्रभो ।
मत्कृत्यबोधन गुह्य कृपया प्रब्रवीमि वाम् ॥१
सृष्टिः स्थितिश्च संहारस्तिरोभावोऽत्यनुग्रहः ।
पंचैव मे जगत्कृत्यं नित्यसिद्धमजाच्युतौ ॥२
सर्गः ससासंरभस्तत्प्रतिष्ठा स्थितिर्मता ।
संहारो मर्दन तस्य तिरोभावस्तुदुत्क्रमः ॥३
तन्मोक्षोऽनुग्रहस्तन्मे कृत्यमेवं हि पंचकम् ।
कृत्यमेतद्वहत्यन्तस्तूष्णीं गोपुरविंवकत् ॥४
सर्गादि यच्चतुः कृत्य संसारपरिजृक्ष्भणनम् ।
पंचमं मुक्तिहेतुर्वै नित्यं मयि च सुस्थिरम् ॥५
तदिद पञ्चभूतेषु दृश्यते मामकैर्जनं ।
सृष्टिर्भूमौ स्थितिस्तोये सहारः पावके तथा ॥६
तिरोभावोऽनिले तद्वदनुग्रह इहांवरे ।
सृज्यते धरया सर्वमद्भिः सर्व प्रवर्द्धते ॥७

ब्रह्मा और विष्णु ने कहा हे प्रभो ! सर्गादि पंच-कृत्य का लक्षण हम से कहें। शिवजी ने कहा–हमारा कृत्य और ज्ञान दुर्लभ है तो भी कृपा करके उसे मैं तुम्हारे प्रति कहता हूँ ।१। ब्रह्मा-विष्णो ! सृष्टि स्थिति, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह यह पाँच जगत के कृत्य हैं इन्हें नित्य सिद्ध समझो ।२। सृष्टि के आरम्भ को सर्ग कहते हैं, उसकी वृद्धि को स्थिति, नष्ट होने को संहार तथा उद्धार को उत्क्रम कहा है ।३। उस

संसार से मोक्ष होने को अनुग्रह कहा है । यही मेरे पंचकृत्य हैं । पृथिवी आदि मेरे इस कृत्य को गोपुर के बिम्ब के समान मौन हुए धारण करते हैं ।४। यह सर्गादि चार कृत्य सृष्टि कर्म में प्रविष्ट होते हैं तथा पाँचवाँ जो कृत्य मुक्ति का कारण है, वह सदा मुझ में ही स्थित रहता ।५। इस-लिये यह पंच भूतों में मेरे जनों को दिखाई देता है । पृथिवी में सृष्टि जल, में स्थिति तथा अग्नि में संहार है ।६। वायु में तिरोभाव और आकाश में अनुग्रह है । सबकी उत्पत्ति पृथिवी से होती है और जल से वृद्धि होती है ।७।

अद्यंते तेजसा सर्वं वायुना चापनीयते ।
व्योम्नाऽनुह्यते सर्वं ज्ञेयमेव हि सूरिभिः ॥८
पञ्चकृत्य मिदं वोढुं ममास्ति मुखपञ्चकम् ।
चतुर्दिक्षु चतुर्वक्त्र तन्मध्ये पञ्चमं मुखम् ॥९
युवाभ्यां तपसा लब्धमेतत्कृत्यद्वय सुतौ ।
सृष्टिस्थित्यभिधं भाग्य मत्तः प्रीतादतिप्रियम् ॥१०
तथा रुद्रमहेशाभ्यामन्यत्कृत्यद्वय परम् ।
अनुग्रहाख्यं केनापि लब्धुं नैव हि शक्यते ॥११
तत्सर्वं पौर्विकं कर्म युवाभ्यां कालविस्मृतम् ।
न तद्रुद्र महेशाभ्यां विस्मृतं कर्म तादृशम् ॥१२
रूपे वेषे च कृत्ये च वाहने चासने तथा ।
आयुधादौ च मत्सम्यमस्माभिस्तत्कृते कृतम् ॥१३
मद्ध्यानवि रहाद्वत्सौ मौढ्यं वामेवमागतम् ।
मज्ज्ञाने सति नैवं स्यान्मान रूपं महेशवत् ॥१४

तेज से सब नाश को प्राप्त होते और वायु में लीन हो जाते हैं तथा आकाश के द्वारा सब पर अनुग्रह होता है, इस प्रकार जानना चाहिए ।८। इन्हीं पंच कृत्यों को धारण करने के मेरे पंच मुख हैं । चारों दिशाओं में चार मुख हैं, तथा पाँचवाँ मुख मध्य में है ।९। हे पुत्रो ! आपने यह कृत्य तप के द्वारा प्राप्त किया है । इसी की सृष्टि की उत्पत्ति और पालन कहा गया है । यह कृत्य मैंने प्रसन्न होकर तुम्हें

प्रदान किया है ।१०। इसी प्रकार अन्य दो कृत्य मैंने रुद्र और महेश को दिये हैं । परन्तु अनुग्रह कृत्य को प्राप्त करने का सामर्थ्य किसी में नहीं है ।११। पूर्व के कर्मों को तुमने समय पाकर भूला दिया है, परन्तु रुद्र और महेश उन कर्मों का विस्मरण नहीं कर सके हैं ।१२। स्वरूप, वेश, कृत्य, आसन, वाहन और आयुध आदि में हम सब की नितान्त साम्यता थी ।१३। हे सौम्य ! मेरे ज्ञान से तुम विमुख हो गये थे इसलिये अज्ञान छा गया । मेरा ज्ञान रहने पर ऐसा नहीं होगा । इससे ज्ञान और रूप महेश के समान हो जाता है ।१४।

तस्मान्मज्ज्ञानसिद्धयर्थं मन्त्रमोंकारनामकम् ।
इतः परं प्रजपतं मामकं मानभंजनम् ॥१५
उपादिशं निज मन्त्रमोंकारमुरुमङ्गलम् ।
ॐकारो मन्मुज्जज्ञे प्रथमं मत्प्रबोधकः ॥१६
वाचकोऽयमहं वाच्यो मन्त्रोऽय हि मदात्मकः ।
तदनुस्मरणं नित्यं ममानुस्मरणं भवेत् ॥१७
अकार उत्तरात्पूर्वं मुकारः पश्चिमाननात् ।
मकारोदक्षिणमुखाद्विन्दुः प्राङ् मुखतस्तथा ॥१८
नादो मध्यमुखादेवं पञ्चधाऽसौ विजृम्भितः ।
एकीभूतः पुनस्तद्वदोमित्येकाक्षरोऽभवत् ॥१९
नामरूपात्मकं सर्ववेद भूतकुलद्वयम् ।
व्यप्तमेतेन मन्त्रेण शिवशाक्तयोश्च बोधकः ॥२०
अस्मात्पञ्चाक्षरं जज्ञे बोधकं समलस्य तत् ।
अकारादिक्रमेणैव नकारादि यथाक्रमम् ॥२१
अस्मात्पञ्चाक्षराज्जाता मातृकाः पञ्चभेदतः ।
तस्माच्छिरश्चतुर्वक्त्रात्त्रिपाद्गायत्रिरेव हि ॥२२

इसलिये तुम उस ज्ञान की प्राप्ति के लिये 'ओंकार' नामक मन्त्र को जपो । क्योंकि यह मन्त्र अभिमान को नष्ट करने में समर्थ है ।१५। यह निज मन्त्र उपदेश किया है । यह ओंकार' मेरे ही मुख से उत्पन्न होने के कारण मेरे रूप का बोधक और महा मङ्गलकारी है ।१६। यह वाचक

है मैं वाच्य हूं। यह मंत्र मेरी ही आत्मा है इसके स्मरण करने से मेरा ही स्मरण होता है।१७। उत्तर दिशा वाले मुख से 'अकार' पश्चिम वाले मुख से 'उकार' दक्षिण के मुख से 'मकार' और पूर्व के मुख से बिन्दु की उत्पत्ति हुई।१८। मध्य मुख से नाद उत्पन्न हुआ। इस प्रकार पाँच प्रकार से निकलता हुआ यह सब एक होकर 'ओंकार' रूप एकाक्षर बन गया।१९। यह सब नाम रूप वाला वेदभूत तथा स्त्री पुरुष भेद से भौतिक शरीर,दो भेद वाला है,इसी मंत्र से व्याप्त तथा शिवभक्ति का बोध करने वाला है।२०। इस 'ओंकार' से ही पूर्ण विश्व के बाधक प्रणव की उत्पत्ति हुई। आकारादि क्रम से अकार से नकार, उकार से मकार, मकार से 'शि' बिन्दु से 'वा' और नाद से 'य' की उत्पति हुई है।२१। इसी पंचाक्षर से पाँच भेद द्वारा मातृका,आकार से लृकार तक हुई, उससे शिरोमएवं चार मुखों से त्रिपदा गायत्री प्रकट हुई।२२।

॥ शिव लिंगपूजनदान वर्णन ॥

कथं लिंग प्रतिष्टाप्यं कथं वा तस्य लक्षणम्।
कथं वा तत्समभ्यर्च्यं देशे काले च केन हि ॥१
युष्मदर्थं प्रवक्ष्यामि बुद्धयतामवधानतः।
अनुकूले शुभे काले पुण्ये तीर्थे तटे तथा ॥२
यथेष्टं लिंगमारोप्यं यत्र स्यान्नित्यमर्चनम्।
पार्थिवेन तथाप्येनं तैजसेन यथारुचि ॥३
कल्पलक्षणसंयुक्तं लिंग पूजाफलं लभेत्।
सर्वलक्षणसंयुक्तं सद्यः पूजाफलप्रदम् ॥४
चरे विशिष्यते सूक्ष्मं स्थावरे स्थलमेव हि।
सलक्षणं सपीठ च स्थापयेच्छिवनिर्मितम् ॥५
मंडल चतुरस्रं वा त्रिकोणमथवा तथा।
खट्वागवन्मध्यसूक्ष्मं लिंगपीठ महाफलम् ॥६
प्रथमं मृच्छिलादिभ्यो लिंगं लोहादिभिः कृतम्।
येन लिंगं तेन पीठं स्थावरे हि विशिष्यते ॥७

ऋषियों ने पूछा—लिंग की प्रतिष्ठा किस प्रकार करें, उसका लक्षण क्या है ? किस देश काल में उसका किस प्रकार से पूजन करना चाहिए ।१। सूतजी ने कहा—यह सब तुम्हें बताता हूँ । तुम सावधान होकर श्रवण करो । सुन्दर समय हो, पुण्य तीर्थ अथवा तट हो ।२। जहाँ नित्य पूजन हो सके ऐसे स्थान में पूजन करना चाहिए । पार्थिव द्रव्य, जल युक्त अथवा किसी धातु से लिंग निर्मित करावे ।३। शैव शास्त्रों में वर्णित विधानानुसार विधि से लिंग—पूजन का फल प्राप्त करे । क्योंकि सब लक्षणों के सामान्य होने से पूजन फलदायक है ।४। चल मूर्ति छोटी बनानी चाहिए, अचल मूर्ति स्थूल बनावें, फिर सब लक्षण और सिंहासन सहित शिवजी की प्रतिष्ठापना करे ।५। चर का मन्डल अथवा त्रिकोण बनावे और षट्वांग के समान बीच में सूक्ष्म लिंग की चौकी रखे । यह महाफल के देने वाली है ।६। पहिले लिंग मिट्टी, शिला या लौह आदि से बनावे । जिस धातु का लिंग हो, उसी का पीठ होना चाहिए ।७।

लिंगं पीठं चरे त्वकलिंगं बाणकृत विना ।
लिंग प्रमाणं कर्तृणां द्वादशांगुलमुत्तमम् ।।८
न्यूनं चेत्फलमल्प स्वादधिक नैवं दुष्यते ।
कर्तु रेकांगुलन्यूनं चरेऽपि च तथैव हि ।।९
आदौ विमान शिल्पेन कार्यं देवगणयुतम् ।
तत्र गर्भगृहे रम्मे दृढ़े दर्पणसंनिभे ।।१०
संपूज्य लिंगं सद्याद्यैः पंचस्थाने यथाक्रमम् ।
अग्नौ च हुत्वा बहुधा हविषा सकुल च माम् ।।११
अभ्यर्च्य गुरुमाचायधर्थैं कामैश्च बांधवम् ।
दद्यादैश्वर्यमर्थिभ्यो जडमप्यजड तथा ।।१२
स्थावरं जंगमं जीवं सर्वं संतोष्यं यत्नतः ।
सुवर्णपूरिते श्वभ्रं नवरत्नैश्च पूरिते ।।१३
सद्यादिं ब्रह्म चोच्चार्यध्यात्वा देवं पर शुभम् ।
उदीर्य च महामन्त्रमोंकारं नाद घोषितम् ।।१४

केवल बाण लिंग को छोड़, लिंग पीठ एकत्र ही बनावे तथा लिंग का

परिमाण द्वादश अंगुल का रखे ।८। कम रहेगा तो फल भी थोड़ा होगा। अधिक रहे तो भी कोई दोष नहीं । ग्यारह अंगुल रहे तो भी बाहर के ही समान है ।६। पहिले शिल्प विद्या के द्वारा देवताओं के गण सहित करावे और भीतर के दृढ़ तथा दर्पण के समान प्रकाशित सुन्दर स्थान रखे ।१०। फिर सद्योजातादि मंत्रों द्वारा लिंग-पूजन करे और पूर्वादि दिशाओं के बीच में पूजन कर अग्नि में अनेक प्रकार की आहुति दे ।११। मेरा पूजन परिवार सहित करके गुरु और आचार्य का पूजन करे। अर्थ तथा काम से बन्धुजनों का सत्कार कर गृह, बगीचा तथा गौ का दान करे ।१२। फिर यत्न पूर्वक स्थावर जंगम सब प्राणियों को सन्तुष्ट कर स्वर्ण और नवरत्न से पूरे हुए उस गर्त में सद्योजातादि पाँच तन्त्रों का उच्चारण करे और परम सुभग देव का ध्यान कर ओंकार नाद से शोधन कर महामन्त्रों का उच्चारण करे ।१३-१४।

लिंग तत्र प्रतिष्ठान्य लिंगं पीठेन योजयेत् ।
लिंगं सपीठं निक्षिप्य नित्यलेपेन बंधयेत् ।।१५
एवं वेरं च संस्थाप्यं तत्रैव परमं शुभम् ।
पञ्चाक्षरेण वेरं तु उत्सवार्थं बहिस्तथा ।।१६
वेरं गुरुभ्योगृह्णीयात्साधुभिः पूजित तु वा ।
एवं लिंगे च वेरे च पूजा शिवपदप्रदा ।।१७
पुनश्च द्विविधि प्रोक्तं स्थावरं जंगमं तथा ।
स्थावरं लिंगमित्याहुस्तरुगुल्मादिक तथा ।।१८
जंगमं लिंगमित्याहुः कृमिकीटादिक तथा ।
स्थावरस्य च शुश्रूषा जंगमस्य च तर्पणम् ।१९
तत्तत्सुखानुरागेण शिव पूजां विदुर्बुधाः ।
पीठमं वामयं सर्वं शिवलिंग च चिन्मयम् ।।२०
यथा देवीसुमामंके धृत्वा तिष्ठति शंकरः ।
तथा लिंगमिदं पीठं धृत्वा तिष्ठति संततम् ।।२१

फिर उसमें लिंग की स्थापना करे तथा लिंग और पीठ को जोड़कर दृढ़ जोड़ने वाले द्रव्यों को लगा दें । इसी प्रकार वहाँ वेर लिंग की भी

स्थापना करे। पंचाक्षर मन्त्र के द्वारा उत्सवादि के समय वेर को बाहर निकाले।१५-१६। वेर लिंग को किसी महात्मा या साधु से ग्रहण करे अथवा गुरु से ले। इस प्रकार लिंग और वेर में शिवजी का पूजन शिव पद का देने वाला है।१७। स्थावर जंगम के भेद से इनके दो प्रकार हैं—तरु या गुल्म आदि के लिंग को स्थावर कहते हैं और कृमि कीटादि को जंगम लिंग कहा गया है। स्थावर की सुश्रूषा जलादि सेंचन और तर्पण जल और अन्न आदि से सन्तुष्ट करना कहा है।१८-१९। विभिन्न सुख के अनुसार पंडितों ने शिव पूजा विधि कही हैं। पीठ प्रकृतिमयी तथा शिव लिंग ज्ञान स्वरूप माना गया है।२०। जैसे भगवान् शिव पार्वती जी को अंक में धारण किये रहते हैं, वैसे ही लिंग भी इस पीठ को धारण किये रहता है।२१।

एवं स्थाप्य महालिंगं पूजयेदुपचारकैः।
नित्यपूजा यथाशक्ति ध्वजादिकरणं तथा ॥२२
इति संस्थापयेल्लिगं साक्षाच्छिवपदप्रदम्।
अथवा चरलिंगे तु षोडशैरुपचारकैः ॥२३
पूजयेच्च यथान्याय क्रमाच्छिवपदप्रदम्।
आवाहनं चासनं च अर्घ्यं पाद्यं तथैव च ॥२४
तदंगाचमनं चैव स्नानमभ्यंगपूर्वकम्।
वस्त्रं गन्ध तथा पुष्पं धूपदीपनिवेदनम् ॥२५
नीराजनं च तांबूलं नमस्कारो विसर्जनम्।
अथवाऽर्घ्यादिकं कृत्वा नैवेद्यांतं तथाविधि ॥२६
अथाभिषेकं नैवेद्यं नमस्कारं च तर्पणम्।
यथाशक्ति सदा कुर्यात्क्रमाच्छिवपदप्रदम् ॥२७
अथवा मानुषे लिंगेऽप्यार्षे दैवे स्वयंभुवि।
स्थापितेऽपूर्वके लिंगे सोपचारं यथा तथा ॥२८
पूजोपकरणे दत्ते यत्किंचित्फलमश्नुते।
प्रदक्षिणनमस्कारैः क्रमाच्छिवपदप्रदम् ॥२९

इस प्रकार लिंग को स्थापित कर उपचार पूर्वक पूजन करे। यथा शक्ति नित्य पूजन और ध्वजा आदि का उत्सव करना चाहिये।२२। शिव पद को प्राप्त कराने वाले लिंग का नित्य पूजन करे तथा चरलिंग को षोड़श उपचार द्वारा पूजे।२३। यथा विधि पूजन करने से शिवजी का पद प्राप्त होता है। अवाहन, आसन, अर्घ्य, पाद्य, अङ्ग, आचमन, तैल का अभ्यग युक्त वस्त्र, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप सहित अर्पण करे।२४-२५। नारीजन, तम्बूल भेंट कर नमस्कार, विसर्जन अथवा नैवेद्य के अन्त तक विधिवत् अर्घ्यादि देकर नैवेद्य, नमस्कार तर्पण आदि करे तो क्रम पूर्वक शिव पद की प्राप्ति होती है।२६-२७। मनुष्यों या ऋषियों द्वारा स्थापित किये अथवा स्वय प्रादुर्भूत हुए या नव स्थापित लिंग में उपचार एवं पूजन सामग्री निवेदन करने से जो कुछ फल प्राप्त होता है, वह यहाँ प्रदक्षिणा और नमस्कार करने से ही शिव पद प्राप्त हो जाता है।२८–२९।

लिंगदर्शनमात्रं वा नियमेन शिवप्रदम्।
मृत्पिष्टगोशकृत्पुष्पैः करवीरेण वा फलः।।३०
गुडेन नवनी तेन भस्मनाऽन्नैर्यथारुचि।
लिंगं यत्नेन कृत्वाऽन्ते यजेत्तदनुसारतः।३१
अंगुष्टादावपि तथा पूजामिच्छान्ति केचन।
लिंगकर्मणि सर्वत्र निषेधोऽस्ति न कर्हिचित।।३२
सर्वत्र फलदाता दि प्रयासानुगुणं शिवः।
अथवालिंगदानं वा लिंगमूल्यमथापि वा।।३३
श्रद्धया शिवभक्ताय दत्तं शिवपदप्रदम्।
अथवा प्रणवं निन्यं जतेद्दशसहस्रकम्।।३४
सध्ययोश्च सहस्रं वा ज्ञेयं शिवपदप्रदम्।
जपकाले मकारांतं मना शुद्धिकरं भवेत्।।३५

नियम पूर्वक शिवजी का दर्शन करने से भी शिवजी का लोक मिलता है। पिसी हुई मिट्टी में गोबर मिला कर या कन्नेर के पुष्प अथवा अनेक प्रकार के फल, गुड़ मक्खन भस्म, अन्न अथवा रुचि के अनु-

सार लिंग को यत्नपूर्वक बनाकर उसी के अनुसार भजन करना चाहिये ।३०-३१। इस प्रकार कोई अंगुष्ठ में ही शिवजी का पूजन करते हैं लिंग का पूजन जहाँ चाहे वहाँ करें, इसका कहीं निषेध नहीं है ।३२। भगवान् शिवजी श्रम के अनुसार ही सर्वत्र फल प्रदान करते हैं अथवा लिंग-दान या लिंग का मूल्य शिव के भक्त को श्रद्धा पूर्वक देने से भी महा फल प्राप्त होता है। शिव के पद की प्राप्ति होती है। अथवा नित्य प्रति 'ओंकार' का दस हजार बार जप करे ।३३-३४। अथवा दोनों सन्ध्याओं में हजार बार जप करने से शिवपद प्राप्त होता है। जप के समय में मकारान्त् अर्थात् ॐ ही मन को शुद्ध कर देता है ।३५।

समाधौ मानसं प्रोक्तमुपांशु सार्वकालिकम् ।
समान प्रवण चेदं बिन्दुनादयुत विदुः ॥३६
अथ पंचाक्षर नित्य जपेदयुतमादरात् ।
सध्ययोश्च सहस्रं वाज्ञेय शिवपदप्रदम् ॥३७
प्रणवेनादिसंयुक्त ब्राह्मणानां विशिष्यते ।
दीक्षायुक्तं गुरोर्ग्राह्यं मंन्मं ह्यय धलाप्तते ॥३८
कुम्भस्नानं मंत्रदीक्षा मातृकान्यासमेव च ।
ब्राह्मणः सत्यपूतात्मा गुरुर्ज्ञानी विशिष्यते ॥३९
द्विजानां च नमः पूर्वमन्येषां च नमोऽन्तकम् ।
स्त्रीणां च क्वचिदिच्छंति नमोतं च यथाविधि ॥४०
विप्रस्त्रोणां नमः पूर्वमिदमिच्छति केचन ।
पंचकोटिजपं कृत्वा सदाशिवसमो भवेद् ॥४१
एक द्वित्रिचतुः कोटया ब्रह्मादीनां व्रजेत् ।
जपेदक्षरलक्ष बा अक्षराणां पृथक्पृथक् ॥४२

समाधि में उपांसु अर्थात् मानसिक जप सर्वकाल में करे तथा बिन्दुनाद युक्त प्रणव सभी कार्यों में एक ही है ॥ ३६ ॥ अथवा पंचार मन्त्र नित्य दस हजार बार जप करे। दोनों सन्ध्याओं में हजार-हजार बार जपे तो शिवपद प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ पंचाक्षरी मन्त्र में ब्राह्मण को ॐ लगाना चाहिये। फल की प्राप्ति के हेतु गुरु से

दीक्षा लेते हुए मन्त्र ग्रहण करना चाहिये ॥३८॥ घट स्नान, मन्त्र दीक्षा, मातृका-न्यास तथा सत्य भाषण करने वाला आत्मज्ञानी गुरु ही योग्य समझना चाहिये ॥३९॥ ब्राह्मण नमः' को पहिले लगावें तथा अन्य वर्ण 'नमः' को पीछे लगावें तथा स्त्रियों के लिये अन्त में 'नमः' लगाने का विधान है ॥४०॥ किसी के मत में ब्राह्मणों की स्त्रियों को भी प्रथम ही उच्चारण करना चाहिये। ॐ 'नमः शिवाय' इस पंचाक्षर का पाँच कोटि जप करने से शिवजी के समान हो जाता है ॥४१॥ एक करोड़ जप से ब्रह्मा दो करोड़ से विष्णु, तीन से रुद्र और चार करोड़ जप करने से महेश को प्राप्त होता है। अथवा मन्त्राक्षरों में से प्रत्येक अक्षर का एक-एक लाख जप करना चाहिये ॥४२॥

अथवाऽक्षरलक्षं व ज्ञेयं शिवपदप्रदम् ।
सहस्रं तु संहस्राणां सहस्रेण दिनेन हि ॥४३
जपेन्मंत्रादिष्टंसिद्धिर्नित्यं ब्राह्मणभोजनात् ।
अष्टोत्तरसहस्रं वै गायत्रीं प्रातरेव हि ॥४४
ब्राह्मणस्तु जतेन्नित्यं क्रमाच्छिवपदप्रदम् ।
वेदमंत्राश्चन्सूक्तानि जपेन्नियमास्थितः ॥४५
एकं दशार्णमंत्र च शतोनं च तदूर्ध्वकम् ।
अयुतं च सहस्रं च शतमेकं विना भवेत् ॥४६
वेदपारायण चैव ज्ञेयं शिवपदप्रदम् ।
अन्यान्बहुतरान्मंत्राञ्जपेदक्षरलक्षतः ॥४७
एकाक्षरांस्थिता मंत्राश्चपेदक्षरकाटितः ।
ततः पर जपेच्चैव सहस्रं भक्तिपूर्व कम् ॥४८
एवं कुर्यद्यथाशक्ति क्रमाच्छिवपदं लभेत् ।
नित्य रुचिकरं त्वेकं मन्त्रमामरणांतिकम् ॥४९

अथवा मन्त्र के जितने अक्षर हों उतने ही लाख जप करे तो शिव पद की प्राप्ति होती है। अथवा हजार दिन में दस लाख जप करे ।४३। नित्य-प्रति ब्राह्मण भोजन करावे मन्त्र जप करे, इससे इष्ट पूर्ति होगी। एक हजार आठ गायत्री का नित्य प्रातःकाल जप करे ।४४। इस प्रकार

जप करने से ब्राह्मण क्रम से शिवपद को प्राप्त होता है। वेद के मन्त्रों और सूक्तों का नियमपूर्वक जप करना चाहिये ।४५। मन्त्र का दशार्ण जप अर्थात् दस अक्षर का मन्त्र सौ बार या उसमें अधिक हजार, दस हजार के साथ सौ बार जपे ।४६। वेद के पारायण से भी शिवपद मिलता है। अन्य अनेक मन्त्र हैं, जिनको जितने अक्षर हों उतने ही लक्ष जप करना चाहिये।४७। एकाक्षर मन्त्र का एक करोड़ बार करे, फिर भक्ति पूर्वक 'ओंकार' का एक हजार बार जप करना उचित है ।४८। इस प्रकार यथा शक्ति जप करने से शिवपद की प्राप्ति होती है। नित्य प्रति पर्यन्त एक मन्त्र का जप करे।४९।

सहस्रमौमिति जपेत्सर्वाभीष्टं शिवाज्ञया।
पुष्पारामादिकं वापि तथा समार्जनादिकम् ॥५०
शिवाय शिवकार्यार्थे कृत्वा शिवपदं लभेत्।
शिवक्षेत्रे तथा वासं नित्यं कुर्याच्च भक्तितः ।५१
जडानामजडानां च सर्वेषां भुक्तिमुक्तिदम्।
तस्माद्वासं शिवक्षेत्रे कुर्यादामरण बुधः ॥५२
लिंगाद्धस्तशतं पुण्यं क्षेत्रे मानुषके विदुः
सहस्रारत्निमात्रं तु पुण्यं क्षेत्रे तथार्षके ॥५३
दैवलिंगे तथा ज्ञेयं सहस्रारत्निमानतः।
धनुः प्रमाणसाहस्रं क्षेत्रे स्वयंभुवि ॥५४
पुण्यक्षेत्रे स्थिता वापी कूपाद्यं पुष्कराणि च।
शिवगंगेति विज्ञेयं शिवस्त वचनं यथा ॥५५

'ॐ' को हजार बार जपे तो शिवजी की आज्ञा से सभी कामनाओं की प्राप्ति होती है ।५०। शिवजी के निमित्त पुष्प, उद्यान आदि करे तो शिवपद मिलता है। भक्ति पूर्वक नित्य शिव क्षेत्र में भी निवास करे ।५१। इससे जड़, चैतन्य सभी को मोक्ष मिलता है। इसलिए बुद्धिमान मृत्यु पर्यन्त शिव क्षेत्र में ही निवास करे ।५२। मनुष्यों ने जहाँ लिंग

की स्थापना की है, वहाँ सौ हाथ तक पुण्यमय स्थान है और ऋषियों द्वारा स्थापित लिंग स्थान पुण्य क्षेत्र है, वहाँ हजार हाथ तक स्थान पवित्र कहा गया है ।५३। देवताओं द्वारा स्थापित लिंग का प्रादुर्भाव स्वयं हुआ हो, वहाँ चार हजार हाथ तक का स्थान पवित्र स्थल माना गया है । ५४। पुण्य क्षेत्र के कूप बावड़ी सरोवर सभी शिव-गङ्गा के स्वरूप हैं, ऐसा स्वयं भववान् शकार का कथन है ।५५। उस स्थान पर स्नान, दान और जप करने से शिवलोक मिलता है । शिव-क्षेत्र में कर मृत्यु पर्यन्त वहाँ निवास करना चाहिये । ५६ ।

तत्रस्नात्वा तथा दत्वा जपित्वा हि शिवं प्रजेत् ।
शिव क्षेत्रं समाश्रित्य वसेदामरणं तथा ।।५६
द्वाहं दशाहं मास्यं वा सपिंडीकरणं तु वा ।
आब्दिकं वा शिवक्षेत्रे पिथमथापि वा ।।५७
सर्वपापविनिर्मुक्तः सद्य शिवपदं लभेत् ।
अथवा सप्तरात्रं वा वसेद्वा पंचरात्रकम् ।।५८
त्रिनातमेकरात्रं वा क्रमाच्छिवपदं लभेत ।
स्ववर्णानुगुणं लोके स्वाचारात्प्राप्नुते नरः ।५९
वर्णोद्धारेण भक्त्या च तत्फलातिशयं नरः ।
सर्वं कृतं कायनया सद्यः फलमवाप्नुयात् ।।६०
सर्वं कृतमकामेन साक्षाच्छिवपद प्रदम् ।
प्रातर्मध्याह्नसायाह्नमहस्त्रिष्वेकतः क्रमात् ।।६१
प्रातर्विधिकरं ज्ञेयं मध्याह्नं कामकं तथा ।
साहाह्नं शांतिकं ज्ञेयं रात्रावपि तथैव हि ।।६२

द्वाह, दशाह, माशिक कर्म, सपिंडी-कर्म, कर्म, श्राद्ध, सांवत्सरिक कर्म क्षेत्र पिण्ड आदि कर्म शिव क्षेत्र में करे ।५:। उसके सभी पाप नष्ट होकर शिवपद की प्राप्ति होती है । सात रात्रि या पाँच रात्रि तक शिव-क्षेत्र में निवास करना चाहिए ।५७। अथवा तीन रात्रि निवास करना चाहिये या केवल एक रात्रि ही निवास करे तो क्रम से शिव पद प्राप्ति होता है । ब्राह्मणादि सभी वर्ण अपनी वर्ण्ण अनुरूपानुसार सुन्दर आचरण द्वारा उसके फल की अधिकता को पाते हैं ।५९। भक्ति-पूर्वक कर्म करने से महाफल मिलता है इससे उसका वर्णोद्धार होता

तथा अभीष्टपूर्ति शीघ्र ही होती है।६०। सब प्रकार की कामनाओं का त्याग कर पूजन करे तो साक्षात् शिवपद मिलता है। प्रातः मध्याह्न और सायकाल प्रत्येक समय में शिवजी की आराधना करे।६१। प्रातः काल के जप से विधि सम्पादन, मध्याह्न के जप से कामना और सन्ध्या के जप से शान्ति मिलती है तथा रात्रि के जप का फल भी ऐसा ही है।६२।

कालो निशीथो वै प्रोक्ता मध्ययामद्वयं निशि।
शिवपूजा विशेषेण तत्कालेऽभीष्टसिद्धिदा ॥६३
एवं ज्ञात्वा नर कुर्वन्यथोक्तभलभाग्भवेत्।
कलौ युगे विशेषेण फलसिद्धिस्तु कर्मणा ॥६४
उक्तेन केनचिद्वापि ह्याधिकारविभेदतः।
सद्वृत्तिः पापभीरुश्चेत्तत्तत्फलमवाप्नुयात् ॥६५

दो प्रहर रात्रि व्यतीत होने पर अर्ध रात्री होती है, उस समय किया गया शिव-पूजन विशेष फलदायक है। उससे सब सिद्धियाँ प्राप्त होती है।६३। इस प्रकार जानकर जो करे उसे यथोक्त फल की प्राप्ति होती है। विशेष कर कलिकाल से कर्म से ही फल की सिद्धि होती है।६४। वर्णन किये गये किसी अधिकार के भेद से श्रेष्ठ आचरण वाले, और पाप से डरने वाले को उपरोक्त सम्पूर्ण फल की प्राप्ति होती है।६५

॥ सदाचार वर्णन ॥

सदाचारं श्रावयश् येन लोकाञ्जयेद्बुधः।
धर्माधमं मयान्ब्रूहि स्वर्गनारकदांस्तथा ॥१
सदाचारयुतो विद्वान्ब्राह्मणो नाम नामतः।
वेदाचारयुतो विप्रो ह्येतैरेकवान्द्विज ॥२
अल्पाचारोऽल्पवेदश्च क्षत्रियौ राजसेवकः।
किंचिदाचारवान्वैश्यः कृषिवाणिज्यकृत्तथा ॥३
शूद्रब्राह्मण इत्युक्तः स्वयमेव हि कर्षकः।
असूयालुः परद्रोही चंडालद्विज उच्यते ॥४
पृथिवीपालको राजा इतरे क्षत्रिया मताः।

धान्यादिक्रयवान्वैश्य इतरो वणिगुच्यते ॥५
ब्रह्मक्षत्रियवैश्यानां शुश्रूषुः शूद्र उच्यते ।
कर्षको वृषलो ज्ञेय इतरे चैव दस्यवः ॥६
सर्वो ह्युषः प्रांमुखश्च चिन्तयेद्देवपूर्वकान् ।
धर्मानर्थाश्च तत्क्लेशनाय च व्ययमेव च ॥७

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! अब आप हमारे प्रति सदाचार कहें, जिससे प्राणी लोकों को जीतता है । धर्म और अधर्म किन आचरणों से होता है ? कौन से स्वर्ग के देने वाले हैं और कौन से आचरण नरक के ।१। सूतजी ने कहा—सदाचार से युक्त विज्ञ ब्राह्मण वेदाचार वाला होकर आगे कहे हुए एक एक गुणों से द्विज संज्ञक होता है ।२। थोड़ा-सा वेद जानने वाला अल्पचारी राजसेवक ब्राह्मण क्षत्रिय-ब्राह्मण और कृषि वाणिज्य करने वाला वैश्य-ब्राह्मण है ।३। जो स्वयं हल जोते उसे शूद्र-ब्राह्मण समझो । पर द्रोही अथवा पर-निन्दक विप्र को चाण्डाल—ब्राह्मण समझना चाहिये ।४। अब राजा और क्षत्रिय का भेद सुनो । पृथिवी का पालक राजा और अन्य क्षत्रिय हैं । धान्यादि विक्रेता वैश्य और रत्नादि बेचने वाले वणिक हैं ।५। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों वर्णों की सेवा करने वाला शूद्र है । उनमें कृषि कर्म वाले कृषल और अन्य शूद्र दस्यु कहे जाते हैं ।६। सभी वर्णों की उषाकाल में उठकर पूर्व में मुखकर देवताओं का ध्यान करना चाहिए तथा धर्म, अर्थ, उनकी प्राप्ति में क्लेश और व्यय पर विचार करे ।७।

आयुर्द्वेषश्च मरणं पाप भाग्य तथैव च ।
व्याधिः पुष्टिस्तथा शक्तिः प्रातरुत्थानदिवफलम् ॥८
निशात्ययामीषा ज्ञेया यामार्धं सभिरुच्यते ।
तत्काले तु समुत्थाय विण्मूत्रं विमृजेद्द्विजः ॥९
गृहाद्दूरं ततो बाह्यतः प्रावृतस्तथा ।
उदङ्मुखः समाविश्य प्रतिबंधेऽन्यदिङ् मुखः ॥१०
जलाग्निब्राह्मणादीनां देवानां नाभिमुख्यतः ।
लिंगं पिधाय वामेन मुखमन्येन पाणिना ॥११

मलमुत्सृज्य न चोत्थाय न पश्येच्चैव तन्मलम् ।
उद्धृतेन जलेनैव शौचं कुर्याज्जलाद्बहिः ॥१२
अथवा देवपित्रर्षितर्थावदरणं बिना ।
सप्त वा पंच वा तिस्रो गुदं संशोधयेन्मृदा ॥१६
लिंगे कर्कोटमात्रं तु गुदे प्रसतिरिष्यते ।
तत उत्थाय पद्धस्तशौच गण्डूषमष्टकम् ॥१४

पूर्वादि दिशाओं की ओर मुख से उठने का फल कहते हैं । आयु, द्वेष, मृत्यु पाप, शुभ-अशुभ कर्म, व्याधि, पुष्टि, शक्ति यह आठ दिशाओं, की ओर मुख से उठने पर होती है ।८। रात्रि का अन्त उषाकाल है उसमें आधे प्रहर की संधि कही जाती है । ब्राह्मण को इसी समय उठ कर शौचादि कर्म करने चाहिए ।९। घर से दूर चला जाय शिर से कपड़ा लपेट ले और उत्तर की ओर मुख करके बैठे तथा अन्य दिशाओं की ओर न देखे ।१०। जल, अग्नि, ब्राह्मण और देवताओं के सामने की ओर न बैठे । बाँए हाथ से लिंग और दांए हाथ से मुख को ढक ले ।११। तब मल त्याग करे, परन्तु त्याग के पश्चात् मल को न देखे, फिर जल के स्थान से अलग में पात्र के जल से शौच ले ।१२। अथवा देवता, पितर ऋषियों के तीर्थों को छोड़कर पोखर आदि के जल से सात बार, पाँच बार या तीन बार पहिले मिट्टी से मन स्थानों को स्वच्छ करे ॥१३। लिंग की शुद्धता के लिये कर्कोटक के फल के बराबर मिट्टी ले और मल स्थान की शुद्धि के लिये आधी अंजुली मिट्टी ले । फिर हाथ पाँव धोकर आठ बार कुल्ले करे ।१४।

येन केन च पात्रेण काष्ठेन च जलाद्बहिः ।
कार्यं सत्यज्य तर्जनीं दंतधावनमीरितम् ॥१५
जलदेवान्नमस्कृत्य मंत्रेण स्नानमाचरेत् ।
अशक्तः कंठद्घ्नं वा कटिदघ्नगथापि वा ॥१६
आज्ञानुजलमासिच्य मंत्रस्नान समाचरेत् ।
देवादींस्तपपेद्विद्वांस्तत्र तीर्थजलेन च ॥१७
धौतवस्त्रं समादाय पचक च्छेन धारयेत् ।

उत्तरीय च किंचैव धार्यं सर्वेषु कर्मसु ।। ८
आपोहिष्ठेति शिरसि प्रोक्षयेत्पापशांतये ।।१९
यस्येति मन्त्रं पादे तु संधिप्रोक्षण मुच्यते ।२०
पादे मूर्ध्नि हृदि चैन मूह्नि हृत्पाद एव च ।
हृत्पादमूर्ध्नि संप्रोक्ष्य मन्त्रस्नानं विदुर्बुधाः ।।२१

किसी वृक्ष के पत्ते या काष्ठ की डंडी से तजनी अगुली को छोड़कर, जल से बाहर बैठकर दाँतुन करनी चाहिये । ।१५। फिर जल देवताओं को नमस्कार मन्त्रोच्चारण पूर्वक स्तान करे । यदि कठ तक या कमर तक जल में उतर कर स्नान करने की शक्ति न हो ।१६। तो जानु पर्यन्त जल में जाकर मन्त्र सहित स्नान करे । उस तीर्थ जल से विद्वान पुरुष को देवादि का तर्पण करना चाहिये ।१७। फिर धोती लेकर पंच कच्छ अर्थात् दांए-बाँए दो-दा और पीठ में एक इस प्रकार पाँच लपेटा दे तथा सबकर्म में उत्तरीय धारण करे ।८। 'आपोहिष्ठेति' इस मन्त्र से पाप शान्ति के लिये िर पर जल छिड़के तथा इसी मन्त्र के एक-एक चरण से चरण आदि नौ स्थानों में क्रम पूर्वक प्रोक्षण करे । 'यस्येति' यही उसका मन्त्र है इसे ही सन्धि प्रोक्षण कहा गया है ।१९— २०। चरण, शिर, हृदय शिव-हृदय, चरण, हृदय चरण-शिर इस क्रम से प्रोक्षण कर मन्त्र स्नान करना चाहिये ।२१।

ईषत्स्पर्शे च दौः स्वाथ्ये राजराष्ट्राभयेऽपि च ।
अगत्य गतिकाले च मन्त्रस्नान समाचरेत् ।।२२
प्रातः सूर्यानुवाकेन सायमग्न्यनुवाकतः ।
अपः पीत्वा तथा मध्य पुनः प्राक्षणमाचरेत् ।।२३
गायत्र्या जपमन्त्रान्ते त्रिरूर्ध्वं प्राग्विनिक्षिपेत् ।
मन्त्रेण सह चैकं वै मध्येर्घ्यं तु रवेर्द्विजा ।।२४
अथ जाते च सायाह्ने भुवि पश्चिमादिङ्मुख ।
उद्धृत्य दद्यात्प्रातस्तु मध्याह्नेऽगुलिभिस्तथा ।।२५
अगुलीनां च रध्रेण लम्बं पश्येद्दिवाकरम् ।
आत्मप्रदक्षिणं कृत्वा शुद्धाचमनमाचरेत ।।२६

सायं मुहूर्तार्वाक्तु कृता सन्ध्या वृथा भवेत् ।
अकालात्काल इत्युक्यो दिनेऽतीते यथाक्रमम् ॥२७
दिवाऽतीते च गायत्रीं शतं नित्यं क्रमाज्जपेत् ।
आदशाहात्परातीतं गायत्रीं लक्षमभ्यसेत् ॥२८

शरीर रोग ग्रस्त हो राजा तथा राष्ट्र का भय उपस्थित हो या मार्ग-गमन अथवा अपवित्र वस्तु का स्पर्श होने पर मन्त्र स्नान हो करे ।२२। प्रातः काल 'सूर्य्यश्चमान्युश्चेति' इस सूर्य अनुवाक से तथा सन्ध्या काल में 'अग्निश्कमामन्युश्चेति' इस अग्नि अनुवाक् से मध्य में जल पीकर फिर पूर्ववत् मार्जन करना चाहिये ।२३। गायत्री मन्त्र का जाप करके तीन बार ऊपर को जल फेके । मध्याह्न सध्या की विधि—मन्त्र सहित मध्य में सूर्य को अर्घ्य-दान करे ।२४। सन्ध्या होने पर पश्चिम की ओर मुख करके बैठे । प्रातः एवं मध्यान्ह में देव तीर्थ से जल लेकर अँगुलियों से जल दे ।२५। फिर अँगुलियों के छेद से अस्त होते हुए सूर्य के दर्शन करे और अपनी प्रदक्षिणा करले शुद्ध आचमन करे ।२६। सन्ध्या के मुहूर्त से पहले की जाने वाली सन्ध्या व्यर्थ होती है, इसलिये सन्ध्या असमय में न करे । दिन के व्यतीत होने पर सन्ध्या न करने का निम्न प्रायश्चित् कहा गया है ।२७। नित्व के जप से सौ गायत्री का अधिक जप करे । यदि सन्ध्या किये हुये दस दिन व्यतीत हो जावें तो एक लाख गायत्री का जप करे ।२८।

मासातीते तु नित्ये हि तुनश्चोपनयतं चरेत् ।
ईशो गौरी विष्णुर्ब्रह्मा चंद्रश्च वै यमः ॥२९
एवंरूपांश्च वै देवांस्तर्पयेदर्थसिद्धये ।
ब्रह्मार्पण ततः कृत्वा शुद्धाचमनमाचरेत् ॥३०
तीर्थदक्षिणतः शस्ते मठे मन्त्रालये बुधः ।
तत्र देवालयये वापि गृहे वा वा नियतस्थले ॥३१
सर्वान्देवान्नमस्कृत्य स्थिरबुद्धिः स्थिरासनः ।
प्रणवं पूर्वमभ्यस्य गायत्रीमभ्यसेत्ततः ॥३२
जीवब्रह्मैक्यविषयं बुद्‌ध्वा प्रणवमभ्यसेत् ।

त्रैलोक्यसृष्टिकर्तारं स्थितिकर्तारमच्युतम् ॥३३

संहर्तारं तथा रुद्रं स्वप्रकाशमुपास्महे ।

ज्ञानकर्मेन्द्रियाणां च मनोवृत्तीर्धियस्तथा ॥३४

भोगमोक्षप्रदे धर्मे ज्ञाने च प्रेरयेत्सदा ।

इत्थमर्थंधिया ध्यायन्ब्रह्मा प्राप्नोति निश्चयम् ॥३५

यदि एक मास तक सन्ध्या न की तो पुनः उपनयन करे। ईश, गौरी, स्कन्द विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र और यम इन सब देवताओं को एक ही जान कर अर्थ सिद्धि हेतु तृप्ति करे और ब्रह्मार्पण कर शुद्ध आचमन करे।२९-३०। तीर्थ के दक्षिण ओर अथवा मठ में, मन्त्रालय या देवालय में अथवा अपने गृह के नियत स्थान में सब देवताओं को नमस्कार कर स्थिर बुद्धि तथा स्थिर आचमन से पहिले ओंकार और फिर गायत्री का अभ्यास करना चाहिये ।३१-३२। जीव और ब्रह्म की एकता देख ओंकार को जपे, त्रिलोकी के रचियता ब्रह्मा, स्थितिकर्ता नारायण और संहार कर्त्ता रुद्र की हम उपासना करते हैं। ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, मन की वृत्ति और बुद्धि को ।३३-३४। वह परमात्मा भुक्ति मुक्तिदायक धर्म में प्रवृत्ति करे। इस प्रकार अर्थ विधि से ध्यान करने पर अवश्य ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है।३५।

केवलं वा जपेन्नित्यं ब्राह्मणस्य च पूर्तये ।

सहस्रमभ्यसेन्नित्यं प्रातर्ब्राह्मणपुंगवः ॥३६

अन्येषां च यथाशक्ति मध्याह्ने च शतं जपेत् ।

सायं द्विदशकं ज्ञेयं शिखाष्टकसमन्वितम् ॥३७

मूलाधारं समारभ्य द्वादशांशस्थितांस्तथा ।

विद्येशब्रह्मविष्णवीशजीवात्मपरमेश्वरान् ॥३८

ब्रह्मबुद्ध्या तदैक्यं च सोहंभावनया जपेत् ।

तानेव ब्रह्मरंध्रादौ कायाद्बाह्ये च भावयेत् ॥३९

महत्तत्वं समारभ्य शरीरं तु सहस्रकम् ।

एकैकस्माज्जपादेकमतिक्रम्य शनैः शनैः ॥४०

परस्मिन्योजयेज्जीवं जपतत्वमुदाहृतम् ।

शतद्विदकं देहं शिखाष्टकसमन्वितम् ।।४१

मन्त्रणां जप एवं हि जपमादिक्रमाद्विदुः ।

सहस्र ब्रह्मदं विद्याच्छतमद्र पद विदुः ।।४२

अर्थ-ज्ञान के अभाव वाले ब्रह्मणवत्व की पूर्ति के लिये भी श्रेष्ठ ब्राह्मण को नित्य प्रातःकाल उठकर हजार बार जप करना चाहिये ।३६। अन्य वर्ण वाले क्षत्रिय या वैश्य की मध्यान्ह में सौ बार और सन्ध्या काल में एक हजार आठ बार अथवा बीस बार जप करना चाहिये ।३७। मूलाधार चक्र से प्रारम्भ कर ब्रह्मरध्र तक स्थित चक्रों में विद्येश, ब्रह्मा, विष्णु, ईश, जीवात्मा परमेश्वर को ब्रह्म बुद्धि द्वारा एक ही जानकर सोहं भाव से जपे तथा उन्हीं विद्येश आदि का ब्रह्मारंध्र आदि में शरीर से बाहर ध्यान करे ।३८-३९। महत्तत्व से प्रारम्भ करके प्रारब्ध के फल से उत्पन्न सहस्रों शरीरों के समूह की उपलब्धि को एक जप से एक शरीर के क्रम से अतिक्रमण कर धीरे-धीरे जीव को पर ब्रह्म में लगादे यही जप तत्व है । इस जप को दो हजार आठ संख्या तक जपना चाहिये ।४०-४१ । मन्त्रों के जपने का प्रथम क्रम यही कहा गया है हजार बार जपने से ब्रह्म पद की और सौ बार जप करने से इन्द्र पद की प्राप्ति होती है ।४२।

इतरत्वात्मरक्षार्थं ब्रह्मयोनिषु जायते ।

दिवाकरमुपस्थाय नित्यमित्थं समाचरेत् ।।४३

लक्षद्वादशयुक्तस्तु पूर्णब्राह्मण ईरितः ।

गायत्र्या लक्षहीनं तु वेदकार्यं त योजयेत् ।।४४

आसप्ततेस्तु नियमं पश्चात्प्रव्राजनं चरेत् ।

प्रातद्वदिशसाहस्रं प्रव्राजी प्रणवं जपेत् ।।४५

दिने दिने त्वतिक्राँते नित्यमेव क्रमाज्जपेत् ।

मासादौ क्रमशोऽतीते सार्द्धलक्षजपेन हि ।।४६

अत उर्ध्वमतिक्रांते पुनः प्रैषं समाचरेत् ।

एवं कृत्वा दोषशांतिरन्यथा रौरवं व्रजेत् ।।४७

धर्मार्थयोस्ततो यत्नं कुर्यात्कामी न चेतरः ।

ब्राह्मणो मुक्तिकामः स्याऽब्रह्मज्ञानं सदाऽ ।।४८
धर्मादर्थोऽर्थतो भोगो भोगाद्वैराग्यसंभव ।
धर्मार्जितार्थ भोगेन वैराग्य मुपजायते ।।४९

यदि इससे न्यून करे तो ब्राह्मण के यहाँ जन्म होता है । सूर्य के सामने स्थित होकर नित्य प्रति इसी प्रकार करना चाहिए ।२३। बारह लाख जप करने से पूर्ण ब्रह्माणत्व प्राप्त होता है । जिसने एक लाख गायत्री मन्त्र न जपे हों, उसे वेद काय में लगाना उचित नहीं है ।४४। सत्तर वर्ष तक नियम पूर्वक रहे, फिर सन्यास ग्रहण करले । सन्यासी को नित्य प्रातःकाल बारह हजार ओंकार का जप करना चाहिये ।४५। इस प्रकार नियम पूर्वक नित्य प्रति जप करे । जब ऐसा करते हुए एक मास व्यतीत हो जाता है, तब उसका डेढ़ लाख जप पूर्ण होता है ।४६। इससे दोषों की शान्ति होती हैं । इससे अधिक संख्या में जप होने पर सन्यास मन्त्र को ग्रहण करे । अन्यथा रौरव नरक प्राप्त होता है ।४७। सन्यासी से इतर जग धर्म, अर्थ, आदि में यत्नपूर्वक कर्म करें । मुक्ति की इच्छा वाले ब्रह्मण को सदा ब्रह्मज्ञान का अभ्यास करना चाहिये ।४८। धर्म से अर्थ का उपार्जन कामना के निमित्त नहीं होता, उससे तो वैराग्य की उत्पत्ति होती है । इस प्रकार धर्म से उत्पन्न भोग से वैराग्य ही होती है ।४९।

विपरीतार्थ भोगेन राग एवं प्रजायते ।
धर्मश्च द्विविधः प्रोक्तो द्रव्यदेहद्वयेन च ।।५०
द्रव्यमिज्यादिरूपं स्यात्तीर्थ स्नानादि दैहिकम् ।
धर्मेण धनमाप्नोति तपसा दिव्यरूपता ।।५१
निष्कामः शुद्धिमाप्नोति शुद्धचा ज्ञान संशयः ।
कृतादौ हि तपः श्लाघ्यं द्रव्यधर्म कलौ युगे ।।५२
कृते ध्यानाज्ज्ञानसिद्धिस्त्रेतायां तपसा तथा ।
द्वापरे यजनाज्ज्ञान प्रतिमापूजया कलौ ।।५३
यादृशं पुण्य पापं वा तादृशं फलमेव हि ।
द्रव्यदेहांगभेदेन न्यूनवृद्धिक्षयादिकम् ।।५४

विद्याद्दुर्वृत्तितो दुखं सुखं विद्यात्सुवृत्तितः ।
धर्मार्जनमतः कुर्याद्भोगमोक्षप्रसिद्धय ॥५५
सकुटुम्बस्य विप्रस्य चतुर्जनयुतस्य च ।
शतवर्षस्य वृत्ति तु दद्यात्तद्ब्रह्मलोकदम् ॥५६

अर्थ के विपरीत भोग के राग की उत्पत्ति होती है । धर्म दो प्रकार का कहा है–एक देह के द्वारा और दूसरा द्रव्य के द्वारा ।५०। द्रव्य के द्वारा यज्ञादि रूप धर्म और देह के द्वारा तीर्थ स्नानादि रूप धर्म होता है । धन से धर्म और तप से दिव्यता प्राप्त होती है ।५१। निष्काम कर्म से शुद्धि और शुद्धि से ज्ञान मिलता है । सत्युग आदि में तप ही साध्य था, परन्तु कलियुग में तो द्रव्य ही धर्म समझना चाहिये ।५२। सत्युग में ध्यान द्वारा ही ज्ञान की सिद्धि होती थी, त्रेता मे तप क द्वारा और द्वापर में यज्ञ के द्वारा, परन्तु कलियुग मे प्रतिमा पूजन से ही ज्ञान की उपलब्धि हो जाती है ।५३। जैसा पुण्य-पाप रूप कर्म किया जाता है, वैसे ही फल की प्राप्ति होती है । द्रव्य और देह क भेद से पुण्य-पाप की न्यूनता, अधिकता तथा समाप्त होती है ।५४। कुवृत्ति से दुःख और सुवृत्ति से सुख की प्राप्ति होती है, इसीलिये भोग और मोक्ष को प्राप्ति क लिये धर्म से ही अर्चना करनी उचित है ।५५। ब्राह्मण कुल परिवार सहित सौ वर्ष तक श्रेष्ठ आचार का पालन करे, इतनी जीविका उसको देने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है ॥५६

चांद्रायणसहस्रं तु ब्रह्मलोकप्रदं बिदुः ।
सहस्रस्य कुटुम्बस्य प्रतिष्ठां क्षत्रियश्चरेत् ॥५७
इन्द्रलोकप्रदं विद्यादयुतं ब्रह्मलोकदम् ।
यांदेवतां पुरस्कृत्य दानमाचरते नरः ॥५८
तत्तल्लोकमवाप्नोति इति वेदविदो विदुः ।
अर्थहीनः सदा कुर्यात्तपसामर्जनं तथा ॥५९
तीर्थाच्च तपसा प्राप्यं सुखमक्षय्यमश्नुते ।
अर्थार्जनमथो वृक्ष्ये न्यायतः सुसमाहितः ॥६०
कृतात्प्रतिग्रहाच्चैव याजनाच्च विशुद्धतः ।

अद्वैन्यादनतिक्लेशाद्ब्राह्मणो धनमर्जयेत् ।।६१
क्षत्रियो बहुवीर्येण कृषिगोरक्षणाद्विशः ।
न्यायार्जितस्य वित्तस्य दानात्सिद्धि समश्नुते ।।६२
ज्ञानसिद्ध्या मोक्षसिद्धिः सर्वेषां गुर्वनुग्रहात् ।
मोक्षत्स्वरूपसिद्धिः स्यात्परानन्दं समश्नुते ।।६३
सत्संगात्सर्वमेतद्व नराणां जायते द्विजाः ।
धनधान्यादिक सर्वं देयं वै गृहमेधिना ।।६४

हजार चान्द्रायण व्रत करने से भी ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। जो क्षत्रिय सहस्र कुटुम्ब की आजीविका करे उसे इन्द्रलोक की तथा दस सहस्र की आजीविका करे तो ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। मनुष्य जिस जिस देवता के उद्देश्य से दान करता है, उस देवता के लोक को प्राप्त होता है, ऐसा वेदविज्ञों का कथन है। निर्धनों को सदा तप रूपी धन का संचय करना चाहिये ।५७-५९। जो धर्म, तीर्थ और तप के द्वारा प्राप्त होता है, उससे भी अक्षय सुख की प्राप्ति होती है तथा धन को भी न्यायपूर्वक संग्रह करने से सावधान रहे ।६०। यज्ञ, प्रतिग्रह, स्वच्छता अदीनता तथा क्लेश रहित वृत्ति के द्वारा ही ब्राह्मण को धन का संग्रह करना चाहिए ।६१। क्षत्रिय भुज बल से, वैश्य कृषि और वाणिज्य से धन का संग्रह करे। जो दान न्याय से उपार्जित होता है उससे सिद्धि प्राप्ति होती है ।६२। ज्ञान की सिद्धि से मोक्ष की प्राप्त होती है और गुरु की कृपा से मोक्ष होने पर स्वरूप की सिद्धि और उससे परमानन्द की प्राप्ति होती ।३३। हे विप्रो! यह सभी कुछ सत्संग द्वारा प्राप्त हो सकता है। गृहस्थ को धन-धान्य आदि अनेक पदार्थ दान करना कर्त्तव्य है ।६४।

ग्रहीता हि गृहीतस्य दानाद्वै तपसा तथा ।
पापसंशोधनं कुर्यादन्यथा रौरवं व्रजेत् ।।६५
आत्मवित्तं त्रिधा कुर्याद्धर्मवृद्ध्यात्मभोगतः ।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं कर्म कुर्यात्तु धर्मतः ।।६६
वित्तस्य वर्धनं कुर्याद्वृद्ध्यांशेन हि साधकः ।
हितेन मितमेध्येन ...

कृष्यर्जिते दशाँगं हि देयं पापस्य शुद्धये ।
क्षत्रेण कुर्याद्धर्मादि अन्यथा रौरव व्रजेत् ॥६८
अथवा पापबुद्धिः स्यात्क्षय वा सत्मेष्यति ।
वृद्धिवाणिज्यके देय षडश च विचक्षणैः ॥६९

दान ग्रहण करने वाला ग्रहण किये दान से या तप से उसके पाप का मार्जन करे अन्यथा रौरव नरक की प्राप्ति होती है ।६५। अपने धन के तीन भाग करे—एक धर्म के लिये, दूसरा वृद्धि के लिये और तीसरा भोग के लिए । नित्य नैमित्तिक काम्य कर्म धर्म पूर्वक करे ।६६। साधक वृद्धि के अश ब्याज से धन की वृद्धि करे और किसी को पीड़ित न करे, निषिद्ध व्यापार से धन-वृद्धि न करे तथा भोगांश से स्वरूप भोग को भोगे ।६७। कृषि द्वारा उपार्जित धन से दशम अंश को पाप शुद्धि के दान कर दे, शेष द्रव्य से धर्मादि कार्य करे, अन्यथा रौरव नरक मिलता है ।६८। पाप से धन की वृद्धि करने से खेती क्षीण होती है । बुद्धिमान को छठा अंश वाणिज्य की वृद्धि में लगाना चाहिए ।६९

पृष्टं सर्वं सदा देयमात्मशक्त्यनुसारः
जन्मान्तरे ऋणी हि स्याददत्ते पृष्ठवस्तुनि ॥७०
परेषां च तथा दोष न प्रशंसेद्विचक्षणः ।
विद्वेषेण तथा ब्रह्मञ्छ्रु तं दृष्टं च तो वदेत् ॥७१
न वदेत्सर्वजतूनां हृदि रोषकर बुधः ।
संध्ययोरग्निकार्यं च कुर्यादैश्वर्यसिद्धये ॥७२
अशक्तस्त्वेककाले वा सूर्याग्नी च यथाविधि
तडुलं धान्यमाज्यं वा फल कद हविस्तथा ॥७३
स्थालीपाकं तथा कुर्याद्यथालं यथाविधि ॥
प्रधानहोममात्रं वा हव्याभावे सभाचरेत् ॥७४
नित्यसंधानमित्युक्त तमजस्त्र त्रिदुर्बुधा ।
अथवा जपमात्र वा सूर्यवंदनमेव च ॥७५
एवमात्मार्थिनः कुर्युरर्थार्थो च यथाविधि ।
ब्रह्मपज्ञपता नित्य देवपूजारतास्तथा ॥७६

अग्निपूजापरा नित्यं गुरुपूजारतास्तथा।
ब्राह्मणानां तृप्तिकर सर्व स्वर्गस्य भागिनः ॥३७

याचक को अपनी शक्ति के अनुसार दान करना चाहिए। कहकर न देने पर जन्मान्तर में ऋणी होना पड़ता है ।७०। बुद्धिमान मनुष्यों को दूसरे के दोष नहीं कहने चाहिए। विशेष कर सुने हुए अथवा देखे हुए दोषों का कथन भी न करे ।७१। प्राणियों के हृदय में क्रोध उत्पन्न कर देने वाली बात भी कभी न कहे तथा ऐश्वर्य की सिद्धि के लिए दोनों सन्ध्या कालों में अग्निहोत्र करना चाहिए ।७२। यदि दोनों काल न कर सके तो विधिवत् एक समय ही सूर्य अग्नि की उपासना और तर्पण करे तथा चावल, धान्य, घृत, कन्द, हवि आदि की उपासना और तर्पण करे यदि हव्य न हो तो हवन मात्र ही करना चाहिए ।७०-७४। पण्डितों ने नित्य स्थापित अग्नि को अजस्र कहा है अथवा केवल जप करे या सूर्य की वन्दना ही करे ।७५। इस प्रकार आत्म प्राप्ति के इच्छुक, सर्वदा विधि-पूर्वक ब्रह्मयज्ञ में प्रीति करने वाले तथा देवताओं का पूजन करने वाले या प्रेम-पूर्वक नित्यप्रति अग्नि और गुरु की पूजा करने वाले तथा ब्राह्मणों का तृप्त करने वाले सत्पुरुष स्वर्ग को प्राप्त होते हैं ।७६-७७-

अग्नियज्ञादिवर्णन

अग्नियज्ञं देवयज्ञं ब्रह्मयज्ञं तथैव च।
गुरुपूजां ब्रह्मतृप्ति क्रमेण ब्रूहि नः प्रभो ॥१
अग्नौ जुहोति यद्द्रव्यमग्नियज्ञः स उच्यते।
ब्रह्मचर्याश्रमस्थानां समिदाधानमेव हि ॥२
समिदाग्नौ व्रताद्यं च विशेषयजनादिकम्।
प्रथमाश्रमिणामेव यावदौपासनं द्विजाः ॥३
आत्मन्यारोपिताग्नीनां वनिनां यतिनां द्विजाः।
हितं च मितमेध्यान्नं स्वकाले भोजनं हुतिः ॥४
औपासनाग्निसंधानं समारभ्य सुरक्षितम्।
कुंडे वाप्यथ भाण्डे वा तदजस्रं समीरितम् ॥५

अग्निमात्मन्यरण्यां व राजदैवशाद्भ्रुवम् ।
अग्नित्यागभ्यादुक्तं समारोपितमुच्यते ।।६
संपत्करी तथा ज्ञया सायमग्न्याहुतिर्द्विजाः ।
आयुष्करोति विज्ञेया प्रातः सूर्याहुतिस्तथा ।।७

ऋषियों ने कहा—अग्नियज्ञ, देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, गुरुपूजन, तथा ब्रह्म तृप्ति क्रमशः यह सभी आप हमारे प्रति कहिये ।१। सूतजी ने कहा—अग्नि में द्रव्य का हवन होना द्रव्य-यज्ञ है । ब्रह्मचर्याश्रम में स्थित पुरुषों को समिधा आहरण पूर्वक अग्निहोत्र करना उचित है ।१। हे विप्रो ! अग्नि में समिधा का हवन ही ब्रह्मचर्य व्रत आदि में होता है । जब तक विवाह न हो तब तक यह विशेष यज्ञ ब्रह्मचारियों को करना चाहिए ।३। विवाह होने पर दो समय अग्निहोत्र करे, जिन्होंने आत्मा में अग्नि का आरोपण किया है, ऐसे वनवासी यतियों को थोड़ा-सा पवित्र अन्न का भोजन करना ही अग्निहोत्र है ।४। उपासना अग्नि सधान का पालन सम्यक् प्रकार करे । उस अग्नि को वेदी में या बर्तन में रखना चाहिए ।५। अग्नि को आत्मा में धारण करे । राज भय या दैव-भय हो तो समिधा में धारण करे, अग्नि का त्याग भय से ही कहा है ।६। ब्राह्मणों द्वारा सायंकाल में दी जाने वाले आहुति सम्पत्ति को प्राप्त कराने वाली है तथा प्रातःकाल दी हुई सूर्याहुतिसे आयु की वृद्धि होती है।७।

अग्नियत्रो ह्ययं प्रोक्तो दिवा सूर्यनिवेशनात् ।
इन्द्र दीसन्कलान्देवानुद्दिश्याग्नौ जुहोतियत् ।।८
देवयज्ञं हि तं विद्यात्स्थालीपाकादिकान्क्रतून् ।
चौलादिकम् तथाज्ञेयं लौकिकाग्नौ प्रतिष्ठितम् ।।९
ब्रह्मयज्ञं द्विजः कुर्याद्देवानां तृप्तये सकृत् ।
ब्रह्मयज्ञ इति प्रोक्तो वेदस्याध्ययनं भवेत् ।।१०
आदौ त्रैलोक्यवृद्ध्यर्थं पुण्यपापे प्रकल्पिते ।
तयोः कर्त्रोस्ततो वारमिद्रस्य च यमस्य च ।।११
भोगप्रदं मृत्युहरं लोकानां च प्रकल्पितम् ।

आदित्यादीन्स्परूपान्सुखदुःखस्य सूचकान् ।।१२
वारेशान्कल्पयित्वादौ ज्योतिश्चक्रप्रतिष्ठान् ।
स्वस्ववारे तु तेषां तु पूजा स्वस्वफलप्रदा ।।१३
आरोग्यं सम्पदश्चैव व्याधीनाँ शान्तिरेव च ।
पुष्टिरायुस्तथा भोगो मृतेर्हानिर्यथाक्रमम् ।।१४

दिन में सूर्य के अग्नि में प्रविष्ट होने से इसे अग्नियज्ञ कहा है। इन्द्रादि देवताओं के लिए अग्नि में हवन किया जाता है।८। दर्शपूर्ण मांस, स्थालीपक आदि सांसारिक यज्ञ, देव यज्ञ अथवा गर्भाधान आदि उपासना लौकिक अग्नि की तिष्ठा है।९। ब्राह्मणों को देवताओं की प्रीति के लिए सदा ब्रह्म-यज्ञ करना चाहिए। जिस यज्ञ में वेद पाठ होता है, वह ब्रह्मयज्ञ है।१०। त्रैलोक्य वृद्धि के निमित्त ईश्वर ने प्रथम पुण्य पाप के उत्पन्न करने वाले इन्द्र और यम के बार कल्पित किये।११। इस प्रकार सुख-दु ख की सूचना देने वाले रविवार आदि भोग प्रदायक और लोकों की मृत्यु शमन करने वाले कल्पित किये गये। रविवार के स्वामी शिव चन्द्रवार की दुर्गा, मङ्गल के स्कन्द बुध के विष्णु वृहस्पति के यम, शुक्र के ब्रह्मा और शनिवार के इन्द्र है।१२। नक्षत्र में व चक्र में प्रतिष्ठित कर इन वारों के स्वामियों की कल्पना कर उन-उन वारों में पूजन करे तो उसके अनुसार ही फल प्राप्त होता है।१३। आरोग्य, सम्पत्ति, व्याधियों का शमन, पुष्टि, आयु, भोग तथा मृत्यु की हानि यह सब क्रमानुसार ही मनुष्य को प्राप्त होते हैं।१४।

वारक्रमफलं प्राहुर्देवप्रीतिपुरः सरम् ।
अन्येषामपि देवानां पूजयाः फलदः शिवः ।।१५
उत्तरोत्तरवैशिष्टयत्पूर्वाभावे तथोत्तरम् ।
नेत्रयोः शिरसो रोगे तथा कुष्ठस्य शान्तये ।।१६
आदित्यं पूजयित्वा तु ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः
दिनं मास तथा वर्षं वर्ष त्रयमथापि वा ।।१७
प्रारब्धं प्रबलं चेत्स्यान्नक्ष्येद्रोगजरादिकम् ।
जपाद्यमिष्टदेवस्य वरादीनां फल बिदुः ।।१८

पापशाँतिर्विशेषेण ह्यादिवारो निवेदयेत् ।
आदित्यस्यैव देवानां ब्रह्मणानां विशिष्टदम् ॥१९
स्त्रीणां च तृप्तये तद्वद्देयं वस्त्रादिकं शुभम् ।
अपमृत्युहरे मन्दे रुद्रादींश्च यजेद्बुधः ॥२०
तिलहोमेन द्रानेन तिलान्नेन च भोजयेत् ।
इत्थं यजंश्च विबुधानारोग्यादिफलं लभेत् ॥२१

जिन देवताओं के जो वार हैं वे उन-उन देवताओं की प्रीति के देने वाले हैं । परन्तु देवताओं की पूजा का फल शिवजी ही देते हैं ।१५। सब में पूजन श्रेष्ठ है । नेत्र रोग, शिर रोग तथा कुष्ट रोग के निवारणार्थ आदित्य का पूजन कर ब्राह्मण-भोजन करा वे । इस प्रकार दिवस, मास वर्ष और तीन वर्ष तक करता रहे ।१६-१७। प्रारब्ध के प्रबल होने पर ज्वरादि रोग शान्त होंगे । इष्ट देवता के लिए तप, होम, दान आदि करने से देवता वार के अनुसार फल देते हैं ।१८। रविवार के दिन पाप-शान्ति के लिए पूजन और देवता और प्रसन्न करने वाले द्रव्य निवेदन करे । यह वार देवता व ब्राह्मणों के लिए विशेष फल देने वाला है ।१९। स्त्रियों की तृप्ति के निमित्त वस्त्रादि तथा अपमृत्यु का शमन करने के लिए शनिवार को रुद्रादि का यजन करे ।२०। तिल का होम, दान या तिल मिश्रित भोजन करावे । इस प्रकार से देवताओं का यजन करने वाले को आरोग्यादि की प्राप्ति होती है ।२१।

देवानाँ नित्ययजने विशेषयजनेऽपि च ।
स्नाने दाने जपे होम ब्राह्मणानां च तर्पणे ॥२२
तिथिनक्षत्रयोगे च तत्तद्देवप्रपूजने ।
आदिवारारेषु सर्वज्ञो जगदीश्वरः ॥२३
तत्तद्रूपेण सर्वेषामारोग्यादिफलप्रदः ।
देशकालानुसारेण तथा पात्रानुसारतः ॥२४
द्रव्यं श्रद्धानुसारेण तथा लोकानुसारतः ।
तारतम्यक्रमाद्देवस्त्वारोग्यादीन्प्रयच्छति ॥२५
शुभादावशुभांते च जन्मर्क्षेषु गृही गृही ।

आरोग्यादिवृद्ध्यथमादित्यादीन्ग्रहान्यजेत् ।।२६
दरिद्रास्तपसा देवान्यजेदाढ्यो धनेन हि ।
पुनश्चैवंविथ धर्मं कुरुते श्रद्धया यह ।।२७
पुनश्च भोगान्विविधाभुक्त्वा भूमौ प्रजायते ।
छायां जलाशयं ब्रह्मप्रतिष्ठां धर्मसंचयम् ।।२८
सर्वं वित्तवान्कुर्यात्सदा भोगप्रसिद्धये ।
कालाच्च पुण्यपाकेन ज्ञानसिद्धिः प्रजायते ।।२९
य इमं शृणुतेःध्यायं पठते वा नरो द्विजाः ।
श्रवणस्योवकर्त्ता च देवयज्ञफलं लभेत् ।।३०

देवताओं का नित्य यजन विशेष यजन में भी स्नान, दान, जप, होम और ब्राह्मणों का तर्पण करने से सब वारों के पहिले दिन ही सर्वज्ञ परमेश्वर ही उन-उन देवताओं के रूप में आरोग्य आदि देते हैं। तथा देश, काल, पात्र और द्रव्य की श्रद्धा के अनुसार एवं लोकानुसार तारतम्य के क्रम से सभी को भगवान् शिवजी फल देते हैं। मङ्गल कार्य के आदि अन्त में एवं जन्म नक्षत्र में गृहस्थों को आरोग्यादि की प्राप्ति के लिए आदित्यादि ग्रहों की शान्ति करनी चाहिए।२२-२६। दरिद्र व्यक्तियों को तप के द्वारा देव यजन करना चाहिए और धनिक को पूजन करना चाहिए। इस प्रकार जो मनुष्य श्रद्धा से धर्म करता है।२७। वह स्वर्ग में अनेक सुखों को भोगकर पृथिवी पर आता है। वृक्षारोपण, सरोवर का निर्माण, पाठशाला चलाना तथा धर्म बोधक ग्रन्थों का संग्रह।२८। यह सब कर्म धनी पुरुष को भोग की प्राप्ति के लिए सदा करने चाहिये। इस प्रकार पुण्य का परिपाक होने पर ही ज्ञान की सिद्धि होती है।२९। इस अध्याय को जो ब्राह्मण पढ़ते, श्रवण करते या सुनाते हैं वे देवयज्ञ के फल को प्राप्त करते हैं।३०।

देवयाज्ञादि में देश-काल-पात्र वर्णन

देशादीन्क्रमशो ब्रूहि सूत सर्वार्थवित्तम ।
शुद्धं गृहं समफल देवयज्ञादिकर्मसु ।।१

ततो दशगुण गोष्ठं जलतीरं ततो दशः ।
ततो दशगुणं बिल्वतुलस्यश्वत्थमूलकम् ॥२
ततो देवालयं विद्यात्तीर्थतीरं ततो दश ।
ततो दशगुणं नद्यास्तीर्थं नद्यास्ततो दश ॥३
सप्तगङ्गानदीतीर्थं तस्या दशगुणं भवेत् ।
गङ्गा गोदावरी चैव कावेरी ताम्रपर्णिका ॥४
सिन्धुश्च सरयू रेवा सप्त गङ्गाः प्रकीर्तिताः
ततोऽब्धितीरे दश च पर्वताग्रे ततो दश ॥५
शुद्धात्मनः शुद्धदिनं पुण्यं समफलं विदुः ।
तस्माद्दशगुणं ज्ञेय रविसंक्रमणे बुधाः ॥६
विषुवे तद्दशगुणामयने तद्दश स्मृतम् ।
तद् मृगसक्रांतौ तच्चन्द्रग्रहणे दश ॥७

ऋषि बोले—हे सूतजी ! पूजा के योग्य देश काल कहिये । आप ज्ञाता हैं । सूतजी ने कहा—देवयज्ञादि कर्म में शुद्ध गृह फलदायक है ।१। उससे दशगुणा गौओं के स्थान में उससे भी दशगुणा जल के स्थान में और उससे भी दशगुणा बेल, तुलसी और पीपल के वृक्ष के नीचे है । उससे दशगुणा देवालय में, उससे दशगुणा तीर्थ के तट पर, उससे दशगुणा नदी तथा उससे भी दशगुणा फल तीर्थ नदी के तट पर है ।३। उससे दशगुणा फल सप्त गङ्गा के किनारे होता है । गङ्गा, गोदावरी, कावेरी, ताम्रपर्णी, सिन्धु, सरयू आदि सप्तगङ्गा कही जाती है, उससे दशगुणा फल सागर और उससे भी दशगुणा फल पर्वताग्र में पूजन करने से होता है ।४। शुद्धात्मा होकर पवित्र दिन में पूजन करने से होता है ।६। तुला और मेष की संक्रान्ति में उससे दशगुणा, अयन में उससे दशगुणा तथा चन्द्र-ग्रहण में उससे दशगुणा फल होता है ।

ततश्च सूर्यग्रहणे पूर्ण कालोत्तमे विदुः ।
जगद्रूपस्य सूर्यस्य विषयोगाश्च रोदनम् ॥८
अतस्तद्विषशात्यर्थं स्नानदानजपांश्चरेत् ।

वितशात्यर्थं कालत्वात्सकालः पुण्यदः स्मृतः ॥९
जन्मर्क्षे च व्रतांते च सूर्यरागोपमं विदुः ।
महतां संगकालश्च कोटयर्कग्रहणं विदुः ॥१०
तपोनिष्ठा ज्ञाननिष्ठा योगिनो यतस्तथा ।
पूजायाः पात्रमेते हि पापसंक्षयकारणम् ॥११
चतुर्विंशतिलक्षं वा गायत्र्या जपसंयुतः ।
ब्राह्मणस्तु भवेत्पात्रं सपूर्णफलभोगदम् ॥१२
पतनात्यात्रायत इति शास्त्रे प्रयुज्यते ।
दातुश्च पातकात्त्राणात्पात्रमित्यभिधीयते ॥१३
गयकं त्रायते पाताद्गायत्रीत्युच्यते हि सा ।
तथाऽर्थंहीनो लोकेऽस्मिन्परस्यार्थं न यच्छति ॥१४

इससे दशगुणा फल सूर्य-ग्रहण में होता है, यह श्रेष्ठ समय है। विश्वरूप सूर्य के अन्धकारमय हो जाने से यह समय रोग प्रदायक है।८। इसलिए उसका विष शान्त करने के लिए स्नान, दान करे। विष की शान्ति करने वाला होने से इस समय को पुण्यप्रद कहा है।९। जन्म, नक्षत्र और व्रत के अन्त में दान का फल सूर्यग्रहण के समान है और संगति का फल करोड़ सूर्य के तुल्य समझना चाहिये।१०। तपोनिष्ट एवं ज्ञान में निष्ठा वाले योगी और यती पूजनीय है, इनका सत्कार करने से पापों का नाश होता है।११। अथवा जिस ब्राह्मण ने चौबीस लाख गायत्री का जप किया हो वह ब्राह्मण उसका उपयुक्त पात्र होने से पूर्ण प्रदान करने वाला है।१२। शास्त्र के पतन से रक्षा करने वाले को पात्र कहा है। दान दाता की पापों से रक्षा करने वाला होने से वह पात्र है।१३। गायत्री इसलिए कही गयी है कि वह गान करने वाले की उसी प्रकार रक्षा करती है, जिस प्रकार धनहीन किसी को धन नहीं देता।१४।

अर्थं वानिह यो लोके परस्यार्थं प्रयच्छति ।
स्वयं शुद्धो हि पूतात्मा नरान्संत्रातुमर्हति ॥१५
गायत्रीजपशुद्धो हि शुद्धब्राह्मण उच्यते ।
तस्माद्दाने जपे होमे पूजायां सर्वकर्मणि ॥१६

दान कर्तुं तथा त्रातुं पात्रत्वं ब्राह्मणोऽर्हति ।
अन्नस्य क्षुधितं पात्रं नारीनरमयात्मकम् ॥७

तथा जो धनवान हैं, वह धन देने में समर्थ है । इसी प्रकार जो स्वयं पवित्र है, वही अपवित्रता से दूसरे की रक्षा कर सकता है ।१५। गायत्री के जप से शुद्ध हुआ ब्राह्मण ही पवित्र है, इसलिए दान, जप, हवन, पूजन आदि सभी कार्यों में ।१६। दान लेने और रक्षा करने का पात्र ब्राह्मण ही है तथा अन्न दान का पात्र जो भूखा हो, वह स्त्री या पुरुष कोई भी हो, वही है ।१७।

प्रणव-पंचाक्षर मन्त्र का माहात्म्य

प्रो हि प्रकृतिजातस्य संसारस्य महोदधेः ।
नवं नावांवारमिति प्रणववै विदुर्बुधाः ॥१
प्रः प्रपंचो न नास्ति वो युष्माकं प्रणवं विदुः ।
प्रकर्षेण नयेद्यस्मान्मोक्षं वः प्रणवं विदुः ॥२
स्वजापकानां योगिनां स्वमन्त्रपूजकस्य च ।
सर्वकर्मक्षयं कृत्वा दिव्यज्ञानं तु नूतनम् ॥३
तमेव मायारहितं नूतनं परिचक्षते ।
प्रकर्षेण महात्मानं नवं शुद्धस्वरूपकम् ॥४
नूतनं वै करोतीति प्रणवं तं विदुर्बुधाः ।
प्रणवं द्विविधं प्रोक्तं सूक्ष्मस्थूलविभेदतः ॥५
सूक्ष्ममेकाक्षरं विद्यात्स्थूलं पञ्चाक्षरं विदुः ।
सूक्ष्ममव्यक्तपं चार्णं सुव्यक्तार्णं तथेतरत् ॥६
जीवन्मुक्तस्य सूक्ष्मं हि सर्वसारं हि तस्य हि ।
मन्त्रेणार्थानुसन्धानं स्वदेहबिलयावधि ॥७

सूतजी बोले—प्रणव का अर्थ कहता हूँ । प्रकृति द्वारा प्रकट इस संसार से तारने के लिए नौका रूप होने के कारण वह प्रणव है ।१। 'प्र' से प्रपञ्च, 'न' से नहीं और 'व' से तुम में अर्थात् आत्मा में प्रपञ्च नहीं है, यह अर्थ समझो । अथवा प्रकृष्टता से जप करने वाले को मोक्ष दाता होने से इसे प्रणव कहा गया है ।२। अपने जप करने वाले जापकों

तथा मन्त्र पूजकों के कर्मों को क्षीण करके दिव्य ज्ञान देने वाला होने से प्रणव कहा गया है। माया रहित होने से प्रणव नूतन भी कहलाता है। प्रकृष्टता से यह महात्मा और नवीन स्वरूप वाला बना देता है।४। तथा नवीन कर देने वाला होने से पण्डित-जन इसे प्रणव कहते हैं। इसके स्थूल एवम् सूक्ष्म भेद वाले दो प्रकार कहे गये हैं।५। एकाक्षर प्रणव सूक्ष्म और पञ्चाक्षर स्थूल है। सूक्ष्म-स्वरूप अव्यक्त और पञ्चाक्षर वाला व्यक्त माना गया है।६। जीवन्मुक्त के लिए सबका सार सूक्ष्म स्वरूप ही है यही उसके लिए हितकारी है। मन्त्र के अनुसधान और देहान्त में देह में लीन करना सूक्ष्म उपासना है।७।

षट्त्रिंशत्कोटिजापी तु निश्चयं योग मानुप्यात्।
सूक्ष्मं च द्विविध ज्ञेय ह्लस्वदीर्घ विभेदतः।८
अकराश्च बकारश्च मकारश्च ततः परम्।
बिंदुनादयुत तद्धि शब्दकालकलान्वितम्॥९
दीर्घप्रणवमेवं हि योगिनामेव हृदगतम्।
मकारं तं त्रतत्वं ह्लस्वप्रणव उच्यते॥१०
शिवः शक्तिस्तयोरैक्यं मकारं तु त्रिकात्मकम्।
ह्लस्वमेव हि जाप्यं स्यात्सर्वपापक्षयैषिणाम्॥११
भूवायुकनकार्णोद्योः शब्दाद्याश्च तथा दश।
आशान्वये दश पुनः प्रवृत्ता इति कथ्यते॥१२
ह्लस्वमेव प्रवृत्तानां निवृत्तानां तु दीर्घकम्।
व्याहृत्यादौ त मन्त्रादौ कामं शब्दकलायुतम्॥१३
वेदादौ च प्रयोज्यं स्याद्वंदने संध्ययोरपि।
नवकोटिजषाञ्जप्त्वा संशुद्धः पुरुषो भवेत्॥१४

छत्तीस कोटि मन्त्र जप वाला पुरुष योगी बन जाता है। सूक्ष्म के भी दो भेद कहे हैं ह्लस्व और दीर्घ।८। अकार, उकार, मकार तथा बिन्दु नाद सहित, जिसमें अर्द्धचन्द्र बिन्दु होती है, वर्ण और मात्रा नहीं होते तथा शब्द, काल और कला से युक्त होता है।९। 'अउम्' केवल इन तीन अक्षरों को दीर्घ प्रणव कहते हैं। यह योगियों के हृदय में बसता

है तथा 'आउम्' इन अक्षरों का ह्रस्य प्रणव कहा गया है ।१०। शिव और शक्ति का एकाकार होने से 'मकार' तीनों तत्वों का स्वरूप है । जो मनुष्य सब पापों को दूर करने की कामना करते हों उन्हें ह्रस्व प्रणव का जप करना चाहिये ।११। पृथिवी, वायु,तेज,जल, आकाश और शब्द आदि दश दिशाओं का सम्बन्ध होने से दश पुरुष प्रवृत्ति मार्ग में प्रवृत्त कहे जाते है । शब्दादि विषयों से युक्त जीव संसार चक्र में पड़े रहते और इससे भिन्न निवृत्त कहे जाते हैं ।१२। जो संसार में प्रवृत्त हैं उनको प्रणव का जप तथा निवृत्त की कामना वालों को दीर्घ प्रणव का जप करना चाहिए ।१३। वेद के प्रारम्भ में ओंकार का ही प्रथम प्रयोग करे दोनों सन्ध्या कालों की वन्दना में भी ओंकार का प्रयोग कहा है । नौ करोड़ जप से पुरुष शुद्ध हो जाता है ।१४।

पुनश्च नवकोटया तु पृथिवीजयमाप्नुयात् ।
पुनश्च नवकोटया तु ह्यपां जयमवाप्नुयात् ॥१५
पुनश्च नवकोटया तु तेजसां जयमाप्नुयात् ।
पुनश्च नवकोट्या तु वायोजयमाप्नुयात् ।
अकाशजयमाप्नोति नवकोटिजपेन वै ॥१६
ग्रन्थादीनां क्रमेणैव नवकोटिपेन वै ।
अहङ्कारस्य च पुनर्नवकोटिजपेन वै ॥१७
सहस्रमन्त्रजप्तेन नित्तशुद्धो भवेत्पुमान् ।
ततः परं स्वसिद्ध्यर्थं जपो भवति हि द्विजाः ॥१८
एवमष्ठोत्तरशतकोटिजप्तेन वै पुनः ।
प्रणवेन प्रबुद्धस्तु शुद्धयोगमवाप्नुयात् ॥१६
शुद्धयोगेन संयुक्तो जीवन्मुक्तो न सशयः ।
सदा जपन्सदा ध्यायंछिव प्रणवरूपिणम् ॥२०
समाधिस्थो महायोगी शिव एव न संशयः ।
ऋषिच्छन्दो देवतादि न्यस्य देहे पुनर्जपेत् ॥२१

तत्पश्चात् नौ करोड़ प्रणव का पुनः जप करने से पृथिवी पर विजय प्राप्त होती है । उसके पश्चात् नौ करोड़ और जप करनेसे जल पर अधि-

कार होता है।१५। उसके उपरान्त नौ करोड़ जप से तेज और पुनः नौ करोड़ जप से वायु को जीता जाता है। फिर नौ करोड़ जप करने से आकाश मण्डल पर विजय होती है।१६। फिर क्रमपूर्वक नौ करोड़ प्रणव-जप करने से गन्धादि पर तथा अहङ्कार पर जीत होती है।१७। नित्यप्रति एक हजार जप करने से मनुष्य शुद्ध रहता है। हे विप्रो! आत्म-ज्ञान की सिद्धि के लिए भी प्रणव का जप किया जाता है।१८। इस प्रकार एक सौ आठ करोड़ जप करने से मनुष्य ओंकार से प्रबुद्ध हो जाता और उसे शुद्ध योग की प्राप्ति होती है।१९। शुद्ध की प्राप्ति होने पर जीवन्मुक्त हो जाता है इसमें संशय नहीं है। प्रणव रूप शंकर का सदा जप तथा ध्यान करना चाहिये।२०। समाधि स्थित होकर महाशिव स्वरूप हो जाता है इसमें संशय नहीं। ऋषि छन्द देवता आदि का न्यास करके ही जप का आरम्भ करे।२१।

प्रणव मातृकायुक्तं देहे न्यस्य ऋषिर्भवेत्।
दशमातृषडध्वादि सर्वं न्यासफलं लभेत् ॥२२
प्रवृत्तानांश्च मिश्राणां स्थूलप्रणवमिष्यते।
क्रयातरोजपैर्युक्तास्त्रिविधाः शिवयोगिदः ॥२३
धनादिविभिवैश्चैव कराद्यगैर्ननादिभिः।
क्रियया पूजया युक्तः क्रियायोगाति कथ्यते ॥२४
पूजायुक्तश्च मितभुग्वाह्येन्द्रियजपान्वितः।
परद्रोहादिरहिस्तपोयोगी न कथ्यते ॥१५
एतैर्युक्तः सदा शुद्धः सर्वकामादिवर्जितः।
सदा जपपरः शांतो जपयोगीति त विदुः ॥२६
जपयोगमथो वक्ष्ये गदतः शृणुत द्विजाः।
तपः कर्तु जपः प्रोक्तो यज्जपन्परिमार्जते ॥२७
शिवनाम नमः पूर्वं छनुर्थ्या पंचतत्वकम्।
स्थूलप्रणवस्वरूपं हि मिवपंचाक्षारं द्विजाः ॥२८

'अइउ' अक्षर एवं मात्रा प्रणव का अङ्ग न्यास करने पर ऋषि होता है, 'अइउ' आदि दश मात्रा और छः अध्वमार्ग आदि से सम्पूर्ण न्यास ...ण है

का फल होता है।२२। संसार में प्रवृत्त या प्रवृत्ति दोनों को ही स्थूल प्रणव का जप करे। क्रिया, तप और जप करने वाले शिव के योगी तीन प्रकार के कहे हैं।२३। धनादि ऐश्वर्य और कर आदि अंगों के द्वारा सेवा तथा नमस्कार आदि क्रियाओं से युक्त पूजन करने वाले क्रियायोगी कहे जाते हैं।२४। पूजायुक्त भोजन वाले तथा वाह्य-इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर लेने वाले तथा द्रोह आदि विकारों से परे रहने वाले तपयोगी कहे गये हैं।२५। उपरोक्त लक्षणों से युक्त, सर्वदा शुद्ध, कामनाओं से परे निरन्तर जपशील तथा शान्त चित्त वालों को जप-योगी कहा जाता है।२६। हे विप्रो ! अब जप-योग के लक्षण सुनो-- तप करने वालों के लिए जप करने का विधान है। उस जप के कारण उसके पाप क्षीण हो जाते हैं।२७। 'नमः शिवाय' इस चतुर्थ्यन्त पद वाले पञ्चतत्वात्मक मंत्र का जप करना चाहिये। स्थूल प्रणव स्वरूप ही शिवजी का पञ्चाक्षर रूप कहा गया है।२८।

पञ्चाक्षर जपेनैव त्रर्वसिद्धि लभेन्नरः।
प्रणवेनादिसयुक्तं सदा पञ्चाक्षरं जपेत् ॥२९
गुरुपदेशं संगम्य सुखवासे सुभूतले।
पूर्व पक्षे समारभ्य कृष्णभूतविधि द्विजाः ॥३०
माघं भाद्रं विशिष्टं तु सर्वकालोत्तमोत्तमम्।
एकवारं मिताशी तु वाग्यतो नियतेन्द्रियः ॥३१
स्वस्य राजपितृणां च शुश्रूषणं च नित्यशः।
सहस्रजपमात्रेण भवेच्छुद्धोऽन्यथा ऋणी ॥३२
पञ्चाक्षरं पञ्चलक्षं जपेच्छिवमनुस्मपन्।
पद्मासनस्थं शिवदं गगाचन्द्रकलान्वितम् ॥३३
वामोषस्थितशक्त्या च विराजन्तं महागणैः।
मृगकङ्कधरं देवं वरदाभयपाणिकम् ॥३४
सदानुग्रहकर्त्तारं सदाशिवमनुस्मरन्।
सम्पूज्य मनसा पूर्वं हृदि वा सूर्यमण्डले ॥३५

पञ्चाक्षर के जप से सब प्रकार की सिद्धि प्राप्त होती है, इसके आदि में ओंकार लगाकर पञ्चाक्षर मन्त्र का ही सदा जप करना चाहिये ।२६। गुरु से आदेश लेकर उत्तम वस्त्र धारण कर पृथिवी में बैठकर शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को आरम्भ कर कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तक जप करना चाहिए ।३०। हे विप्रो ! माघ और भादों यह दो महीने इसके लिए सर्व श्रेष्ठ है । एक बार भोजन करे, जितेन्द्रिय रहे और मौन का अवलम्बन करे ।३१। अपने पालनकर्त्ता और पितरों की नित्यप्रति सुश्रूषा करे । एक हजार जप करने से शुद्धि होती है, अन्यथा उऋण नहीं हो पाता । ।३२। शिवजी के स्मरण पूर्वक पाँच लाख पञ्चाक्षर मन्त्र जपना चाहिये। पद्मासन पर स्थित तथा कल्याण दायिनी गङ्गा और चन्द्रकला से युक्त हो ।३३। वाम उरु पर स्थित, शक्ति और गुणों से युक्त, मृगटंक धारण किये, देवताओं को वर देने में समर्थ तथा अभय दान देने वाले वरद-हस्त से सयुक्त ।३४। सदैव अनुग्रह करने वाले सदाशिव का स्मरण करे । प्रथम शिवजी का मानसिक पूजन हृदय अथवा सूर्यमण्डल में करना चाहिए ।३५।

जपेत्पंचाक्षरीं विद्यां प्राङ्मुखः शुद्धकर्मकृत ।
प्रात कृष्णचतुर्दश्यां नित्यकर्म समाप्य च ॥३६
मनोरमे शुचौ देशे नियतः शुद्धमानसः ।
पंचाक्षरस्य मन्त्रस्य सहस्रं द्वादशं जपेत् ॥३७
मुखांतं च स्वसूत्रेण कृत्वा होमं समाचरेत् ।
दशैकं व शतैकं वा सहस्रैकमथापि वा ॥३८
कापिलेन घृतेनैव जुहुयात्स्वयमेव हि ।
कारयेच्छिवभक्तैर्वाप्यष्टोत्तरशतं बुधः ॥३९
पुरश्चरणमेवं तु कृत्वा मन्त्री भवेन्नरः ।
पुनश्च पंचलक्षेण सर्वपापक्षयो भवेत् ॥४०
पुनश्च पंचलक्षेण सारूप्यैश्चर्यमाप्नुनात् ।
आहुल्य शतलक्षेण साक्षाद्ब्रह्मसमो भवे ॥४१

पूर्व दिशा की ओर मुख करके शुद्ध कर्म की इच्छा से पंचाक्षरी विद्या

का जप करना चाहिये । कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के प्रातःकाल नित्य कर्म सताप्त करे ।३६। फिर मनोरम पवित्र देश में नियमपूर्वक शुद्ध मन करके पञ्चाक्षर मन्त्र का बारह हजार की संख्या में जप करना चाहिए । ।३७। अग्निमुख पर्यन्त अपने सूत्रों के अनुसार हवन करे तथा दश या एक सौ अथवा एक हजार आहुति अग्नि में स्वयं दे । आहुति के लिए घृत कपिला गऊ का लेना चाहिए अथवा शिवभक्तों से एक सौ आठ आहुति दिलवानी चाहिए ।३८-३९। पुरश्चरण करके मनुष्य मन्त्र सिद्ध हो जाता है । मन्त्र सिद्ध होने पर पांच लाख जप करने से सभी पाप क्षीण हो जाते हैं ।४०। फिर पाँच लाख जप करने से सारूप्य का ऐश्वर्य प्राप्त होता है तथा एक करोड़ मन्त्र जपने से मनुष्य साक्षात ब्रह्म के समान हो जाता है ।४१।

यस्य सन्दशन साध्य कर्मध्यानादिभिः क्रमात् ।
नित्यादिकर्मयजनाच्छिवकर्म मतिभवेत् ।।४२
क्रियादिशिवकर्मभ्यः शिवज्ञान प्रसाधयेत् ।
तद्दर्शनगताः सर्वेमुक्ता एव न संशयः ।।४३
मुक्तिरात्मस्वरूपेण स्वात्मारामत्वमेव हि ।
क्रियातपोजपज्ञानध्यानधर्मेषु सुस्थितः ।।४४
शिवस्य दर्शनं लब्ध्वा स्वत्मारामत्मेव हि ।
यथा रविः स्वकिरणादशुद्धिमपनेष्यति ।।४५
कृपाविचक्षणः शम्भुरज्ञानमपनेष्यति ।
अज्ञानविनिवृत्तो तु शिवज्ञानं प्रवर्तत ।।४६
शिवज्ञानात्मस्वरूपमात्माराात्वमेष्यति ।
आत्मारामत्वस सिद्धौ कृतकृत्यो भवेन्नरः ।।४७
पुनश्च शतलक्षेण ब्रह्मणः पदमाप्नुयात् ।
पुनश्च शतलक्षेण विष्णोः पदमवाप्नुयात् ।।४७
पुनश्च शतलक्षेण रुद्रस्य पदमाप्नुयात् ।
पुनश्च शतक्षण ऐश्वर्यं पदमाप्नुयात् ।।४९

परमेश्वर का दर्शन, कर्म और ध्यान आदि क्रमपूर्वक होता है नित्य-

कर्म के साथ यजन करने से शङ्कर के कर्म में प्रीति होती है ।४२। क्रिया आदि शिव कर्मों के द्वारा शिव के ज्ञान की सिद्धि करे । उनके दर्शन करते ही सबको मोक्ष की प्राप्ति होती है ।४३। आत्म स्वरूप के अतिशय आनन्द को ही मोक्ष कहते हैं । क्रिया, तप, ज्ञान, ध्यान तथा धर्मों में उसकी स्थिति कही है ।४४। शिवजी के दर्शन मात्र से स्वात्मारामत्व की प्राप्ति उसी प्रकार हो जाती है, जैसे सूर्य अपनी रश्मियों के द्वारा अपवित्रता को नष्ट कर देते हैं ।४५। इसी प्रकार कृपा करने में विचक्षण भगवान् शङ्कर अज्ञान का क्षय करते हैं । अज्ञान नष्ट होने पर ही शिवज्ञान की प्राप्ति सम्भव है ।४६। शिवज्ञान की प्राप्ति से आत्म—स्वरूप की प्राप्ति और आत्मस्वरूप की प्राप्ति होते ही मनुष्य सब प्रकार कृत्यकृत्य हो जाता है ।४७। सौ लाख मन्त्र जपने से ब्रह्मपद और पुनः सौ लाख जपने से विष्णुपद की प्राप्ति हो जाती है ।४८। फिर सौ लाख जप करने से रुद्रपद और इसके पश्चात् सौ लाख पुनः जप करने से ऐश्वर्य—पद की प्राप्ति होती है ।४६

पुनश्च दश कोट्या हि कारण ब्रह्मणः पदम् ।
पुनश्च दशकोट्या हि तत्पदैश्वर्यमाप्नुयात् ।।५०
एवंक्रमेण विष्णु वादेः पद लब्ध्या महौजस ।
क्रमेण यत्पदैश्वर्यं लब्ध्वा चैव महात्मनः ।।५१
शतकोटिमनुं जप्त्वा पंचमोत्तरमतन्द्रितः ।
शिवलोकमवाप्नोति पंचमावरणाद्बहि ।।५२
गुरुपदेशाज्जाप्य वै ब्राह्मणानां नमोऽन्तीकम् ।
पञ्चाक्षरं पञ्चलक्षमायुष्पन्नजपेद्विधिः ।।५३
स्त्रीत्वापनथनार्थं तु पञ्चलक्षं जपेत्पुनः ।
मन्त्रेण पुरुषो भूत्वा कमान्मुक्को भवेद्बुधः ।।५४
क्षत्रियः पञ्चलक्षेण क्षत्रत्वमपपेष्यति ।
पुनश्च पञ्चलक्षेण क्षत्रियो ब्राह्मणो भवेत् ।।५५
मन्त्रसिद्धिर्जपाच्चैव क्रमान्मुक्तो भवेन्नरः ।
वैश्युस्तु पञ्चलक्षेण वैश्यत्वमपनेष्यति ।।५६

दश करोड़ जप से कारण ब्रह्म की प्राप्ति होती है, तदुपरान्त दश करोड़ पुनः जप करने से तत्पद ऐश्वर्य की उपलब्धि हो जाती है ।५०। इस प्रकार क्रम पूर्वक विष्णु आदि के पद की प्राप्ति होने के पश्चात क्रम पूर्वक ही उन महात्मा के ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ।५१। फिर जितेन्द्रिय रहते हुए ही एक सौ पांच करोड़ जप करने पर पांच लावरण से बाहर शिवलोक की प्राप्ति हो जाती है ।५२। ब्राह्मण गुरु के आदेश से पांच लाख जप करे । मन्त्र के अन्त में नमः' लगावे । इस प्रकार करने से मनुष्य की आयु वृद्धि होती है ।५३। स्त्री इसके पाँच लाख जप करने से ही पुरुष रूप को प्राप्त होकर क्रम से मोक्ष को प्राप्त होती है । उसका स्त्री भाव मिट जाता है ।५४। पांच लाख मन्त्र जपने से क्षत्रिय क्षत्रियत्व की प्राप्ति होती है ।५५। पुनः जप करने से मात्र की सिद्धि होकर मोक्ष की क्रम से प्राप्ति होती है । पाँच लाख जप करने से वैश्य, वैश्यत्व से उच्च हो जाता है ।५६।

पनश्च पचलक्षेण मन्त्रक्षत्रिय उच्यते ।
पुनश्च पंचलक्षेण क्षत्रत्वसपनेष्यति ॥५७
पुनश्च पंचलक्षेण मन्त्र ब्राह्मण उच्यते ।
शूद्रश्चैव नमोऽन्तेन पंचविंशतिलक्षतः ॥५८
मन्त्रविप्रत्वमापद्य पश्चाच्छुद्धो भवेतद्विजः ।
नारीवाथ नरो वाथ ब्राह्मो वान्य एव वा ॥५९
पूजया शिवभक्तस्य शिवः प्रीततरो भवेत् ।
शिवस्य शिवभक्तस्य भेदो नास्ति शिवो हि सः ॥६०
शिवस्वरूपमन्त्रस्य धारणाच्छिव एव हि ।
शिवभक्तशरीरे हि शिवे तत्परमो भवेत् ॥६१
शिवभक्ताः क्रियाः सर्वा वेदासर्वक्रियां विदुः ।
यावद्यावच्छिवमन्त्रं नेन जप्त भवेत्क्रमात् ॥६२
तावद्वै शिवशान्निध्यं तस्मिन्देहे न संशयः ।
देवीलिंग भवेद्र पं शिवभक्तस्त्रियास्तथा ॥६३

फिर पाँच लाख जपने से क्षत्रियत्व प्राप्त होता और पुनः पाँच लाख जपने पर क्षत्रियत्व से भी मुक्त हो जाता है ।५७। फिर पाँच लाख जपने पर ब्राह्मण बन जाता है। इसी प्रकार शूद्र भी अन्त में नमः लगा कर पच्चीस लाख मन्त्र जपे ।५८। तो मन्त्र ब्राह्मणत्व की प्राप्ति होती है। मन्त्र के जपने से स्त्री, पुरुष, ब्राह्मण अथवा कोई भी हो, सब शुद्ध हो जाते हैं ।५९। शिव-भक्त का पूजन करने से शिवजी प्रसन्न होते हैं। शिवजी में और उनके भक्त में कुछ भेद नहीं है, वह शिव-स्वरूप ही है ।६०। शिव-स्वरूप मन्त्र की धारणा करने से शिवरूप की प्राप्ति होती है। देह में शिव भक्ति होने से शिवजी का भक्त प्रधान शिव रूप ही होता है ।६१। वेदोक्त सभी क्रियाओं से युक्त शिव-भक्त सब क्रियाओं के जानने वाले हैं, जो जितना अधिक मन्त्र जप करे उतना ही अधिक सामीप्य प्राप्त होता है। शिव की भक्ति करने वाली स्त्रियाँ देवी स्वरूप को प्राप्त हो जाती हैं ।६२-६३।

यावन्मन्त्रं जतेद्देव्यास्तावत्सन्निध्यमस्ति हि।
शिवं संपूजयेद्धीमान्स्वयं वै शब्दरूप भाक् ॥६४
शिवलिंगं शिवं मत्वा स्वात्मान शक्तिरूपकम्।
शक्तिलिंगं च देवीं च मत्वा स्वं शिवरूपकम् ॥६५
शिवलिंगं नादरूपं बिन्दुरूपं च शक्तिकम्।
उपप्रधानभावेन अन्योन्यासक्तलिंगकम् ॥६६

वे जितना अधिक जप करती हैं भगवती की उतनी ही अधिक निकटता उन्हें प्राप्त होती है। जो मेधावी-जन शिव पूजा करते हैं वे शब्द के स्वयं भागी होते हैं ।६४। शिवलिंग को शिव रूप और आत्मा को शक्ति रूप मानें, शक्ति-लिंग को देवी और अपने को शिव-स्वरूप समझे ।६५। शिवलिंग को नाम रूप और शक्ति को बिन्दु रूप आकारादि युक्त स्थान भूत ओंकार के निकट भाव से परस्पर लिंग शक्ति समझे ।६५।

॥ बन्धमोक्षस्वरूप शिवलिंग-माहात्म्य ॥

बंधमोक्षस्वरूपं हि ब्रूहि सर्वार्थवित्तम्।
बंधं मोक्षं तथोपायं वक्ष्येऽहं शृणुतादरात् ॥१

प्रकृत्याद्यष्टबंधेन बद्धो जीवः स उच्यते ।
प्रकृत्याद्यष्टबधेन निर्मुक्तो मुक्त उच्यते ॥२
प्रकृत्यादिवशीकारो मोक्ष इत्युच्यते स्वतः ।
बद्धजीवस्तु निर्मुक्तो मुक्तजीवः स कथ्यते ॥३
प्रकृत्यग्रे ततो बुद्धिरहंकारो गुणात्मकः ।
पञ्चतन्मात्रमित्येतत्प्रकृत्याद्यष्टकं विदः ॥४
प्रकृत्याद्यष्टजो देहो देहजं कर्म उच्यते ।
पुनश्च वर्मजो देहो जन्मकर्म पुनः पुनः ॥५
शरीरं त्रिविधं ज्ञेयं स्थूलं सूक्ष्मं च कारणम् ।
स्थूलं व्यापारदं प्रोक्त सूक्ष्ममिंद्रियभोगदम ॥६
कारणं त्वात्मभोगार्थं जीवकर्मानुरूपतः ।
सुखं दुखं पुण्यपापैः कर्मभिः फलमश्नुते ॥७

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! आप सर्वार्थ ज्ञाता हैं । हमारे प्रतिबन्ध और मोक्ष का स्वरूप कहें । सूतजी ने कहा—मैं बंध और मोक्ष के उपाय कहता हूँ, आदरपूर्वक सुनिये ।१। प्रकृति आदि आठ बंधनों से बन्धन के कारण रूप आत्मा को जीव कहते हैं तथा उन आठ बंधनों से छुटकारे को ही मोक्ष कहा है ।२। प्रकृति आदि को वश में कर लेना ही मोक्ष है । बन्धन में पड़ा 'जीव' तथा उनसे मुक्त हुए को ही मुक्त कहते हैं ।३। प्रकृति के आगे बुद्धि और बुद्धि के आगे गुणात्मक अहकार और उसके साथ ही पचतन्मात्राएँ यह सब मिलकर आठ प्रकृति है ।४। इन्हीं प्रकृति आदि आठ बंधनों से देह से किया जाता है, वह कर्म है । कर्म से पुनः देह हैं, इसी प्रकार जन्म और कर्म का चक्र निरन्तर चलता रहता है ।५। स्थूल, सूक्ष्म और कारण ये तीन प्रकारके देह हैं । 'स्थूल' व्यापार वाला और 'सूक्ष्म' इन्द्रिय के भोग वाला है ।६। तीसरा कारण देह है जो जीव के कर्मानुसार आत्मा का भोग करने के निमित्त है, पाप पुण्य रूप कर्मों से ही सुख-दुःख की प्राप्ति है ।७।

तस्माद्धि कर्मरज्ज्वा हि बद्धो जीवः पुनः पुनः ।
शरीरत्रयकर्मभ्यां चक्रवद्भ्राम्यते सदा ॥८

चक्रभ्रमनिवृत्यर्थं चक्रकर्तारमीडयेत् ।
प्रकृत्यादि महाचक्र प्रकृते परतः शिवः ॥९
चक्रकर्ता महेशो हि प्रकृतेः परतो यतः ।
पिवति वाथ वमति जीवन्वालो जलं यथा ॥१०
शिवस्तथा प्रकृत्यादि वशीकृत्याधितिष्ठति ।
सर्वं वशीकृतं यस्मात्तस्माच्छिव इति स्मृतः ।
शिव एव हि सर्वज्ञः परिपूर्णश्च निःस्पृहः ॥११
सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोध स्वतंत्रतो नित्यलुप्तशक्तिः ।
अनंतशक्तिश्च महेश्वरस्य यन्मानसैश्वर्यमवैति वेद ॥१२
अतः शिवप्रसादेन प्रकृत्यादि वशं भवेत् ।
शिवप्रसादलाभार्थं शिवमेव प्रपूजयत् ॥१३

इस प्रकार यह जीव कर्म रूप रस्सा से बारम्बार बंधकर तीन प्रकार के शरीरों से युक्त होता हुआ चक्र के समान घूमता रहता है ।८। चक्र के घूमने को शान्त करने के लिये चक्रकर्त्ता की पूजा करे । प्रकृति आदि आठ महाचक्रों से भगवान् शंकर परे हैं ।९। प्रकृति से परे वे महेश ही चक्रकर्त्ता हैं, जैसे कि वृक्षों के थामले जल को पीकर उसे वृक्षों में गमन कर देते हैं ।१०। इसी प्रकार प्रकृति आदि को वश में करके शिवजी स्थित हैं । सबको वशीभूत करने के कारण उन्हें 'शिव' कहते हैं । वही सर्वज्ञ, परिपूर्ण तथा निस्पृह हैं ।११। अपनी सर्वज्ञाता के कारण वे तृप्त एवं अनादि बोध हैं तथा स्वतन्त्रता से जागृत शक्ति है । वे अनन्त शक्ति वाले हैं । वेद उनके मन के षड्गुणैश्वर्य का पूर्ण ज्ञाता है ।१२। इसलिये शिवजी के प्रसाद से ही प्रकृति आदि को वश में किया जाता हैं । उनको प्रसन्नता के लिये उनका पूजन करना ही श्रेयस्कर हैं ।१३।

त्रिपुंड्रं सजलं भस्म धृत्वा पूजां करोति यः ।
शिवपूजाफलं सांगं तस्यैव हि सुनिश्चितम् ॥१४
भस्म वै शिवमन्त्रेण धृत्वा ह्यत्याश्रमी भवेत् ।
शिवाश्रमीति सम्प्रोक्तः शिवैकपरमी यतः ॥१५
शिवव्रतैकनिष्ठस्य नाशौचं न च सूतकम् ।

ललाटेऽग्रे सितं भस्म तिलकं धारयेन्मृदा ।।१६
स्वहस्ताद्गुरुहस्ताद्वा शिवभक्तस्य लक्षणम् ।
गुणान्रुंध इति प्रोक्तो गुरुशब्दस्य विग्रहः ।।१७
सविकारान्राजसादीन्गुणान्रुंधे व्यपोहति ।
गुणातीतः परशिवो गुरुरूपं समाश्रितः ।।१८
गुणत्रयं व्योह्यागे शिवं बोधयतीति सः ।
विश्वस्तानां तु शिष्याणां गुरुरित्यभिधीयते ।।१९
तस्मात्गुरुशरीरं तु गुरुलिंगं भवेद्बुधः ।
गुरुलिंगस्य पूजा तु पूजा गुरुशुश्रूषणं भवेत् ।।२०
श्रुतं करोति शुश्रूषा कायेन मनसा गिरा ।
उक्तं यद्गुरुणा पूर्वं शक्यं वाऽशक्यमेव वा ।।२१

जल युक्त भस्म से त्रिपुण्ड धारण कर शिवजी का पूजन करने वाले को निःसन्देह सम्पूर्ण फल मिलता है ।१४। शिवमंत्र से पूरित भस्म को धारण करने वाला श्रेष्ठ आश्रमी होता है और शिव-परायण होने के कारण शिवाश्रमी कहा जाता है ।१५। शिवव्रत में जिसकी निष्ठा है, उसे किसी प्रकार का अशौच या सूतक नहीं लगता । ललाट के अग्रभाग में श्वेतभस्म एवं मृतिका का तिलक लगाना चाहिये ।१६। तिलक अपने हाथ से या गुरु के हाथ से लगवावे, यह शिवभक्त का लक्षण है । शिष्य में अपने गुणों को आरोपित करने वाले को ही गुरु कहा गया है ।१७। अथवा विकार रहित राजस गुणों को दूर करने वाले गुणातीत परत विद्या ही गुरुरूप हैं । क्योंकि गुरु को शिव रूप ही कहा गया है ।२८। अथवा विश्वास पात्र शिष्य के तीनों गुणों को क्षीण करके जो शिवजी का बोध करावे, उसी का नाम गुरु है ।१९। इसलिए विद्वान् गुरु का देह पूज्य लिंग है तथा गुरु लिंग का पूजन ही सच्ची गुरु सेवा है ।२०। मन, वचन और कर्म से गुरु सेवा करने को शास्त्र की प्राप्ति होती है । गुरु, का जो कुछ उपदेश शक्य या अशक्य कैसा भी हो, उसे माने ।२१।

करोत्येव हि पूतात्मा प्राणैरपि धनैरपि ।
तस्माद्वै शासने योग्यः शिष्य इत्यभिधीयते ।।२२

शरीराद्यर्थकं सर्वं गुरोर्गत्वा सुशिष्यकः ।
अग्रपाकं निवेद्याग्रे भुंजीपाद्गुर्वनुज्ञया ॥२३
शिष्यः पुत्र इति प्रोक्तः सदा शिष्यत्वयोगतः ।
जिह्वालिंगान्मन्त्रशुक्रं कर्णयोनौ निषिच्य वै ॥२४
जातः पुत्रो मंत्रपुत्रः पितरं पूजयेद्गुरुम् ।
निमज्जयति पुत्र वै संसारे जनकः पिता ॥२५
संतारयति ससाराद्गुरवै बोधकः पिता ।
उभयोरन्तर ज्ञात्वा पितरं गुरुमर्चयेत् ॥२६
अंगशुश्रूषया चापि धराद्यैः स्वार्जितैर्गुरुम् ।
पादादिकेशपर्यंतं लिंगान्यंगानि यद्गुरोः ॥२७
धनरूपैः पादुकाद्यैः पाद संग्रहणादिभिः ।
स्नानाषेकभिर्नैवेद्यै र्भोजनैश्च प्रपजयेत् ॥२८

प्राण या धन के द्वारा गुरु का आदेश संपादन करने वाला शिष्य आत्मा हो जाता है, इसलिए शासन के योग्य को ही शिष्य कहा गया है ।२२। श्रेष्ठ शिष्य शरीर आदि सब कुछ गुरु के समीप प्रदान करके भोजन की सामग्री प्रथम गुरु को निवेदन करे और फिर उनकी आज्ञा से स्वयं भोजन करे ।२३। शिष्य सदैव शिष्यत्व के योग्य होने से पुत्र ही है । जैसी जिह्वा रूपी इन्द्रिय से मंत्र रूप वीज कर्ण रूप गुहा में प्रविष्ट होने से इसकी उत्पत्ति होती है । इसी कारण इसे मंत्र-पुत्र कहा गया है । इसलिए शिष्य गुरु रूप पिता की सदा पूजा करे । उत्पन्न करने वाला पिता पुत्र को संसार में प्रत्यक्ष करता है ।२४-२५। परन्तु ज्ञान देने वाला संसार से पार लगा देता है । इस प्रकार दोनों का भेद जान कर गुरु रूप पिता का विशेष पूजन करे ।२६। अपने उपार्जित धनों से गुरु सेवा करे । चरण से शिर के केश पर्यन्त गुरु का सम्पूर्ण शरीर शिव लिंग के समान है ।२७। उनकी धन रूप से पादुकादि से, चरण दाबने से, अभिषेक और नैवेद्य से तथा भोजनादि से सत्कार करे ।२८।

गुरुपूजैवं पुजा स्याच्छिवस्य परमात्मनः ।
गुरुशेषं तु यत्सर्वमात्मशुद्धिकरं भवेत् ॥ २९

गुरोः शेष शिवोच्छिष्ठजलमन्नादिनिर्मितम् ।
शिष्याणां शिवभक्तानां ग्राह्यं भोज्य भवेद्द्विजाः ।।३०
गुर्वनुज्ञाविरहितं चोरवत्सकल भवेत् ।
गुरोरपि विशेषज्ञं यत्नाद् गृह्णीत वै गुरुम् ।।३१
अज्ञानमोचनं साध्य विशेषज्ञो हि मोचकः ।
आदौ च विघ्नशमनं कर्तव्यं कर्मपूर्तये ।।३२
निर्विघ्नेन कृतं सांगं कर्म वै सफलं भवेत् ।
तस्मात्सकलर्मादौ विघ्नेश पूजयेद्बुधः ।।३३
सर्वबाधानिवृत्यर्थ सर्वान्देवान्यजेद्बुधः ।
ज्वरादिग्रंथिरोगाश्च बाधा ह्याध्यात्मिकी मता ।।३४
पिशाचजंबुकादीनां वल्मीकाद्युद्भभे तथा ।
अकस्मादेव गोधादिजन्तूनां पतनेऽपि च ।।३५
गृहे कच्छप सर्पस्त्रीदुर्जनाद्दर्शनेऽपि च ।
वृक्षनारीगवादीनां प्रसूतिविषयेऽपि च ।।३६

गुरु के पूजन से ही भगवान् शिव का पूजन हो जाता है। गुरु के पूजन से शेष रहा द्रव्य आत्मा की शुद्धि करने वाला होता है।२९। जल तथा अन्नादि से निर्मित पदार्थ गुरु की पूजा से अवशिष्ट रहने पर शिवजी के उच्छिष्ट के तुल्य है, वह शिष्यों एवं भक्तों का ग्रहण करना चाहिए।३०। तथा गुरु की आज्ञा के बिना जो वस्तु ग्रहण की जाती है, वह चुरायी हुई वस्तु के समान है। गुरु भी विशेष विद्वान हो, उसी को वरण करना उचित है।३१। अज्ञान की दूर करना ही गुरु का कार्य है, और विशेष ज्ञानी गुरु ही अज्ञान को दूर करने में समर्थ है। पहिले कर्म पूर्ति के लिये विघ्नों की शान्ति होनी चाहिये।३२। विघ्न रहित तथा पूर्ण अंग से किया गया कर्म ही सफल होता है इसलिए सब कर्म के आदि में गणेशजी की पूजा करनी उचित है।३३। सब बाधाओं की शान्ति के हेतु ज्ञानी जन को सब देवताओं का यजन करना चाहिए। यह ज्वर, ग्रन्थि आदि सभी रोगों को दूर करने वाला है।३४। पिशाच जम्बुक आदि, वाल्मीकि आदि का उपद्रव तथा अक-

स्मात् गोधादि जन्तुओं का गिरना तथा घर में कच्छप, सर्प, स्त्री अथवा दुर्जनों का दिखाई देना अथवा वृक्ष, नारी और गौ आदि का प्रसव दिखाई देना।३५-३६।

भावि दुखं समायाति तस्मात्ते भौतिका मताः।
ममेध्याशनिपातश्च महामारी तथैव च ।।३७
ज्वरमारी विसूचिश्च गोमारी च मसूरिका।
जन्मर्क्षग्रहसंक्रांतिग्रसयोगाः स्वराशिके ।।३८
एतादृशे समुत्पन्ने भाविदुःखस्य सूचके।
शांतियज्ञं तु मतिमान्कुर्यात्तद्दोषशांतये ।।३९
देवालयेऽथ गोष्ठे वा चैत्ये वापि गृहांगणे।
प्रदेशोन्नतधिष्ण्ये वै द्विहस्ते च स्वलंकृते ।।४०
भारमात्रं व्रीहिधान्यं प्रस्थाप्य परिसृत्य च।
मध्ये विलिख्य कमलं तथा दिक्षु विलिख्य वै ।।४१
तंतुना वेष्टितं कुंभं नवगुग्गुलुधूपितम्।
मध्ये स्थाप्य महाकुंभं तथा दिक्ष्वपि विन्यसेत ।।४२

इनके दिखाई देने से भविष्य में दुःख की संभावना जाती है। इससे यह भौतिक पाप होते हैं। अपवित्र वस्तु, वज्र का गिरना तथा महामारी ज्वरमारी, विषूचिका, गौमारी, वसन्त रोग जन्म नक्षत्र पर ग्रहों का हो जाना, संक्रान्ति अथवा अपनी राशि पर ग्रहयोग का होना भौतिक पाप ही हैं।३७-३८। यह सब अरिष्ट भविष्य में दुःख होने के सूचक है। बुद्धिमान को इस दोष की शान्ति के लिए शान्ति-यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिए।३९। देवालय, गोष्ठ, यज्ञ स्थान, गृह अथवा आंगन में उच्च स्थान पर दो हाथ की वेदी बनाकर उसे अलंकृत करे।४०। आठ सहस्र तोले जो, धान्य स्थापित कर फैलावे और मध्य से कमल लिखकर दिशाओं में भी कमल लिखना चाहिए।४१। सूत से लपेटे हुए नवीन घट को धूप देकर मध्य में इस महाकुम्भ की स्थापना करे तथा दिशाओं के स्थान में भी कुम्भ स्थापित करे।४२।

सनालाम्रककूर्चादीन्कलशांश्च तथाष्टसु ।
पूरयेन्मंत्र पूतेन पंचद्रव्ययुतेन हि ॥४३
प्रक्षिपेन्नव रत्नानि नीलादीन्क्रमशस्तथा ।
कर्मज्ञः च सपत्नीकामाचार्यं वरेद्बुधः ॥४४
सुवर्णप्रतिमां विष्णोरिन्द्रादीनां च निक्षिपेत् ।
सांशरस्के मध्यकुंभे विष्णुमावाह्य पूजयेत् ॥४५
प्रागादिषु यथामन्त्रमिंद्रादीन्क्रमशो यजेत् ।
तत्तन्नाम्ना चतुर्थ्या च नमो-तेन यथाक्रमम् ॥४६
आवाहनादिकं सर्वमाचार्येणैव कारयेत् ।
आचार्य ऋत्विजा सार्धं तन्मन्त्रान्प्रजपेच्छतम् ॥४७
कुंभस्य पश्चिमे भागे जपांते होममाचरेत् ।
कोटि लक्षं सहस्रं वा शतमष्टोत्तरं बुधाः ॥४८
एकाहं वा नवाहं वा तथा मंडलमेव वा ।
यथायोग्यं प्रकुर्वीत कालदेशानुसारतः ॥४९

नाम सहित आम की कूची आदि वस्तुओं को आठ कलशों में पंच द्रव्य अर्थात् लौंग, कंकोल, अगर, जायफल, कपूर सहित डालें तथा मन्त्र पढ़कर उसे जल से भर दें ।४३। क्रम पूर्वक नील आदि नव-रत्नों को उसमें डाल दे तथा कर्म के ज्ञाता आचार्य को भार्या सहित वरण करे। उस घड़े में विष्णु और इन्द्रादि की स्वर्ण प्रतिमा डाल दे तथा पूर्ण पात्र युक्त उस मध्यम कुम्भ में भगवान् विष्णु का आह्वान तथा पूजन करे ।४४-४५। इन्द्राद्रि देवताओं की पूर्वादि दिशाओं में मन्त्र पूर्व के क्रम से पूजा करे तथा उन-उन देवताओं के नाम चतुर्थी विभक्ति युक्त ले और अन्त में नमः लगावें ।४६। आवाहनादि कृत्य आचार्य से करावें। उन विष्णु आदि देवताओं के मन्त्रों को आचार्य भी ऋत्विजों सहित सौ बार जपे ।४४। जप के अन्त में कुम्भ के पश्चिम भाग में आहुति दे। एक करोड़, एक लाख, एक सहस्र या एक सौ आठ आहुतियाँ देनी चाहिये ।४८। एक दिन नौ दिन या चालीस दिन देश काल के विचार पूर्वक यथायोग्य जप और हवन करना उचित है ।४६।

शमीहोमश्च शांत्यर्थे वृत्यर्थे च पलाशकम् ।
समिदन्नाज्यखैद्र व्यैर्नाम्ना मंत्रेण वा हुनेत् ।।५०
प्रारम्भे यत्कृत द्रव्यं तत्क्रितांतं समाचरेत् ।
पुण्याह वाचयित्वा ते दिने सप्रोक्षयेज्जलैः ।।५१
आवित्यादीन्ग्रहानिष्वा सर्वहोमांत एव हि ।
ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्यान्नवरत्नं यथाक्रमम् ।।५२
एवं कृतेन यज्ञेन दोषशांतियवाप्नुयात् ।
शांतियज्ञमिमं कुर्याद्विष वर्ष तु फाल्गुने ।।५३
शिवप्रदक्षिणात्सर्वं पातक नश्यति क्षणात् ।
दुःखस्य मूलं व्याधिर्हि व्याधेर्मूल हि पातकम् ।।५४
धर्मेणैव हि पापनामपनोदनमीरितम् ।
शिवोद्देशकृतो धर्मः क्षमः पापविनोदने ।।५५
अध्यक्षं शिवधर्मेषु प्रदक्षिणमितीरितम् ।
क्रियया जपरूपं हि प्रणवं तु प्रदक्षिणम् ।।५६

शान्ति के लिए शमी का हवन, वृद्धि के लिए पलाश का हवन तथा समिध अन्न धृत के पदार्थ और नाम मन्त्र उच्चारण पूर्वक हवन करना चाहिए ।५०। प्रारम्भ में जो द्रव्य किया जाता है, वही क्रिया के अन्त तक करना चाहिए । पुण्याहवाचन कराने के पश्चात् अन्त में कलशों के जल से प्रोक्षण करे ।५१। होम के अन्त में आदित्य आदि सब देवताओं का पूजन करें । तथा ऋत्विजों को भी यथाक्रम नवरत्न आदि को दक्षिणा प्रदान करे ।५२। इस प्रकार यज्ञ करने से दोषों की शान्ति हो जाती है । यह शान्ति यज्ञ प्रति वर्ष फाल्गुन मास में किया जाना उचित कहा है ।५३। शिवजी की प्रदक्षिणा करने से क्षण भर में सभी पापों का नाश होता है । दुःख का मूल व्याधि और व्याधि का मूल पाप कहा गया है ।५४। धर्म से ही पाप नष्ट होते हैं, शास्त्र का ऐसा ही मत है । शिवजी के निमित्त जो धर्म किया जाता है, वही पाप को नष्ट करने में समर्थ है ।५५। शिव धर्मों में प्रदक्षिणा का सर्वाधिक महत्व है तथा क्रियायुक्त जप स्वरूप ओंकार को ही प्रदक्षिणा माना गया है ।५६।

जननं मरणं द्वन्द्व मायाचक्रमितीरितम् ।
शिवस्य मायाचक्रे हि बलिपीठं तदुच्यते ।।५७
बलिपीठ समारभ्य प्रादक्षिण्यक्रमेण वै ।
पदे पदांतरं गत्वा बलिपीठं समाविशेत् ।।५८
नमस्कारं ततः कुर्यात्प्रदक्षिणमितीरितम् ।
निर्गमाज्जननं प्राप्तनवस्त्वात्मसमर्पणम् ।।५९

जन्म और मरण को माया-चक्र कहते हैं तथा शिवजी का माया-चक्र बलि पीठ कहा जाता है ।५७। बलि पीठ से प्रारम्भ करके प्रदक्षिणा के क्रम से दो चरण चलकर बलि पीठ के समीप पहुँचे ।५८। नमस्कार करने को प्रदक्षिणा कहते हैं । प्रदक्षिणा फिरने को जन्म तथा नमस्कार करने को आत्म-समर्पण कहा है ।५९।

।। वैदिक पार्थिव पूजन ।।

अथ वैदिकभक्तानां पार्थिवार्चा निगद्यत ।
वैदिकेनैव मार्गेण भुक्तिमुक्ति प्रदायिनी ।।१
सूत्रोक्तविधिना स्नात्वा सन्ध्यां कृत्वा यथाविधि ।
ब्रह्मयज्ञं विधायादौ ततस्तर्पणमाचरेत् ।।२
नैत्यिकं सकलं कामं विधायानंतरं पुमान् ।
शिवस्मरणपूर्वं हि भस्मरुद्राक्षधारकः ।।३
वेदोक्तविधिना सम्यक्संपूर्णफलसिद्धये ।
पूजयेत्परया भक्त्या पार्थिवं लिंगमुत्तमम् ।।४
नदीतीरे तडागे च पर्वते काननेऽपि च ।
शिवालये शुचौ देशे पार्थिवार्चा विधीयते ।।५
शुद्धप्रदेशसंभूतां मृदमाहृत्य यत्नतः ।
शिवलिङ्गं प्रकल्पेत सावधानतया द्विजाः ।।६
विप्रे गौरा स्मृता शोणा बाहुगे पीतवर्णका ।
वैश्ये कृष्णा पादजाते ह्यथवा यत्र या भवेत् ।।७

सूतजी ने कहा - वेद ज्ञाता भक्तों को पार्थिक पूजा कहा है । वैदिक मार्ग वाली पूजा भुक्ति-मुक्ति की दाता है ।१। अपने सूत के

विधान से स्नान करके विधिवत् संध्या करे, फिर ब्रह्म-यज्ञ करके तपण करना चाहिये।२। फिर इस पुरुष को सम्पूर्ण नित्य कर्म करना चाहिए। पश्चात् शिवजी का स्मरण करके भस्म और रुद्राक्ष को धारण करे।३। फिर वेदोक्त विधि के द्वारा सम्पूर्ण जल की सिद्धि के लिए परम भक्तिपूर्वक पार्थिव लिंग का पूजन करना चाहिए।४। नदी के किनारे, सरोवर के किनारे, पर्वत के ऊपर वन में, शिवालय में अथवा पवित्र देश में पार्थिव पूजा करने का विधान है।५। विप्रो ! पवित्र प्रदेश की मृतिका प्रयत्नपूर्वक लावे तथा सावधान होकर शिवलिंग का पूजन करे।६। ब्राह्मण में गौर, क्षत्रिय में रक्त, वैश्य में पीत तथा शूद्र में कृष्ण रंग को अथवा जैसी उपलब्ध हो सके वैसी मृतिका ले।८।

संगृह्य मृतिकां लिंगनिर्माणार्थं प्रयत्नतः।
अतीव शुभदेशे च स्थापयेत्तां मृदं शुभाम् ॥८
संशोध्य च जलेनापि पिंडीकृत्य शनैः शनैः।
विधीयेत शुभं लिंग पार्थिव वेदमार्गतः ॥६
ततः संपूजयद्भक्त्या भुक्तिमुक्तिफलाप्तये।
तत्प्रकारमहं वच्मि शृणुध्व सविधानतः ॥१०
नमः शिवायः मन्त्रेणार्चनद्रव्य च प्रोक्षपेत्।
भूरसीति च मंत्रेण क्षेत्रसिद्धि प्रकारयेत् ॥११
आपोऽस्मानिति मत्रेण जलसंस्कारमाचरेत्।
नमस्ते रुदमंत्रेण फाटिकाबधमुच्यते ॥१२
शंभवायेति मत्रेण क्षेत्रमुद्धि प्रकार तु।
नम पूर्वेण कुर्यात्पंचामृतस्यापि प्रोक्षणम् ॥१३
नीलग्रीवाय मंत्रेण नम पूर्वेण भक्तिमान्।
धरेच्छंकरलिंगस्य प्रतिष्ठापनमुत्तमम् ॥१४

उस मृतिका से यत्नपूर्वक लिंग का निर्माण करे और उसे मृतिका के ही अत्यन्त पवित्र स्थल में स्थापित करे।८। उनको जल योग से स्वच्छ कर धीरे-धीरे पिण्डाकार कर वेद विधि के द्वारा सुन्दर शिवलिंग का निर्माण करे।६। फिर भुक्ति-मुक्ति प्राप्त करने के निमित्त उस लिंग

का यथाविधि पूजन करे, अब तुम्हारे प्रति मैं उस पूजन का विधान कहता हूँ, तुम ध्यानपूर्वक श्रवण करो ।१०। 'नमः शिवाय' मन्त्र के द्वारा पूजन-सामग्री का प्रोक्षण करे और 'भूरसि' मन्त्र के द्वारा क्षेत्र की सिद्धि करनी चाहिए ।११। 'आपोस्मान्' मन्त्र द्वारा जल का संस्कार करना चाहिए तथा 'नमस्ते रुद्र' इस मन्त्र के द्वारा स्फाटिक बन्ध करना उचित है ।१२। 'नमः शंमवाय' मन्त्र से क्षेत्र शुद्धि करनी चाहिए तथा 'नमः' पूर्वक पंचामृत का प्रोक्षण करना चाहिए ।१३। भक्तिमान पुरुष को 'नमो नीलग्रीवाय' मन्त्र के द्वारा शिवलिंग की प्रतिष्ठा करनी चाहिए ।१४।

भक्तिस्तत एतत्ते रुद्रायेति च मंत्रतः ।
आसनं रमणीयं वै दद्याद्वैदिकमार्गकृत् ॥१५
मानो महान्तमिति च मंत्रेणावाहनं चरेत् ।
याते रुद्रेण संत्रेण सचरेदुपवेशनम् ॥१६
मंत्रेण यामिषुमिति न्यासं कुर्य्याच्छिवस्य च ।
अध्येवोचदिति प्रेम्णाधिवास मनुनाचरेत् ॥१७
मनुनासौ जीव इति देवतान्यासमाचरेत् ।
असौ योऽवसर्पतीति चाचरेदुपसर्पणम् ॥१८
नमोऽस्तु नीलग्रीवायेति पाद्यं मनुनाहरेत् ।
अर्घ्यं च रुद्रगायत्र्याऽऽचमनं त्र्यबकेणच ॥१९
पथः पृथिव्यामिति च पयसा स्नानमाचरेत् ।
दधिक्राब्णेति मंत्रेण दधिस्नानं च कारयेत् ॥२०
घृते स्नानं खलु घृतं घृतयावेति मन्त्रतः ।
मधुवाता मधुनक्तं मधुमान्न इति त्र्यृचा ॥२१
मधुखण्डस्नपनं प्रोक्तमिति पंचामृत स्मृतम् ।
अथवा पाशमन्त्रेण स्नान पंचामृतेन च ॥२२

'एतत्ते' मन्त्र के द्वारा भक्तिभाव पूर्वक तथा वेद विधि से सुन्दर एवं रमणीय आसन प्रदान करना चाहिए ।१५। 'मनो महान्त' इस मन्त्र के द्वारा आह्वान करे और 'याते रुद्र' मन्त्र के द्वारा उपवेश करना

चाहिए ।१६। 'यामिपुम्' इस मन्त्र से शिवजी का न्यास करके 'अवो-चदिति' मन्त्र के द्वारा प्रेम-पूर्वक अधिवासन करना चाहिए ।१७। 'असौ जीव' इस मन्त्र के द्वारा देव न्यास करना तथा 'असौयोऽवसर्पतीति' मन्त्र से उपसर्पण करना चाहिए ।१८। 'नमोस्तु नीलग्रीवाय' मन्त्र से पाद्य स्नान करके रुद्र गायत्री से अर्घ्य देना और 'त्र्यम्बक्, मंत्र से आचमन कराना चाहिए ।१९। 'दधिक्राव्ण' मन्त्र से दधि स्नान करावे तथा 'घृतंयाव' मन्त्र से घृत-स्थान और 'पय पृथिव्याम् से दुग्ध स्नान कराना चाहिए ।२०। 'मधुवाता' मधुनक्तं, मधुमान्' इन मन्त्रों के द्वारा मधु और खांड से स्नान करावे। यह पंचामृत है अथवा पाद्य मन्त्रों के द्वारा पंचामृत से स्नान कराना चाहिए ।२१-२२।

मानस्तोके इति प्रेम्णा मन्त्रेण कटिबंधनम् ।
नमो धृष्णवे इति वा उत्तरीयं च धापयेत् ॥२३
याते हेतिरिति प्रेम्णा ऋक्चतुष्केण वैदिकः ।
शिवाय विधिना भक्तश्चेद्वस्त्रसमर्पणम् ॥२४
नमः श्वभ्य इति प्रेम्णा गध दद्यादृता सुधीः ।
नमस्तक्षभ्य इति चाक्षतान्मन्त्रेण चार्पयेत् ॥२५
नमः पार्याय इति वा पुष्पं मन्त्रेण चार्पयेत् ।
नमः पर्ण्णाय इति वा विश्वपत्रसमर्पणम् ॥२६
नमः कपर्दिने चेति धूपं दद्याद्यथाविधि ।
दीपं दद्याद्यथोक्तं तु नम आशव इत्यृचा ॥२७
नमो ज्येष्ठाय मन्त्रेण दद्यान्नैवेद्यमुत्तमम् ।
मनुना त्र्यम्बकमिति पुनराचमनं स्मृतम् ॥२८

'मानस्तोके' मन्त्र से कटि बन्धन करे तथा 'नमो घृष्णवे' इससे उत्तरीय धारण करावे 'याते हेति इन चार मन्त्रों से प्रेमपूर्वक वस्त्र समर्पित करे ।२३-२४। 'नमः श्वभ्यः' मन्त्र से प्रेमपूर्वक गन्ध समर्पित करे और 'नमस्तक्षभ्यः' मन्त्र से अक्षत चढ़ावे ।२५। 'नमः पार्याय' मन्त्र से पुष्प भेंट करे तथा 'नम पर्ण्णाय' मन्त्र से बिल्वपत्र का समपर्ण करना चाहिए ।२६। 'नमः कपर्दिने' इस मन्त्र से धूप-दान करे तथा

'नमः आशवे' मन्त्र से दीप दिखावे।२७। 'नमो ज्येष्ठाय' मन्त्र से नैवेद्य देकर 'त्र्यम्बकम्' मन्त्र के द्वारा आचमन कराना चाहिए।२८।

इमा रुद्रायेति ऋचा कुर्यात्फलसमर्पणम्।
नमो व्रज्यायेतिऋचा सकलं शंभवेऽर्पयेत् ॥२९
मानो महांतमिति च मानस्तोके इति ततः।
मन्त्रद्वयेनैकादशाक्षतै रुद्रान्प्रपूजयेत् ॥३
हिरण्यगर्भ इति त्र्यृचा दक्षिणां हि समर्पयेत्।
देवस्यत्वेति मन्त्रेण ह्यभिषेकं चरेद्बुध ॥३१
दीपमन्त्रेण वा शंभोर्नीराजनविधिं चरेत्।
पुष्पांजलिं चरेद्भक्त्या इमा रुद्राय च त्र्यृचा ॥३२
मानोमहान्तमिति च चरेत्प्राज्ञ प्रदक्षिणाम्।
मानस्तोकेति मन्त्रेण साष्टांग प्रणमेत्सुधी ॥३३
एषते इति मन्त्रेण शिवमुद्रां प्रदर्शयेत्।
यतोयत इत्यभयां ज्ञानाख्यां त्र्यबकेण च ॥३४
नमःसेनेति मन्त्रेण महामुद्रां प्रदर्शयेत्।
दर्शयेद्धेनुमुद्रां च नमो गोभ्य ऋचाऽनया ॥३५
पंच मुद्राः प्रदर्श्याथ शिवमन्त्रजपं चरेत्।
शतरुद्रियमन्त्रेण जपेद्वेदविचक्षणा ॥३६
ततः पंचांगपाठं च कुर्य्याद्वेदविचक्षणः।
देवागात्विति मन्त्रेण कुर्याच्छंभोर्विसर्जनम् ॥३७

'इमा रुद्राय' मन्त्र से फल समर्पित करे और 'नमो व्रज्याय' मन्त्र से कलश अर्पित करे।२९। 'मानो महान्त' और 'मानस्तोके इन मन्त्रों से रुद्रों को अक्षत भेंट करे।३०। 'हिरण्य गभ' मन्त्र से दक्षिणा दे तथा 'देवस्यत्वो' मन्त्र से अभिषेक करे।३१। दीपमन्त्र से शिवजी का नीराजन करके 'इमारुद्राय' मन्त्र से पुष्पांजलि समर्पित करे।३२। 'मानो महान्त' मन्त्र से प्रदक्षिणा करे और 'मानस्तोके' मन्त्र से साष्टांग प्रणाम करना चाहिए।३३। 'ऐषते' मन्त्र से शिवजी को मुद्रा दर्शन करावे, 'यतोयत्' मन्त्र से तथा, त्र्यंबकं मन्त्र से, 'नमः सेनान्ये' मन्त्र

से महामुद्रा दिखावे एवं 'नमोगोभ्यः' मन्त्र से धेनु मुद्रा का दर्शन करावे ।३४-३५। फिर पांच मुद्रा को दिखाकर शिव मन्त्र का जप करे, वेद ज्ञाता को शत रुद्रिय मन्त्र का जप करना चाहिए ।३६। फिर वेदविज्ञ को पंचांग का पाठ करना चाहिए तथा 'देवागातु' मन्त्र से शिवजी का विसर्जन करना श्रेयस्कर है ।३७।

।। शिवनैवेद्यभक्षणनिर्णय और बिल्वमाहात्म्य ।।

अगाह्यं शिवनैवेद्यनिति पूर्वं श्रुतं वचः ।
ब्रूसि तन्निर्णयं विल्वमाहात्म्यमपि सन्मुने ।।१
शृणुध्वं मुनयः सर्वं सावधानतयाऽधुना ।
सर्वं वदामि सप्रीत्या धन्या यूय शिवव्रताः ।।२
शिवभक्त शुचिः शुद्धः सद्व्रती दृढ़निश्चयः ।
भक्षयेच्छिवनैवेद्यं त्यजेदग्राह्यभावनाम् ।।३
दृष्ट्वापि शिवनैवेद्ये यांति पापानि दूरतः ।
भक्ते तु शिवनैवेद्ये पुण्याग्यायांति कोटिशः ।।४
अल यागसहस्रेणाप्यल यागादुर्दैरपि ।
भक्षिते शिवनैवेद्ये शिवसायुज्यमाप्नुयात् ।।५
यद्गृहे शिवनैद्यप्रचारोऽपि प्रजायते ।
तद्गृह पावनं सर्वमन्यपावनकारणम् ।।६
आगत शिवनैवेद्यं गृहत्वा शिरसा मुदा ।
भक्षणीय प्रयत्नेन शिवस्मरणपूर्वकम् ।।७

ऋषियों ने कहा—शिवजी का नैवेद्य अग्राह्य सुना जाता है इसलिए आप उसके विषय में कहें और बिल्व का माहात्म्य भी सुनावें ।१। सूतजी बोले मुनिवरो ! तुम शिवजी के भक्त होने से धन्य हो । मैं सब वार्ता प्रीतिपूर्वक कहता हूं, ध्यान से श्रवण करो ।२। शिवजी का भक्त पवित्र शुद्ध, सद्व्रती दृढ़ निश्चयी होता है । वह शिवजी का नैवेद्य भक्षण करले तथा अग्राह्य भावना का त्याग कर दे ।३। शिवजी के नैवेद्य को दूर से देखकर भी पाप पालयमान कर जाते हैं

हैं तथा उसके भक्षण करने से अनेक पुण्यों की प्राप्ति होती है ।४। सहस्र और अरब यज्ञ करने से उतना क्या पुण्य है ? शिवजी का नैवेद्य भक्षण करने से उनके सायुज्य पद की प्राप्ति होती है ।५। जिस गृह में शिवजी के नैवेद्य का प्रचलन है वह गृह अत्यन्त पवित्र है तथा निकट के अन्य गृहों को भी पवित्र कर देता है ।६। शिवजी का नैवेद्य आता हुआ देखकर उसे शिर से ग्रहण और शिवजी का स्मरण करते हुए प्रयत्नपूर्वक भक्षण करे ।७।

आगतं शिवनैवेद्यमन्यदा ग्राह्यमित्यपि ।
विलंबे पापसंबन्धो भवत्येव हि मानवः ।।८
न यस्य शिवनैवेद्यग्रहणेच्छा प्रजायते ।
स पापिष्ठगरिष्ठः स्यान्नरकं यात्यापि ध्रुवम् ।।९
स्नापयित्वा विधानेन यो लिंगस्नपनोदकम् ।
त्रिः पिबेत्त्रिविधं पापं तस्येहाशु विनश्यति ।।१०
अग्राह्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् ।
शालग्रामशिलासंगात्सर्वं याति पवित्राम् ।।११
लिंगोपरि च यद्द्रव्यं तदग्राह्यं मुनीश्वराः ।
सुपवित्रं च तज्ज्ञेयं यल्लिंगस्पर्शबाह्यय: ।।१२
बिल्वमूले महादेवं लिंगरूपि मव्ययम् ।
यः पूजयाति पुण्यात्मा स शिवं प्राप्नुयाद्ध्रुवम् ।।१३
बिल्वमूले जलैर्यस्तु मूर्धानमभिषिंचति ।
स सर्वतीर्थस्नातः स्यात्स एव भुवि पावनः ।।१४

जो शिव के आये हुए नैवेद्य को अग्राह्य मानकर उसके भक्षण में विलम्ब करता है ।८। शिव का नैवेद्य ग्रहण करने की जिसे इच्छा नहीं होती, वह महापापी है, उसे नरक मिलता है ।९। विधि सहित स्नान कराये हुये लिंग के जल को तीन बार पीने से तीनों पाप नष्ट होते है ।१०। शिव का अग्राह्य नैवेद्य, पत्र, पुष्प, जल सब कुछ शालिग्राम शिला के स्पर्श से पवित्र हो जाता है ।११। हे मुनियों ! शिवलिंग के ऊपर का द्रव्य अग्राह्य है, परन्तु जो पदार्थ लिंग स्पर्श से

पृथक् हैं, उसे पवित्र समझो ।१२। लिंग-मूल में लिंग रूपी अविनाशी महादेव का पूजन जो पुण्यात्मा पुरुष करता है उसे ध्रुव कल्याण की प्राप्ति होती है ।१३। जो शिवजी पर बिल्वमूल में जल चढ़ाता है, उसे सब तीर्थों में स्नान का फल एवं पवित्ररूपता मिलती है ।१४।

एतस्य बिल्वमूलस्याथाल वालमनुत्तमम् ।
जलाकुलं महादेवी दृष्ट्वा तुष्टो भवत्यलम् ।।१५
पूजयेद्बिल्वमूलं यो गन्धपुष्पादिभिनरः ।
शिवलोकमवाप्नोति संततिर्वर्धते सुखम् ।।१६
बिल्वमूले दीपमालां यः कल्पयति सादरम् :
स तत्त्वज्ञानसंपन्नो महेशांगर्ततो भवेत् ।।१७
बिल्वशाखां समादाय हस्तेन नवपल्लवम् ।
गृहीत्वा पूजयेद्बिल्वं च पापैः प्रमुच्यते ।।१८
बिल्वमूले शिवरतं भोजयेद्यस्तु भक्तितः ।
एक वा कोटिगुणतं तस्य पुण्य प्रजायते ।।१९

इस बिल्वमूल के सब ओर जल से परिपूर्ण आलवाल को देखकर भगवान् शङ्कर प्रसन्न हो जाते हैं ।१५। जो भक्त बिल्वमूल में गन्ध पुष्पादि के द्वारा पूजन करता है, उसे शिवलोक की प्राप्ति होती तथा सन्तान और सुख बढ़ता है ।१६। जो मनुष्य बिल्वमूल में आदरपूर्वक दीपमाला की कल्पना करता है वह तत्वज्ञान से परिपूर्ण हो शिवजी के अन्तर्गत होता है ।१७। बिल्व की शाखा को लेकर उससे नवीन पत्र ग्रहण कर पूजन करता है, वह सभी प्रकार के पातकों से मुक्त हो जाता है ।१८। जो शिव भक्त को बिल्वमूल में भक्तिपूर्वक भोजन कराता है, उसे एक व्यक्ति को भोजन कराने में ही करोड़ को भोजन कराने का फल मिलता है ।१९।

।। शिवनाम महात्म्य ।।

सूत सूत महाभाग व्यासशिष्य नमोऽस्तु ते ।
तदेव व्यासतो ब्रूहि भस्ममाहात्म्यमुत्तमम् ।।१

तथा रुद्राक्षमाहात्म्यं नाममाहात्म्यमुत्तम् ।
त्रितयं ब्रूहि सुप्रीत्या ममानन्दय मानसम् ॥२
साधु पृष्टं भवद्भिश्च लोकानां हितकारकम् ।
भवन्तो वै महाधन्याः पवित्राः कुलभूषणाः ॥३
येषां चैव शिवः साक्षाद्दैवतं परमं शुभम् ।
सदाशिवकथा लोके वल्लभा भवतां सदा ॥४
ते धन्याश्च कृतार्थाश्च सफलं देहधारणम् ।
उद्धृतं च कुलं तेषां ये शिवं समुपासते ॥५
शिवनाम मुखे यस्य सदाशिवशिवेति च ।
पापानि न स्पृशत्येव खदिरांगारक यथा ॥६
श्रीशिवाय नमस्तुभ्यं मुख व्याहरते यदा ।
तन्मुखं पावनं तीर्थं सर्वपापविनाशनम् ॥७

ऋषियों ने कहा—हे व्यास—शिष्य सूतजी ! आपको नमस्कार है । आप हमारे प्रति भस्म का माहात्म्य की कहिये ।१। रुद्राक्ष महात्म्य भी कहिये । यह तीनों वार्ताएँ हमारे मन की प्रसन्नता हेतु करने की कृपा किजिये । आप धन्य हैं तथा पवित्र कुल के भूषण हैं । । जिनके लिये विश्व में शिवजी ही परमदेव हैं, उनको सदैव हीं शिव-कथा अत्यन्त प्रिय लगती है ।४। वे भक्त धन्य एवं कृतार्थ हैं, उनका देह धारण करना फलयुक्त है, जिन्होंने शिवजी की उपासना की, जिन्होंने अपने कुल का उद्धार कर दिया ।५। जिसके मुख में सदैव 'शिव' नाम रहता है उसे पाप उसी प्रकार स्पर्श नहीं करते जिस प्रकार खैर अङ्गार को स्पर्श नहीं कर सकता ।६। भगवान् शङ्कर को नमस्कार है' जो मनुष्य इस प्रकार कहता है, उसका मुख सब पापों के नष्ट करने वाला है ।७।

तन्मुखं च तथा यो वै पश्यति प्रीतिमान्नरः ।
तीर्थजन्यं फलं तस्य भवतीति सुनिश्चितम् ॥८
यत्र त्रयं सदा तिष्ठेदेतच्छुभतरं द्विजाः ।
तस्य स्पर्शनमात्रेण वेणीस्नानफलं लभेत् ॥९

शिवनामविभूतिश्च तथा रुद्राक्ष एव च ।
एतत्त्रय महापुण्यं त्रिवेणीसदृशं स्मृतम् ।।१०
एतत्त्रय शरीरे च यस्य तिष्ठति नित्यशः ।
तस्यैव दर्शनं लोके दुर्लभं पापहारकम् ।।११
तद्दर्शनं तथा वेणो नोभयोरंतर मनाक ।
एव यो न विजानाति स पापिष्ठो न संशयः ।।१२
विभूतिर्यस्य नो भाले नांगे रुद्राक्षधारणम् ।
नास्ते शिवमयी वाणी त त्यजेदधमं यथा ।।१३
शैव नाम यथा गङ्गा विभूतिर्यमुना मता ।
रुद्राक्ष विधिना प्रोक्ता सर्वपापविनाशिनी ।।१४

जो प्रीतियुक्त मनुष्य उसके मुख का दर्शन करे उसको तीर्थ के फल की प्राप्ति होती है ।८। विप्रो ! यह मङ्गलमय प्राणी जहाँ-जहाँ स्थित होता है, उस-उस स्थान के दर्शन मात्र से ही वेणी के स्नान का फल उपलब्ध होता है ।९। भगवान् शिव का नाम स्मरण, विभूति लगाना एवं रुद्राक्ष धारण करना, अत्यन्त पावन वेणी फल के समान है ।१०। इन तीनों को नित्य ही देह में स्थित देखने वाले उस पाप-नाशक महात्मा का दर्शन लोक में दुर्लभ है ।११। उसका दर्शन वेणी के समान है । इस प्रकार न मानने वाला व्यक्ति पापाचारी समझना चाहिये ।१२। जिस मनुष्य के मस्तक पर विभूति नहीं, शरीर में रुद्राक्ष नहीं तथा मुख में भगवान् शिव से युक्त वाणी नहीं उसे अधम के समान त्याग देना चाहिये ।१३। शिवजी का नाम गङ्गा, यमुना, विभूत्ति और रुद्राक्ष यह सब पाप का नाश करने वाली सरस्वती कही गयी है ।१४।

शरीरे च त्रयं यस्य तत्फल चौकतः स्थितम् ।
एकतो वेणिकायाश्च स्नाजंतु फलं बुधैः ।।१५
तदेवं तुलित पूर्वं ब्रह्मणा हितकारिणा ।
समानं चैव तज्जातं तस्माद्धार्यं सदा बुधैः ।।१६
तद्दिनं हि समारभ्य ब्रह्मविष्ण्वादिभिःसुरैः ।
धार्यते त्रितयं तच्च दर्शनात्पापहारकम् ।।१७

ईदृशं हि फलं प्रोक्तं नामादित्रतयोद्भवम् ।
तन्माहात्म्यं विशेषेण वक्तुमर्हसि सुव्रत ॥१८
ऋषयो हि महाप्रज्ञाः सच्छ्रैवा ज्ञानिनां वराः ।
तन्माहात्म्यं हि सद्भक्त्या श्रृणुतादरतो द्विजाः ॥१९
स गूढमपि शास्त्रेषु पुराणेषु श्रुतिष्वपि ।
भवत्स्नेहान्मया विप्राः प्रकाशः क्रियतेऽधुना ॥२०
कस्तत्त्रितयमाहात्म्यं सजानाति द्विजोत्तमाः ।
महेश्वरं विना सर्वं ब्रह्माण्डे सदसत्परम् ॥२१

जिस मनुष्य के देह में तीनों स्थित हैं, उसका फल भी इसमें स्थित है। वेणी के स्नान के समान ज्ञानियों ने इसका फल बताया है ।१५। संसार के हितार्थ ब्रह्माजी ने इसे तोला था, उस समय यह बराबर हीं बैठा। इसलिये विद्वानों को सदा ही विभूति धारण करनी चाहिये ।१६। उसी दिन से ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं ने इन तीनों को धारण करने का नियम बनाया है, यह दर्शन मात्र से ही पापनाशिनी है ।१८। ऋषियों ने पूछा कि जब तीनों के नाम का ऐसा फल कहा गया है तो आप कृपा करके उनका माहात्म्य हमारे प्रति विशेष रूप से कहें ।१८। सूतजी ने कहा - हे ऋषियों ! तुम ज्ञानियों में श्रेष्ठ महा-पंडित एवं शिवजी के भक्त हो, अतः आदर सहित इनका माहात्म्य सुनो ।१९। यह शास्त्र पुराण और श्रुतियों में भी गूढ़ हैं, हे ऋषियों तुम्हारे स्नेह के कारण उसे मैं अब प्रकट कर रहा हूँ ।२०। हे विप्रो ! इन तीनों का माहात्म्य पूर्ण रूप से कौन जान सकता है ? उसे इस ब्रह्माण्ड में सत् और असत् से परे शिवजी ही जानते हैं ।२१।

वच्म्यहं नाममाहात्म्यं यथाभक्ति समासतः ।
श्रृणुत प्रीतियो विप्राः सर्वपापहरं परम् ॥२२
शिवेति नामदावाग्नेर्महापातकपर्वताः ।
भस्मीभवन्त्यनायासात्यसत्यं न संशयः ॥२३
पापमूलानि दुःखानि विविधान्यपि शौनक ।
शिवनामैकनश्यानि नान्यनश्यानि सर्वथा ॥२४

स वैदिकः स पुण्यात्मा स धन्या स बुधो मतः ।
शिवनामजपासक्तो यो नित्य भुवि मानवः ।।२५
भवति विविधा धर्मास्तेषां सद्यः फलोन्मुखाः ।
येषां भवति विश्वासः शिवनामजपे मुने ।।२६
पातकानि विनश्यंति यावन्ति शिवनामतः ।
भुवि तावन्ति पापानि क्रियंते व नरैर्मुने ।।२७
ब्रह्महत्यादि पापानां राशीनप्रमितान्मुने ।
शिवनाम द्रुतं प्रोक्तं नाशयत्यखिलान्नरैः ।।२८

मैं संक्षेप से नाम माहात्म्य यथाशक्ति कहता हूँ । हे विप्रो ! उस सम्पूर्ण पाप का नाश करने वाले नाम की महिमा प्रीति सहित सुनो । ।२२। शिव' नाम ही पाप स्वरूप महा पर्वतों को भस्म करने वाला दावाग्नि है । इसके उच्चारण से ही पाप भस्म हो जाते हैं, इससे संशय नहीं है ।२३। हे शौनक ! पाप से उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के दुःख हैं, वे सब केवल एक 'शिव' नामोच्चारण से ही नष्ट हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है ।२४। जो मनुष्य इस पृथिवी पर शिव नाम का जाप करता है, वही वैदिक, पुण्यात्मा एवं पण्डित है वही धन्य है ।२५। जिस मनुष्य को 'शिव' नाम में विश्वास होता है, उसे शीघ्र फल प्रदान करने वाले अनेक धर्म प्रकट हो जाते हैं ।२६। 'शिव' नाम से मनुष्य पवित्र होता है, और पाप भी नष्ट हो जाते हैं । पृथिवी पर इतने तो पाप भी नहीं हैं, न मनुष्य करते हैं, जितने 'शिव' के नाम से नष्ट हो जाते हैं ।२७। हे विप्रो ! 'शिव' नाम के उच्चारण करते ही ब्रह्महत्या आदि पापों के बड़े ढेर भी समूल नष्ट हो जाते हैं ।२८।

शिवनामतरीं प्राप्य संसाराब्धि तरन्ति ये ।
संसारमूलपापानि तानि नश्यन्त्यसंशयम् ।।२९
संसारमूलभूतानां पातकानां महामुने ।
शिवनामकुठारेण विनाशो जायते ध्रुवम् ।।३०
शिवनामामृतं पेयं पापदावानलार्दितैः ।
पापादवाग्नितप्तानां शांतिस्तेन विना न हि ।।३१

शिवेति नामपीयूषवर्षधारापरिप्लुताः ।
संसारदवध्येऽपि न शोचंति कदाचनः ॥३२
शिवनाम्नि महद्भक्तिजाता येषां महात्मनाम् ।
तद्विधानां तु सहसा मुक्तिर्भवति सर्वथा ॥३३
अनेकजन्मभिर्येन तपस्तप्त मुनीश्वर ।
शिवनाम्नि भवेद्भक्तिः सर्वपापापहारिणी ॥३४
यस्यासाधारणी शम्भुनाम्नि भक्तिरखंडिता ।
तस्येव मोक्षः सुलभो नान्यस्येति मतिर्मम ॥३५

जो मनुष्य 'शिव नाम की नौका को पाकर इस संसार-सागर से पार ही जाते हैं, उनके सभी सांसारिक पाप नष्ट होते हैं, इसमें संशय नहीं ।२६। हे महामुने ! संसार के मूल रूप समस्त पापों का शिव' नाम रूपी कुठार से समूल नाश हो जाता है ।३०। पाप स्वरूप दावाग्नि से दग्ध हुए मनुष्यों को शिव नाम रूप अमृत पीना चाहिये, उसके बिना उन मनुष्यों को शान्ति लाभ नहीं होता ।३१। जो मनुष्य शिव नाम रूप अमृत की धारा से प्लुत हो चुके हैं, वे संसार रूप अग्नि में स्थित होकर भी कभी सोच नहीं करते ।३२। जिन महात्माओं को शिव नाम की महाशक्ति प्राप्त हो चुकी है, उनकी मुक्ति तत्काल ही हो जाती है ।३३। हे मुनिवरो ! अनेक जन्म तक तप करने वालों के सम्पूर्ण पापों को हरण करने वाली भी शिव शक्ति ही है ।३४। जिसको शिवजी के साधारण नाम की भी अखण्ड भक्ति प्राप्त है, उसको मोक्ष नितान्त सुलभ है, अन्य को नहीं यह मेरा मत है ।३५।

कृत्वाप्यनेकपापानि शिवनाजपादरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्ता भवत्येव न संशयः ॥३६
भवन्ति भस्मसाद्वृक्षा दवदग्धा यथा वने ।
तथा तावन्ति दग्धानि पापानि शिवनामतः ॥३७
यो नित्यं भस्मपूतांगः शिवनामजपादरः ।
स तरत्येव संसारमघोरमपि शौनक ॥३८
ब्रह्मस्वपरणं कृत्वा हत्वापि ब्रह्मणान्बहून् ।

न लिप्यते नरः पापैः शिवनामजपादरः ॥३९
विलोक्य वेदानखिलाच्छिवनामजपः परः।
संसारतरणोपाय इति पूर्वैविनिश्चतम् ॥४०
किं वहूक्त्या मुनिश्रेष्ठाः श्लोकेनैकेन वच्म्यहम्।
शिवनाम्नो महिमानं सर्वपापापहारणम् ॥४१
पापानां हरणं शम्भोर्नाम्नः शक्तिर्हि पावनी।
शक्नोति पातकं तावत्कर्तुं नापि नरः क्वचित् ॥४२

अनेक पाप कर लेने पर भी जो मनुष्य शिव नाम का जप आदर-पूर्वक करता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है।३६। जैसे बन में प्रकट दावानल से वृक्ष भस्म हो जाते हैं, वैसे ही शिव नाम के प्रभाव से सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं।३७। जो मनुष्य अपने देह में नित्यप्रति भस्म लगाता और आदर सहित शिव नाम को जपता है, वह इस घोर संसार से पार हो जाता है।३८। ब्राह्मणों का द्रव्य हरने वाला या ब्राह्मणों का बध करने वाला भी भक्ति पूर्वक शिव नाम का जाप करने से पाप लिप्त नहीं होता है।३९। शिव नाम ही परम जप है तथा यही संसार-सागर से तरने का उपाय है, पूर्वजों ने ऐसा निष्कर्ष सम्पूर्ण वेदों को देखकर किया था।४०। हे मुनियों! अधिक क्या कहूँ, मैं एक श्लोक में ही यह बताये देता हूँ कि शिव नाम की महिमा सम्पूर्ण पापों को नष्ट करती है।४१। पापों का हरण करने में शिवजी की शक्ति महापावनी कही है। जितना इसका प्रभाव है, उतना तो पाप भी मनुष्य नहीं कर सकता।४२।

शिवनामप्रभावेण लेभे सद्गतिमुत्तमाम्।
इन्द्रद्युम्ननृपः पूर्वं महापापयुतो मुने बहुपापिनी।
तथा काचिद्द्विजा योषाऽसौमनु बहुपापिना।
शिवनाम प्रभावेण लेभे सद्गतिमुत्तमाम् ॥४४
इत्युक्तं वो द्विजश्रेष्ठा नाममाहात्म्यमुत्तमम्।
शृणुध्वं भस्ममाहात्म्य सर्वपावनपावनम् ॥४५

प्राचीन काल में इन्द्रद्युम्न नाम का एक अत्यन्त पापी राजा हुआ था ।४३। तथा एक ब्राह्मण की महापापिनी स्त्री थी, शिव नाम के प्रताप से उनको भी पवित्र गति की प्राप्ति हो गई थी ।४४। हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार तुम्हारे प्रति नाम का श्रेष्ठ माहात्म्य कहा है । अब सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाला, भस्म-माहात्म्य श्रवण करो ।४५।

॥ भस्म का माहात्म्य ॥

द्विविधं भस्म संप्रोक्तं सर्वमङ्गलदं परम ।
तत्प्रकारमहं वक्ष्ये सावधानतया शृणु ॥१
एकं ज्ञेय महाभस्म द्वितीयं स्वल्पसंज्ञकम् ।
महाभस्म इति प्रोक्तं भस्म नानाविधं परम् ॥२
तद्भस्म त्रिविधं प्रोक्तं श्रौतं स्मार्तं च लौकिकम् ।
भस्मैव स्वल्पसं हि वहुधा परिकीर्यितम् ॥३
श्रौतं भस्म तथा स्मार्तं द्विजानामेव कीर्तितम् ।
अन्येषामपि सर्वेषामपरं भस्म लौककम् ॥४
धारणं मन्त्रतः प्रोक्तं द्विजानां मुनिपुङ्गवे. ।
केवलं धारणं ज्ञेयमन्येषां मंत्रवर्जितम् ॥५
आग्नेयमुच्यते भस्म दग्धगोमयसंवभम् ।
तदपि द्रव्यमित्युक्तं त्रिपुंड्रस्य महामुने ॥६
अग्निहोत्रोत्थितं भस्म संग्राह्यं वा मनीषीभिः ।
अन्ययज्ञोत्थितं वापि त्रिपुंड्रस्य च धारणे ॥७

सूतजी ने कहा—सम्पूर्ण मंगलों को प्रदान करने वाली भस्म के दो प्रकार कहे गये हैं, उनका वर्णन करता हूँ । सावधानी से सुनो ।१। एक प्रकार की महाभस्म कही गई है, दूसरी स्वल्प बतायी गई है । महाभस्म के अनेक प्रकार बताये गये हैं ।२। उसके तीन प्रकार कहे हैं—श्रौत, स्मार्त और लौकिक तथा स्वल्प संज्ञक भस्म अनेक प्रकार की कही गयी है ।३। ब्राह्मणों के लिये श्रौत और स्मार्त भस्म का विधान है तथा अन्य व्यक्तियों के निमित्त लौकिक भस्म कही गयी हैं ।४। ब्राह्मणों को भस्म

धारण करना मन्त्रों से कहा गया है, परन्तु अन्यों के लिये भस्म धारण में मन्त्र वर्जित बताये गये हैं।५। हे महामुने! गोबर से निर्मित भस्म आग्नेय कही गयी है। त्रिपुण्ड्र का द्रव्य यही माना गया है।।। अथवा विद्वानों के लिये अग्निहोत्र की भस्म धारण करना कहा है तथा अन्य यज्ञ से उपलब्ध भस्म त्रिपुण्ड्र धारण में उचित है।७।

अग्निरित्यादिभिमन्त्रैर्जाबालोपनिषद्गतः।
सप्तभिर्धूलनं कार्यं भस्मना सजलेन च ॥८
वर्णानामाश्रमाणां च मंत्रतोऽमन्त्रतोऽपि च।
त्रिपुंड्रोद्धूलनं प्रोक्तं जाबालैरादरेण च ॥९
भस्मनोद्धूलनं चैव यथा तिर्यक्त्रिपुण्ड्रकम्।
प्रमादादपि मोक्षार्थी न त्यजेदिति विश्रुतिः ॥१०
शिवेन विष्णुनाचैव तथा तिर्यत्रिपुण्ड्रकम्।
उमा देवी च लक्ष्मीश्च वाचान्याभिश्च नित्यशः ॥११
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्य-मूद्रैरपि च संकरैः।
अपभ्रंशैर्धतं भस्म त्रिपुण्ड्रोद्धूलनात्मना ॥१२
उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च श्रद्धया ताचरन्ति ये।
तेषाँ नास्ति समाचारो वर्णाश्रमसमन्वितः ॥१३
उद्धूलनं त्रिपुंड्रं च श्रद्धया नाचरन्ति ये।
तेषां नास्ति विनिर्मुक्तिः संसाराज्जन्मकोटिभिः ॥१४

अग्निरित्यादि मन्त्रों से भस्म को जल—जाबाल उपनिषद् में कहे हुए योग से सात बार शरीर में धारण करे।१८। जाबाल ने वर्णों तथा आश्रमों को आदर सहित मन्त्रों से त्रिपुण्ड्र का धारण करना कहा है।६। श्रुति के अनुसार शरीर में भस्म धारण करना और तिरछा त्रिपुण्ड्र लगाना इस कार्य का कभी त्याग न करे।१०। शिव विष्णु से तिरछा त्रिपुण्ड्र धारण किया जाने पर भगवती उमा और लक्ष्मीजी से नित्य प्रशंसा को प्राप्त होता है।११। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णसंकर तथा अपभ्रंशों वाली जातियों द्वारा भी त्रितुण्ड्र और भस्म को धारण किया गया है।१२। जो वर्णाश्रमी श्रद्धापूर्वक भस्मलेप और त्रिपुण्ड्र

धारण नहीं करते, उनका वर्णाश्रम युक्त सदाचार नहीं माना जाता ।१३।
जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक त्रिपुण्ड्र और शरीर पर भस्म धारण नहीं करते
वह करोड़ जन्मों में भी ससार से मुक्त नहीं हो पाते ।१४।

जद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च श्रद्धया नाचरन्ति ये ।
तेषां नास्ति शिवज्ञानं कल्पकोटिशतैरपि ॥१५
इद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च श्रद्धया नाचरन्ति ये ।
ते महापातकैर्युक्ता इति शास्त्रीयनिर्णय. ॥१६
उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च श्रद्धया नाचरन्ति ये ।
तेषामाचरितं सर्वं विपरीतफलाय हि ॥२७
महापातकयुक्तानां जन्तूनां सर्वविद्विषाम् ।
त्रिपुण्ड्रोद्धूलनं द्वेषो जायते सुदृढं मुने ॥१८
शिवाग्निकार्यं यः कृत्वा कुर्यात्त्रियायुषात्तवित् ।
मुच्यते सर्वपापैस्तु स्पृष्टेन भस्मना नरः ॥१९
सितेन भस्मना कुर्यात्त्रिसन्ध्य यस्त्रिपुण्ड्रकम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवेन सह मोदते ॥२०
सितेन भस्मना कुर्याल्ललाटे तु त्रिपुण्ड्रकम् ।
योऽसावनादिभूताह्नि लोकानाप्तो मृतो भवेत् ॥२१

श्रद्धापूर्वक शरीर पर भस्म लेपन और त्रिपुण्ड्र धारण न करने वाले मनुष्यों को सौ करोड़ कल्प में भी शिव ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती ।१५। शास्त्र का निर्णय है कि श्रद्धा सहित शरीर पर भस्म लेपन और त्रिपुण्ड्र धारण जो मनुष्य नहीं करते वे अत्यन्त पापी हैं ।१६। श्रद्धापूर्वक भस्म लेपन और त्रिपुण्ड्र धारण न करने वाले मनुष्यों के सभी आचरण विपरीत फल को उत्पन्न करने वाले होते हैं ।१७। हे मुने ! त्रिपुण्ड्र और भस्म से द्वेष उन्हीं का है, जो प्राणी सब जीवों से द्वेष करने वाले तथा महा पापों से युक्त है ।१८। जो ज्ञानी पुरुष 'शिवाग्नि' से 'त्र्यायुषेति' मन्त्र से भस्म धारण करता है, वह भस्म का स्पर्श होते ही सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है ।१९। जो मनुष्य तीनों सन्ध्याओं में श्वेत भस्म से त्रिपुण्ड्र धारण करता है, वह सम्पूर्ण पापों से छूट कर शिवसङ्ग प्राप्तकर

प्रसन्न होता है ।२०। जो मनुष्य श्वेत भस्म से ललाट में त्रिपुण्ड धारण करता है, वह अनादि भूतलोकों में अमृत हो जाता है ।२१।

अकृत्वा भस्मना स्नानं न जपेद्वै षडक्षरम् ।
त्रिपुंड्रं च रचित्वा तु विधिना भस्मना जपेत् ॥२२
अदयो वाधमो वापि सर्वपापान्वितोऽपि वा ।
उषापापान्वितो वापि मूर्खो वा पतितोऽपि वा ॥२३
यस्मिन्देशे वसेन्नित्य भूतिशासनसंयुतः ।
सर्वतीर्थैश्च क्रतुभिः सान्निध्यं क्रियते सदा ॥२४
त्रिपुण्ड्रसहितो जीवः पूज्यः सर्वैः सुरासुरैः ।
पापान्वित्तोऽपि शुद्धात्मा किं पुनः श्रद्धया युतः ॥२५
यस्मिन्देशे शिवज्ञानी भूतिशासनसंयुतः ।
गतो यदृच्छयाधापि तस्मिस्तीर्था समागतः ॥२६
वहूनात्र किमुक्तेन धार्यं भस्म सदाबुधैः ।
लिंगार्चन सदाकार्यं जप्यो मन्त्रः षडक्षरः ॥२७
ब्रह्मणा विष्णुना वापि रुद्रेण मुनिभिः सुरैः ।
भस्मधारणमाहात्म्यं न शक्यं परिभाषितुम् ॥२८

भस्म से स्नान किये बिना षडक्षर का जप नहीं करना चाहिये । भस्म का त्रिपुण्ड लगाकर ही विधि पूर्वक जप करना उचित है ।२२। दया से रहित अधम सम्पूर्ण पापों से युक्त हत्या के पाप वाला, अथवा मूर्ख या पतित कैसा भी मनुष्य क्यों न हो ।२३। जिस देश में भस्म धारण पूर्वक निवास करता है, वहीं सम्पूर्ण तीथा और यज्ञों का निवास समझना चाहिये ।२४। त्रिपुण्ड्रयुक्त मनुष्य देवता और दैत्यों से भी पूजित होता है । यदि वह पापी भी है तो शुद्धात्मा हो जाता है, फिर अन्य की तो बात ही क्या है ।२५। शिवज्ञानी पुरुष जिस देश में भूति-शासन से युक्त निवास करता है, वह सभी तीर्थों का स्थल रूप समझना चाहिये ।२६। अधिक कथन से क्या ? विद्वानों को सदा ही भस्म धारण लिंग पूजन और षडक्षर मन्त्र का जप करना श्रेयस्कर है ।२७। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, मुनि तथा देवता भी भस्म धारण करने के माहात्म्य को

कहने में समर्थ नहीं हैं ।२८।

इति वर्णाश्रमाचारो लुप्तावर्णक्रियोऽपि च ।
पापात्सकृत्त्रिपुण्ड्रस्य धाराणात्सोपि मुच्यते ॥२९
ये भस्माधारिणं त्यक्त्व कर्म कुर्वन्तिमानवाः ।
तेषां नास्ति विनिर्मोक्षः संसाराज्जन्मकोटिभिः ॥३०
तेनाधीतं गुरोः सर्वं तेन सवनुष्ठितम् ।
येन विप्रेन शिरसि त्रिपुड्रं भस्मना कृतम् ॥३१
ये भस्मधारिणं दृष्ट्वा नराः कुर्वंति ताडनम् ।
तेषां चंडालतो जन्म ब्रह्मन्नेह्यं विपश्चिता ॥३२
मनस्तोकेन मंत्रेण मंत्रितः भस्म धारयेत् ।
ब्राह्मणः क्षत्रियश्चैव प्रोक्तेष्वंगेषु भक्तिमान् ॥३३
वैश्यस्त्रियंबकेनव शूद्रः पञ्चाक्षरेण तु ।
अन्यासां विधवास्त्रीणां विधिः प्रोक्तश्च शूद्रवत्ः ॥३४
पंचब्रह्मादिमनुभिर्गृहस्थस्य विधीयते ।
त्रियम्बकेन मनुना विधिर्वैब्रह्मचारिणः ॥३५

इस प्रकार जिसने वर्णाचार और वर्ण की क्रिया को लुप्त कर दिया है, वह एक बार त्रिपुण्ड धारण करने से ही पाप-मुक्त हो जाता है। भस्म धारण करने वाले का त्याग जो मनुष्य करते हैं उनकी करोड़ जन्म धारण करने पर भी संसार से मोक्ष नहीं होती। जिस ब्राह्मण ने त्रिपुण्ड धारण किया उसने गुरु के समीप सब कुछ पढ़ लिया और अनुष्ठान कर लिया समझो। जो मनुष्य भस्मधारी को देखकर उसे फटकार देते हैं, उन मनुष्यों को चांडाल योनि से उत्पन्न समझना चाहिये ।२९-३२। 'मानस्तोके मन्त्र से अभिमन्त्रित भस्म का धारण करे और ब्राह्मण, क्षत्रिय इसे भक्तिपूर्वक देह पर लगावें वैश्य को 'त्र्यम्बक' मन्त्र से अभिमन्त्रित भस्म धारण करनी चाहिये तथा शूद्र और विधवा स्त्री को पंचाक्षर मत्र से भस्म लगानी चाहिये। मनु ने गृहस्थ के लिये पंचब्रह्म के मन्त्र कहे हैं और ब्रह्मचारी के लिये 'त्र्यंबकम' मन्त्र से लेप करना कहा है ।३३-३५।

अघोरेणाथ मनुना विपिनस्थाविधिस्मृतः ।

यतिस्तु प्रणवेनैव त्रिपुण्ड्रादीनि कारयेत् ॥३६
अतिवर्णाश्रमी नित्यं शिवोऽहंभावनात्परात्
शिवयोगी च नियतमीशानेनापि धारयेत् ॥३७
न त्याज्यं सर्ववर्णैश्च भस्मधारणमुत्तमम् ।
अन्यैरपि यथा जीवैः सदेति शिवशासनम् ॥३८
भस्मस्नानेन यावंतः कणाः स्वांगे प्रतिष्ठिताः ।
तावन्ति शिवलिंगानि तनौ धत्ते हि धारकः ॥३९
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चापि च संकराः ।
स्त्रियोऽथ विधवा बालाः प्राप्तः पाखंडिकास्तथा ॥४०
ब्रह्मचारी गृही वन्यः संन्यासी वा व्रती तथा ।
नार्यो भस्म त्रिपुंड्रांका मुक्ता एव न संशयः ॥४१
ज्ञानाज्ञानधृतो वापि वह्निदाहसमो यथा ।
ज्ञानाज्ञाधृतं भस्म पावमेत्सक्ल नरम् ॥४२

वन मे रहने वालों को अघोर मन्त्र की विधि कही है तथा यति के लिये प्रणव से ही त्रिपुण्ड लगाना कहा है ।३६। अतिवर्णाश्रमी को 'शिवोह' की भावना करके धारण करना और शिवयोगी को ईशान मन्त्र से धारण करने की विधि कही है ।३७। किसी भी वर्ण को भस्म धारण के त्याग का निर्देश नहीं है तथा अन्य जीव भी इसको धारण करे, ऐसी शिवजी की आज्ञा है ।३८। अपने शरीर में जितने कण भस्म-स्नान के द्वारा प्रविष्ट होते हैं, उतने ही शिवलिंग वे अपने देह में धारण करते हैं । ०। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्णसंकर स्त्री, विधवा बालक अथवा पाखण्डी आदि कोई भी क्यों न हो ।४०। ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वनवासी, सन्यासी, व्रती तथा स्त्री यह सभी भस्म धारण करने से मुक्त हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है ।४१। ज्ञान या अज्ञान से धारण की हुई अग्नि दोह के तुल्य है, वैसे ही ज्ञान या अज्ञान से धारण की हुई भस्म मनुष्य को सदा पवित्र कर देती है ।४२।

नाश्नीयाज्जलमन्नमल्पमपि वा भस्माक्षधृत्या विना ।
भुक्त्वा वाथ गृही वनीपतियतिर्वर्णी तथा संकरः ॥४३

एनोभुङ् नरक प्रयाति स तदा गायत्रिजापेन ।-
द्वर्णानां तु यतेस्तु मुख्यप्रणवाजापेन मुक्तिर्भवेत् ।।४३
त्रिपुण्ड्रं ये विनिन्दति निन्दन्ति शिवमेव ते ।
धारयन्ति च ये भक्त्या धारयन्ति तमेव ते ।।४४
धिग्भस्मरहितं भालं धिग्ग्राममशिवालयम् ।
धिगनीशार्चनं जन्म धिग्विद्यामशिवाश्रयाम् ।।४५
ये निंदति महेश्वरं त्रिजगतामाधारभूत हर,
ये निंदंति त्रिपुण्ड्रधारणकरं दोषस्तु तद्दर्शने ।
ते वै सकरसूकरासुखरश्वक्रोष्टुकीटोपमा जाता
एव भवन्ति पापपरमास्ते नारकाः केवलम् ।।४६
ते दृष्ट्वा शशिभास्करौ निशि देने स्वप्नेऽपि नो केवल ।
पश्यतु श्रुतिरुद्रसूक्तजपतो मुच्येत तेनादृताः ।।
तत्संभाषणतो भवेद्धि नरक निस्तारवानास्थित ।
ये भस्मादिविधारण हि पुरुष निदन्ति मदा हि ते ।।७
तत्रते बहवो लोका बृहज्जाबालचोदिताः ।।४८
ते विचार्याः प्रयत्नेन ततो भस्मरतो भवेत् ।।४९

जो मनुष्य भस्म और रुद्राक्ष धारण नहीं करते उनका अन्न-जल किंचित् भी ग्रहण न करे । गृहस्थी, वनवासी, यती, वर्णी या सकर जाति के यहाँ भोजन, पाप भक्षण समझे, प्रायश्चित में तीन वर्ण गायत्री का जप करे । संन्यासी केवल प्रणव का जप करने से ही पवित्र हो जाता है ।४३। जो लोग त्रिपुण्ड्र की निन्दा करते हैं और जो त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं, वह शिव को ही धारण करते हैं ।४४। भस्महीन मस्तक, शिवालयहीन ग्राम, ईश्वर-पूजा रहित जन्म तथा शिवाश्रय हीन विद्या, इन सभी को धिक्कार है ।४५। त्रैलोक्याधार शिव के निन्दक और त्रिपुण्ड के निन्दक के दर्शन में दोष है । वे वर्ण संकर, शूकर, असुर, खर, कुत्ता, गीदड़ या कीड़े के समान हैं वे पाप स्वरूप केवल नरक में जाने के लिये ही उत्पन्न हुए हैं ।४६। वे सूर्य चन्द्र को भी नहीं देख पाते परन्तु आदर सहित रुद्र सूक्त जपने से मुक्त हो सकते हैं । भस्मधारी पुरुष को

निन्दा करने वाले भी महामूढ़ हैं ।४७-४८। वृहज्जावाल द्वारा प्रेरित अनेक लोक हैं उनको विचार करता हुआ प्रयत्नपूर्वक भस्म धारण करे ।४६।

यच्चंदनैश्चन्दनकेऽपि मिश्रं धार्यं हि भस्मैव त्रिपुण्ड्रभस्मना।
विभूतिभालोपरि किंचनापि धार्यं सदा नो यदि सति बुद्धयः।।
स्त्रीभिस्त्रिपुण्ड्रमलकावधि धारणीयं भस्म
द्विजादिभिरथी विधवाभिरेवम् ।
तद्वत्सदाश्रमवतां विशदा विभूति
र्धार्यापवर्गफलदा सकलाघहन्त्री ।।५१
त्रिपुण्ड्रं कुरुते यस्तु भस्मना विधिपूर्वकम् ।
महापातकसंघातैर्मुच्यते चोपपातकैः ।।५२
ब्रह्मचारी गृहस्थोवा वानप्रस्थोऽथवा यतिः ।
ब्रह्मक्षत्राश्च विट्शूद्रास्तथान्ये पतिताधमाः ।।५३
उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च धृत्वा शुद्धा भवति च ।
भस्मनो विधिनो सम्यक्पापराशि विहाय च ।।५४
श्राद्धे यज्ञे जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने ।
धृत त्रिपुण्ड्रः पूतात्मा मृत्युं जयति मानवः ।।५५
जलस्नानं मलत्यागे भस्मस्नानं सदा शुचि ।
मंत्रस्नान हरेत्पाप ज्ञानस्नाने परं पदम् ।।५६

चन्दन में मिलाकर विभूति धारण करने वालों की विधि भी ठीक है किसी प्रकार सही—मस्तक पर विभूति अवश्य धारण करे ।५०। स्त्री, विधवा तथा ब्राह्मणों को त्रिपुण्ड धारण करना चाहिये, यह सभी आश्रमों को मोक्ष दायक हैं । इस पाप नाशिनी विभूति को अवश्य धारण करे ।५१। जो मनुष्य विधिपूर्वक भस्म से त्रिपुण्ड लगाता है वह महापापों तथा उप-पातकों से भी मुक्त हो जाता है ।२५। ब्रह्मचारी, गृहस्थी यती, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य पतित एवं अधम मनुष्य भी इस भस्म और त्रिपुण्ड के धारण से पवित्र हो जाते हैं । उसका पापों के ढेर से छुटकारा हो जाता है ।५३-५४। श्राद्ध, यज्ञ जप, हवन, वैश्वदेव तथा देवार्चन में त्रिपुण्ड़ को जो धारण करता है, वह मृत्यु पर भी विजय

प्राप्त कर लेता है ।५५। मल त्याग में जल-स्नान पुनीत है, भस्म स्नान सदा पवित्र है, मन्त्र-स्नान पाप का हरण करने वाला है । तथा ज्ञान-स्नान से परमपद प्राप्त होता है ।५६।

सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ।
तत्फलं समवाप्नोति भस्मस्नानकरो नरः ॥५७
भस्मस्नानं परं तीर्थं गङ्गास्नानं दिने दिने
भस्मरूपो शिवः साक्षाद्भस्म त्रैलोक्यपावनम् ॥५८
न तद्दनं न तद्दानं जपो न सः ।
त्रिपुण्ड्रेण विना येन विप्रेण यदनुष्ठितम् ॥५९
वानप्रस्थस्य कन्यानां दीक्षाहीननृणां तथा ।
मध्याह्नात्प्राग्जलैर्युक्त परतो जलवर्जितम् । ६०
एव त्रिपुण्ड्रं यः कुर्यान्नित्य नियतमानसः ।
शिवभक्तः स विज्ञेयो भुक्ति मुक्ति च विंदति ॥६१
यस्यांगे नव रुद्राक्ष एकोऽपि बहुकुण्यदः ।
तस्य जन्म निरर्थं स्यात्त्रिपुण्ड्ररहितो यदि ॥६२
त्रिस्रो रेखा भवत्येव स्थानेषु मुनिषु मुनिपुङ्गवाः ।
ललाटादिषु सर्वेषु यथोक्तेषुबुधैर्मुने ॥६३

जो पुण्य फल सब तीर्थों में स्नान का कहा गया है, वह फल भस्म से स्नान करने वाले शिव भक्त को अनायास ही प्राप्त हो जाता है ।५७। भस्म स्नान को परम तीर्थ समझो भस्म रूप में साक्षात् शिव ही हैं । भस्म द्वारा तीनों लोक पवित्र हो जाते हैं ।५८। जो ब्राह्मण त्रिपुण्ड धारण किये बिना अनुष्ठान करता है. उसका स्नान, दान, ध्यान, जप सभी कर्म निष्फल समझो ।५९। वानप्रस्थ कन्या तथा दीक्षाहीन मनुष्यों को मध्याह्न से पहिले ही स्नान कर लेना चाहिये, इसके पश्चात् इनके लिये जल-स्नान वर्जित है ।६०। जो मनुष्य नित्य प्रति नियमित रूप से त्रिपुण्ड धारण करता है, वह शिव भक्त है तथा भुक्ति और मुक्ति दोनों ही उसके लिये सुलभ हैं ।५१। अनेक पुण्यों के देने वाला एक भी रुद्राक्ष जिसके शरीर में नहीं है तथा जिसने त्रिपुण्ड भी नहीं धारण किया है,

उसका जन्म निष्फल ही है ।६२। हे मुने ! पंडित जन कहते हैं कि ललाट आदि में त्रिपुण्ड की तीन रेखाएँ होती हैं । ६६।

भ्रुवोर्मध्यं समारभ्य यावदंतो भवेद्भ्रुवोः ।
तावत्प्रमाणं सधार्यं ललाटे च त्रिपुण्ड्रकम् ।।६४
मध्यमानामिकांगुल्या मध्ये त प्रतिलोमतः ।
अंगुष्ठेन कृता रेखा त्रिपुण्ड्राख्याभिधीयते ।।६५
मध्येंऽगुलिभिरादाय तिसृभिर्भस्म यत्नतः ।
त्रिपुण्ड्रं धारयेद्भक्त्या भुक्तिमुक्तिप्रदं परम् ।।६६
तिसृणामपि रेखानां प्रत्येक नवदेवताः ।
सर्वत्रागेषु ता वक्ष्ये सावधानतया शृणु ।।६७
अकारो गार्हपत्याग्निर्भूर्धर्मश्च रजोगुणः ।
ऋग्वेदश्च क्रियाशक्तिः प्रातः सवनमेव च ।।६८
महादेवश्च रेखायाः प्रथमायाश्च देवताः ।
विज्ञेया मुनिशार्दूलाः शिवदीक्षापरायणैः ।।६९
उकारो दक्षिणाग्निश्च नभस्तत्व यजुस्तथा ।
मध्यदिन च सवनमिच्छाशक्त्यरात्मको ।।७०

भौं के मध्य से भौं के अन्त तक प्रमाण का त्रिपुण्ड मस्तक में लगावे । ६४ । मध्यमा और अनामिका से मध्य में प्रतिलोम से अँगूठे द्वारा की हुई रेखा त्रिपुण्ड है । ६५ । तीन अँगुलियों के मध्य से भस्म को ग्रहण कर भक्ति पूर्वक त्रिपुण्ड का धरण करे । यह भोग एव मोक्ष का देने वाला है । ६६ । तीनों रेखाओं के क्रम से नौ देवता सब शरीर में हैं, उसे कहता हूँ । ६७ । आकार ग्राहंपत्य अग्नि है, भूर रजोगुण है, क्रिया शक्ति ऋग्वेद है और प्रातः सेवन है । ६८ । प्रथम रेखा के देवता महादेव है । हे मुने ! शिव दीक्षा पारायण पुरुषों को यह बात अवश्य जाननी चाहिये । ६९ । उकार दक्षिणाग्नि है, आकाश शत्वगुण, यजुर्वेद मध्यदिन का सेवन, इच्छा शक्ति अन्तरात्मा है । ७० ।

महेश्वरश्च रेखायाः द्वितीयाश्च देवता ।
विज्ञेया मुनिशार्दूल शिवदीक्षापरायणैः ।।१

मकाराहवनीयो च परमात्मा तमोदिवौ ।
ज्ञानशक्तिः सामवेदस्तृतीयं सवनं तथा ।।७२
शिवश्चैव च रेखायास्तृतीयाताश्च देवता ।
विज्ञेवा मुनिशार्दूल शिवदीक्षापरायणैः ।।७३
एवं नित्यं नमस्कृत्य सद्‌भक्त्या स्थानदेवताः ।
त्रिपुण्ड्रं धारयेच्छुद्धो भुक्ति मुक्ति च विंदति ।।७४
एतेषां नाममात्रेण त्रिपुण्ड्रं धारयेद्‌वुधः ।
कुर्याद्वा षोडशस्थाने त्रिपुण्ड्रं तु समाहितः ।।७५
शीर्षके च ललाटे च कंठे चांसद्वये भुजे ।
कूर्परे मणिबधे च हृदये नाभिपाश्वके ।।७६
पृष्ठे चैवं प्रतिष्ठाय जेत्तत्राश्विदैवते ।
शिवं शक्ति तथारुद्रमीशं नारदमेव च ।।७७

दूसरी रेखा के देवता महेश्वर है। दीक्षा वाले पुरुषों को इसका जानना आवश्यक है।७१। मकार अवाहनीय परमात्मा स्वरूप, तमोगुण स्वर्ग रूप, ज्ञानऽशक्ति सामदेव तृतीय भवन है।७२। तृतीय रेखा के देवता शिव हैं। हे मुनिवरों! शिव दीक्षा परायण मनुष्यों को इनका ज्ञान आवश्यक है।७३। इस प्रकार सद्‌भक्ति पूर्वक स्थान के देवताओं को नमस्कार करे तथा शुद्ध होकर त्रिपुण्ड धारण करे तो मुक्ति-मुक्ति की प्राप्ति होती है। ७४। शिव के केवल नाम से पण्डितों को त्रिपुण्ड धारण करना चाहिए अथवा सोलह स्थानों में त्रिपुण्ड धारण करें।७५। शिर, ललाट, कण्ठ, कन्धे, भुजायें, कूर्पर, मणिबन्ध, हृदय, नाभि, दोनों पार्श्व।७६। एवं पीट में स्थापित कर अश्विनीकुमार का यजन करे तथा शिवभक्ति, रुद्र, ईश, नारद।७७।

वामादिनवशक्तीश्च एताः शोडश देवताः ।
नासत्यौ दस्रकश्चैव अश्विनौ द्वौ प्रकीर्तितौ ।।७८
अथवा मूर्ध्नि केशे च कर्णयोर्वदने तथा ।
बाहुद्वये च हृदये नाभ्यामूरुयुगे तथा ।।७९
जानुद्वये च पदयोः पृष्ठभागे च षोडश ।

शिवश्चन्द्रश्च रुद्र. को विघ्नेशो विष्णुरेव वा ॥८०
श्रीश्चैव्र हृदये शम्भुस्तथा नाभौ प्रजापतिः ।
नागश्च नागकन्याश्च उभयोर्ऋषिकन्यका: ॥८१
पादयोश्च समुद्राश्च तीर्थाः पृष्ठे विशालतः ।
इत्येवं षोडशस्थानमष्टस्थानथोच्यते ॥८२
गुह्यस्थानं ललाटश्च कर्णद्वयमनुष्टकम् ।
अंसयुग्मं च हृदयं नाभिरित्येवमष्टकम् ॥८३
ब्रह्मा ऋषयः सप्त देवताश्च प्रकीर्तिताः ॥८४

वामादि नव शक्ति यह षोडश देवता तथा नासत्य एवं दस्र यह दो अश्विनीकुमार, शिवा, केश, कान, मुख, बाहु, हृदय, नाभि और दोनों उरु, दोनों जानु, दोनों चरण पृष्ठ भाग इन षोडश स्थानों में धारण करे, शिव चन्द्र, ब्रह्मा, विघ्नेश और विष्णु, हृदय में श्री, नाभि थे शिव तथा प्रजापति. नाग, नागकन्या, दोनो ऋषि कन्या चरणों में अमुद्र, पृष्ट में तीर्थ यह षोडश स्थान है। अब आठ स्थान कहते हैं- गुह्य स्थान, ललाट, कर्ण द्वय, स्कन्ध द्वय हृदम और नाभि आठ स्थान हैं, ब्रह्मा और सप्तषि इनके देवता हैं ॥७८—८४॥

अथवा मस्तकं बाहू हृदयं नाभिरेव च ।
पञ्चस्थानान्यभूत्याहुर्धारणे भस्मविज्जनाः ॥८५
त्रनेत्रं त्रिगुणाधारं त्रिवेदजनकं शिवम् ।
स्मरन्नमः शिवायेति ललाटे तु त्रिपुण्ड्रकम् ॥८६
ईशाम्यां नम इत्युक्त्वा पार्श्वयौश्च त्रिपुण्ड्रकम् ।
बीजाभ्यां नम इत्युक्त्वा धारयेत्तु प्रकोष्ठयोः ॥८७
कुर्य्यादधः पितृभ्यां च उमेशाभ्यां तथोपरि ।
भीमायेति ततः पृष्ठ शिरसा पश्चिमे तथा ॥८८

अथवा मस्तक, हृदय, भुजायें, नाभि इन ५ स्थानों में भस्म धारण करे। तीन क्षेत्र, तीन गुणों के आधार, तीनों वेदों को प्रकट करने वाले जी के स्मरण पूर्वक 'नमः शिवाय' मन्त्र से त्रिपुण्ड धारण करे।

'ईशाभ्यां नमः' कहकर दोनों पार्श्वों में त्रिपुण्ड धारण करे। बीजाभ्यां नम' मन्त्र कहकर प्रकोष्ठ में धारण करे, 'कूर्पराय नमः कहकर इससे नीचे और पितृभ्यां, नमः कहकर दोनों ओर ईशाभ्यां नमः' कहकर इससे ऊपर तथा 'भीमाय नमः' कहकर पीठ और शिर के पश्चिम भाग में धारण करे। ८५—८८।

रुद्राक्ष माहात्म्य वर्णन ॥

शौनकर्षे महाप्राज्ञ शिवरूप महामते।
शृणु रुद्राक्षमाहात्म्यं समासात्कथयाम्यहम् ॥१
शिवप्रियतमो ज्ञं यो रुद्राक्षः परपावनः।
दर्शनात्स्पर्शनाज्जाप्यात्सर्वमपहारः स्मृतः ॥२
पुरा रुद्राक्षमहिमा देव्यग्रे कथितो मुने।
लोकोपकरणार्थाय शिवेय परमात्मना ॥३
श्रुयतां तु महेशानि रुद्राक्षमहिमा शिवे।
कथयामि तव प्रीत्या भक्तानां हितकाम्यया ॥४
श्वेतरक्ताः पीतकृष्णा वर्णाज्ञेयाः क्रमाद्बुधैः।
स्वजातीयं नृभिर्धार्य रुद्राक्षं वर्णतः क्रमात् ॥५
वर्णैस्तु तत्फलं धार्यं भुक्तिमुक्तिफलेप्सुभिः ॥
शिवभक्तैर्विशेषेण शिवयोः प्रीतये सदा ॥६
धात्रीफलप्रमाणं यच्छ्रेष्ठमेतदुदाहृतम्।
बदरीफलमात्रं तु मध्यमं संप्रकीर्तितम् ॥७

सूतजी ने कहा—हे शौनक ! अब साक्षात् शिव स्वरूप रुद्राक्ष का महात्म्य कहता हूँ, तुम ध्यान से सुनो। १। अत्यन्त पवित्र, रुद्राक्ष, शिवजी का अत्यन्त प्रिय है, दर्शन, स्पर्श तथा जप से सम्पूर्ण पापों का नाशक है ॥२॥ प्रथम भगवान् शिव ने लोकोपकार के लिए भगवती से समक्ष रुद्राक्ष की महिमा वर्णन की थी। ३। शिवजी ने कहा था—हे महेशानि ! रुद्राक्ष की महिमा श्रवण करो। तुम्हारी प्रीति के

कारण तथा भक्तों के हित की रक्षा से कहता हूँ ॥४॥ विद्वानों को इनके क्रमश: श्वेत, रक्त, पीत, कृष्ण भेदों का ज्ञान आवश्यक है। अपनी जाति के अनुसार वर्णों के ही रुद्राक्ष धारण करे। ५। मुक्ति-मुक्ति का इच्छुक पुरुष उसके फल को अवश्य धारण करे, शिव-भक्तों को तो शिवा और शिव की प्रीति के लिये इसका धारण करना अनिवार्य है श्रेष्ठ रुद्राक्ष आँवले के फल के समान है, बदरीफल के समान मध्यम है। ७।

अधमं चणमात्र स्यात्प्रक्रियैषा परोच्यये।
शृणु पार्वति सुप्रीत्या भक्तानां हितकाम्यया ॥८
वदरीफलमात्रं च यत्स्यात्किल महेश्वरि।
तथापि भलदं लोके सुखभौभाग्यवर्द्धनम् ॥६
धात्रीफलसमं यत्स्यात्सर्वारिष्टविनाशनम्।
गुंजया सदृशं यत्स्यात्सर्वार्थफलसाधनम् ॥१०
यथा यथा लघु: स्याद्वै तथाधिकफलप्रद:।
एकैकत: फलं प्रोक्तं दशांशैरधिकं बुधै: ॥११
रुद्राक्षधारणं प्रोक्तं पापनाशनहेतवे ॥
तस्माच्च धारणीयो वै सर्वार्थसाधनो ध्रुवम् ॥१२
यथा च दृश्यते लोके रुद्राक्ष: फलद: शुभ:।
न तथा दृश्यतेऽन्या च मालिका परमेश्वरि ॥१३
समा: स्निग्धा दृढ़ा: स्थूला: कंटकै: संयुता: शुभा:।
रुद्राक्षा: कामदा देवि भुक्तिमुक्तिप्रदा: सदा ॥१४

चणक प्रमाण को अधम समझो। हे पार्वती ! इनकी प्रक्रिया को ध्यान से सुनो, भक्तों के हितार्थ कथन करता है।८। हे माहेश्वरी ! बेर प्रमाण का रुद्राक्ष भी लोक में सुख सौभाग्य की वृद्धि करने वाला है।६। धात्री फलके बराबर का रुद्राक्ष सम्पूर्ण अरिष्ट शमन करना है तथा चौंटली के प्रमाण का रुद्राक्ष सर्वार्थ साधक है। १०। जितना छोटा होगा, उतना ही अधिक फलदायक होगा। परस्पर एक दूसरे से एक-एक दशाँश अधिक फल प्रदान करता है।११। रुद्राक्ष को पाप-नाश के निमित्त धारण किय जाता है। इसलिए सम्पूर्ण अर्थों की सिद्धि चाहने

वालों को इसे धारण करना चाहिए ।१२। संसार में रुद्राक्ष की माला जितनी फलदायक है उतनी अन्य कोई माला नहीं ।१३। सम, स्निग्ध, दृढ़, स्थूल, काटों वाले शुभ रुद्राक्ष कामनाप्रद हैं तथा यह सदा भुक्ति-मुक्ति प्रदायक हैं ।१४।

कृमिदुष्टं छिन्नभिन्नं कटंकैर्हीनमेव च ।
व्रणयुक्तमवृत्तं च रुद्राक्षान्षड्विवर्जयेत् ॥१५
स्वयमेव कृतद्वारं रुद्राक्षं स्यादिहोत्तमम् ।
यत्त पौरुषयत्नेन कृतं तन्मध्यम भवेत् ॥१६
रुद्राक्षधारणं प्रोक्त महापातकनाशनम् ।
रुद्रसंख्याशतं धृत्वा रुद्ररूपो भवेन्नरः ॥१७
एकादम शतानीह धृत्वा यत्फलमाप्यते ।
तत्फलं शक्यते नैव वक्तुं वष शतैरपि ॥१८
शतार्द्धेन युतैः पंचशतै वैं मुकुद मतम् ।
रुद्राक्षैर्विरचेत्सम्यग्भक्ति मान्पुरुषो नरः ॥१९
त्रिभिः शतैः षष्टियुक्तं स्त्रिरावृत्य तथा पुनः ।
रुद्राक्षैरुपवीतं च निर्मीयाद्भक्तितत्परः ॥२०
शिखायां च त्रयं प्रोक्तं रुद्राक्षाणां महेश्वरि ।
कर्णयोः षट् च षट् चैव वामदक्षिणयोस्तथा ॥२१

कृमियों से खाये हुए, छिन्न-भिन्न, काँटे रहित, गोलाई से रहित तथा व्रणयुक्त, यह छै प्रकार से रुद्राक्ष त्याज्य हैं ।१५। जिस रुद्राक्ष में स्वयं छेद हो वही उत्तम है, मनुष्य के द्वारा जिसमें छेद किया गया हो उसे मध्यम समझो ।१६। रुद्राक्ष धारण से महा पाप भी दूर हो जाते हैं, ११ सौ रुद्राक्ष धारण करने वाला मनुष्य रुद्र स्वरूप हो जाता है ।१७। ११ सौ रुद्राक्षों के धारण का जो फल होता है, वह सौ वर्षों में भी वर्णन नहीं हो सकता । १८ । साढ़े पाँच सौ रुद्राक्षों को जो धारण करता है, वह पुरुष कहा गया है । ९। तीन सौ आठ रुदाक्षों की तीन लड़ बनाकर यज्ञोपवीत धारण पूर्वक भक्ति करने वाला ।२०। शिखा में तीन, कानों में ६ दोनों ओर पहिनें ।२१।

शतनेकोत्तरं कंठे बाह्वोर्वै रुद्रसंख्यया ।
कूर्परद्वारयोस्तत्र मणिबंधे तथा पुनः ॥२२
उपवीते त्रयं धार्यं शिवभक्तिरतै र्नरः ।
शेषानुर्वरितान्पंच सम्मितान्धारयेत्कटौ ॥२३
एतत्संख्याधृता येन रुद्राक्षाः परमेश्वरि ।
ततद्रूप तु प्रणम्पं हि स्तुत्यं हि सर्वैर्महेशवत् ॥२४
एवंभूतं स्थितं ध्याने यदा कृत्वासने जनम् ।
शिवेति व्याहरंश्चैव दृष्ट्वा पापैः प्रमुच्यते ॥२५
शताधिकसहस्रस्य विधिरेष प्रकीर्त्तितः ।
तदभावे प्रकारोऽन्य शुभः सप्रोच्यते मया ॥२६
शिखायामेकरुद्राक्षं शिरसा त्रिशतं वहेत् ।
पञ्चाशच्च गले दध्याद्बाह्वोः षोडश षोडश ॥२७
मणिबंधे द्वादशं द्विस्कंधे पचशत वहेत् ।
अष्टत्तरशतैर्माल्यमुहवीतं प्रकल्पयेत् ॥२८

कण्ठ में एक सौ एक, बाँहों में ग्यारह और इसी प्रकार कूर्पर और मणिबन्ध में करे । २२ । यज्ञोपवीत में तीन और कटि में पाँच इस प्रकार रुद्राक्ष धारण करने वाले का स्वरूप शिवजी के समान होता है और वह स्तुति योग्य हो जाता है । २२-२४ । इस प्रकार ध्यान, में स्थित आसन पर बैठकर शिव नाम का उच्चारण करते हुये मनुष्य का दर्शन कर प्राणी पाप-मुक्त हो जाता है । २५ । यह ११ सौ की विधि कही गई है, ऐसा न कर सकने वालों के लिये जो विधि है, वह कहता हूँ । २६ । शिखा में एक, शिर में तीस, कण्ठ में पचास और दोनों भुजाओं में सोलह २ धारण करे ।२७। मणिबन्ध में बारह, स्कन्ध में पाँच सौ तथा यज्ञोपवीत एक सौ आठ का बनावें । २८ ।

एवं सहस्ररुद्राक्षान्धारयेद्यो दृढव्रतः ।
तं नमन्ति सुराः सर्वे यथा रुद्रस्तथैव सः ॥२९
एकं शिखायां रुद्राक्षं चत्वारिंशत्तु तस्तके ।
द्वात्रिशत्कण्ठदेशे तु वक्षस्यष्टोत्तरं शतं ॥३०

एकैकं कर्णयोः षट् षट् व ह्र्वोः षोडश षोडश ।
करयोरविमानेन द्विगुणेन मुनीश्वर ॥३१
संख्या प्रीतिधृता येन सोऽपि शैवजनः परः ।
शिववत्पूजनीयो हि वद्या सर्वैरभीक्ष्णशः ॥३२
शिरसीशानमंत्रेण कर्णे तत्पुरुषेण च ।
अघोरेण गले धार्यं तेनैव हृदयेऽपि च ॥३३
अघोरबीजमंत्रेण करयोर्धारियेत्सुधीः ।
पंचदशाक्षग्रथितां वामदेवेन चोदर ॥३४
पंचब्रह्मभिरगैश्च त्रिमालां पंचसप्त च ।
अथवा मूलमत्रेण सर्वानक्षांस्तु धारयेत् ॥३५

इस प्रकार दृढ़वती होकर जो हजार रुद्राक्ष धारण करता है, वह रुद्र के समान होता है और सब देवता उसे नमस्कार करते हैं ॥ २९ ॥ शिखा में एक, मस्तक में चालीस, कण्ठ में बत्तीस और हृदय में एक सौ आठ । ३० । दोनों कानों में ६-६ भुजाओं में सोलह-सोलह हाथ में बारह या चौबीस । ३१ । जिसने प्रीति सहित धारण किये हैं वह भी शिव भक्त हैं तथा सभी के द्वारा वन्दनीय और पूजनीय है । ३२ । ईशान मन्त्र से शिर में तत्पुरुष मन्त्र से कानों में अघोर मन्त्र से कण्ठ और हृदय में रुद्राक्ष धारण करे । ३३ । हाथों में अघोर और बीज मन्त्र से तथा पन्द्रह रुद्राक्ष उदर में वामदेव मन्त्र से धारण करे । ३४ । सद्यो-जातादि पञ्च ब्रह्म मंत्रों द्वारा अन्य तङ्गों में तीन, पाँच या सात माला धारण करे अथवा मूल मन्त्र से सभी रुद्राक्षों धारण करे । ३५ ।

मद्यं मासं तु लशुनं पलाण्डुं शिग्रुमेव च ।
श्लेष्मांतकं विड्वराहं भक्षणे वर्जयेत्ततः ॥३६
वलक्षं रुद्राक्षं द्विजतनुभिरेवेह विहितं ।
सुरक्तं क्षत्राणां प्रमुदितमुमे पीतमसकृत् ॥३७
ततो वैश्यर्धार्यं प्रतिदिवसमावश्यकमहो ।
कथा कृष्णं शूद्रैः श्रुतिगतिमार्गोऽयमगजे ॥३८

वर्णी वनो गृहयतिर्नियमेन दध्यादेतद्रस्यपरमो न हि जातु तिष्ठेत्
रुद्राक्षधारणमिदंसुकृतश्वलभ्यंत्यक्त्वेदमेतदखिलान्नकान्प्रयांति ॥

आदावामलकास्ततो लघुतरा रुग्णास्ततः कण्टकैः।
सदष्टाः कृमिभिस्तनूपकरणच्छिद्रेण हीनास्तथा ।
धार्या नैव शुभेत्सुभिश्वणकवद्रुद्राक्षमप्यंततो-
रुद्राक्षो मम लिंगमङ्गलमुमे सूक्ष्म प्रशस्त सदा ॥३६
सर्वाश्रमाणां वर्णानां स्त्रीशूद्राणां शिवाज्ञया ।
धार्याः सदैव रुद्राक्षा यतीनां प्रणवेन हि ।४०
दिवा विभ्रद्रात्रिकृतं रात्रौ बिभ्रद्दिवाकृतैः ।
प्रातर्मध्यह्नसायाह्ने मुच्यते सर्वपातकैः ॥४१
ये त्रिपुण्ड्रधरा लोके जटाधारिण एव वे ।
ये रुद्राक्षधरास्ते वै यमलोकं प्रयांति न ॥४२

मद्य, माँस, लशुन, प्याज, सेंजना, श्लेषान्तक आदि का सेवन न करे ।३७। ब्राह्मणों के लिए श्वेत, क्षत्रियों को रक्त, वैश्यों को पीत तथा शूद्र को काले रङ्ग का रुद्राक्ष धारण करना हितकर है, ।७७। सभी वर्ण तथा यती इसे धारण करें, यह रुद्राण बड़े पुण्य से प्राप्त होता है, इसके त्याग से नरक की प्राप्ति होती हैं ।३८। आमले से छोटे, खण्डित, काँटे रहित, छिद्र रहित कीड़ों से खाये हुए रुद्राक्ष का धारण मंगल-कामना वाला न करे। चने के समान छोटे रुद्राक्ष की प्रशंशा की गई है। शिवजी का कथन है कि यह हमारा चिन्ह स्वरूप है, इसे, सदा धारण करे ।३६। सभीं आश्रमों, वर्णों, स्त्रियों और शूद्रोंको भी रुद्राक्षा धारण करना उचित है। यतियोंके लिए प्रणव पूर्वक धारण का उपदेश है ।४०। दिन में धारण करने से रात्रि के, रात्रि में धारण करने से दिन के तथा प्रातः मध्यान्ह और सायंकाल के सभी पाप नष्ट होते हैं ।४१। त्रिपुण्डधारी, जटाधारी, रुद्राक्षधारी जी यमलोक को कभी प्राप्त नहीं होते ।४२।

रुद्राक्षमेकं शिरसा बिभर्ति तथा त्रिपुण्ड्रं च ललाटमध्ये ।
पंचाक्षरतेपिजपंतिमंत्रं पूज्याभवद्भि खलुतेहिसाधवः ॥४३

यस्यांगे नास्ति रुद्राक्षस्त्रिपुण्ड्रं भालपट्टके ।
मुखे पंचाक्षर नास्ति मतानय यमालयम् ॥४४
ज्ञात्वा ज्ञात्वा तत्प्रभावं भस्मरुद्राक्षधारिणः ।
ते पूज्या सर्वदास्माकं नो नेतव्याः कदाचन ॥४५
एवमाज्ञापयामास कालोऽपि निजकिंकरान् ।
तथेति मत्वा ते सर्वे तूष्णीमासन्सुविस्मिताः ॥४६
अत एव महादेवि रुद्राक्षोऽप्यघनाशनः ।
तद्धरो मत्प्रियः शुद्धोऽस्त्यगवानपि पार्वति ॥४७
सुरसुराणां सर्वेषां वंदनीयः सदा स वै ।
पूजनीयो हि दृष्टस्य पापहा च यथा शिवः ॥४८
ध्यानज्ञानावमुक्तोऽपि रुद्राक्षं धारयेत्तु यः ।
सर्वपापनिर्विमुक्तः स याति परमां गतिम् ॥४९

जो महात्मा शिर में एक रुद्राक्ष और मस्तक गर त्रिपुण्ड धारण करता है, तथा पंचाक्षर मंत्र को जपता है वह पूजनीय है । ४३ । 'जिस के देह में रुद्राक्ष, माथे पर त्रिपुण्ड तथा मुख में पंचाक्षर मन्त्र नहीं है, उसे मेरे यमलोक को प्राप्त कराओ । ४४ । भस्म और रुद्राक्ष धारण करने वालों का कर्म-प्रभाव को जानकर उन्हें पूजनीय जान हमारे लोक में मत लाओ ।४५। यमराज ने इस प्रार अपने सेवकों को आदेश दिया, जिसे सुनकर वे विस्मय को प्राप्त होकर मौन हो गये । ४५ । हे महादेवीजी ! इस प्रकार रुद्राक्ष महापातक को नष्ट करने में समर्थ है । यदि उनका धारण करने वाला महापापी हो तो भी ।४७। यह देवता दैत्य सभी के लिए वन्दनीय है । वह शिवजी से समान पापों का नाशक है ।४८। ध्यान और ज्ञान से अवयुक्त होकर भी जो रुद्राक्ष धारण करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर परम गतिप्राप्त करता है ।४९।

रुद्राक्षेण जपन्मन्त्र पुण्य कोटिगुणं भवेत् ।
दशकोटिगुणं पुण्यं धारणाल्लभते नरः ॥५०
यावत्कालं हि जीवस्य शरीरस्थो भवेत्स वै ॥
यावत्कालं स्वल्पमृत्युनं तं देवि विबाधते ॥५१

त्रिपुण्ड्रेण च संयुक्तं रुद्राक्षाविलसांगकम् ।
मृत्युञ्जय जपतं च दृष्ट्वा रुद्रफलं लभेत् ॥५२
पञ्चदेवप्रियश्चैव सर्वदेवप्रियस्तथा ।
सर्वमन्त्राञ्जपेद्भक्तो रुद्राक्षमालया प्रिये ॥५३
विष्णुवादिदेवभक्ताश्च धारयेयुर्न संशयः ।
रुद्रभक्तो विशेषेण रुद्राक्षान्धारयेत्सदा ॥५४
रुद्राक्षमालिन दृष्ट्वा भूतप्रेतपिशाचकाः ।
डाकिनी शाकिन्री चैव ये चान्ये द्रोहकारकाः ॥५५
कृत्रिमं चैव यत्किंचिदभिचादिक च यत् ।
तत्सर्वं दूरतो याति दृष्ट्वा शकितविग्रहम् ॥५६

रुद्राक्ष से मन्त्र जपने से कोठि गुण पुण्य मिलता है और उसके धारण ने दश कोटि गुण पुण्य प्राप्त होता है ।५०। जीवन में स्वस्थ रहता है, उसे अकाल मृत्यु कभी नहीं होती है । ५१ । जिसके शरीर में त्रिपुण्ड सहित रुद्राक्ष शोभित है यथा जो मृत्युंजय का जप करता है। उसके दर्शन से रुद्र के दर्शन का फल प्राप्त होता है ।६२। पाँच देवताओं को उपासना करने वाले को सब देवताओं के प्रिय रुद्राक्ष की माला से जप करना चाहिये ।५३। विष्णु आदि देवताओं के भक्त भी इसे धारण करें ।५४। रुद्राक्ष की मामा धारण किये हुए देखकर भूत, प्रेत, पिचाच डंकनी, शंकनी अथवा अन्य द्रोही जीव ॥ ५ ॥ तथा कुछ कृत्रिम अभिचारादि भी दूर से ही भाग जाते हैं ।५६।

रुद्राक्षमालिनं दृष्ट्वा शिवो विष्णुः प्रसीदति ।
देवी गणपतिः सूर्य्यः सुराश्चन्येऽपि पावति ॥५७
शिवस्यातिप्रियौ ज्ञेयौ भस्मरुद्राक्षधारिणौ ।
तद्धारणप्रभावाद्धि भुक्तिमुक्तिर्न संशयः ॥५८
भस्मरुद्राक्षधारी यः शिवभक्तः स उच्यते ।
पञ्चाक्षरजपासक्तः परिपूर्णश्च सन्मुखे ॥५९
बिना भस्मत्रिपुण्ड्रोण विना रुद्राक्षमालया ।
पूजितोऽपि महादेवो नाभीष्टफलदायक ॥६०

तत्सर्वं च समाख्यातं यत्दृष्टं हि मुनीश्वर ।६१
भस्मरुद्राक्षमाहात्म्यं सर्वकाम् समृद्धिदम् ।।
एतद्यः श्रृणुयान्नित्यम् माहात्म्यम् परमं शुभम् ।
रुद्रक्षयस्ममनोर्भक्त्या सर्वात्कामानवाप्नुयात् ।।६२
इह सर्वं सुखं भुक्त्वा पुत्रपौत्रादिसयुतः ।
लभेत्परत्र सन्मोक्ष शिवस्यातिप्रियो भवेत् ।।६३
विद्येश्वरसंहियेयं कथिता वो मुनीश्वराः ।
सर्वसिद्धिप्रदा नित्यम् मुक्तिदा शिवशासनाद् ।।६४

रुद्राक्ष की माला धारण करने वाले को देखकर शिव, विष्णु, गणपति, सूर्य तथा अन्य देवगण प्रसन्न होते हैं । ५७ । भस्म रूद्राक्षधारी को शिव का अति प्रिय जानो । इनके धारण से मुक्ति-मुक्ति प्राप्त होती है । ।५८। भस्म रुद्राक्षधारी मनुष्य शिव भक्त कहा है । पंचाक्षर मन्त्र में प्रीति करने वाला पुरुष परिपूर्ण है ।५९। भस्म, त्रिपुण्य तथा रुद्राक्ष माला के बिना पूजन करने से महादेव अभीष्ट फल प्रदान नहीं करते । ६० । हे मुनिश्वरो ! तुम्हारे प्रश्न का पूर्ण समाधान कर दिया । भस्म और रुद्राक्ष का महात्म्य सभी कामनाओं और समृद्धि को देता है ।६ । इस अत्यन्त शुभ महात्म्य को जो मनुष्य नित्यप्रति सुनते तथा रुद्राक्ष और भस्म में प्रीति करते हैं, वे सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त होते हैं ।६२। इस लोक में वे भी सभी सुखों को भोगते हुए पुत्र-पौत्रादि से युक्त होते हैं और अन्त में शिवजी के सायुज्य को प्राप्त होते हैं ।। ६३ ।। हे मुनियो ! यह विद्येश्वर संहिता तुम्हारे प्रति कही गई है । शिवजी की आज्ञा से यह सम्पूर्ण सिद्धि और मुक्ति देने वाली है । ६४ ।



रुद्र संहिता—सृष्टि—खंड

॥ नारद का काम विजय से अहंकार करना ॥

एकस्मिन्समये विप्रा नारदो मुनिसत्तमः ।
ब्रह्मपुत्रो विनीतात्मा तपोर्थं मन आदधे ॥१
हिमशैलगुहा काचिदेका परमशोभना ।
यत्समीपे सुरनदी सदा वहति वेगतः ॥२
तत्राश्रमो महादिव्यो नानाशोभासमन्वितः ।
तपोर्थं स ययौ तत्र नारदो दिव्यदर्शनः ॥३
तं दृष्ट्वा मुनिशार्दूलस्तेपे स सुचिरं तपः ।
बद्ध्वासनं दृढं मौनी प्राणानायम्य शुद्धधीः ॥४
चक्रे मुनिः समाधिं तमहंब्रह्मेति यत्र ह ।
विज्ञानं भवति ब्रह्मसाक्षात्कारकरं द्विजाः ॥५
इत्थं तपति तस्मिन्वै नारदे मुनिसत्तमे ।
चकंपेऽथ शुनाशीरो मनः संताप विह्वलः ॥६
मनसीति विचिन्त्यासौ मुनिर्मे राज्यमिच्छति ।
तद्विघ्नकरणार्थं हि हरिर्यत्नमियेष सः ॥७

सूतजी ने कहा—हे ब्राह्मणो ! एक समय की बात है, ब्रह्माजी के पुत्र नारदजी ने तप करने की इच्छा की ।१। हिमालय पर्वत की एक अत्यन्त सुशोभित गुफा के किनारे श्री गङ्गाजी अत्यन्त वेग से वह रही थीं ।२। वहाँ अनेक प्रकार से सुशोभित एक दिव्य आश्रम है, नारदजी उसी स्थान पर तप करने के लिए गये ।३। उस स्थान पर मुनि शार्दूल ने बहुत समय तक तप किया तथा मौन रहकर आसन लगाया और प्राणायाम कर पवित्र मन से । ४ । समाधि लगाई, जिसमें 'अहं ब्रह्म' रूप विज्ञान ब्रह्म से साक्षात्कार करने वाला है ।५। इसी प्रकार मुनिवर नारद जी ने तप का आरम्भ किया, जिससे कंपित हुआ इन्द्र मनके संताप

से अत्यन्त विकल हुआ । ६ । और सोचने लगा कि कदाचित यह मेरे राज्य की कामना करते हैं, इसलिये वह उनके तप में विघ्न उपस्थित करने को उद्यत हुये ।।७।।

सस्मार स स्मरं शक्रश्चेतसा देवनायकः ।
आजगाम द्रुतं कामः समधीमहिषीसुतः ।।८
अथागतं स्मरं दृष्ट्वा संबोध्य सुरराट् प्रभुः ।
उवाच तं प्रपश्यामु स्वार्थे कुटिलशेमुषिः ।।६
मित्रवय्य महावीर सर्वदा हितकारक ।
श्रृणु प्रीत्या वचो मे त्वं कुरु सहाय्यमात्मना ।। १०
त्वद्बलान्मे बहनाश्च पतोगर्वो विनाशितः ।
मद्राज्यस्थिरता मित्र त्वदनुग्रहता' सदा ।।११
हिमशैलगुहायां हि मुनिस्तपति नारदः ।
मनसोद्दिश्य विश्वेशं महासयमवान्दृढ़ः ।।१२
याचेन्न विधितो राज्यं स ममेति वि शंकितः ।
अद्यैव गच्छ तत्र त्वं तत्तपोविघ्नमाचर ।।१३
इत्याज्ञप्तो महेन्द्रेण स कामः समधुप्रियः ।
जगाम तत्स्थलं गर्वादुपायं स्वञ्चकार ह ।।१४
रचयामास तत्राशु ष्वकलाः सकला अपि ।
वसंतोऽपि स्वप्रभावं चकार विविध मदात् ।।१५

उस समय उन्होंने कामदेव का स्मरण किया और तभी वह समान वृद्धि वाला कामदेव आ पहुँचा ।। ८ ।। उसे वहाँ आया हुआ देखकर कुटिल वुद्धि इन्द्र से उससे शीघ्रता से कहा ।६। इन्द्र ने कहा-हे मित्र ! मेरा हित करने की इच्छा से तुम मेरी बात सुनकर सहायता करो ।१६। तुम्हारी सहायता से मैंने अब तक बहुत से तपोंधनों का गर्व नष्ट कर डाला । तुम्हारी कृपा से ही मेरा राज्य स्थिर है ।११। हिमालय की गुफा में मुनिवर नारदजी तपस्या कर रहे हैं शिव की आराधना करते हुए महान् संयम में दृढ़ हैं । १२ । मुझे शंका है कि ब्रह्माजी से मेरा राज्य न माँग लें इसलिए तुम तत्काल वहाँ जाकर उसके तप को भङ्ग

कर दो ।१३। इन्द्र की बात सुनकर कामदेव अत्यन्त गर्व पूर्वक चल पड़ा और वहाँ जाकर तप भृङ्ग करने का उपाय सोचने लगा ॥१४॥ वहाँ उससे अपनी सम्पूर्ण कला प्रदर्शित की। वसन्त ये भी अपना मदयुक्त प्रभाव दिखाया ।१५।

न बभूव मुनेश्चे तो विकृतं मुनिसत्तमाः ।
भ्रष्टो बभूव पद्गर्वो महेशानुग्रहेण ह ॥१६
शृणुतादरतस्हव कारणं शौनकादयः ।
ईश्वरानुग्रहेत्राण न प्रभावः स्मरस्य हि ॥७१
अत्रैव शम्भुनाऽकार्ि सुतपश्च स्मरारिणा ।
अत्रै व दग्धस्तेनाशु कामो मुनितपोपहः ॥१८
कामजीननहेतोर्हि रत्या संप्रार्थिरैः सुरै। ।
सम्प्रार्थित उवाचेदं शङ्कारो लोकशंकरः ॥१९
कंचित्समयमासाद्य जीवष्यतिः सुराःस्म७ः ।
परंत्विह स्मरोपाश्यचलिष्यति न कश्चन ॥२०
इह यावद्दृश्यते भूर्जनैः स्थित्वाऽमराः सदा ।
कामत्राणप्रभावोऽत्र न चलिष्यत्संशयम् ॥२१

मुनिवरों ! इतना करने पर भी नारदजी के मन में कोई विकार नहीं आ सका और शिवाजी के अनुग्रह से इन्द्र का अभिमान चूर्ण हो गया ।१६। मुनियो ! इसका कारण भी आदर पूर्वक श्रवण करो। यह कामदेव का प्रभाव नहीं, ईश्वर का ही अनुग्रह है ।१७। इसी स्थान पर कामदेव के शत्रु शंकर ने घोर तप किया था और मुनि के तप में विघ्नार्थ उपस्थित कामदेव यहीं भस्म हुआ था । १८ । उस समय देवताओं के कामदेव के पुनर्जीवन की याचना शंकर से की । इस पर लोकों के कल्याण करने वाली शिवजी ने उनसे कहा ।१९। हे देवगण ! कामदेव कुछ समय पश्चात् जोवित हो जायगा, परन्तु इस स्थान पर उसका कोई प्रभाव कभी भी न होगा ॥२०॥ हे देवगण ! तुम्हें यहाँ की जो पृथ्वी दिखाई दे रही है, इसमें स्थित होने पर कभी कामदेव का प्रभाव नहीं होगा, इसमें संशय नहीं । २१ ।

इति शंभूक्तित कामो मिथ्यात्मगतिकस्तदा ।
नारदे स जगामाशु शिवामिन्द्रसमीपतः ॥२२
आचख्यौ सर्ववृत्तांत प्रभावं च मुनेः स्मरः ।
तदाज्ञया ययौ स्थानं स्वकीयं स मधुप्रियः ॥२३
विस्मतोऽभूत्सुराधीशः प्रशंसाथ नारदम् ।
तद्वृत्तांतानभिज्ञौ हि मोहितश्शिवमापया ॥२४
दुर्ज्ञेया शाभवी माया सर्वेषां प्रणानामिह ।
भक्तं विनार्पिताऽमनं तवा ममीह्यते जगत् ॥२५
नारदोऽपि चिरं तस्थौ तत्रेशानुग्रहेण ह ।
पूर्ण मत्वा तपस्तत्स्वं विरराम ततो मुनिः ॥२६
कामाज्जयं निज मत्वा गर्वितोऽभून्मुनीश्वर ।
वृथैव विगतज्ञानः शिवमायाविमोहितः ॥२७

इस शिवोक्ति से कामदेव, को अपनी मिथ्या गति का ध्यान हुआ और वह नारदजी के पास पलायन कर इन्द्र के पास पहुँचा । २२ । उन्हें सब वृतान्त सुनाया और आज्ञा लेकर बसन्त के सहित अपने स्थान को गया ।२३। इन्द्र अत्यन्त विस्मित हुए और नारदजी की प्रसंसा करने लगे, क्योंकि पहले वह शिवमाया से मोहित थे और उस रहस्य को न जानते थे ।२४। सभी प्राणियों क लिये शिवमया का ज्ञान अत्यन्त कठिन है । भक्त के सिवाय वह सम्पूर्ण विश्व को मोहित किये हुए हैं । ।२५। शिव कृपा से नारदजी उस स्थान पर बहुत काल तक रहे, उन्होंने अपनी तपस्या को पूर्ण समझा, तभी उससे विराम किया ॥ २६ ॥ मुनि को अहंकार हुआ कि हमने कामदेव जीत लिया, व शिव माया से मोहित होने के कारण ज्ञान-विहीन हो गये । २७ ।

धन्या धन्या महामायाशांभवी मुनिसत्तमाः ।
तद्गति न हि पश्यन्ति विष्णुब्रह्मादयोपि हि ॥२८
तया संमोहितोऽतीव नारदो मुनिसत्तमः ।
कैलासं प्रययौ शीघ्रं स्ववृत्तं गदितुं मदी ।२९
रुद्रं नत्वाऽब्रवीत्सर्वं स्ववृत्तङ्गर्ववान्मुनिः ।

मत्वात्मानं महात्मान स्वप्रभुञ्च स्मरञ्जयम् ॥३०
तच्छ्रुत्वा शङ्करः प्राह नारदं भक्तवत्सलः ।
स्वमायामोहित हेत्वनभिज्ञं भ्रष्टचेतसम् ॥३१
हे तात नारद प्राज्ञ धन्यस्त्वं शृणु मद्वचः ।
वाच्यमेवं न कुत्रापि हरेरग्रे विशेषतः ॥३२
पृच्छमानोऽपि न ब्रूयाः स्ववृत्तं मे यदुक्तपान् ।
गोप्यं गोप्यं सर्वथा हि नैव वाच्य कदाचन ॥३३
शास्म्यहं त्वां विशेषेण मम प्रियतमो भवान् ।
विष्णुभक्तो यतस्त्वं हि तद्भक्तोऽतीव मेऽनुगः ॥३४
शास्ति स्मेत्थश्च बहुशो रुद्र सूतिकरः प्रभुः ।
नारदो न हितं मेने शिवमायाविमोहितः ॥३५

हे मुनियो ! शंकर की महामाया को धन्य है उसकी गति को ब्रह्मा विष्णु आदि कोई भी जानने में समर्थ नहीं है ।२८। उस माया ने नारद जी को अत्यन्त मोहित कर लिया, इसलिए वे कामदेव पर विजय प्राप्त करने वाले अपने वृत्तान्त को कहने के लिए कैलाश पहुँचे । २९ । वहाँ शिवाजी को प्रणाम कर अहंकारपूर्वक सब वृत्तान्त सुनाया तथा अपने को महान् काम-विजेता समझकर गर्व में चूर हो गये । ३० । नारदजी शिव-माया से मोहित होकर भ्रष्ट चित्त हो रहे थे, उनकी बात सुनकर भक्त-वत्सल भगवान् शिवजी ने कहा ।३१। बोले—हे नारदजी ! तुम धन्य हो । मेरी बात सुनो, तुमने जो बात मुझसे कही हैं उसे विष्णु के समक्ष न कहना ।३२। वे तुमसे पूछें तो भी यह बात उनसे न कहना, इसे नित्तान्त गोपनीय रखना, किसी प्रकार भी प्रकट न करना ।३३। तुम मेरे लिए प्रिय हो, इसलिए तुमसे कहता हूँ । तुम विष्णु-भक्त हो तथा विष्णु-भक्त मेरे अनुगामी होते हैं ।३४। इस प्रकार शिवजी ने उन्हें बहुत समझाया, परन्तु शिवमाया से मोहित होने के कारण नारदजी ने इसे अपने लिए हितकर नहीं समझा ।३५।

प्रबला भाविनो कर्मगतिर्ज्ञेया विचक्षणैः ।
न निवार्या जनैः कैश्चिदपीच्छा सैव शांकरीः ॥३६

ततः स मुनिवर्यो हि ब्रह्म लोकं जगाम ह ।
विधि नत्वाऽब्रवीत्कामजयं स्वस्य तपोबलात् ॥३७
तदाकर्ण्य विधिः सोऽथ स्मृत्वा शंभुपदाम्बुजम् ।
ज्ञात्वा सर्वं कारणं तन्निषिषेध सुत तदा ॥३८
मेने हितं न विध्युक्तं नारदो ज्ञानिसत्तमः ।
शिवमायामोहितश्च रूढचित्तमदांकुरः ॥३९
शिवेच्छा यादृशी लोके भवत्येव हि सा तदा ।
तदधीनं जगत्सर्वं वचस्तंत्यां स्थितंत्यां स्थितं यतः ॥४०
नारदोऽथ ययौ शीघ्रं विष्णुलोकं विनष्टधीः ।
मदांकुरमना वृत्तं गदितुं स्वं गदग्रतः ॥४१
आगच्छन्तं मुनिं दृष्ट्वा नारद विष्णुराददरात् ।
उत्थित्वाग्र गतोऽरं तं शिश्लेष ज्ञातहेतुकः ॥४२
स्वासने समुपावेश्य स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ।
हरिः प्राह वचस्तथ्यं नारदं मदनाशनम् ॥४३

कर्म की गति का ज्ञान चतुर पुरुषों को ही होता है । शिवजी की इच्छा को निवारण करने का सामर्थ्य किसी में नहीं है ।३६। नारदजी ब्रह्मलोक को गये और ब्रह्माजी को प्रणामकर अपने तपोबल के प्रभाव से कामदेव को जीतने का वृत्तान्त उन्हें सुनाया ।३ । यह सुनकर ब्रह्माजी शिवजी के चरण कमलों को प्रणाम कर, सब कुछ जानकर अपने पुत्र से निषेधात्मक स्वर में बोले ।३८। नारदजी ने इसे अपने हित में नहीं समझा, क्योंकि वे शिवमाया से मोहित थे और उनके चित्त में मद का अंकुर लग गया था ।३९। शिवजी की जैसी इच्छा होती है वैसा ही संसार में होता है, सम्पूर्ण विश्व उनके वचन में स्थित होने से पूर्णतया उनके आधीन है ।४०। बुद्धि नष्ट होने के कारण नारदजी के हृदय में काम विजय का अहंकाह भरा था, उसे कहने के लिए वे विष्णु-लोक के लिए चल पड़े ।४१। भगवान् विष्णु ने नारदजी को आया हुआ देखा तो शीघ्रतापूर्व उठकर उनका सत्कार किया । वे भी नारदजी के आगमन का कारण जानते थे ।४२। उन्होंने नारदजी को अपने आसन पर

बैठाया और शिवजी के चरण-कमल का ध्यान कर नारदजी का मद नष्ट करने के लिए बोले ।४३।

कुत आगम्यते तात किमर्थमिह चागतः ।
धन्यस्त्वं मुनिशार्दूल तीर्थोऽह तु तवागमात् ॥४४
विष्णुवाक्यमिति श्रुत्वा नारदो गर्वितो मुनिः ।
स्ववृत्तं सर्वमाचष्ट समदं नदमोहित ॥४५
श्रुत्वा मुनिवचो विष्णुः समदं कारण ततः ।
ज्ञातवानखिलं स्मृत्वा शिवपादांबुज हृदि ॥४६
तुष्टाव गिरिश भक्त्या शिवात्मा शैवराड्ढरिः ।
सांजलिर्विसुधीनम्रमस्तकः पमेश्वरम् ॥४७
देव देव महादेव प्रसीद परमेश्वर ।
धन्यस्त्वं शिव धन्या ते माया सर्वविमोहनी ॥४८
इत्यादि स्तुति कृत्वा शिवस्य परमात्मनः ।
निमील्य नयने ध्यात्वा विरराभपदाम्बुजम् ॥४९
यत्कर्त्तव्यं शंकरस्य स ज्ञात्वा विश्वपालकः ।
शिवशासनतः प्राह हृदाऽथ मुनिसत्तम् ॥५०

विष्णु ने कहा —हे नारदजी ! आप इस समय कहाँ से और किस कारण पधारे हैं ? आप धन्य है आपके आगमन से मैं पवित्र हो गया हूँ ।४४। विष्णु की बाद सुनकर नारदजी और भी अहं में भर गये और मद-मोह से पूर्ण अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया ।४५। नारदजी के अभिमानयुक्त वचन सुन कर विष्णु सब कारण को जानते हुए, शिव का हृदय में ध्यान कर ।४६। अत्यन्त भक्तिपूर्वक शिवात्मा विष्णु शिवजी की स्तुति करने लगे तथा श्रद्धाञ्जलि पूर्वक मस्तक झुकाते हुये बोले ।४७। विष्णु ने कहा—हे देव-देव महादेव ! आप धन्य हैं, सबको मोह लेने वाली आपकी माया भी धन्य है । आप हमारे ऊपर प्रसन्न हों ।४८। इस प्रकार स्तुति कर, नेत्र बन्द किये, शिवजी के चरण कमलों का ध्यान करते हुए मौन हो गये ।४९। शिवजी की जो इच्छा है, उसे पूर्णतया जानते हुए विश्व-पालक विष्णु नारदजी के प्रति कहने लगे ।५०।

घन्यस्त्वं मुनिशार्दूल तपोनिधिरुदारधीः ।
भक्तित्रिकं न यस्यास्ति काममोहादयो मुने ।।५१
विकारास्तस्य सद्यो वै भवंत्यखिलदुःखदाः ।
नैष्ठिको ब्रह्मचारी त्वं ज्ञानवैराग्यवासन्दा ।।५२
कथं कामविकारी स्या जन्मनाविकृतः सुधीः ।
इत्याद्युक्तं वचो भूरि श्रुत्वा स मुनिसत्तमः ।।५३
विजहास हृदा नत्वा प्रत्युवाच वचो हरिम् ।
किंप्रभावः स्मरः स्वामिन्कृपा यद्यस्ति ते मयि ।।५४
इत्युक्त्वा हरिमानम्य ययौ याहच्छिको मुनिः ।।५५

विष्णुजी ने कहा—हे मुने ! हे उदार बुद्धि वाले ! हे तपोनिधे ! जिसके हृदय में त्रिवेदों की भक्ति नहीं, उसी को काम मोहादि अपना अधिकार करते हैं ।५१। यह विकार उन्हीं को दुःख देने वाले हैं, आप तो सदा विज्ञान से सम्पन्न एवं नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं ।२८। काम का विकार आपको किस प्रकार सता सकता है ? आप तो जन्म से ही विकार रहित है, आपकी बुद्धि श्रेष्ठ है । भगवान् विष्णु के यह वचन नारदजी ने सुने ।५३। तो हृदय में नमस्कार कर हँसते हुए भगवान् से बोले-प्रभो ! जब तक मेरे पर आपकी कृपा है, तब तक कामदेव मेरा क्या बिगाड़ सकता है ? ।५४। यह कहकर भगवान् विष्णु को प्रणाम कर नारदजी अपने इच्छित स्थान के लिए प्रस्थान कर गये ।५५।

।। नारद का मोह और शिवगणों को शाप ।।

सूत सूत महाभाग व्यासशिष्य नमोऽस्तु ते ।
अद्‌भुतेय कथा तात वर्णिता कृपया हि नः ।।१
मुनौ गते हरिस्तात किं चकार ततः परम् ।
नारदोऽपि गतः कुत्र तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ।।२
इत्याकर्ण्य वचस्तेषां सूतः पौराणिकोत्तमः ।
प्रत्युवाच शिवं स्मृत्वा नानासूतिकरं बुधः ।।३
मुनौ यदृच्छया विष्णुर्गते तस्मिन्हि नारदे ।
शिवेच्छया चकराशु मायां मायाविशारदः ।।४

मुनिमार्गस्य मध्ये तु विरेचे नगरं महत् ।
शतयोजनविस्तारमद्भुत सुमनोहरम् ॥५
स्वलोकादधिकं रम्य नानावस्तुविराजितम् ।
नरनारीविहार ढ्यं चतुर्वर्णाकुलं परम् ॥६
तत्र राजा शीलनिधिर्नामैश्वयसमन्वितः ।
सूतास्वयंवरोद्युक्तो महोत्सवसमन्वितः ॥७

ऋषि बोले—सूतजी ! आपको प्रणाम हैं। आपने कृपापूर्वक यह अद्भुत कथा कही है ।१। हे तात ! नारदजी चले गये तब विष्णु ने क्या किया ? नारदजी कहाँ गये ? यह सब हमको सुनाइये ।२। व्यास जी ने कहा—पौराणिकों में श्रेष्ठ सूतजी उसकी बात सुनकर शिवाजी की स्तुति कर प्रणाम पूर्वक कहने लगे ।३। जब नारदजी वहाँ से चले गये तब शिवेच्छा जानकर विष्णुजी ने अपनी माया को प्रेरित किया ।४। माया ने मुनि के मार्ग में एक नगर बनाया जो अत्यन्त मनोहर और सौ योजन विस्तार वाला था ।५। अपने लोक में भी अधिक मनोहर, अनेक वस्तुओं से सुशोभित नर-नारियों के विहार से युक्त तथा चारों वर्णों से युक्त ।६। वहां का राजा शीलनिधि था, वह अनेक ऐश्यवरों से सम्पन्न एवं अपनी पुत्री के स्वयंवर महोत्सव से युक्त था ।७।

चतुर्दिग्भ्यः समायातैः संयुतं नृपनन्दनैः ।
नानावेषैं सुभोभैश्च तत्कन्यावरणोत्सुकैः ॥८
तत्तादृश पुरं दृष्ट्वा मोह प्राप्तोऽथ नारदः ।
नौतुकी तन्नृपद्वारं जगात मदनैधितः ॥९
आगतं मुनिवर्य त दृष्ट्वा शीलनिधिर्नृपः ।
उपवेश्यार्चयांचक्रे रत्नसिंहासने वरे ॥१०
अथ राजा स्वतनयां नामतः श्रीसती वराम् ।
समानीय नारदस्य पादयोः समपातयत् ॥११
तत्कन्यां प्रेक्ष्य स मुनिर्नारदः प्राह विस्मितः ।
केयं राजन्महाभागा कन्या सुरसुतोपमा ॥१२
तस्य तद्वचन श्रुत्वा राजा प्राह कृतांजलि ।

दुहितेयं मम मुने श्रीमती नाम नामतः ॥१३
प्रदानसमयं प्राप्ता वरमन्वेषती शुभम् ।
सा स्वयम्बर संप्राप्ता सर्वलक्षण लक्षिता ॥१४
अस्या भाग्यं वद मूने सर्वं जातकमादरात् ।
कीदृशं तनयेयं मे वरमात्स्यति तद्वत ॥१५

सब ओर से राजागण आये हुए थे, वे कन्या को वरण करने की उच्छा से अनेक साज सज्जा सहित विराजमान थे ।८। ऐसे नगर को देखकर नारदजी का मन मोहित हो यया और कौतुक जानने को उत्कंठा से तथा काम-मद से युक्त हुए वहाँ गये ।९। मुनि श्रेष्ट को आया हुआ देखकर शीलनिधि ने उन्हें रत्न जटित सिंहासन पर बैठाकर उनका पूजन किया ।१०। तब राजा ने अपनी कन्या श्रीमती को नारदजी के चरणों में डाल दिया ।११। उस कन्या को देखकर नारदजी कहने लगे-राजन् देवकन्या के समान यह महाभागा कन्या कौन है ? ।१२। राजा ने कहा—मुनिवर ! यह मेरी कन्या श्रीमती है ।१३। यह वर खोज में सम्पूर्ण लक्षणों वाले स्वयंवर को प्राप्त हुई है ।१४। इसका जातक और भाग्य कथन कीजिये, यह कन्या कैसे वर को प्राप्त करेगी ? ।१५।

इत्युक्तो मुनिशार्दुलस्तामिच्छुः कामविह्वलः ।
समाभाष्य स राजनं नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥१६
सुतेयं तव भूपाल सर्वं लक्षणलक्षिता ।
महांभाग्यवती धन्या लक्ष्मीरिव गुणालया ॥१७
सर्वेश्वरोऽजितो वीरो गिरीशसदृशो विभुः ।
अस्याः पतिर्ध्रुवं भावी कामजित्सुरसत्तमः ॥१८
इत्युक्त्वा नृपमामंश्य ययौ यादृच्छिको मुनिः ।
बभूव कामविवशः शिवमायाबिमोहितः ॥१९
चित्ते विचिन्त्य स मुनिराप्नुयां कथमेनकाम् ।
स्वयम्वरे नपाणामेकं मां वृणुयात्कथम् ॥२०
सौन्दर्यं सर्वनारीणां प्रियं भवति सर्वथा ।
तद्दृष्ट्वैव प्रसन्ना सा स्ववशा नात्र संशयः ॥२१

यह सुनकर नारदजी काम से व्याकुल होकर उसकी प्राप्ति की कामना कर, राजा से कहने लगे ।१६ हे राजन् ! तुम्हारी यह कन्या सभी शुभ लक्षणों से सम्पन्न है । यह अत्यन्त भग्यवती तथा धन्य जीवन है ।१७। इसका पति सर्वेश्वर, अजेय, शिवजी के समान विभु, कामदेव का विजेता यथा देवताओं में सर्वश्रेष्ठ होगा ।१८। यह कहकर नारदजी स्वेच्छापूर्वक वहाँ से चल दिए तथा शिवजी की माया में पड़कर काम के वशीभूत हो गये ।१६। वे मन में विचार करने लगे कि इस कन्या को किस प्रकार प्राप्त करूँ ! स्वयंवर में आये हुए इतने राजाओं को छोड़ कर मुझे यह किस प्रकार वरण कर लेगी ? ।२०। स्त्रियाँ सुन्दरता को बहुत चाहती हैं । मेरे रूप को देखकर तो वह प्रसन्न होगी ही नहीं, इसमें सन्देह नहीं है ।२१।

विधायेत्थं विष्णू ग्रहींतूं मुनिसत्तमः ।
विष्णुलोकं जगामाशु नारदा स्मरविह्वलः ।।२२
प्रणिपत्य हृषीकेषं वाक्यमेतदुवाच ह ।
रहसि त्वां प्रवक्ष्यामि स्ववृत्तांतमशेषतः ।।२३
तथेत्युक्ते तथाभूते शिवेच्छाकार्यकर्तरि ।
ब्रूहित्युक्तवति श्रीशे मुनिराह वै केशवम् :।२४
त्वदींयो भूपतिः शीलनिधिः स वुषतत्परः ।
तस्य कत्या विशालाक्षी श्रीमती वरवर्णिनी ।।२५
जगन्मोहिन्यभिख्या च त्रलोक्येऽप्यतिसुन्दरी ।
परिणेतुमह विष्णो! तामिच्छाम्यद्य मा चिरम् ।।२६
स्वयवरं चकारासौ भूपतिस्तनयेच्छया ।
छतुर्दिग्भ्यः समायताः राजपुत्राःसहस्रशः ।।२७
यदि दास्यसि रूपं मे तदा तां प्राप्नुयां ध्रुवम् ।
त्वद्रूपं सा विना कंठे जयमालां न धास्यति ।।२८

इस प्रकाह विचार कर काम से व्याकुल हुये नारदजी विष्णु का रूप ग्रहण करने के निमित्त विष्णुलोक पहुँचें ।२२। वहाँ उन्हें प्रणाम कर बोले कि मैं आपसे एकान्त में कुछ कहना चाहता हूं । २३ । इस प्रकार

शिवजी की इच्छा होने के कारण भगवान् ने नारदजी से बात पूछी तब उन्होंने विष्णुजी से कहा ।२४। नारदजी ने कहा--राजा शीलनिधि आपके ही धर्म में तत्पर हैं । उसकी पद्मलोचनी कन्या श्रीमती वर ग्रहण करने की कामना कर रही है ।२५। वह विश्व-मोहनी और त्रैलोक्य में सर्वाधिक सुन्दरी है । हे विष्णो ! हे प्रभो ! मैं उसे अवश्य ही वरण करने की कामना करता हूँ ।२६। शीलनिधि अपनी उस कन्या का स्वयंवर कर रहा है, उसके निमित्त हजारों राजपुत्र सब ओर से वहाँ आ रहे हैं ।२७। यदि आप मुझे अपना रूप प्रदान कर दें तो वह कन्या मुझे अवश्य ही मिल जायगी । आपका रूप प्राप्त किये बिना उसकी जय माला मेरे कण्ठ में नहीं पड़ सकेगी ।२८।

स्वरूपं देहि मे नाथ सेवकोऽहं प्रियस्तव ।
वृणुयान्मां यथा सा वै श्रीमती क्षितिपात्मजा ।।२६
वचः श्रुत्वा मुनेरित्थं विहस्य मधुसूदन ।
शांकरीं प्रभुतां बुद्ध्वा प्रत्युवाच दयापरः ।।३०
स्वेष्टदेश मुने गच्छ करिष्यामि हितं तव ।
भिषग्वरो यथार्त्तस्य यतः प्रियतरोऽसि मे ।।३१
इत्युक्त्वा मुनये तस्मै ददौ विष्णुर्मुखं हरेः ।
स्वरूपमनुगृह्यास्य तिरोधनं जगाम सः ।।३२
एवमुक्तो मुनिर्हृष्टः स्वरूप प्राप्य वै हरेः ।
मेने कृतार्थ मात्मानं तद्यत्नं न बबोध सः ।।३३
अथ तत्र गणः शीघ्रं नारदो मुनिसत्तमः ।
चक्रे स्वयम्वरं यत्र राजपुत्रैः समाकुलम् ।। ३४
स्वयम्वरसभा दिव्या राजपुत्रसमावृता ।
शुशुभेऽतीव विप्रेन्द्रा यथा शक्रसभाऽपरा ।।३५

हे प्रभो ! आप मुझे अपना रूप दीजिये, मैं आपका परम प्रिय दास हूँ । आप वही कीजिये जिससे वह राजकन्या मुझे प्राप्त हो जाय ।२६। सूतजी ने कहा—नारदजी की बात सुनकर विष्णु हँस और भगवान् शिव के प्रभुत्व का ध्यान कर नारदजी से दयापूर्वक कहने लगे ।३०। विष्णु

जी ने कहा—हे मुनिवर ! आप अपने इच्छित देश को गमन करिये। आप मेरे लिये अत्यन्त प्रिय हैं, जैसे सद्वैद्य रोगी को उचित औषधि देता है, वैसे ही मैं आपका प्रिय कार्य करूँगा।३१। इतना कहकर विष्णु ने नारदजी को बन्दर का स्वरूप प्रदान किया और उनका हित करने के लिए अन्तर्धान हो गये। ३२। मुनि ने समझा कि हरिस्वरूप मिल गया वो बड़े प्रसन्न हुए और अपने को धन्य समझने लगे।३३। फिर वे शीघ्र ही वहाँ पहुँचे जहाँ राजपुत्रों के मध्य में राजकन्या का स्वयंर हो रहा था।३४। वह स्वयवर की सभा इन्द्र सभा के समान सुशोभित एवं राजपुत्रों से व्याप्त थी।३५।

तस्यां नृपसभायां वै नारदः समुपाविशत्।
स्थित्वा तत्र विचिन्त्येति प्रीतियुक्तेन चेतसा ॥३६
मां वरिष्यति नान्य सा विष्णु रूपधरं ध्रुवम्।
आननस्य कुरूपत्वं न वेद मुनिसत्तमः ॥३७
पूर्वरूपं मुनिं सर्वेदद्दशुस्तत्र मानवाः।
तद्भेदं बुबुधुस्ते न राजपुत्रादया द्विजाः ।३८
तत्र रुद्रगणौ द्वौ तद्रक्षणार्थं समागतौ।
विप्ररूपधरो गूढ़ौ तद्भेद जज्ञतुः परम् ॥३९
मूढ मत्वा मुनिं तौ तन्निकटं जग्मतुर्गणौ।
कुरुतस्तत्पहास वै भाषमाणौ परस्परम्।४०
पश्य नारदरूप हि विष्णोरिव महोत्तमम्।
मुख तु वानरस्येव विकट च भयंकरम् ॥४१
इच्छत्ययं नृपसुतां वृथैव स्मरमोहितः।
इत्युक्त्वा सच्छलं वाक्यमुपहासं प्रचक्रतुः ॥४२

नारदजी उस सभा में जा पहुँचे और प्रीतियुक्त चित्त से विचार करने लये। ६। मुझे विष्णु रूपधारी की यह अवश्य ही वरण कर लेगी, क्योंकि वे अपने कुरूपत्व के रहस्य से अनजान थे।३७। सब मनुष्यों को नारदजी का पूर्व रूप ही दिखाई दिया उनके कुरूप होने की बात किसी भी राजपुत्रादि को ज्ञात न हुई।३८। परन्तु वहाँ दो रुद्रागण ब्राह्मण

रूप धारण किये उपस्थित थे. वे इस गूढ़ रहस्य को जानते थे। नारदजी की रक्षा के लिए यह दोनों गण आये थे। ३९। नारदजी को मूढ़ हुआ देखकर वे शिवगण उनके पास ही जा पहूँचे और परस्पर बातचीत करते हुए नारदजी की हँसी उड़ाने लगे। ४०। देखो नारदजी का स्वरूप साक्षात् विष्णु के समान हो गया है। परन्तु मुख बानर के समान भयंकर है।४१। यह काम से मोहित होकर राजकन्या की व्यर्थ ही कामना करते हैं। इस प्रकार के छलपूर्ण वाक्योंसे वे उनकी हँसी उड़ाने लगे।४२।

न शुश्राम यथार्थंतु तद्वाक्यं स्मरविह्वलः।
पर्यैक्षच्छ्रमतीं तां वै तल्लिप्सुर्मोहितो मुनिः ॥४३
एतस्मिन्नंतरे भूपकन्या चांत पुरात्तु सा।
स्त्रीभिः समावृता तत्राजगाम वरवर्णिनी ॥४४
मालां हिरण्मयीं रम्यामादाय शुभलक्षणा।
तत्र स्वयम्बरे रेजे स्थिता मध्ये रमेव सा ॥४५
बभ्राम सा सभां मालायादाय सुव्रता।
वरमन्वेषती तत्र स्वात्माभीष्टं नृपात्मजा ॥४६
वानरास्यं विष्णुतनुं मुनिं दृष्ट्वा चुकोप सा।
दृष्टिं निवार्य च ततः प्रस्थिता प्रीतमानसा ॥४७
न दृष्ट्वा स्ववरं तत्र त्रस्तासीन्मनसेप्सितम्।
अन्तः सभा स्थिता कस्मिन्नर्पयामास न स्रजम् ॥४८
एतस्मिन्नंतरे विष्णुराजगाम नृपाकृतिः।
न दृष्टः कैश्चिदपरैः केवलं सा ददर्श हि ।४९
अथ सा त समालोक्य प्रसन्नवदनाम्बुजा।
अर्पयायास तत्कंठे तां मालां वरवर्णिनी ॥५०

काम से भ्रमित नारदजी उनके वचनों को यथार्थ रूप से न सुन सके, राजकन्या को देखते ही उसके रूप पर व्याकुल हो उठे।४३। इसी बीच राजकन्या अनेक स्त्रियों के साथ अन्तःपुर से चल पड़ी।४४। वह सुलक्षणा हाथ में स्वर्णमाल धारण किये स्वयंवर स्थल में, साक्षात् लक्ष्मी के समान खड़ी हुई।४५। वह श्रेष्ठ व्रत वाली कन्या

माला हाथ में लिये, सभा में फिरती हुई अपने अनुरूप वर की खोज करने लगी ।४६। वह नारदजी के सम्पूर्ण देह को विष्णु के समान और मुख वानर जैसा देखकर अत्यन्त क्रोधित हुई और वहाँ से दृष्टि हटाकर प्रसन्न मन से आगे बढ़ी ।४७। स्वयंम्वर में कोई वर अपनी इच्छा के अनुकूल न पाकर, व्याकुलता पूर्वक सभा के मध्य में खड़ी हो गई, उसने किसी के कण्ठ में माला नहीं डाली ।४८। तभी मनुष्य वेश में भगवान् विष्णु वहाँ आये, इनको केवल राजकन्या ने ही देखा, और कोई भी न देख सका ।४९। विष्णु को देखते ही उसका मुख कमल खिल उठा और उसने वरमाला उनके कण्ठ में डाल दी ।।५०।।

तमादाय ततो विष्णु राजस्वरूपधरः प्रभु ।
अन्तर्धानमगात्सद्यःस्वस्थान प्रययौ किलः ।।५१
सर्वे राजकुमाराश्च निराशाः श्रीमती प्रति ।
मुनिस्तु हिह्वालोऽवतीव बभूव मदुनातुरः ।।५२
तदा तावूचतः सद्यो नारद स्मरविह्वलम् ।
विप्ररूपधरौ रुद्रगणौ ज्ञानविशारदौ ।।५३
हे नारद मुने त्वं हि वृथा मदनमोहितः ।
तल्लिप्सुः स्वमुख पश्य वानरस्येय गर्हितम् ।।५४
इत्याकर्ण्य तयोवाक्य नारदो विस्मतोऽभवत् ।
प्रख ददश मुकुरे शिवमायाविमोहितः ।।

राजपुत्र का रूप धारण किये हुए भगवान् उस कन्या को ग्रहण कर, अन्तर्धान हो, अपने स्थान गये ।५३। तब उस राजकन्या की ओर से सब निराश हो गये और नारदजी भी कामातुर होने से अत्यन्त व्याकुल हुए ।५२। उन नारदजी से विप्र रूपधारी ज्ञान विशारद दोनों रुद्रगण कहने लगे ।५३। हे मुनिवर ! आप तो व्यर्थ ही काम से विह्वल हैं। राजकन्या की प्राप्त करने की इच्छा से पहिले अपने मुख को तो देखा होता, वह बन्दर के समान भयंकर है ।५४। सूतजी ने कहा-दोनों गणों के वचन सुनकर नारदजी आश्चर्य चकित हुए और शिवमाया में मोहित हुए उन्होंने दर्पण में अपना मुख देखा ।।५५।।

स्वमुख वानरस्येव दृष्ट्वा कुक्रोध सत्वरम् ।
शाप ददौ तयोस्तत्र गणतोर्मोहितो मुनि ॥५६
युवां ममोपहासं वै चक्रतुर्ब्राह्मभ्य हि ।
भवेतां राक्षसौ विप्रवीर्यजौ वै तदाकृती ॥५७
श्रुत्वा हरगणावित्थ स्वशापं ज्ञानसत्तमौ ।
न किंचिद्चतुस्तौ हि मनिमाज्ञाय मौहितम् ॥५८
स्वस्थाथं जग्मतुर्विप्रा उदासीनौ शिवस्तुतिम ।
चक्रतर्मन्यमानौ वै विवेच्छां सकलांतदा ॥५९

अपना मुख बन्दर जैसा देखकर नारदजी को बड़ा क्रोध हुआ और माया से मोहित रहते हुए उन्होने रुद्रगणों को शाप दे डाला ।५६। तुमने जिस प्रकार मुख ब्राह्मण का उपहास किया है, उसी प्रकार तुम ब्राह्मण योनि को प्राप्त होकर भी राक्षक्ष बनोगे ।७५। मुनि को मोह में पड़ा देखकर ज्ञानियों में श्रेष्ठ शिवगण मौन ही रहे ।५८। और उदासीन होकर भगवान् शिवजी की इच्छा समझ कर उनकी स्तुति करते हुए अपने स्थान को चले गये ।५९।

॥ महाप्रलय का स्वरूप और विष्णु की उत्पत्ति ॥

भो ब्रह्मान्साधु पृष्ठोऽहं त्वय विबधसत्तम ।
लोकोपकारिणा नित्यं लोकानां हितकाम्यया ॥१
यच्छ्रुत्वा सर्वलोकानां सर्वपापक्षयो भवेत् ।
तदहं ते प्रवक्ष्यामि शिवतत्वमनामयम् ॥२
शिवतत्वं मया नैव विष्णुनापि यथाथतः ।
ज्ञातश्च परणं रूपमद्भुक्त तच परेण न ॥३
महाप्रलयकाले च नष्टे स्थावरजंगमे ।
आसीत्तमोमयं सर्वमनर्कग्रहतारकम् ॥४
अचन्द्रमनहोरात्रमनग्न्यनिलभूजलम् ।
अप्रधानं वियच्छून्यमन्यतेजोविवर्जितम् ।५
अदृष्टष्वादिरहितं शब्दस्पर्शसमुज्झितम् ।
अव्यक्तगन्धरूपंच रमत्यक्तमदिङ्मुखम् ।६

इत्थं मत्यंधतमसे सूचीभेद्य निरन्तरे।
तत्सद्ब्रह्मेति यच्छ्रुत्वा सदेकं प्रतिहृद्यते ॥७

ब्रह्माजी ने कहा-हे ब्रह्मन ! हे विज्ञवर ! तुमने अच्छा प्रश्न किया है। तुम लोगों के उपकार में रत हो इसलिए लोक हितार्थ यह बात पूछी है।१। जिस अनामय शिवतत्व के श्रवण करने से लोकों के सभी पाप क्षीण हो जाते हैं, उसे मैं तुम्हारे प्रति कहता हूँ।२। मैं शिवतत्व को यथार्थ रूप से नहीं जनता, परन्तु विष्णुजी उस परम अद्भुत स्वरूप को जानते हैं।३। महापलय में जब स्थावर जगम विश्व पूर्णरूपेण नष्ट हो गया था उस समय ग्रह, तारागण, सूर्य आदि के न होने से सर्वत्र अन्धकार था।४। चन्द्रमा, अग्नि, वायु, पृथिवी, जल, दिवस, रात्रि, प्रधान आकाश तथा अन्य तेज भी नही था।५। शब्द, स्पर्श गंध, रूप, रस तथा सभी दृष्ट पदार्थ अदृष्ट थे।६। इस प्रकार के सूची-भेद्य सन्नाटे और निरन्तर अन्धकार में केवल सद्ब्रह्म ही था, उसी को 'सत' कहा गया है।७।

इतीदृशं यदा नासीद्यत्तत्सदसदात्मकम्।
योगिनोन्तर्हिताकाशे यत्पश्यति निरन्तरम् ॥८
अपनोगोचरं वाचां विषयं न कदाचन।
अनामरूपवर्ण च म च स्थूल न यत्कृशम् ॥९
अह्रस्वदीर्घमलघु गुरुत्वपरिवर्जितम्।
न यत्रापचयः कश्चित्तथा नोपचयोऽपि च ॥१०
अविधत्ते सचकित यदस्तीति श्रुतिः तुनः।
सत्यं ज्ञानमनंतं च परानन्दम्परम्महः ॥११
अप्रमेयमनाधारसविकारमनाकृति।
निर्गुणं यगिगम्यश्च सर्वव्याप्येककारकम् ॥१२
निर्विकल्पं निरारंभ निर्मायं निरुपद्रवम्।
अद्वितीयमनाद्यन्तमविनाशं चिवात्मकम् ॥१३
यस्येत्थं सविकल्पते संज्ञ सज्ञोक्तितःस्म वै।
कियता चैव कालेन द्वितीयेच्छाऽभवत्किल ॥१४

जब सद् असद् आत्मक कोई वस्तु शेष नहीं थी जिसे योगीजन अपने हृदयाकाश में सदा देखते हैं ।८। जो मन और वाणी द्वारा अगोचर तथा इन्द्रियों से परे है, जो नाम, रूप, वर्ण से परे तथा स्थूल और सूक्ष्म भी नहीं है ।९। जो न ह्रस्व है न दीर्घ, छोटा है, न बड़ा, जिसमें उपचय और अपचय भी नहीं है ।१०। श्रुति भी आश्चर्य से जिसके विषय में कहती है कि वह सत्य-स्वरूप, परानन्द स्वरूप एव साक्षात् परम पुरुष है ।११। प्रभा, आभा और विकार से रहित तथा आकृति से शून्य निर्गुण, सर्वव्यापक एकाकार तथा योगगम्य है ।१२। निर्विकल्प निरारम्भ, माया और उपद्रव से परे, आदि-अन्त से रहित, चिदात्मक और अद्वितीय है ।१३। विकल्प से ही जिसके संज्ञा और संज्ञोक्ति होते हैं, उसने कितने काल में दूसरे की इच्छा की ।१४।

अमूर्तेन स्वमूर्तिश्च तेनाकल्पि स्वलीलया ।
सर्वैश्वर्य गुणोपेता सर्वज्ञानमयी शुभा ।।१५
सर्वगा स्वरूपा च सवद्दक्सवकारिणी ।
सर्वैकवद्या सर्वाद्या सर्वदा सर्वसंस्कृतिः ।।१६
परिकल्प्येति तां मूर्तिमैश्वरीं शुद्धरूपिणाम् ।
अद्वितीयमानद्यंत सर्वाभासं चिदन्मकम् ।
अन्तदधे पराख्य यद्ब्रह्म सर्वगमव्ययम् ।।१७
अमूर्ते यत्पराख्यं वै तस्य मूर्तिः सदाशिवः ।
अर्वाचीना पराचीना ईश्वरं जगुर्बुधाः ।।१८
शक्तिस्तदैकलेनापि स्वैर विहरता तनु ।
स्वविग्रहात्स्वय सृष्टा स्वशरीरानपायिनी ।।१९
प्रधानाप्रकृति तां च मायां गुथवतीं पराम् ।
बुद्धितत्त्वस्य जननीमाहुर्विकृतिवर्जिताम् ।।२०

उस निराकार ने इच्छा से ही अपनी मूर्ति को कल्पना की, वह सम्पूर्ण ऐश्वर्य और सर्वज्ञान से सम्पन्न एव शोभावान है ।१५। वह मूर्ति सर्वत्र गमन करने वाली, सर्व रूप सम्पन्न, सर्वदर्शिनी, सबकी वंदनीया, सब की संस्कारकर्त्री, सबकी आद्या है ।१६। इस ऐश्वर्यात्मक शुद्ध

स्वरूपा मूर्ति की कल्पना करके बस अद्वितीय आदि अन्त रहित, चियात्मा, सर्वगामी, अविनाशी परब्रह्म अन्तर्हित हो गए ।१७। उस अमूर्त ब्रह्म की मूर्ति ही सदाशिव हैं । इसी अर्वाचीन मूर्ति को ज्ञानीजनों ने ईश्वर कहा ।१८। उसने अपने ही देह से स्वच्छन्द देह वाली शक्ति की प्रकट किया है ।१९। वही शक्ति प्रधान प्रकृति एवं गुणमयी परा माया है, वही बुद्धी तत्व की जन्मदात्री है, उसी को विकार से परे कहा गया है ।२०।

साशक्तिरम्बिका प्रोक्ता प्रकृतिः सकलेश्वरी ।
त्रिदेवजननी नित्या मूलकारणमित्युत ॥२१
अस्या अष्टौ भुजाश्चासन्विचित्रवदना शुभा ।
एका चन्द्रसहस्रस्य वदने भाश्च नित्यशः ॥२२
नानाभरणसंयुक्मा नानागतिसमन्विता ।
नानायुधधरा देवी फुल्लपंकजलोचना ॥२३
अचिंत्यतेजसा युक्ता सर्वयोनिः समुद्यता ।
एकाकिनी यदा याना शयोगाच्चाप्यनेकिका ॥२४
प्रकृतेश्च महानासीन्महतश्च गुणास्त्रयः ।
अहङ्कारस्ततो जातस्त्रिविधो गुणभेदतः ॥२५
तस्मात्राश्च ततो जाताः पञ्चभूतानि वै ततः ।
तदैव तानीन्द्रियाणि ज्ञानकर्ममयानि च ।।२६
तत्वानामिति संख्यामभूक्तं ते ऋषिसत्तम् ।
जडात्मकञ्च तत्पर्वं प्रकृतेः पुरुषं विना ॥२७
तत्तदैकीकृतं तत्त्वं चतुर्विंशतिसंख्यकम् ।
शिवेच्छया गृहीत्वा स सुष्वाप ब्रह्मरूपके ॥२८

उसी को शक्ति, अम्बिका, प्रकृति, सर्वलोकेश्वरी, त्रिवेदी-जननी, नित्या एवं मूल-कारण कहते हैं ।२१। इसकी आठ भुजाएँ, विचित्र मुख तथा पूर्णमासी के हजार चन्द्रमाओं के समान कान्ति हैं ।२२। यह अनेकों आभरण और अनेकों गतियों से सम्पन्न है । इसके नेत्र प्रफुल्लित कमल के समान हैं, यह अनेक प्रकार के आयुधों के धारण करने वाली है ।२३।

अचिन्त्य तेज वाली सबकी जन्मदात्री तथा एकाकिनी माया होते हुए भी संयोग से अनेक रूप वाली हो जाती है ।२४। उस प्रकृति से महान् और महान् से तीन गुणों की उत्पत्ति हुई, उससे अहङ्कार और उससे गुण भेद से तीन गुण होना कहा है ।२५। उससे तन्मात्रा और तन्मात्रा से पञ्चभूत हुए उससे ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय की उत्पत्ति हुई ।२६। हे ऋषियों ! आपसे तत्वों का वर्णन किया गया है। प्रकृति का सब कार्य जड़ात्मक है, उसे पुरुष से परे समझना चाहिए ।२७। वह चौबीस तत्व शिवेच्छा से ग्रहण होने पर ब्रह्मस्वरूप जल में सो गए ।२८।

।। ओंकार से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और शब्द-ब्रह्म वर्णन ।।

तदा समपत्तत्र नादो वै शब्दलक्षणः ।
ओमो मति सुरश्रेष्ठ त्सुव्यक्त प्लुत क्षणः ।।१
किमिदं त्विति संचित्य मया मया तिष्टन्महास्वन्ः ।
विष्णुः सर्वसुराहाघ्यो निर्वैरस्तुष्ठचेतसा ।।२
लिंगस्य दक्षिणे भागे तथापश्यत्सनातनम् ।
आद्यं वर्णमकराख्यमुकारं चोत्तरे ततः ।।३
मकार मध्यतश्चैवनादमन्तेऽस्य चोसिति ।
सूर्यमण्डलवद्दृष्ट्वा वर्णमाद्य तु दक्षिणं ।।४
उत्तरे पावकप्रख्यमुकारमृषिसत्तम ।
शीतांशुमण्डलप्रख्य मकार तस्य मध्यतः ।।५
तस्योपरि तदऽपश्यच्कुद्धस्फटिकसुप्रतम् ।
तुरीयातीतममलं निष्कलं निरुपद्रवम् ।।६
सिद्ध द्वं केवलं शून्यं बाह्याभ्यंतरवर्जितम् ।
स बाह्यभ्यंतरे चैव बाह्याभ्यन्तर संस्थितम् ।।७
आदिमध्यांतरहितमानदस्यादिकारणम् ।
सत्यतानन्दममृत परं ब्रह्म परायणम् ।।८

तब वहाँ शब्द गुण वाला नाद उत्पन्न हुआ । हे देवगण ! यह ओंकार युक्त प्रकट हुआ जो कि प्लुत लक्षण वाला था ।१। यह क्या है ? इस

प्रकार घोर शब्द हुआ, सब देवताओं द्वारा पूजे जाने वाले विष्णु वैर रहित होने से सन्तुष्ट हुए ।२। फिर उन्होंने लिंग के दक्षिण और सनातन आद्य आकार और उसके उत्तर की ओर उकार को देखा ।३। मध्य में मकार और अन्त में आद को देखा । इस प्रकार सम्पूर्ण प्रणव के दर्शन हुए । आदि वर्ण सूर्य मण्डल के समान दक्षिण में दिखाई दिया ।४। हे ऋषियो ! अग्नि के समान उकार को उत्तर में देखा और चन्द्र मण्डल के समान मकार को मध्य स्थान में देखा ।५। उसके ऊपर स्फटिकमणि के समान स्वच्छ निर्मल, निष्फल, निष्द्रव तथा तुरीयातीत ।६। र्निद्वन्द, केवल, शून्य, भीतर बाहर से रहित तथा वाह्याभ्ययंतर में सस्थित ।७। आदि, मध्य और अन्त से शून्य, आनन्द की उत्पत्ति कर्त्ता, सत्य, आनन्द, अविनाशी, परब्रह्म के दर्शन हुए ।८।

चिन्तया रहितो रुद्रो वाचो यन्मनसा सह ।
अप्राप्य तन्निवर्तते वाच्यस्त्वेकाक्षरेण स ॥६
एकाक्षरेण तद्वाक्यमृतं परमकारणम् ।
सत्यव्दानन्दममृतं परं ब्रह्म परात्परम् ॥१०
एकाक्षरादुकाराख्याद्भगवान्वीजकोऽण्डजः ।
एकाक्षरदुकाराख्याद्धरिः परमकारणम् ॥११
एकाक्षरान्मकाराख्ताद्भगवान्नीललीहितः ।
सर्गकर्त्ता त्वकाराख्यो ह्यू काराख्यस्तु मोहकाः ॥१२
मकाराख्यस्तु यो नित्यमनुग्रहकरोऽभवत् ।
मकाराख्यो विभुर्बीजी ह्यकारो वीज उच्यते ॥१३
उकाराख्यो हरिर्योनिः प्रधानपुरुषेश्वरः ।
बीजी च बीजं तद्योनिर्नादाख्यश्च महेश्वरः ॥१४
बीजी विभज्य चात्मानं स्वेच्छया व्यवस्थितः ।
अस्य लिंगादभूद्बीजमकारो बोजिन प्रभोः ॥१५

वह रुद्र चिन्तन गम्य नहीं हैं । इनका विचार करने में मन और वाणी की निवृत्ति हो जाती है । उनका ज्ञान एकाक्षर ॐ से ही सम्भव है ।६। उनका एकाक्षर रूप वाक्य ऋत और कारण का भी कारण है ।

सत्य स्वरूप आनन्द स्वरूप, परमामृत, ब्रह्म और परात्पर हैं ।१०। एकाक्षर 'अकार' में बीज स्वरूप तथा अण्डज ब्रह्माजी हैं और एकाक्षर इकार से परम कारण विष्णु हैं ।११। एकाक्षर मकार से नील लोहित भगवान् हैं। अकार सृष्टि को उत्पन्न करने वाला है तथा उकार मोहित करने वाला है ।१२। मकार नित्य अनुग्रहशील है तथा मकार को विभुबीजी और अकार को बीज कहा गया है ।१३। उकार विष्णु की योनि तथा प्रधान पुरुष रूप ईश्वर है । बीजी आत्मा का विभाग कर स्वेच्छा पूर्वक स्थित हुआ है । इस लिंग के बीज से ही आकार की उत्पत्ति हुई ।१५।

उकारयोनो निःक्षिप्तमवर्द्धतः संमततः ।
सौवर्णमभवच्चांडमावेद्यं तदलक्षणम् ।।१६
अनुकाब्द्र तथा चाप्सुदिध्यमदं व्यवस्थितम् ।
ततो वर्षसहस्रांते द्विधा कृतमजोद्भवम् ।।१७
अंडमप्सु स्थितं साक्षाद्व्याघातेनेश्वरेण तु ।
तथाऽस्य सुशुभं हेमं कपालं चोर्ध्वसंस्थितम् ।।१८
जज्ञे सा द्यौस्तदपरं पृथिवी पञ्चलक्षणा ।
तस्तादडाद्भवो जज्ञे ककराख्यश्चतुर्मुखः ।।१९
स स्रष्टा सर्वलोकानां स एव त्रिविधः प्रभुः ।
एवमोमोयिति प्रोक्तामित्याहुर्यजुशां वराः ।।२०
यजुषां वचनं श्रुत्वा ऋचः सामानि सादरम् ।
एवमेव हरे ब्रह्मनित्याहुश्चावयोस्तदा ।।२१

यह उकार रूप में जाकर सब ओर से वृद्धि को प्राप्त, उससे यह स्वर्ण अण्ड हुआ, उस समय यह अंड जानने योग्य नहीं था यथा लक्षण रहित था ।१६। अनेक वर्ष तक यह अण्ड जल में स्थित रहा, हजार वर्ष व्यतीत होने पर ब्रह्माजी ने इसके दो भाग किये ।१७। जल में स्थित इस अण्ड का परमेश्वर द्वारा व्याघात होने पर इसका एक कमाल ऊर्ध्व स्थित होकर शोभा पाने लगा ।१८। उससे द्युलोक प्रकट

हुआ और नीचे वाले कपाल से पश्चातत्वात्व पृथिवी का प्राकट्य हुआ। उस अंड से भव और ककार नामक चार मुख प्रकट हुए।१६। वही सब लोकों के रचने वाले तथा तीन धारण करने वाले हैं, इसीलिए यजुर्वेद इसे ॐ ॐ कहते हैं।१०। यजुर्वेद के वाक्य को सुनकर ऋक् और साम हम दोनों के प्रति हे हरे ! हे ब्रह्मन् हैं।२१।

ततो विज्ञायदेवेशं यथावच्छक्तिसंभवैः।
मन्त्रं महेश्वर देवं तुष्टाव सुमहोदयम् ॥२२
एतस्मिन्नन्तरेऽन्यच्च रूपमद्भुतसुन्दयम्।
ददर्श च माया सार्द्ध भगवान्विश्वपालकः ॥२३
पञ्चवक्त्रं दशभुजं गौरकर्पू रवन्मुने।
नानाकांतिसमायुक्तं नानाभूषणभूषितम् ॥२४
महोदारं महावीर्यं महापुरुषलक्षणम्।
तं दृष्ट्वा परम रूपं कृतार्थोऽभून्मया हरिः ॥२५
अथ प्रसन्नो भगवान्महेशः परमेश्वरः।
दिव्यं शब्दमय रूपमाख्याय प्रहसत्स्थितः ॥२६
अकारस्यस्य मूर्द्धा हि ललाटो दीर्घ उच्यते।
इकारो दक्षिण नेत्रमौकारौ वामलोचनम् ॥२७
उकारो दक्षिणं श्रोत्रमूकारो वाम उच्यते।
ऋकारो दक्षिणं तस्य कपोलं परमेष्ठिनः ॥२८
वामं कपोलमृकारो लृ लृ नासापुटे उभे।
एकारश्वोष्ठ उर्ध्वश्चह्य कारस्त्वधरो विभोः ॥२९
ओकारश्च तथौकातो दन्तपक्तिद्वयं क्रमात्।
अमस्तु तालुनीं तस्य देवस्य शूलिनः ॥३०

उन देवेश को जानकर अपने सामर्थ्यानुसार उचित मन्त्रों से महादेव को प्रसन्न करने लगे।२२। इसी समय विश्व के पालन कर्ता भगवान् विष्णु मेरे साथ एक अत्यन्त सुन्दर तथा अद्भुत स्वरूप का दर्शन करने लगे।२३। हे मुने ! वह कर्पूर के समान सुन्दर गौर वर्ण पाँच मुख, दस भुजा, अनेक भूषणों से भूषित तथा अनेक क्रान्तियों से युक्त था।२४।

महान उदर एवं वीर्य वाले, महापुरुष के लक्षणों से सम्पन्न उस स्वरूप के दर्शन कर गुरु सहित विष्णु कृतार्थ हो गये।२५। उस समय भगवान् महेश्वर अत्यन्त प्रसन्न होकर दिव्य शब्द युक्त स्वरूप में स्थित हुए।२६। उनका शिर अकार और मस्तक दीर्घ आकार था, दक्षिण नेत्र इकार और बाँया कमल नेत्र था।२७। उकार दक्षिण कपोल था।२८। ऋकार वाम कपोल, लृकार नासापुट लृकार दूसरा नासापुट, एकार उर्ध्व होंठ तथा ऐकार निम्न होंठ था।२९। ओ औ क्रमशः ऊपर नीचे की दन्त पंक्ति थी, अं उनका तालु था।३०।

कादिपञ्चाक्षराण्यस्य पञ्च हस्ताश्च दक्षिणे।
चादितंचाक्षराण्येवं पञ्च हस्तास्तु वामतः ॥३१
टादिपञ्चाक्षरं पादास्तादिकञ्चाक्षर तथा।
पकार गदरं तस्य फकारः पार्श्व उच्यते ॥३२
बकारो वामपार्श्वस्तु भकारः स्कधं उच्यते।
मकारो हृदयं शंभोर्महादेवस्त योगिनः ॥३३
यकारादिसकारान्ता विभोर्वं सप्तधातवः।
हकारो नाभिरूपो हि क्षकारो घ्राण उच्यते ॥३४
एवं शब्दमयं रपमगुणस्य गुणात्मनः।
दृष्टया तमुमया सार्द्धं कृतार्थोऽभून्मया हरिः ॥३५

क वर्ग के पाँचों अक्षर दक्षिण हाथ थे, वर्ग के पाँचों अक्षर वाम ओर के पाँच हाथ थे।३१। ट वर्ग के पंचाक्षर दक्षिण चरण तथा त वर्ग के पंचाक्षर वाम चरण थे,पकार उदर और फकार पार्श्व भाग था।३२। बकार वाम पार्श्व, भकार स्कन्ध और मकार हृदय था।३३। यकार से सकार तक सप्त धातुयें हकार नाभि और चकार घ्राण था इस प्रकार उन अगुण-गुणात्मा के शब्दमय स्वरूप के दर्शन करके मैं और विष्णुजी दोनों कृतार्थ हो गये।३५।

एवं दृष्ट्वा महेशानं शब्दब्रह्मतनुं शिवम्।
प्रणम्य च मया विष्णुः पुनश्चापश्यदूर्ध्वतः ॥३६

ॐकारप्रभवं मन्त्रं कलापञ्चकसंयुतम् ।
शुद्धस्फटिकसंकाशं शुभाष्टत्रिंशदक्षरम् ।।३७
मेधाकारमभूद्भूयः सर्वधर्मार्थसाधकम् ।
गायत्रीप्रभवं मन्त्रं सहितं वश्यकारकम् ।।३८
चतुर्विंशतिवर्णाढ्यं चतुष्कलमनुत्तमम् ।
अथ पञ्चसितं मन्त्रं कलाष्टकसमायुतम् ।।३९
आभिचारिकमत्यर्थं प्रायस्त्रिंशच्छुभाक्षरम् ।
यजुर्वेद समायुक्तं पञ्चविंशच्छुभाक्षरम् ।।४०
कलाष्टकसमायुक्तं सुश्वेतं शांतिकं तथा ।
त्रयोदशकलायुक्तं बालाद्यैः सह लेहतम् ।।४१
बभूवुरस्य चोत्पत्तिवृद्धिसंहारकारणम् ।
वर्णा एकाधिकाः षष्टिरस्य मन्त्रवरस्य तु ।।४२

इस प्रकार भगवान् के शब्द ब्रह्मदेह के दर्शन कर मेरे सहित विष्णु जी ने प्रणाम किया और ऊपर की ओर देखने लगे ।३६। वहाँ देखा कि ओंकार से अवतीर्ण पंचकलात्मक मंत्र शुद्ध स्फटिक के समान स्वच्छ, सुन्दर एवं अड़तीस अक्षरों से युक्त है ।३७। बुद्धि को प्रेरित करने वाला, अर्थ का साधन स्वरूप वह मंत्र गायत्री से प्रकट चौबीस वर्ण वाला मंत्र चारों कालों में उत्तम कहा है और 'ॐ नमः शिवाय' अक्षरों वाला तथा यजुर्वेद युक्त पच्चीस अक्षरों वाला ।४०। आठ यह पंचसित मन्त्र आठ कलाओं से सम्पन्न है ।३९। अभिचारक मन्त्र सात कलाओं वाला सुश्वेत एवं शान्तिप्रद मन्त्र तेरह कलाओं वाला ।४१। यह सृष्टि पालन और संहार करने वाला तथा इकसठ वर्ण वाला मन्त्र है ।४२।

पुनर्मृत्युंजयं मन्त्रं पञ्चाक्षरमतः परम् ।
चिंतामणिं तथा मन्त्रं दक्षिणामूर्तिसंज्ञकम् ।।४३
ततस्त्वमसीत्युक्तं महावाक्यहरस्य च ।
पञ्चमन्त्रांस्तथा लब्ध्वा जजाप भगवान्हरिः ।।४४
अथ दृष्ट्वा कलावर्णमृग्यजुःसामरूपिणम् ।

ईशानमीशशमुकुटं पुरुषाख्यं तुरातनम् ।।४५
अघोरहृदयं हृदयं सर्वगुह्यं सदाशिवम् ।
वामपादं महादेवं महाभोगीन्द्रभूषणम् ।।४६
विश्वतः पादवन्तं त विश्वतोऽक्षिकरं शिवम् ।
ब्रह्मणोऽधिपतिं सर्गस्थितिसंहारकारणम् ।।४७
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः साम्बं वरदमीश्वरम् ।
मया च सहितो विष्णुर्भगवास्तुष्टचेतसा ।।४८

फिर मृत्युंजय मन्त्र अथवा त्र्यंबक मंत्र और इसके उपारान्त पंचाक्षर मन्त्र (नमः शिवाय) व चिन्तामणि मन्त्र और दक्षिणमूर्ति मंत्र को ग्रहण करे ।४३। 'तत्वमसि' शिवजी का महा वाक्य है, इन पांचों मन्त्रों को ग्रहण कर भगवान् ने जप किया ।४४। फिर ऋक्, यजु और साम रूपी कला वर्ण, जो ईशान, ईश मुकुट, पुरातन पुरुष हैं, उन्हें देखकर ।४५। अघोर हृदय, सब में गुह्य, सदाशिव वामपाद महाभोगीन्द्र एवं महादेव के भूषण को धारण करे ।४६। जिनके सभी ओर नेत्र हैं, जो ब्रह्माजी के अधीश्वर, सर्ग स्थित तथा संहार कर्त्ता हैं ।४७। साम्बशिव वर देने वाले हैं उनको वाणियों से संतुष्ट करने लगे । इस प्रकार मैंने विष्णुजी के सहित अत्यन्त प्रीति पूर्वक उनकी स्तुति की ।४८।

हरिहर की अभेदता और परमशिवतत्व वर्णन

अन्यच्छृणु हरे विष्णो शासनं मम सुव्रत ।
सदा सर्वेषु लोकेषु मान्यः पूज्यो भविष्यसि ।।१
ब्रह्माणा निर्मिते लोके यदा दुःखं प्रजायते ।
तदा त्वं सर्व दुःखानां नाशाय तत्परो भव ।।२
रुद्रध्येयो भवांश्चै भवद्ध्येयो हरस्तथा ।
युवयोरन्तरं नैव तव रुद्रस्य किंचन ।।३
वस्तुतश्चापि चैकत्वं वरतोऽपि तथैव च ।
लीलयापि महाविष्णो सत्यं सत्यं न संशयः ।।४
रुद्रभक्तो नरो यस्तु तव निन्दां करिष्यति ।
तस्य पुण्यं च निखिलं द्रुतं भस्म भविष्यति ।।५

नरके पतनं तस्य त्वद्द्वेषात्पुरुषोत्तम।
मदाज्ञया भवेद्विष्णो सत्यं सत्यं न संशय।।६
त्वां यः समाश्रितो नूनं मामेव स समाश्रितः।
अन्तरं यश्च जानाति निरये पतित ध्रुमम्।।७
आयुर्बलं शृणुष्वाद्य त्रिदशानां विशेषतः।
संदेहोऽत्र न कर्त्तव्यो ब्रह्माविष्णुहरात्तनाम्।।८
त्वद्भक्तो यो भवेत्स्वामिन्मम प्रियतरो हि सः।
एवं वै यो विजानाति तस्य मुक्तिर्न दुर्लभाः।।९

परमेश्वर शिवजी ने कहा—हे विष्णो! हे सुव्रत! तुम मेरी आज्ञा श्रवण करो तुम सदैव सभी लोकों में मान्य एवं पूजनीय होंगे।१। ब्रह्माजी द्वारा रचे गये लोक में जब दुःख पड़ेगा तब तुम उस दुःख से लोकों को उबारने में तत्पर रहोगे।२। तुम दोनों को रुद्र का ध्यान करना उचित है। हे ब्रह्मा! तुम्हारे ध्यान के योग्य विष्णु है, तुम दोनों में और रुद्र में कोई भेद नहीं है।३। यथार्थ में तुम तीनों एक तत्व-रूप ही हो। हे विष्णो! यह सब अन्त लीला मात्र का ही है, यथार्थ में नहीं से।४। जो रुद्रभक्त तुम्हारा निन्दक हो, उसका सम्पूर्ण पुण्य नष्ट हो जाता है।५। हे पुरुषोत्तम! हे विष्णो! जो कोई तुम से द्वेष करेगा, वह नरकगामी होगा, इसमें संशय नहीं है।६। जो तुम्हारा आश्रय लेता है वही मेरा आश्रित है हम तुम में अन्तर समझने वाला अवश्य ही नरक को प्राप्त होगा।७। तुम देवताओं के आयुर्बल को श्रवण करो। ब्रह्मा, विष्णु और शिव के एकत्व में सन्देह नहीं करना चाहिए।८। ब्रह्मा, विष्णु ने कहा—हे स्वामिन्! आपका कथन यथार्थ है। जो आपका भक्त होगा, वही मेरे लिए प्रिय होगा, जो इस प्रकार जानेगा उसके लिये मोक्ष दुर्लभ नहीं है।९।

शिव पूजन की विधि और उसका फल

सूत सूत महाभाग व्यासशिष्य नमोऽस्तुते।
श्रोवितोऽद्याद्भुला शैवी कथा परमपावनी।।१

तत्राद्भुता महादिव्या लिंगोत्पत्तिः श्रुता शुभा ।
श्रुत्वा यस्याः प्रभावं दुःखनाशो भवेदिहि ॥२
ब्रह्मानारदसम्वादमनुसृत्य दयानिधे ।
शिवार्चनविधिं ब्रूहि येन तुष्टो भवेच्छिवः ॥३
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यै शूद्रैर्या पूज्यते शिवः ।
कथं कार्यं च तद् ब्रूहि यथा व्यासमुखाच्छ्रुतम् ॥४
तच्छ्रुत्वाचवनं तेषां शर्मदं श्रुतिसम्मतम् ।
उवाच सकलं प्रीत्या मुनिप्रश्नानुसारतः ॥५
साधु पृष्ठं भवद्भिश्च तद्रहस्य मुनीश्वराः ।
तदहं कथयाम्यद्य यथाबुद्धि यथाश्रुतम् ॥६
भवद्भि पृच्छयते यद्वत्तथा व्यासेन वैपुरा ।
पृष्ठं सनत्युमाराय तच्छ्रुतं ह्युपमन्युना ॥७
ततो श्यासेन वै श्रुत्वा शिवपूजादिकं च यत् ।
मह्यं च पठितं लोकानां हितकाम्यया ॥८

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! आपको नमस्कार है, आपने परम पावनी शिव कथा कही है ।१। उसमें अद्भुत दिव्य लिंग की उत्पत्ति सुनी, जिसके प्रभाव से इस लोक में दुःखों का क्षय होता है ।२। ब्रह्मा, और नारद के सम्वाद को स्मरण कर आप शिव की पूजा विधि कहिये, जिससे शिवजी सन्तुष्ट हो सकें ।३। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह सभी शिवजी की पूजा करते हैं, व्यासजी उसे किस प्रकार करने का उपदेश करते हैं, सो कहने की कृपा करें ।४। उनके ऐसे कल्याणप्रद तथा श्रुतिसम्मत वाक्य सुनकर सूतजी कहने लगे ।५। हे मुनियो ! आपने बड़ा उत्तम प्रश्न किया है । मैंने जैसा सुना है, वैसा ही कहता हूँ ।६। जो प्रश्न आपने किया था वही व्यासजी ने सनत्कुमार से किया था । जो उन्होंने कहा और उपमन्यु ने सुना था ।७। फिर शिवार्चन को सम्पूर्ण विधि लोकों के हितार्थ व्यास जी ने मुझे पढ़ाया ।८।

तच्छ्रुत चैव कृष्णेन ह्युपमन्योर्महात्मनः ।
तदहं कथयिष्यामि यथा ब्रह्माऽवदत्पुराः ॥९

श्रणु नारद वक्ष्यामि संक्षेपाल्लिंगपूजनम् ।
वक्तुं वर्षशतेनापि न शक्यं विस्तरान्मुने ॥१०
एवं तु शांकरं रूपं सुखं स्वच्छ सनातनम् ।
पूजयेत्परया भक्त्या सर्वकामफलाप्तये ॥११
दारिद्रय रोग दुःखं च पीडनं शत्रुसम्भवम् ।
पापं चतुर्विद्य तावद्या बन्नाचयते शिवम् ॥१२
सम्पूजिते शिवे देवे सर्वदुःखं विलीयते ।
सम्पाद्यते सुख सर्व पश्चान्मुक्तिरवाप्यते ॥१३
ये वै मानुष्यमाश्रित्य मुख्यं सनातनः सुखम् ।
तेन पूज्यो महादेवः सर्वकार्यार्थसाधकः ॥१४
ब्राह्मणः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राश्च विधिवत्क्रमात् ।
शङ्करार्चा प्रकुर्वन्तु सर्व कामार्थसिद्धये ॥१५

उपमन्यु ने वह सब श्री कृष्ण को सुनाया था, जैसे ब्रह्माजी ने कहा था, वैसे ही मैं तुमसे कहता हूँ ।६। ब्रह्माजी ने कहा – हे नारदजी ! मैं सक्षेप में लिंग-पूजा की विधि कहता हूँ, इसे विस्तार पूर्वक तो सौ वर्ष भी नहीं कहा जा सकता ।१०। इस प्रकार शिवजी का स्वरूप सुखदायक एवं सनातन है । सम्पूर्ण कामनाओं की प्राप्ति के लिए उनका परम भक्ति-पूर्वक पूजन करे ।११। दारिद्रय, रोग दुःख तथा शत्रु की पीड़ा यह चार प्रकार के संकट तभी रहते हैं, जब तक कि शंकर की पूजा नहीं की जाती ।१२। भगवान का पूजन करने से सभी दुःखों का लोप हो जाता है और सर्व सुख की प्राप्ति होकर अन्त में मोक्ष मिलती है ।१३। मनुष्य जन्म में सन्तान का ही मुख्य सुख है, इसकी प्राप्ति के हेतु सर्वार्थ साधक भगवान् शिवजी का पूजन करे ।१४। सम्पूर्ण कामनाओं की सिद्धि के लिए चारों वर्णों को क्रमशः शिवार्चन करना चाहिए ।१५।

प्रातःकाले समुत्थाय मुहूर्ते ब्रह्मसंज्ञके ।
गुरोश्च स्मरणं कृत्वा शंभोश्चव तथा पुन ॥१६
तीर्थानां स्मरणं कृत्वा ध्यान चैव हरेरपि ।
ममापि रिर्जराणां वै मुन्यादीनां तथा मुने।१७

तत: स्तोत्रं शंभुनाम गृह्णीयाद्विधिपूर्वकम् ।
तथोत्याय मलोत्सर्गं दक्षिणस्यां चरेद्दिशि ।।१८
एकान्ते तु विधिं कुर्यान्मलोत्सर्गस्य तच्छ्रुतम् ।
तदेव कथतास्यद्य श्रृणवाधाम मनो मुने ।।१९
शुद्धां मृदं द्विजो लिप्यात्पंचवारं विशुद्धये ।
क्षात्रियश्च चतुर्वारं वैश्यो वारत्रयं तथा ।।२०
शूद्रो द्विवारं च मृदं गृह्णीयाद्विधिशुद्धये ।
गुदे वाथ सकृल्लिंगे बारमेकं प्रयत्नतः ।।२१

प्रातःकाल ब्रह्म मुहूर्त में उठे और गुरु तथा शिवजी को स्मरण करे ।१४। फिर तीर्थों का स्मरण और शंकर का ध्यान करके मेरा स्मरण करे और फिर देवताओं और मुनियों का ध्यान करे ।१७। शिवनाम के स्तोत्र का विधिवत् जप करे और फिर उठकर दक्षिण दिशा में जाकर मल त्याग करे ।१८। शास्त्रानुसार मलोत्सर्ग एकान्त में करे । हे मुने ! उसकी विधि आपसे कहता हूँ, ध्यान से सुनो ।१९। शुद्धि के लिये ब्राह्मण को मृत्तिका से पाँच बार हाथ धोने चाहिए, क्षत्रिय चार बार तथा वैश्य तीन बार हाथ धोवे ।२०। शूद्र दो बार मिट्टी से हाथ धोवे, गुदा और लिङ्ग में भी एक बार मिट्टी लगावे ।२१।

दशवारं वामहस्ते सप्तवारं द्वयोस्तथा ।
प्रत्येकम्पादयोस्तात त्रिवारं कारयोः पुनः ।।२२
स्त्रोभिश्च शूद्रवत्वकाय मृदाग्रहणमुत्तमम् ।
हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्य पूर्ववन्मृदमापरेम् ।।२३
दंतकाष्ठं ततः कुर्यात्स्ववर्णक्रमओ नरः ।।२४
विप्रः ...र्याद्दंतकाष्टं द्वादश ...गुलमानतः ।
एकादशांगुलं राजा वैश्यः ...र्याद्दशांगुलम् ।।२५
शूद्रोनवांगुलं कुर्यादिति मानमिदं स्मृतम् ।
कालदोषं विचार्य्यैव मनुदृष्टं विवजयेत् ।।२६
षष्ठचद्यामाश्व मवमी व्रतमस्तं रवेर्दिनम् ।
तथा श्राद्धदिनं तात निषिद्धं रदधावने ।।२७

स्नानं तु विधिवत्कार्यं दीर्थादिषु क्रमेण तु ।
देशकालविशेषेण स्नानं कार्यं समन्त्रकम् ।।२८

बाँये हाथ से दस बार, फिर दोनों हाथों से सात-सात बार मृत्तिका लगावे, पांव के तले में तीन बार लगाकर फिर तीन बार हाथ धोवे। ।२। स्त्रियों को शूद्र के समान मिट्टी से हाथ धोने चाहिए। हाथ-पाँव धोकर पूर्ववत् मिट्टी ग्रहण करे ।२३। फिर अपने वर्ण क्रम के अनुरूप दाँतुन करे ।२४। ब्राह्मण को बारह अंगुल की दाँतुन करने का विधान हैं, क्षत्रिय को ग्यारह अंगुल की और वैश्य को दस अंगुल की ।२५। शूद्र भी नौ अंगुल की दाँतुन करे। इस प्रकार प्रमाण कहा गया है। काल-दोष का विचार करके क्रिया करे तो दृष्ट को भी वर्जित किया जा सकता है ।२६। छः, अमावस,नवमी व्रत का दिन, सूर्यास्त के समय रविवार अथवा श्राद्ध के दिन दाँतुन करने का निषेध है ।२७। तीर्थादि में क्रम पूर्वक तथा विधि सहित स्नान करे, विशेषकर देशकाल के अनुसार और मन्त्र सहित स्नान करना चाहिए ।२८।

आचम्य प्रथमं तत्र धौतवस्त्रेण चाधरेत् ।
एकांते सुस्थले स्थित्वा संध्याविधिमथाचरेद् ।।२९
यथायोग्यं विधिं कृत्वा पूजाविधिमथारभेत् ।
मनस्तु सुस्थिरं कृत्वा पूजागारं प्रविश्य च ।।३०
पूजाविधिं समावाय स्वासने ह्युपविश्य वै ।
न्यासादिकं विधायादो पूजयेत्क्रमशो हरम् ।।३१
प्रथमं च गणाधीशं द्वारपालांस्तथैव च ।
दिक्पालांश्च सुसंपूज्य पश्चात्पीठं प्रकल्पये ।।३२
अथवाऽष्टदलं कृत्वा प्रजाद्रव्यसमीपतः ।
उपविश्य ततस्तत्र चोपवेश्य शिवम् प्रभुम् ।।३३
त्रयमाचमनं कृत्वा प्रक्षाल्य च पुनः करौ ।
प्राणायामत्रयं कृत्वा मध्ये ध्यायेच्च त्र्यम्बकम् ।।३४
पचपक्त्रं दशभुजां मुद्धस्फटिकसन्निभम् ।
सर्वाभरणासंयुक्तं व्याघ्रचर्मोत्तरीयकम् ।।३५

स्नान करने के पश्चात् धुले हुए वस्त्र धारण करे फिर स्वच्छ स्थान में एकान्त में बैठकर संध्या करे।२९। यथा विधि करके. पूजन आरम्भ करे मन को स्थिर करके पूजा स्थान में प्रवेश करे।३०। विधि सहित आसन ग्रहण कर न्यासादि करे और फिर क्रम से शिवजी का पूजन करे।३१। प्रथम गणेशजी को पूजे, फिर द्वारपाल और दिक्पालों का पूजन करे और सिंहासन की कल्पना करे।३२। अथवा पूजा द्रव्य के निकट अष्टदल कमल बनाकर स्वयं बैठे और वहाँ भगवान शिवजी की स्थापना करे।३३। फिर तीन आचमन कर हाथ धोवे और तीन प्राणायाम कर मध्य में त्र्यम्बकदेव का ध्यान करे।३४। पाँच मुख, दश भुजा, स्फटिक मणि के समान स्वच्छ सम्पूर्ण आभरण, व्याघ्र चर्म उत्तरीय सहित सुशोभित।३५।

तस्य सारूप्यतां स्मृत्वा ददेत्पापं नर सदा।
शिवं ततः समुत्थाप्य पूजयेत्परमेश्वरम् ॥३६
देहशुद्धिं ततः कृत्वा मूल मन्त्रं न्यसेत्क्रमात्।
सर्वत्र प्रणवेनैव षठ गन्यासमाचरेत्॥३७
कृत्वा हृदि प्रयोगं च ततः पूजां समारभेत्।
पाद्यार्गायमनार्थं च पात्राणि च प्रकल्पयेत्॥३८
स्थापयेद्विविधात्कुंभान्नव धीमान्यथाविधि।
दर्भैराच्छाद्य तैरेव संस्थाप्याभ्युक्ष्य वारिणा॥३९
तेषु तेषु च सर्वेषु क्षिपेत्तोयं सुशीतलम्।
प्रणवेव क्षिपेत्तेषु द्रव्याण्यालोक्यं बुद्धिमान्॥४०
उशीरं चन्दनं चेव पाद्यं तुपरिकल्पयेत्।
जातिकं कोलकर्पूरवटमूलतमालकम्॥४१
चूर्णयित्वा तथान्यायं क्षिपेदाचमनीयके।
एतत्सर्वेषु पात्रेषु दापयेच्चनव नान्वितम्॥४२

भगवान शिवजी की सारूप्यता को प्राप्त होकर प्राणी अपने पापों को

सदैव क्षीण करे, फिर भगवान् शिव को उठाकर उनकी पूजा करे।३६। फिर देह की शुद्धि कर क्रम पूर्वक मूलमन्त्र का न्यास करे, ओंकार के सहित षडग न्यास करना चाहिए।३७। हृदय में प्रयोग करके पूजन प्रारम्भ करे और पाद्य, अर्घ्य, आचमन के लिए पात्रों की कल्पना करे।३८। यथाविधि नवीन घट स्थापित, करे, फिर कुशों से आच्छादित करके जल से छिड़के।३९। उन सब पात्रों में शीतल जल भरे और द्रव्यों को ग्रहण कर प्रणवोच्चार सहित उसमें डाले।४०। पाद्य में उशोर और चन्दन प्रयोग करे। जायफल, कंकोल, कर्पूर, वटमूल और तमाल।४१। सबको चूर्ण कर आचमन में डाले तथा चन्दन आदि भी इन पदार्थों में मिलावे।४२।

पार्श्वयोर्देवदेवस्य नंदीशं तु समर्चयेत् ।
गंधैर्धूपस्तथा दीपैर्विविधः पूजयेच्छिवम् ।।४३
लिङ्गशुद्धि ततः कृत्वा मुद यक्तो नरस्तदा ।
यथोचित तु मन्त्रोघैः प्रणवादिनमोतकैः ।।४४
कल्पयेदासनं स्वस्तिपद्मादि प्रणवेन तु ।
तस्मात्पूर्वदिश साक्षादणिमामयमक्षरम् ।।४५
लघिमा दक्षिण चैव महिमा पश्चिमं तथा ।
प्राप्तश्च वोत्तर पत्रं प्राकाम्यं पावकस्य च ।।४६
ईशित्वं नैर्ऋत पत्र वशित्वं वायुगोचरे ।
सर्वज्ञत्व तथशान्यं कर्णिका सोम उच्यते ।।४७
सोमस्याथस्तथा सूर्यस्तस्याधः पावकस्त्वयम् ।
धर्मादीनपि तस्याधो भवतः कल्पयेत्क्रमाद् ।।४८
अव्यक्तादि चतुर्दिक्षु सोमस्यांते गुणत्रयम् ।
सद्योजातं प्रवक्ष्यामीत्यावाह्य परमेश्वरम् ।।४९

महादेवजी के पार्श्व में नन्दीजन का पूजन करे और विविध गन्ध, धूप, दीप से शिव का पूजन करे।४३। फिर लिंग की शुद्धि कर मन से ओंकार सहित नमस्कार करे।४४। ओंकार सहित स्वस्ति कमल आदि युक्त आसन की कल्पना करे और पूर्व की ओर साक्षात् अणिमायुक्त अक्षर

को ।४५। लघिमा सिद्धि दक्षिण की ओर, महिमा पश्चिम की ओर, प्राप्ति उत्तर की ओर तथा प्राकाम्य अग्नि दिशा में ।४६। ईशित्व नैऋत्य दिशा में, वशित्व को वायुकोण के दल में, सर्वज्ञ सिद्धि को ईशान में कल्पित करे तथा कर्णिका सोम कही जाती है ।४७। सोम के नीचे सूर्य उसके नीचे धर्मादि की कल्पना क्रमपूर्वक करे ।४८। अव्यक्तादिको चारों दिशाओं में, सोम के अन्त में तीनों गुणों को कल्पित करे तथा सद्योजात प्रवक्ष्यामि' आदि मन्त्र से ईश्वर का आह्वान करना चाहिए ।४६।

वामदेवेन मन्त्रेण तिष्ठेच्चवासनोपरि ।
सान्निध्यं रुद्रगायत्र्या अघोरेण निरोधयेत् ॥५०
ईशानं सर्वविद्यानामिति मत्रेत्र पूजयेत् ।
पाद्यमाचमनीयं च विधायार्घ्यं प्रदापयेत् ॥५१
स्थापयेद्विधिना रुद्रं गधचन्दनवारिणा ।
पञ्चगव्यविधानेन गृह्य पात्रेऽभिमन्त्र्य च ॥५२
प्रणवेनैव गव्येन स्नापयेत्पयसा च तम् ।
दध्ना च मधुना चैव तथा चेक्षुरसेन तु ॥५३
घृतेन तु तथा पूज्य सर्वकामहितावहम् ।
पुण्यैर्द्रव्यैर्हादेव प्रणवेनाभिषेचयेत् ॥५४
पवित्रजलभाण्डेषु मत्रैस्तोय क्षिपेत्ततः ।
शुद्धीकृत्य यथान्यायं सितवस्त्रेण साधकः ॥५५
तावद्दूरं न कर्त्तव्यं न यावच्चन्दनं क्षिपेत् ।
तन्दुलैः सुन्दरैस्तत्र पूजयेच्छंकरम्मुदा ॥५६

वामदेव मन्त्र से आसन पर स्थित हो, रुद्र गायत्री से उनका सामीप्य तथा 'अघोरेभ्यो अथघोरेभ्यो' मन्त्र से निरोध करे ।५०। 'ईशानः सर्वविद्यानाम्' आदि मन्त्र से पूजा करे और पाद्य आचमन के पश्चात् अर्घ्य दे ।५२। गन्ध चन्दन के जल से विधिवत् रुद्र की स्थापना करे फिर पंच गव्य से ओंकार पूर्वक शिवजी को स्नान करावे । दही मधु और ईख के रस से ।५३। तथा घृत से सम्पूर्ण कामना और हित के देने वाले शिवजी का पूजन करे तथा पवित्र द्रव्यों से प्रणय पूर्वक शिवजी का पूजन करे

।५४। पवित्र जलों को मन्त्र सहित पात्रों में ग्रहण करे तथा योग्य श्वेत वस्त्र से जल को छाने ।५५। जब तक चन्दन न डाले, तब तक दूर न करे तथा श्रेष्ठ चावलों से शिवजी का पूजन करे ।५६

कुशापामार्गकर्पूरजातिचंपकपाटलैः ।
करवीरैस्सितैश्चैव मल्लिका कमलोत्पलै ॥५७
अपूर्वपुष्पैर्विविधैश्चन्दनाद्यैस्तथैव च ।
जलेनजलधाराश्च कल्पयेत्परमेश्वरे ॥५८
पात्रैश्च विविधैर्देवं स्नापयेच्च महेश्वरम् ।
मन्त्रपूर्वं प्रकर्तव्या पूजा सर्वफलप्रदा ॥५९
मन्त्राश्च तुभ्य ताँस्तात सर्वकामार्थ सिद्धये ।
प्रवक्ष्यामि समासेन सावधानतया शृणु ॥६०
पाठ्यमानेन मन्त्रेण तथा वाङ्मयकेन च ।
रुद्रेण नीलरुद्रेण सुशुक्लेन शुभेन च । ६१
होतारेण तथा शीर्ष्णा शुभेनाथर्वणेन च ।
शांत्या वाथ पुनः शांत्या मारुणेनारुणेन च ॥६२
अर्थाभीष्टेन साम्ना च तथा देवव्रतेन ॥६३

कुशा, चिरचिटा, कर्पूर, जातिफल, चम्पक, पाटक, कनेर, पुष्प, मल्लिका और कमल ।५७। तथा अन्य अनेक अपूर्व पुष्प चन्दनादि से, पूजन कर शिवजी पर जल की धारा छोड़े ।५८। अनेक प्रकार के पात्रों में जल भरकर पूजन मन्त्र पूर्वक की हुई पूजा सम्पूर्ण कामनाओं और फलों की देने वाली है ।५९। सभी कामनाओं की सिद्धि के निमित्त मैं उन मन्त्रों को संक्षेप में कहता हूँ, ध्यान पूर्वक श्रवण करो ।६०। पढ़ाये गये मन्त्र, वाँङ्हय, कण्ठस्थ मन्त्र, द्रुरु सूक्त मन्त्र, नील सूक्त के मंत्र तथा शुक्ल यजुर्वेद के श्रेष्ठ मन्त्रों से ।६१। होतारम्० यजुमंत्र, अथर्वशीर्ष के मन्त्र, फिर शान्ति, आरुणि मन्त्र से ।६२। जो अपने को अनुकूल हो ऐसे अथर्व और साम मन्त्र तथा देव व्रत मन्त्र से ।६३।

रथातरेण पुष्पेण सूक्तेन युक्तेन च ।
मृत्युंजयेन मन्त्रेण तथा एश्चाक्षरेणाच ॥६४

जलधाराः सहस्रेन शतेनैकोत्तरेण वा ।
कर्तव्या वेदमार्गेण नामभिर्वाथ वा पुनः ।।६५
ततश्चन्दनपुष्पादि रोपणीय शिवोपरि ।
दापयेत्प्रणवेनैव मुखवासादिकं तथा ।।६६
ततः स्फटिकसंकाश देवं निष्कलमक्षयम् ।
कारणं सर्वलोकानां सर्वलोकमयं परम् ।।६७
ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रविष्णवाद्येरपि देवैरगोचरम् ।
वेदवित्भिर्हि वेदांते त्वगोचरमिति स्मृतम् ।।६८
आदिमध्यान्तरहितं भेषज सर्वरोगिणाम् ।
शिवतत्वदिति ख्यातं शिवलिंगं व्यवस्थितम् ।।६९
प्रणवेनैव मन्त्रेण पूजयेल्लिंगमूर्द्धनि ।
धूपैर्दीपैश्व नवेद्यैस्तांबूलैः सुन्दरैस्तथा ।।७०

रथान्तर मन्त्र, पुष्पसूक्त के मन्त्र, मृत्युजंय मन्त्र तथा पंचाक्षर मंत्र से ।६४। एक हजार जलधारा से अथवा एक सौ एक जलधारा से वेद मन्त्रों से अथवा नाम मन्त्रोंसे भगवान् शिवजी के ऊपर अभिषेक करे ।६५। फिर चन्दन, पुष्प आदि अर्पित करे तथा मुखवासादि के लिए सामग्री प्रणव से अर्पण करनी चाहिए ।६६। फिर स्फटिक मणि के समान देव कला रहित, क्षय रहित, सब लोकों के कारण एवं सर्वलोकमय परम स्वरूप ।६७। ब्रह्मा, इन्द्र, उपेन्द्र, विष्णु आदि को भी अगोचर तथा वेदान्तियों के वेदान्त में भी अगम्य ।६८। आदि, मध्य, अन्त से रहित, सब रोगों के लिये औषधि रूप, विख्यात शिवतत्व रूप शिव लिंग प्रतिष्ठित हैं ।६९। धूप दीप, नैवेद्य, ताम्बूल शिव लिंग पर चढ़ाना चाहिए और चढ़ाते समय प्रत्येक बार प्रणव का उच्चारण करना चाहिए ।७०।

नीराजनेन रम्येण यथोक्तिविधिना ततः ।
नमस्कारैः स्तवंश्चान्यैर्मंत्रैर्नानाविधैरपि ।।७१
अर्घ्य दत्वा तु पुष्पाणि पादयोः सुविकीर्य च ।
पाणिपत्य च देवेशमात्मनाऽऽधियेच्छिवम् ।।७२

हस्ते गृहीत्वा पुष्पाणि समुत्थाय कृताञ्जलिः ।
प्रार्थयेत्पुनीशान मन्त्रेणानेन शङ्करम् ॥७३
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जपपूजादिकं मता ।
कृत तदस्तु सफलं कृपया तव शंकरः ॥७
पठित्वैवं च पुष्पाणि शिवोपरि मुदा न्यसेत ।
ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा ह्याशिषो विवधास्तथा । ७५
माजनं तु ततः कार्यं शिवस्योपरि वै पुनः ।
नमस्कार ततः क्षांति पुनराचमनाय च ॥७६
अघोच्चारणमुच्चार्थ नमस्कारं प्रकल्पयेत् ।
प्रार्थ येच्च पुनस्तत्र संवंभावसमन्वितः ॥७७

फिर यथाविधि नीराजन, नमस्कार और स्तुति करते हुए अनेक प्रकार के मन्त्रों का उच्चारण करे ।७१। अर्घ्य देकर शिवजी के चरणों में पुष्प अर्पण करे और प्रणाम पूर्वक उनका अर्पण करे ।७२। फिर हाथ में पुष्प ग्रहण कर उठे और अगले मन्त्र से ईशान देवता की आराधना करे ।७३। हे शंकर ! मैंने जो ज्ञान या अज्ञान से आपका पूजन किया है, वह सब आपकी कृपा से फलयुक्त हो ।७४। यह कहकर शिव जी के ऊपर पुष्प चढ़ावे, फिर स्वास्तिवाचन करके आशीर्वाद ग्रहण करे ।७५। फिर शिवजी के ऊपर मार्जन करे फिर नमस्कार कर अपराध क्षमा करावे और आचमन करावे ।७६। फिर अघोर मन्त्र का उच्चारण कर नमस्कार की कल्पना करे और सभी भावों से शिवजी की स्तुति प्रार्थना करे ।७७।

शिवं भक्तिः शिवे भक्तिः शिवे भक्तिर्भवेभवे ।
अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मत ॥७८
इति संप्राय्यं देवेशं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
पूजयेत्परया भक्त्या गलनादैर्विशेषतः ॥७९
नमस्कारं ततः कृत्वा परिवारगणैः सह ।
प्रहर्षमतुलं लब्ध्वा कार्यं कुर्याद्यथासुखम् ॥८०
एव्र यः पेजयेन्नित्यं शिवभक्तिपरायणः ।

तस्य वै सकला सिद्धिर्जायते तु पदे पदे ॥८१
वाग्मी स जायते तस्य मनोभीष्टफलं ध्रुवम् ।
रोगं दुःख च शोकं व ह्युद्वेग कृत्रिमं तथा ॥८२
कौटिल्यं च गरं चैव यद्यद्दुःखमुपस्थितम् ।
तद् दुःख नाशयत्येव शिवः परः ॥८३
कल्याणं जायते तस्य शुक्लपक्षे यथा शशी ।
वर्द्धते सद्गुणस्तत्र ध्रुव शङ्कर पूजनात् ॥८४

मेरी शिवजी में भक्ति हो, निरन्तर शिवजी में भक्ति रहे । हे शिव ! तुम ही तुझे शरण देने वाले हो, कोई दूसरा नहीं है ।७८। इस प्रकार सर्वसिद्धि प्रदायक देवों के भी ईश्वर शिवजी की प्रार्थना कर परम भक्ति पूर्वक कण्ठनाद के शब्दों द्वारा उन्हें प्रसन्न करे ।७९। फिर परिवारी जनों के सहित नमस्कार करता हुआ अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त हो सुखदायक कार्य करे ।८०। जो मनुष्य शिव-भक्ति परायण होकर नित्य प्रति इस प्रकार पूजा करते हैं, उन्हें पद-पद में सिद्धि प्राप्त होती है ।८१। वह मनुष्य वाग्मी होता है और उसकी सभी इच्छाएँ फलदायक होती हैं । रोग, दुःख, शोक, उद्वेग बनावट ।८२। कुटिलता तथा विष प्रयोग से उत्पन्न दुःखों को कल्याणकारी शिवजी नष्ट करते हैं ।८३। शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान उसका कल्याण होता और शिवजी की पूजा करने से सद्गुणों की वृद्धि होती है ।८४।

॥ लिंग पूजा विधान और स्तोत्र पाठ ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि पूजाविधिमनुत्तमम् ।
श्रूयतामृषयो देवया सर्वकामसुखावहम् ॥१
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय संस्मरेत्सांबकं शिवम् ।
कुर्यात्तत्प्रार्थनां भक्त्या सांजलिर्नतमस्तकः ॥२
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ देवेश उत्तिष्ठ हृदयेशय ।
उत्तिष्ठ त्वमुमास्वामिन्ब्रह्माण्डे मङ्गल कुरु ॥३
जानामि धर्म न च मे प्रवृत्तर्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः ।
त्वयामहादेवहृदि स्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मितथाकरोमि ॥४

इत्युक्त्वा वचनं भक्त्या स्मृत्या च गुरुपादुके ।
बहिर्गच्छेद्दक्षिणाशात्यागाथ मलसूत्रयोः ॥५
देहशुद्धिं ततः कृत्वा समृज्जलविशोधनैः ।
हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्य दंतधावनमाचरेत् ॥६
दिवानाथे त्वनुदिते कृत्वा वै दंतधावनम् ।
मुखं षोडशवारं तु प्रक्षाल्यांजलिभिस्तथा ॥७

ब्रह्माजी ने कहा—अब मैं श्रेष्ठ पूजन की विधि कहता हूँ। हे देवताओ ! यह सब सुख और कामनाओं को देने वाली है ।१। ब्रह्म मुहूर्त में उठ कर शिव-पार्वती का स्मरण करे और हाथ जोड़कर नत मस्तक हो भक्ति पूर्वक उनकी प्रशंसा करे ।२। हे देवेश ! हे हृदयशाये ! आप उठिए और ब्रह्माण्ड का कल्याण कीजिये ।३। मैं धर्म का ज्ञाता हूँ, किन्तु उसमें मेरी प्रवृत्ति नहीं है। हे प्रभो ! आप मेरे हृदय में स्थित होकर जैसी प्रेरणा करते हो, मैं उसी के अनुसार करता हूँ ।४। इस प्रकार भक्ति-भाव पूर्ण वचन कहे और गुरु पादुकाओं का स्मरण कर, मल-मूत्र त्यागार्थ ग्राम से बाहर दक्षिण दिशा को गमन करे ।५। फिर मिट्टी और जल से देह शुद्धि कर हाथ पाँव धोवे और दाँतुन करे ।६। सूर्योदय से पूर्व दाँतुन करके सोलह कुल्ला करे ।७।

यथावकाशं सुस्नायान्नद्यादिष्वथवा गृहे ।
देशकालविरुद्धं न स्नानं कार्यं नरेश च ॥८
तैलाभ्यंगं च कुर्वीत वारान्दृष्ट्वा क्रमेण च ।
नित्यमभ्यंगके चैव वासितं वा न दूषितम् ॥९
श्राद्धे च ग्रहणे चैवोपवासे प्रतिपद्दिने ।
अथवा सार्षपं तैलं न दुष्येद्ग्रहणं बिना ॥१०
देशं कालं विचार्यैवं स्नानं कुर्याद्यथाविधि ।
उत्तराभिमुखश्चैव प्राङ्मुखोऽप्यथवा पुनः ॥११
उच्छिष्टेनैव वस्त्रेण न स्नायात्स कदाचन ।
शुद्धवस्त्रेण स स्नायात्तद्देवस्मरपूर्वकम् ॥१२
परधार्यं च नोच्छिष्टं रात्रौ च विधृतं च यत् ।

तेन स्नानं तथा कार्यं क्षालितं च परित्यजेत् ॥१३

तर्पणं च ततः कार्यं देवर्षिपितृतृप्तिदम् ।
धोतवस्त्रं ततो धार्यं पुनराचमनं चरेद् ॥१४

यथा सुविधा नदी अथवा गृह में स्नान करे। स्नान देश काल को देखकर करना उचित है। वारों को देखकर क्रमानुसार तैल लगावे, नित्य तेल लगाने वाले की वास दूषित नहीं होती।९। श्राद्ध में, ग्रहण में, उपवास में, पड़वा में तेल न लगावे तो दोष नहीं है।१०। देश-काल को विचार कर, उत्तर या पूर्व की ओर मुख करके स्नान करे।११। उच्छिष्ट से स्नान न करे अपने देवता का स्मरण करता हुआ शुद्ध वस्त्र से स्नान करे।१२। दूसरे का धारण किया हुआ वस्त्र उच्छिष्ट कहा है। परन्तु एक रात्रि का धारण किया हुआ वस्त्र उच्छिष्ट नहीं है, उससे स्नान करे और धोये हुए वस्त्र को छोड़ दे।१३। फिर देवताओं और ऋषियों की तृप्ति के लिए तर्पण करे और धुला हुआ वस्त्र धारण कर आचमन करे।१४।

शुचौ देशे ततो गत्वा गोमयाद्युपमार्जिते ।
आसनं च शुभं तत्र रचनीयं द्विजोत्तमाः ॥१५
शुद्धकाष्ठसमुत्पन्नं पूर्णं स्तरितमेव वा ।
चित्रासनं तथा कुर्तात्सर्मकार्वफलप्रदम् ॥१६
यथायोग्यं पुनर्ग्राह्यं मृगचर्मादिकं च यत् ।
तत्रोपविश्य कुर्वीत त्रिपुण्ड्रं भस्मना सुधीः ॥१७
जपस्तपस्तथा दानं त्रिपुड्रात्सफल भवेत् ।
अभावे भस्मनस्तत्र जलस्यादि प्रकीर्तितम् ॥१८
एवं कृत्वा त्रिपुण्ड्र रुद्राक्षान्धारयेन्नरः ।
संपाद्य च स्वकं कर्म पुनराराधयेच्छिवम् ॥१९
पुनराचमनं कृत्वा त्रिवारं मन्त्रपूर्वकम् ।
एकं वाथ प्रकुर्याच्च गंगाविन्दुरिति ब्रुवत् ॥२०
अन्नोदकं तथा तत्र शिवपूजार्थमाहरेत् ।
अन्यद्वस्तु यत्किंचिद्यथाशक्ति समीपगम् ॥२१

फिर गोबर से लिपे हुए पवित्र स्थान में सुन्दर आसन कल्पित करे ।१५। वह शुद्ध काष्ठ का और चिकना हो, ऐसा चित्रासन सर्व कामना और फल का देने वाला बनावे। १६। फिर मृग चर्म आदि को ग्रहण कर उस पर बैठे और भस्म से त्रिपुण्ड धारण करे ।१७। त्रिपुण्ड धारण से जप, तप, दान सब सफल होता है, यदि भस्म न हो तो जल से ही त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिए ।१८। इस प्रकार त्रिपुण्ड्र धारण के पश्चात् रुद्राक्ष धारण करे और सम्पादन करता हुआ, शिवजी की आराधना करे ।१९। शिर मन्त्र पूर्वक तीन आचमन करके गंगा विष्णु का उच्चारण करता हुआ एक बार तिलक लगावे ।२०। फिर शिवजी का पूजन करने के लिये यथाशक्ति अन्न, जल अथवा अन्य जो वस्तु हो निकट लावे ।२१।

कृत्वा स्थेयं च तत्रैव धैर्यमास्थाय वै पुनः ।
अर्धपात्रं तथा चैकं जलगंधाक्षतैर्युतम् ॥२२
दक्षिणांसे तथा स्थाप्यनुपचारस्य कलप्तये ।
गुरोश्च स्मरण कृत्वा तदनुज्ञामवाप्य च ॥२३
संकल्पं विधिवत्कृत्वा कामनां न नियुज्य वै ।
पूजयेत्परया भक्त्या शिवं सपरिवारकम् ॥२४
मुद्रामेकां प्रदर्श्यैव पूजयेद्विघ्नहारकम् ।
सिधुरादिपार्थैश्च सिद्धिबुद्धिसमन्वितम् ॥२५
लक्षलाभयुतं तत्र पूजयित्वा नमेत्पुनः ।
चतुर्थ्यर्नामपदैर्नमोन्तैः प्रणवादिभिः ॥२६
क्षमाप्यैनं तदा देवं भ्रात्रा चैव समन्वितम् ।
पूजयेत्परया भक्त्या नमस्कुर्यात्पुनः पुनः ॥२७
द्वारपालं सदा द्वारि तिष्ठंतं च महोदरम् ।
पूजयित्वा ततः पश्चात्पूजयेद्गिरिजां सतीम् ॥२८

यह करता हुआ धैर्य पूर्वक वहाँ बैठे और फिर गन्ध, जल, अक्षत से युक्त अर्घ्य पात्र ग्रहण करे ।२२। फिर उपचार की पूर्ति के हेतु अपने दक्षिण ओर उसे स्थापित कर गुरु का स्मरण करें और उनकी

आज्ञा प्राप्त करके ।२३। विधिवत् संकल्प करे और उसमें अपनी कामना व्यक्त करता हुआ परम भक्तिभाव से सपरिवार शिवजी पूजा करे ।२४। फिर एक मुद्रा भेंट की उपस्थित कर विघ्नेश्वर की पूजा करे । इनकी पूजा सिद्धि बुद्धि से करता हुआ सिन्दूर आदि पदार्थ अर्पण करे ।२५। लक्ष लाभ युक्त पूजन करके नमस्कार करे और प्रणाम करे तो प्रणव सहित चतुर्थी विभक्ति नाम से लगाकर अन्त में नमः लगावे ।२६। फिर उनसे क्षमा कराकर स्कन्ध-भ्रान्ता सहित परम भक्ति पूर्वक पूजा कर बारम्बार प्रणाम करे ।२७। शिवजी के द्वार पर सदा स्थित रहने वाले सहोदर नामक द्वारपाल की पूजा कर फिर सती पार्वती जी का पूजन करे ।२८।

चंदनैः कुंकुमैश्चैव धूपैर्दीपैरनेकशः ।
नैवेद्यैर्विविधैश्चैव पूजयित्वा ततः शिवम् ।।२९
नमस्कृत्यपुनस्तत्र गच्छेच्च शिवसान्निधौ ।
यदि गेहे पार्थिवीं वा राजती तथा ।।३०
धातुजन्यां तथैवान्यां पारदां वा प्रकल्पयेत् ।
नमस्कृत्य पुनस्तां च पूजयेद्भक्तितत्परः ।।३१
तस्यां तु पूजितायां वै सत्र स्युः पूजितास्तथा ।
स्थापयेच्च मृदा लिंग विधाय विधिपूर्वकम् ।।३२
कर्तव्यं सर्वथा तत्र नियमात्स्वगृहे स्थितः ।
प्राणप्रतिष्ठां कुर्वीत भूतशुद्धिं विधाय च ।।३३
दिक्पालान्पूजयेत्तत्र स्थापयित्वा शिवालये ।
गृहे शिवः सदा पूज्यो मूलमन्त्राभियोगतः ।।३४
तत्र तु द्वारपालानां नियमो नास्ति सर्वथा ।
गृहे लिंग च म पूज्यं तस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम् ।।३५

चन्दन, केसर, धूप, दीपक और नैवेद्य के द्वारा शिवजी का पूजन करे ।२९। फिर नमस्कार कर उनके निकट जाकर घर में स्वर्ण या रजत जो कुछ पार्थिव धातु हो ।३०। अथवा अन्य धातु या पारे की मूर्ति को नमस्कार कर भक्ति-भाव से तन्मयता पूर्वक पूजन करे ।३१। उसको

पूजने से सभी का पूजन हो जाता है। मृत्तिका का लिंग विधि पूर्वक स्थापित करे।३२। अपने घर में रहकर नियम पालन करे और भूत शुद्धि करके भगवान् की प्राण प्रतिष्ठा करे।३३। शिवालय में प्रतिष्ठित कर दिक्पालों को पूजे तथा घर में भी मूल मन्त्र से शिवजी की अर्चना।६४। घर में द्वारपाल के पूजन का नियम नहीं है, वहाँ जो लिंग पूजा जाता है उसी में सब प्रतिष्ठित हैं।३५।

पूजकाले च सांगं वै परिवारेण संयुतम् ।
आवाह्य पूजयेद्देवं नियमोऽत्र न विद्यते ॥३६
शिवस्य सनिधिं कृत्वा स्वसानं परिकल्पयेत् ।
उदङ मुखस्तदा स्थित्वा पुनराचमनं चरेत् ॥३७
प्रक्ष्याल्य हस्तौपश्चाद्वै प्राणायाम् प्रकल्पयेत् ।
मूलमन्त्रेण तत्रैव दशावर्तं नयेन्नरः ॥३८
पञ्च मुद्राः प्रकर्तव्याः पूजाऽवश्यं करेप्सिताः ।
एता मुद्राः प्रदर्श्यैव चरेत्पूजाविधिं नरः ॥३९
दीपं कृत्वा तदा तत्र नमस्कार गुरोरथ ।
बद्ध्वा पद्मासन तत्र भद्रासनमयापि वा ॥४०
उत्तानासनकं कृत्वां पर्यंका सनकं तथा ।
यथासुखं तथा स्थित्वा प्रयोगं पुनरेव च ॥४१
कृत्वा पूजां पुरा जातां वट्टकेनैव तारयेत् ।
यदि वा स्वयमेवेह गृहे न नियमोऽस्ति च ॥४२

पूजन के समय पूरे परिवार सहित आवाहन और देव-पूजन करे।३६। शिवजी के निकट ही अपना आसन कल्पित करे और उत्तराभिमुख होकर आचमन करे।३७। फिर हाथ धोकर प्राणायाम मूल-मन्त्र से दश बार करे।३८। फिर पाँचों मुद्रा दिखावे, क्योंकि पूजन हाथ से ही स्थित होता है, इन मुद्राओं को देखकर ही पूजन कार्य सम्पन्न करने का विधान है।३९। फिर दीपक करके गुरु को नमस्कार करे और पद्मासन या भद्रासन से स्थित होकर।४०। उत्तनासन अथवा पर्यंकासन करके सुख पूर्वक बैठे।४१। पहिले के समान पूजन करके टबक से तारण

करके टवक से तारण करें और घर में ही पूजन हो तो इसका नियम नहीं है ।४२।

पश्चाच्चैवार्घपात्रेण क्षालयेल्लिंगमुत्तमम् ।
अनन्यमानसौ भूत्वा पूजाद्रव्यं निधाय च ॥४३
पश्चाच्चावाहयैद्देवं मन्त्रेणानेन वै नरः ।
कैलासशिखरस्थं च पार्वतीपतिमुत्तमम् ॥४४
यथोक्तरूपिणं शंभु निर्गुणं गुणरूपिणम् ।
पञ्चवक्त्रं दशभुज त्रिनेत्रं वृषभध्वजम् ॥४५
कर्पूरगौरं दिव्यांगं चन्द्रमौलिं कपर्दिनम् ।
व्याघ्रचर्मोत्तरीयं च गजचर्माम्बरं शुभम् ॥४६
वासुक्यादिपरीतांगं पिनाकाद्यायुधान्वितम् ।
सिद्धियोऽष्टौ च यस्याग्रे नृत्यंतीह निरन्तरम् ॥४७
जयजयेति शब्दैश्च सेवित भक्तपुंजकै ।
तेजसा दुःसहेनैव दुर्लक्ष्यं देवसेवितम् ॥४८
शरण्यं सर्वसत्वानां प्रसन्नमुखपंकजम् ।
वेदैः शास्त्रैर्यथा गीतं विष्णुब्रह्मनुतं सदा ॥४९

फिर परसोत्तम शिवलिंग को अर्घ्यपात में स्नान करावे और किसी दूसरी ओर मन न रखकर, पूजन द्रव्य का विधान करे ।४३। फिर मन्त्र से आह्वान करे। कैलाश शिखर पर स्थित उमापति ।४४। निर्गुण-सगुण यथोक्त रूप शिव पाँच मुख, दश भुजा तीन नेत्र, वृषभध्वज ।४५। कर्पूर जैसे गोरांग मस्तक पर चन्द्रमा तथा जटाजूट से शोभायमान, व्याघ्र चर्म का उत्तरीय धारण एवं श्रेष्ठ गजचर्म धारण किये ।४६। वासु की आदि सर्पों को कण्ठ में लपेटे, हाथ में पिनाक आदि आयुध धारण किये हैं, उनके आगे नष्ट सिद्धि निरन्तर नृत्य करती हैं ।४७। जिनके चारों ओर भक्त समूह जय-जयकार कर रहे हैं जो अपने दुःसह तेज के कारण देवताओं से सेवित एवं जुलंक्ष्य बने हैं, ।४८। जो सब प्राणियों के शरणदाता, प्रसन्न मुखकमल से युक्त, वेद शास्त्रों के गान तथा ब्रह्मा, विष्णु द्वारा भी स्तुत्य है । ९।

भक्तवत्सलमानंदं शिवमावाह्याम्यहम् ।
एवं ध्यात्वाशिवं साम्बमासन परिकल्पयेत ॥५०
चतुर्थ्यंतपदेनैव सर्व कुर्याद्यथाक्रमम् ।
ततः पाद्यं प्रदद्याद्वै ततोऽर्घ्यं शंकराय च ॥५१
ततश्चाचमनं कृत्वा संभवे परमात्मने ।
पश्चाच्च पचभिर्द्रव्यैः स्नापयेच्छंकरं मुदा ॥५२
वेदमन्त्रैयथायोग्यं नामभिर्वा समन्त्रकैः ।
चतुर्थ्यंतपदैर्भक्त्या द्राव्याण्येवार्पयेत्तदा ॥५३
तथाभिलषितं द्रव्यमर्पयेच्छंकरोपरि ।
ततश्च वारुण कारमीयं शिवस्य वै ॥५४
सुगन्धं चन्दनं दद्यादन्यलेपानि यत्नतः ।
ससुगन्धजलेनैव जलधारां प्रकल्पयेत् ॥५५
वेदमन्त्रै षडगैर्वा नामभी रुद्रसंख्यया ।
तथावकाशं तां दत्वा वस्त्रेण मार्जयेत्ततः ॥५६

उन भक्त वत्सल, आनन्दस्वरूप भगवान् सदा शिव को मैं आह्वान करता हूँ। इस प्रकार ध्यान करने के पश्चात् आसन की कल्पना करनी चाहिए।५०। चतुर्थ्यन्त पद से सब वस्तुओं का समर्पण करे फिर शिवजी के लिए पाद्य अर्घ्य दे।५१। फिर आचमन करके पंचद्रव्य, घृत, शर्करा, जल आदि से शिवजी को स्नान करावे।५२। वेद मन्त्रों से चतुर्थ्यन्त पद के द्वारा भक्ति-भाव सहित सभी वस्तुएँ अर्पण करे।५३। सभी अभिलाषित पदार्थों को शिवजी पर चढ़ाकर फिर पार्वतीजी को जल-स्नान करावे।५४। फिर सुगन्धित चन्दन अथवा अन्य अनुलेपन पदार्थ लगाकर सुगन्धित जल की धारा चढ़ावे।५५। फिर वेद मन्त्र, षडंग अथवा एकादश नाम से स्नान कराके, वस्त्र से मार्जन करे।५६।

पश्चादाचमनं दद्यात्ततो वस्त्रं समर्पयेत् ।
तिलाश्चैव जवा वापि गोधूमा मुद्गमाषकाः ॥५७
अर्पणीयाः शिवायैवं मन्त्रैर्नानाविधैरपि ।
ततः पुष्पाणि येयानि पञ्चस्याय महात्मने ॥५८

प्रतिवक्त्रं यथाध्यानं यथायोग्याभिलाषतः।
कमलै शतपत्रैश्च शंखपुष्पैः परैस्तथा ॥५९
कुशपुष्पैश्च धत्तूरैर्मंदारैर्द्रोणसंभवैः।
तथा च तुलसीपत्रैर्बिल्पत्रै विशेषतः ॥६०
पूजयेत्परया भक्त्या शङ्करं भक्तवत्सल।
सर्वाभावे विल्वपत्रमर्पणीयं शिवाय वै ॥६१
बिल्वपत्रार्पणेनैव सर्वपूजा प्रसिध्यति।
ततः सुगन्धचूर्णं वै वासितं तैलमुत्तमम् ॥६२
अर्पणीयं च विविधं शिवाय परया मुदा।
ततो धूप प्रकर्तव्यो गुग्गुलागुरुभिर्मुदः ॥६३

फिर आचमन कराकर वस्त्र भेंट करे और तिल, जो, गेहूं, मूँग ।५७। यह सब अनाज मन्त्रोंच्चारण पूर्वक शिवजी को भेंट करे और पाँचों मुखों पर पाँच पुष्प समर्पित करे ।५८। प्रत्येक मुख का अपनी अभिलाषा के अनुरूप ध्यान करे, कमल, शतपत्र, तथा शंखपुष्पी के पुष्प ।५९। कुश पुष्प, धतूरा, मन्दार, द्रोण, तुलसी पत्र तथा विल्व पत्रों से ।६०। भक्तवत्सल भगवान् शिवजीका परम भक्ति पूर्वक पूजन करे। यदि अन्य कोई वस्तु उपलब्ध न हो तो बिल्वपत्र ही समर्पित करे ।६१। बिल्व पत्र के समर्पण से ही सब पूजन सिद्ध हो जाता है। फिर सुगन्धित चूर्ण द्वारा सुवासित किया हुआ उत्तम तेल ।६६। प्रसन्नता पूर्वक शिवजी को समर्पित करे, फिर प्रेम पूर्वक गूगल और अगर की धूप दे ।६३।

दीपो देयस्ततस्तस्मै शङ्कराय घृतप्लुतः।
अर्घं दद्यात्पुनस्तस्मै मन्त्रेणानेन भक्तितः ॥६४
कारयेद्भावतो भक्त्या वस्त्रेण मुखमार्जनम्।
रूपं देहि यशो देहि भोगं देहि च शङ्कर ॥६५
मुक्तिभुक्तिफल देहि गृहीत्वऽर्घं नमोस्तु ते।
ततो देयं शिवायेव नैवेद्यं विविधं शुभम् ॥६६
तत आचमनं प्रीत्या कारयेद्वा विलम्बतः।
सतश्शिवाय तांबूल सांगोपांग विधाय च ॥६७

कुर्यादारार्तिकं पंचवर्तिकामनुसंख्यया ।
पादयोश्च चतुर्वार द्विःकृत्वो नाभिमण्डले ॥६८
एककृत्वे मुख सप्तकृत्वः सर्वांग एव हि ।
ततो ध्यानं यथोक्तं वै कृत्वा मन्त्रमुदीरयेत् ॥६९
यथासंख्यं यथाज्ञानं कुर्यान्मिन्त्रविधिं नरः ।
गुरूपदिष्टमार्गेण कृत्वा मन्त्र जपं सुधीः ॥७०

फिर घी से भरा हुआ दीपक आगे रखे और अगले मन्त्र से भक्ति-सहित अर्घ्य प्रदान करे ।६४। फिर मुक्ति सहित वस्त्र से मुख मार्जन करे और प्रार्थना करे कि हे देव ! मुझे रूप यश और भोग प्रदान कीजिये ।६५। हे प्रभो ! आपको प्रणाम, आप अर्घ्य को ग्रहण कर मुझे भुक्ति मुक्ति का फल प्रदान करिये । फिर शिवजी के लिए श्रेष्ठ नैवेद्य भेंट करे ।६६। फिर कुछ देर बाद, प्रीति पूर्वक आचमन करावे और सांगोपांग विधान द्वारा ताम्बूल अर्पण करे ।६७। फिर पाँच बत्ती की आरती करे और चार बार चरणों में तथा नाभि मण्डल में ।६८। एक बार मुख पर तथा सात बार सम्पूर्ण अंग में आरती करे और जैसा कहा गया है, उस प्रकार ध्यान और मन्त्रोच्चारण करे ।६९। यथा संख्या और यथा ज्ञान मनुष्य को मन्त्र विधि करनी उचित हैं । गुरु द्वारा उपदेशित मार्ग में मन्त्र का जप करता हुआ ।७०।

गुरूपदिष्टमार्गेण कृत्वा मन्त्रमुदीरयेत् ।
यथासंख्यं यथाज्ञानं कुर्यान्मिन्त्रविधिं नरः ॥७१
स्तोत्रैर्नानाविधैः प्रीत्या स्तुवीत वृषभध्वजम् ।
ततः प्रदक्षिणां कुर्याच्छिवस्य च शनैः शनैः ॥७२
नमस्कारांस्ततः कुर्यात्साष्टांग विधिवन्पुमान् ।
ततः पुष्पांजलिर्देयो मन्त्रेणानेन भक्तितः ॥७३
शंकराय परेशाय शिवसंतोषहेतवे ।
अज्ञानाद्यादि वा ज्ञानाद्यद्यत्पूजादिकं मया ॥७४
कृतं तदस्तु सफलं कृपया तब शङ्करं ।
तावकस्त्वद्गतप्राणस्त्वच्चित्तोहं सदा मृड ॥७५

इति विज्ञाय गौरीश भूतनाथ प्रसाद मे ।
भूमौ स्खलितपादानां भूमिरेववलंगनत् ॥७६
त्वयि जातापराधानां त्वमेव शत्रणं प्रभो ।
इत्यादि वहुविज्ञप्ति कृत्वा सम्यग्विधानतः ॥७७

गुरु के बताए मार्ग के अनुसार ही मन्त्रोच्चारण करे । यथा संख्या और यथा ज्ञान मन्त्र की विधि का उपयोग करे ।७१। तथा प्रसन्नापूर्वक अनेक प्रकार के स्त्रोतों से शिवजी की स्तुति करे, धीरे २ प्रदक्षिणा करे ।७२। फिर विधिवत् साष्टांग नमस्कार कर अगले मन्त्र से भक्ति भाव पूर्वक पुष्पांजलि समर्पित करे ।७३। 'भगवान् शंकर की सन्तुष्टि के निमित्त ज्ञान अथवा अज्ञान से मैंने जो पूजनादि किया है । ४। हे शंकर! आपकी कृपा से यह सब सफल हो । मेरे प्राण आप में ही हैं । हे शिव ! आप सुख के देने वाले है, आप में ही मेरा चित्त है ।७५। हे गौरीपते ! हे भूतनाथ ! इस प्रकार जानकर आप मुझ पर प्रसन्न हों, जिनका पृथ्वी से चरण फिसलता है, उनको अवलम्ब पृथिवी ही है ।७६। आप मे जो मेरा अपराध हुआ है उसमें आप ही शरण रूप हैं । इस प्रकार विधिवत् बहुत सी विज्ञप्ति करे ।७७।

पुष्पाजलिं समर्प्यैव पुनः कुर्यान्नतिं मुहुः ।
स्वस्थानं गच्छ देवेश परिबारयुतः प्रभो ॥७८
पूजाकाले पुनर्नाथ त्वयाऽऽगंतव्यमादरात् ।
इति संप्रार्थ्य बहुशः शङ्कर प्रक्तवत्सलम् ॥७९
विसर्जयेत्स्वहृदये तदषो मूर्ध्नि विन्यसेत् ।
इति प्रोक्तमशेषेण मुनयः शिवपूजनम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं चैव तिमान्यच्छ्रोतुमर्हथ ॥८०

और पुष्पांजलि भेंट कर बारम्बार प्रणाम करे और निवेदन करे कि हे प्रभो ! आप सपरिवार अपने स्थान को गमन करें ।७८। हे प्रभो ! पूजन के समय यहाँ पुनः पधारने की कृपा करना । इस प्रकार भक्तवत्सल भगवान् शिवजी की अनेक प्रकार से प्राथंना करे ।७९। और विसर्जन करके उनकी जलमय मूर्ति को अपने हृदय में धारण करे ।

हे मुनिश्वरों ! शिवजी का पूजन इस प्रकार तुमसे कहा है, यह भुक्ति-मुक्ति का दाता है । अब और क्या सुनने की इच्छा है ? ।७०।

।। विशेष पुष्पों से शिव पूजन का फल ।।

व्यासशिष्य महाभाग कथय त्वं प्रमाणतः ।
कः पुष्पै पूजितः शंभुः किं किं यच्छति वै फलम् ।।१
शौनकाद्याश्च ऋषयः शृणुतादरतोऽखिलम् ।
कथयाम्यद्य सुप्रीत्या पुष्पार्पण विनिर्णयम् ।।२
एष एव विधि पृष्टो नारदेन महर्षिणा ।
प्रोवाच परमप्रीत्या पुष्पार्पण विनिर्णयम् ।।३
कमलैर्बिल्वपत्रैश्च शतपत्रैस्तथा पुनः ।
शंखपुष्पैस्तथा देवं लक्ष्मीकामोऽर्चयेच्छिवम् ।।४
एतैश्च लक्षसंख्याकैः पूजितश्चेद्भवेच्छिवः ।
पापहानिस्तथा विप्र लक्ष्मीःस्यान्नात्र संशयः ।।५
विंशतिः कमलानां तु प्रस्थमेकमुदाहृतम् ।
बिल्वो दलसहस्रेण प्रस्थार्द्धं परिभाषितम् ।।६
शतपत्रसहस्रेण प्रस्थार्द्धं परिभाषितम् ।
पलैः षोडशभिः प्रस्थः पल टकदश स्मृतः ।।७

ऋषियों ने कहा —हे व्यास शिष्य सूतजी ! अब आप यह बताइये कि किस २ पुष्प के द्वारा पूजन करने से शिवजी क्या २ फल प्रदान करते हैं ।१। सूतजी ने कहा—हे ऋषियों ! मैं अब पुष्पों के अर्पण का क्रम पूर्वक निवारण करता हूं, तुम आदर पूर्वक श्रवण करो ।२। यह विधि महर्षि नारद ने भी पूछी थी और ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर उनके प्रति कही थी ।३। ब्रह्माजी ने कहा था कि कमल, बेलपत्र, शतपत्र या शंखपुष्पों से से शिवजी की पूजा करे तो लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ।४। यदि इन एक लक्ष पुष्पों से शिवजी का पूजन करे तो निःसन्देह पाप नष्ट हो और लक्ष्मी की प्राप्ति हो ।५। बीस कमल पुष्पों का एक प्रस्थ

होता है और हजार बेल पत्रों का आधा प्रस्थ होता है ।६। तथा हजार शतपत्र का भी आधा प्रस्थ होता है। सोलह फल का एक प्रस्थ तथा दश टंक का एक पल होता है ।७।

अनेनैव तु मानेन तुलामारोपयेद्यदा ।
सर्वान्कामानवाप्नोति निष्कामश्चेच्छिवो भवेत् ॥८
राज्यस्य कामुको यो वै पार्थिवानां च पूजया ।
तोषयेच्छकर देवं दशकोट्या मुनीश्वराः ॥९
लिंग शिवं तथा पुष्पमखड तंदुलं तथा ।
चर्चितं चदनेनैव जलधारां तथा पुनः ॥१०
प्रीतिरूपं तथा मन्त्रं बिल्वीदलमनुत्तमम् ।
अथवा शतपत्रं च कमलं वा तथा पुनः ॥११
शंखपुष्पैस्तथा प्रोक्तं विशेषेण पुरातनैः ।
सर्वकामफलं दिव्यं परत्रेहापि सर्वथा ॥१२
धूपं दीप च नैवेद्यमर्घं चारार्तिकं तथा ।
प्रदक्षिणां नमस्कारं क्षमापनविसर्जने ॥१३
कृत्वा सागं तथा भाज्यं कृते येन भवेदिह ।
तस्य वै सर्वथा राज्यं शङ्करः प्रददाति च ॥१४

इस परिणाम में तराजू पर चढ़ानेसे कामना रहित होकर पूजन करे तो सब कामनायें प्राप्त होकर शिव रूप हो जाता है जो राज्य चाहता हो वह दश करोड़ पार्थिव पूजा से शिव को प्रसन्न करे। जो मनुष्य शिव लिंग पर पुष्प तथा चावल चढ़ाकर चन्दन और जल धारा अर्पण करे। प्राचीन जनों ने शंख पुष्पों से विशेष रूप से पूजन करने को कहा है। यह इस लोक और परलोक में भी दिव्य कामनाओं का देने वाला है ।८-१२। धूप, दीप, नैवेद्य, अर्घ्य, आरती, प्रदक्षिणा, नमस्कार, क्षमापन और विसर्जन यह सभी विधिवत् करके जिसने शिवजी को भोग लगाया, उसे भगवान् शिव राज्य प्रदान करते हैं ।१३-१४।

प्राधान्यकामुको यो वै तदर्द्धेनार्चयेत्पुमान् ।
कारागृहगतो यो वै लक्षेनैवार्चयेद्धरम् ॥१

रोगग्रस्तो यदा स्याद्वै गदर्द्धेनार्चयेच्छिवम् ।
कन्याकामो भवेद्यो वै तदर्द्धेन शिवं पुनः ॥१६
विद्याकामस्तथा यः स्यात्तदर्द्धे नार्चयेच्छिवम् ।
वाणीकामो भवेद्यो वै घृतेनैवार्चयेच्छिवम् ॥१७
उच्चाटनार्थं शत्रूणां तन्मितेनैव पूजनम् ।
मारणे वै तु लक्षेण मोहने तु तदर्धतः ॥१८
सामंतानां जये चैव कोटिपूजा प्रशस्यते ।
राज्ञामयुतसंख्यं च वशीकरणकर्मणि ॥१९
यशसे च तथा संख्या वाहनाद्यैः सहस्रिका ।
मुक्तिकामोऽर्चयेच्छम्भुं पंचकोट्या सुभक्तितः ॥२०
ज्ञानार्थी पूजयेत्कोटया शंकरं लोकशंकरम् ।
शिवदर्शनकामो वै तदर्द्धेन प्रपूजयेत् ॥२१

तथा जो व्यक्ति अपनी प्रधानता चाहता हो, वह शिवजी का इससे आधा पूजन करे । यदि कारागृह से मुक्त होना चाहे तो एक लाख कमलों से शिवजी की पूजा करनी चाहिये । रोगी मनुष्य पचास हजार कमलों से और कन्या की कामना वाला मनुष्य पच्चीस हजार कमलों से पूजन करे । विद्या प्राप्ति की इच्छा वाला इससे आधा और वाणी की कामना वाले को घृत से पूजन करना चाहिए । शत्रुओं के उच्चाटनार्थ भी उतनी ही पूजा करे, मारण कर्म में एक लाख और मोहन कर्म में पचास हजार पुष्पों का विधान है ।१५-१८। सामन्तों को जीतने में एक करोड़ और राजा के वशीकरण में दस लाख पूजन कहा गया है यश की कामना वाले को भी इतनी पूजा कही है । वाहनादि की प्राप्ति के लिये एक हजार तथा मोक्ष की कामना वाले को पाँच करोड़ पूजन का विधान है ज्ञान की अभिलाषा वाला मनुष्य कल्याणकारी शिवजी को एक करोड़ पुष्पों से पूजे, तथा शिवजी के साक्षात्कार की कामना वाला इससे आधा पूजन करे ।१९-२१।

तथा मृत्युंजयो जाप्यः कामकाफलरूपतः ।
पंचलक्षा जपा यर्हि प्रत्यक्ष तु भवेच्छिवः ॥२२

लक्षेण भजते कश्चिद्द्वितीये जातिसंभवः ।
तृतीये कामनालाभश्चतुर्थे त प्रपश्यति ॥२३
पचमं यदा लक्षं फलं यच्छत्यसंशयम् ।
अनेनैध तु मन्त्रेण दशलक्षे फलं भवेत् ॥२४
मुक्तिकामो भवेद्यो वै दर्भेश्च पूजनञ्चरेत् ।
लक्षसंख्या तु सर्वत्र ज्ञातव्या ऋषिसत्तम् ॥२५
आयु कामो भवेद्यो वै दुर्वाभिः पूजनञ्चरेत् ।
पुत्रकामो भवेद्यो वै धत्तूकुसुमैश्चरेत् ॥२६
रक्तदण्डश्च धत्तूरः पूजने शुभदः स्मृतः ।
अगस्त्यकुसुमैश्च पूजकस्व महद्यशः ॥२७
भुक्तिमुक्तिफलं तस्य तुलस्या पूजयेद्यदि ।
अर्कपुष्तैः प्रतापश्च कुब्जकह्लारकैस्तथा ॥२८

अन्य कामना प्राप्ति के लिए मृत्युंजय का जप कर इसके पाँच लाख विधिवत् जप से शिवजी से साक्षात् होता है । कोई एक लाख से पुजते हैं, दो लाख से जाति का, तीसरे लाख में कामना का और चौथे लाख में शिवजी के दर्शन का लाभ मिलता है । पाँच लाख में पूर्ण फल की प्राप्ति होती है । इसी मन्त्र से दस लाख में सर्वार्थ फल प्राप्त होता है । मोक्ष-कामना वालों को कुशों से पूजन करना चाहिए । हे ऋषियों ! इस पूजन में सर्वत्र लाख संख्या में सामग्री लेनी चाहिए ।२२-२५। आयु की कामना वाले को एक लाख दूर्वा से पूजन करना कहा है । पुत्र की कामना वाले को एक लाख धूतरों से पूजन का विधान है । आल डन्डी वाला धतूरा ही पूजन में ग्रहण करे, अगस्त्य के पुष्पों से पूजा करने वाले को अत्यन्त यश की प्राप्ति होती है । तुलसी के पूजन से भुक्ति-मुक्ति दोनों उपलब्ध होती हैं । कुब्ज कल्हार या आक के पुष्पों से पूजने से प्रताप की वृद्धि होती है ।२६-३०।

जपाकुमुमपूजा तु शत्रूणां मृत्युदास्मृता ।
रोगोच्चाठनकानीह करवीराणि वे क्रमात् ॥१९
बंधुकैर्भूषणावाप्तिर्जात्या वाहान्न संशयः ।

अतसीपुष्पकैर्देवं विष्णुवल्लभतामियात् ॥३०
शमीपत्रैस्तथा मुक्तिः प्राप्यते पुरुषेण च ।
मल्लिकाकुसुमैर्दत्तैः स्त्रीयं शुभतरां शिवः ॥३१
यूथिकाकुसुमैः शस्तैगृहं नैव विमुच्यते ।
कर्णिकारैस्तथा वस्त्रसंपत्तिर्जायते नृणाम् ॥३२
निर्गुण्डीकुसुमैर्लोके मनो निर्मलता व्रजेत् ।
बिल्वपत्रैस्तथा लक्षैः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥३३
श्रृंगारहारपुष्पैस्तु वर्धते सुखसम्पदा ।
ऋतुजातानि पुष्पाणि मुक्तिदानि न संशयः ।३४।
राजिकाकुसुमानीह शत्रूणां मृत्युदानि च ।
एषां लक्षं शिवे दद्याद्दद्याच्च विपुलं फलम् ॥३५
विद्यते कुसुमं तन्न यन्नैव शिवबल्लभम् ।
चंपकं केकं हित्वा त्वन्यत्सर्वं समर्पयेत् ॥३६

जपा के पुष्पों से पूजे तो शत्रु नाश और कनेर से पुष्पों से पूजे तो रोग नष्ट होते हैं। उच्चाटन कर्म में भी कनेर पुष्प ले। भूषणों की प्राप्ति के लिए वन्धूक के पुष्प और वाहन प्राप्ति के लिए चमेली के पुष्प तथा विष्णु की प्राप्ति के लिए अलसी के पुष्पों से पूजन करे। मोक्ष प्राप्ति के लिए शमीपत्र से तथा सुन्दर स्त्रियों की कामना वाला मल्लिका के पुष्पों से शिवजी का पूजक करे। यूथिका के पुष्पों से पूजे तो घर में धान्यों का अभाव नहीं होता। कणिकार के पुष्पों से पूजे तो वस्त्र और सम्पत्ति की उपलब्धि होती है।२६-३२। निर्गुण्ड़ी के पुष्पों से पूजन मन को स्वच्छ करता है तथा एक लाख बेलपत्रों से पूजे तो सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं। हारसिंगार के पुष्पों से पूजा करे तो सुख-सम्पत्ति की वृद्धि होती है तथा ऋतु के उत्पन्न हुये पुष्पों से पूजन करे तो मोक्ष मिलती है। राई के पुष्पों से पूजन करे तो शत्रुओं की मृत्यु होती है और एक लाख पुष्पों के चढ़ाने से अत्यन्त फल की प्राप्ति होती है। शिवजी को सभी पुष्प प्रिय, हैं, चम्पा और केतकी न चढ़ावे, अन्य सब पुष्प अर्पण करे ॥३३—३६॥

रूद्र संहिता - सती खंड

॥ हिमालय पर शिव और सती का बिहार ॥

कदाचिदथ दक्षस्य तनया तनया जलदागमे ।
कंलासक्ष्माभृतः प्राह प्रस्थस्थं वृषभह्वजम् ॥१
देवदेव महादेव शंभो मत्प्राणजल्लभ ।
शृणु मे वचनं नाथ श्रुत्वा वकुरु मांनद ॥२
घनागमोऽयं संप्राप्तः कालः परमदुः सहः ।
अनेकवर्णमेघौघः संगीतांवरं दिक्चयः ॥३
विवांति वाता हृदयं हारयंतीति वेगिनः ।
तदंवरजसा धौताः पाथोबिन्दुविकर्षणाः ॥४
मेघानां गर्जितैरुच्चैर्धारासार विमुंचताम् ।
विद्युत्पताकिनां तीव्रैः क्षुब्धं स्यात्कस्य नो मनः ।५
न सूर्यो दृश्यते नापि मेघच्छन्नो निशापतिः ।
दिवापि रात्रिवद्भाति विरहिव्यसनाकरः ॥६
मेधा नैकत्र तिष्ठन्तो ध्वनंतः पवनेरिताः ।
पतंत इव लोकानाँ दृश्यते मूर्ध्नि शंकर ।७

ब्रह्माजी ने कहा—एक समय वर्षा ऋतु में शिवजी कैलाश शिखर पर विराजमान थे, उस समय सती ने उनसे कहा ।१। सती ने कहा—हे देवाधिदेव ! हे प्राणवल्लभ ! हे नाथ आप मेरी बात सुनिये और उसके अनुसार कीजिये ।२। हे प्रभो ? यह अत्यन्त दुःसह वर्षा काल आ गया है, अनेक वर्ण के मेघ दशों दिशाओं में आ घिरे हैं ।३। हृदय का हरण करने वाली वायु प्रवाहित हो रही हैं, कदम्ब के मकरन्द से युक्त जल के छींटे आ रहे हैं ।४। जल धाराओं की वर्षा करते, गर्जते तथा बिजली चमकाते हुए मेघों को देखकर किसका मन क्षुब्ध नहीं हो जायगा ! ।५। यह ऋतु विरही जनों को दुःखदायक है। इसमें दिन

में सूर्य और रात्रि से चन्द्रमा भी प्रकाशित नहीं होती। यह दिवस को रात्रि जैसा रखता हुआ सुशोभित है ।६। हे शिव ! वायु वेग से प्रेरित हुए मेघ शब्द करते हैं परन्तु एकत्र नहीं ठहरते और लोगों के सिर पर गिरते हुए से लगते हैं ।७।

वाताहता महावृक्षा नतन्त इव चांवरे ।
दृश्य ते हर भीरूणां त्रासदाः कामुकेप्सिता. ।८
स्निग्धनीलांजनस्याशु सदिवौघस्य पृष्ठतः ।
बलाकराजी वात्युच्चैर्यमुनापृष्ठयेनवत् ।९
क्षपाक्षपेषु वलयं दृश्यते पलिकागता ।
अंबुधाविव मदीप्तपावको वडवामुखः ।।१०
प्रारोहंतीह सस्यानि मन्दिर प्राङ्गणेष्वपि ।
किमन्यत्र विरूपाक्ष सम्योद्भूतिं वदाम्यहम् ।।११
श्यामलै रायतै रक्तविशदोऽय हिमाचलः ।
मन्दराश्रयघोघः पत्रैर्दुग्धाम्बुधिर्यथा ।।१२
असमश्रीश्च कुटिल भेजे यस्याथ किंशुकान् ।
उच्चावचान् कलौ लक्ष्मीग-तासंत्यज्य सज्जनान् ।।१३
मदारस्तनपीलूनां शब्देन हृषिता मुहुः ।
केकायंते प्रतिवने सतत पृष्ठस्चकम् ।।१४

हे शिव ! वायु प्रेरित बड़-बड़े वृक्ष भी अंतरिक्ष में नृत्य करते से प्रतीत होते हैं, जो भयभीतों को भया वह और कामियों को सुखदायक है ।८। चिकने और श्याम वर्ण अघन जैसे मेघ पर उड़ते हुए बगुलों की पंक्ति यमुना नदी की पीठ पर बहते हुए फेन के समान शोभा दे रही है ।९। रात्रि की उपस्थित में कालापन बढ़ जाने से बिजली बलयाकार दिखाई देती है, जिस प्रकार कि समुद्र प्रदीप्त बड़वामुख अनल होती है ।१०। हे विरूपाक्ष ! इस अवस्था में मन्दराल के छोटे वृक्ष जम गये हैं, अन्य स्थान की बात ही क्या है ! ।११। जैसे पक्षियों से घिरा हुआ दुग्ध का समुद्र शोभा देता है, वैसे ही काले, सफेद तथा लाल मेघों से घिरा हुआ वह पर्वत शोभा दे रहा है ।१२। विभिन्न

प्रकार से सुशोभित वृक्षों के पल्लव अत्यन्त शोभायमान हैं, उसी प्रकार जैसे कि कलि में लक्ष्मी सज्जनों को त्याग कर असज्जनों को प्राप्त होती है ।१३। मन्दराचल के मेघों की ध्वनि से प्रसन्न होकर मोर भी अपनी पीठ दिखाकर नृत्य कर रहे हैं ।१४।

मेघोत्सुकानां मधुरश्चातकानां मनोहरः ।
धारासारशरैस्ताप पेतुः प्रतिपथोद्गतम् ॥१५
मेघानां पश्य मद्देहे दुर्नयं करकोत्करैः ।
ये छादयंत्यनुगते मयूरांश्चातकांस्तथा ॥१६
शिखिसारंगयोर्दृष्ट्वा मित्रादपि पराभवम् ।
हर्षं गच्छन्ति गिरिशं विदूरमपि मानसम् ॥१७
एतस्मिन्विषमे काले नीड काकश्चकोरकाः ।
कुर्वंति त्वां विना गेहान् कथ शांतिमवाप्स्यसि ॥१८
महतीवाद्य नो भीतिर्मा मेघोत्था पिनाकधृक् ।
यतस्व तस्माद्वासाय माचिरं वचनान्मम ॥१९
कैलासे वा हिमाद्रौ वा महाकोश्यामथ क्षितौ ।
तत्रोपयोग्य संवास कुरु त्वं वृषभध्वज ॥२०

मेघों की कामना वाले चातकों की मधुर ध्वनि भी सुनाई पड़ रही है ।१५। मेघों की इस दुर्नीति का अवलोकन कीजिए कि यह अपने अनुगामी मोरों और चातकों को ओलों से आच्छादित कर देता है ।१६। मोर और सारंग को मित्र से भी हारता देखकर इनका मन हर्षित हो रहा है ।१७। इस विषम समय में कौए और मोर भी अपना घोंसला बनाते हैं तो आप ही बिना घर के किस प्रकार शान्ति प्राप्त करेंगे ।१८। हे पिनाकी ! हे शंकर ? मुझे मेघों से अत्यन्त भय लग रहा है, इसलिए आप मेरी बात मान कर घर का प्रबन्ध कीजिए ।१९। हे वृषभध्वज ! कैलाश, में हिमालय में, काशी में अथवा पृथिवी पर जहां कहीं भी उचित हो घर का प्रबन्ध आवश्यक है ।२०।

एवमुक्तस्तया शंभुर्दाक्षायण्या तथाऽसकृत् ।
संजहास च शीर्षस्थचन्द्ररश्मिस्मितालयम् ॥२१

अथोवाच सतीं देवीं स्मिताभिन्नौष्ठसंपुटः ।
महात्मा सर्वतत्त्वज्ञास्तोषयन्परमेश्वरः ॥२२
यत्र प्रीत्यै मया कार्यो वासस्तव मनोहरे ।
शेघास्तत्र न गतारः कदाचिदपि मत्प्रिये ॥२३
मेघा निबतपर्यंतं सञ्चरं ति महीभृत ।
सदा प्रालेयसानोस्तु वर्षास्वपि मनोहरे ॥२४
कैलासस्य तथा देवि पादगाः प्रायशो घनाः ।
सञ्चरंति न गच्छन्ति तत ऊर्ध्वं कदाचन ॥२५
सुमेरोर्वा गिरेरूर्ध्वं न गच्छन्ति बलाहकाः ।
जम्बूमूलं समासाद्य पुष्करावर्तकादयः । २६
इत्युक्तेषु गिरीन्द्रेषु अस्योपरि भवेद्धि ते ।
मनोरुचिर्निवासाय तमाचक्ष्य द्रुतं हि मे ॥२७
स्वेच्छाविहारैस्तव कौतुकानि सुवणपक्षानिलवृन्दवृन्दैः ।
शब्दोत्तरं गैर्मधुरस्वनैस्तैर्मुदोपगेयानि गिरो हिमोत्थे ॥२८

ब्रह्माजी ने कहा—दाक्षायणी की प्रार्थना सुनकर शिवजी को हँसी आई और उनके मस्तक पर स्थित अर्द्धचन्द्र के प्रकाश से वह स्थान प्रकाशमान हो गया ।२१। फिर सब तत्वों के ज्ञाता शिवजी सती को प्रसन्न करते हुए,हँस कर कहने लगे ।२२। हे प्रिये ? तुम्हारी प्रसन्नता के लिए जो स्थान मैं निश्चत करूँगा, वहाँ मेघ न पहुँच सकेगे ।२३। वर्षाकाल में भी हिमालय के शिखर के नीचे ही मेघ घूमते रहेंगे ।२४। और कैलाश के ऊपर तो कभी मेघ आते ही नहीं, नीचे ही रह जाते हैं ।२५। पुष्कर आवर्त्तक आदि मेघ जम्बू के मूल तक पहुँचते हैं, सुमेरु के शिखर पर नहीं चढ़ते ।२६। इतने पर्वतों में जिस पर तुम रहना चाहो उसे मुझे शीघ्र बताओ । हिमालय पर्वत में सोने के पंख वाले अनिल वृन्द नामक पक्षी अपने मधुर शब्दों के द्वारा तुम्हारे इच्छित विहार की लीलाओं को गावेंगे ।२७-२८।

सिद्धाङ्गनास्तेरचितासनाभवमिच्छन्तिचैत्रोपहृतसकौतुकम् ।
स्वेच्छाविहारेमणिकुट्टिमेद्धिरौकुर्व न्तिवेप्यतिफलादिद नके॥

फणीन्द्रकन्या गिरिकन्यकाश्च या नागकन्याश्च तुरङ्गममुख्यः।
सर्वस्तुतास्तेसततं सहायनांसमाचरिष्यंत्युनुमोदविभ्रमैः ॥३०
रूपं तदेवमतुलंवदनंसुचारु दृष्टवांगनानिजवपुर्निजकातिसद्यः।
हेलानिजेवतुषिरूपगणेषुनित्यकर्तारइत्यनिमिषेक्षणचारुरूपाः।
या मेनका सर्वतराजजाया रूपैर्गुणैः ख्यातवती त्रिलोके।
सा चाषितेतत्र मनोऽनुमोदं नित्यं करिष्यत्यनुनाथनाद्यैः ३२
पुरं हि वर्गैगिरिराजवद्यैः प्रीति विचिन्वद्भिरुदाररूपा।
शिक्षासदातेगलुशोचितापिकार्यान्ऽन्वहंप्रीतियुता गुणाद्यैः।३३
विचित्रैः कोकिलालापामोदैः कुंजगणावृतम्।
सदा वसंतप्रभवं .तुमिच्छमि किं प्रिये ॥३४
नानाबहुजलापूर्णसरः शीतसम वतम्।
पद्मिनीशतशोयुक्तमचलेन्द्र हिमालयम् ॥३५

वहाँ तुम्हारे इच्छित व्यवहार के समय सिद्धों की नारियाँ मणिजट्टित वेद रूप आसन की भूमि को कौतुक सहित भेंट करेगी तथा विभिन्न प्रकार के फल आदि लाकर तुम्हें अर्पण करेंगी।२६। नाग कन्या, पर्वत कन्या, तुरङ्गमुखी किन्नरी यह भी लीला-बिहार के समय श्रेष्ठ वचनों को कहकर तुम्हें प्रसन्न करेंगी। वहाँ की अत्यन्त सुन्दर सुरनारियां तुम्हारे इस अनुपम सौन्दर्य और मनोहर मुख को देखकर अपने रूप गुण की निन्दा करेंगी और तुम्हारी ओर एकटक देखती रहेंगी।३०-३१। पर्वतराज की पत्नी मेनका भी तुम्हारे मन को अनेक प्रकार से प्रसन्न करेगी और तुम्हारे अनुकूल रहेगी।३२। हिमालय की वन्दना करने वाले सब परिवारीजन और पुरजन तुम्हारे प्रति उदार और प्रीतिमय रहेंगे। तुम्हें कुछ सोच होगा तो समझायेंगे। तुम कोकिलाओं के अद्भुत आलाप और मोदमय कुंजो से युक्त तथा वसन्तोत्पत्ति वाले स्थान में जाओगे।३३-३४। अनेक जलों से सम्पन्न, सरस शीतयुक्त और सैंकड़ों कमलनियों से सुशोभित अचल हिमालय है।३५।

सर्वकामप्रदैर्वृक्षैः शाद्वलैः कल्पसञ्ज्ञकैः।
सक्षण पश्य कुसुमान्यथाश्वकरिगोव्रजे ।३६

प्रशांतश्वापदणं मुनिभिर्यतिभिर्वृतम् ।
देवालये महामाये नानामृगगणैर्युतम् ॥३७
स्फटिकस्वर्णवप्राद्यै राजतैश्च विराजितम् ।
मानसादिसरोरगैरभितिः परिशोभितम् ॥३८
हिरण्मयै रत्नालै षङ्कजैर्मुकुर्वृतम् ।
शिशुमारैस्तथाऽसंख्यैः कच्छपैर्मकरैः करैः ॥३९
निषेवितं मञ्जुलैश्च तथा नीलोत्पलादिभिः ।
देवेशि तस्मान्मुक्तैश्च सर्वं गधैश्च कुङ्कुमैः ॥४०
लसद्गंधजल.शुभ्र रापूर्णैः स्वच्छकांतिभिः
शाद्वलैस्तरुणैस्तुंगैस्तीरथैरुपशोभितम् ।४१
नृत्यत्भिरिव शाखोटैर्वर्जयतं स्वसम्भवम् ।
कामदेवैः सारसैश्च मत्तचक्रांगशोभितैः ॥४२

सम्पूर्ण कामनाओं के दाता शाद्वल तथा कल्प वृक्षों से युक्त पुष्पों को गोव्रज के समान क्षण भर के लिये देखो ।३६। यह मुनियों और यतियों से युक्त देवालय हैं, यहाँ के सभी हिंसक जीव शान्त स्वभाव के हैं तथा यह विभिन्न मृगों से सम्पन्न है ।३७। स्फटिक मणि और स्वर्ण आदि से रचित गौख आदि तथा रजत स्थानों से युक्त मानसरोवर आदि जलाशयों के रङ्गों से सब प्रकार सुशोभित है ।३८। सुवर्ण और रत्नों की डंडी वाले कमल मुकुलों के समूह, शिशुमार तथा असख्य कच्छप और मकरों से व्याप्त हैं ।३९। वहाँ अत्यन्त उज्ज्वल नील कमल सुशोभित है, सब ओर से कुंकुम आदि की सुगन्ध फैल रही है ।४०। स्वच्छ कान्ति वाले सरोवर परिपूर्ण हैं, उनके जलों से सुगन्ध आ रही है, विशाल तरुण तरु तथा शाद्वलों से मेरुराज सुशोभित हैं ।४१। यहाँ अखरोटों के वृक्षों की शाखायें इस प्रकार हिल रही है, जैसे वे नृत्य कर रहे हों सारस तथा मदमत्त चकवा चकवी भी यहाँ स्थित हैं ।४२।

मधुरारावविभिर्मोदकारिभिर्भ्रमरादिभिः ।
शब्दायमानं च मुदा कामोद्दीपनकारकम् ।४३
वासवस्य कुबेरस्य यमस्य वरुणस्य च ।

अग्नेः कोणपराजस्य मारुतस्य परस्य च ।।४४
पुरीभिः शोभिशिखरं मेरोरुच्चैः सुरालयम् ।
रंभाशचीमेनकादिरंभोरुगणसेवितम् ।।४५
कित्वमिच्छसि सर्वेषां पर्वतानां हिभूभृताम् ।
सारभूते महारम्ये संविहर्तुं महागिरौ ।।४६
तत्र देवी सखियुता साप्सरोगणमण्डिता ।
नित्यं करिष्यति शची तव यौग्यां सहायताम् ।।४७
अथवा मम कैलासे पर्वतेंद्रे समाश्रये ।
स्थानमिच्छसि वित्तेशपुरोविराजिते ।।४८
गङ्गाजलौघप्रयते पूर्णचन्द्रसमप्रभे ।
दरीषु शानुषु सदा ब्रह्मकन्याभ्युदोरिते ।।४९

भौंरे मधुर ध्वनि से गुंजार रहे हैं तथा कमोद्दीपन करने वाले सुन्दर शब्द सब ओर से हो रहे हैं ।४३। इन्द्र,यम, वरुण, अग्नि, कुबेर, कोणपति, पवन आदि की नगरी ।४४। उस मेरु-शिखर पर सुशोभित हैं वहाँ सम्पूर्ण देवताओं का निवास है यथा रंभा, शची, मेनका आदि अप्सराओं से यह स्थान सुशोभित है ।४५। हे देवि ! इन सब भूमियों के सारभूत अत्यन्त मनोहर महान् पर्वतों में विहार करने की तुम्हें इच्छा है ! ।४६। वहाँ जाने पर सखियों और अप्सराओं सहित शची तुम्हारी सहायिका होंगी ।४७। अथवा तुम्हारी इच्छा सब पर्वतों से ऊँचे तथा कुबेरपुरी के भी ऊपर स्थित पर्वतराज कैलाश में निवास करने की है ? जहाँ पूर्ण चन्द्रकान्ति के समान नित्य जल प्रवाहित है, कन्दराओं में ब्रह्म कन्याऐं सुन्दर गान करती हैं ।४९।

नानामृगगणैर्युक्ते पद्माकाशतावृते ।
सर्वे गुणैश्च सद्वस्तु सुमेरोरपि सुन्दरि ।।५०
स्थानेष्वेतेषु यत्रापि तवांतःकरणे स्पृहा ।
टैद्रुत मे समाचक्ष्व वासकर्तास्ति तत ते ।।५१
इती रते शंकरे तदा दाक्षायणी शनैः ।
दमाह महादेवं लक्षणं स्वप्रकाशनम् ।५२।

हिमाद्रावेव वसघुमहमिच्छे त्वया सह ।
नचिपात्कुरु संवासं तस्मिन्नेव महागिरौ ।५३
अथ तद्वाक्यमाकर्ण्य हरः परममोहितः ।
हिमाद्रिशिखरं तुङ्गं दाक्षायण्या समं ययौ ॥५४
सिद्धांगनागणयुतमागम्यं चैव पक्षिभिः ।
अगमच्छिखरं रम्यं सरसीवनराजितम् ॥५५
विचित्ररूपैः धमलैः शिखरं रत्नकबुरम्
बालार्क सदृशं शम्भुरासमाद सतीसखः ॥५६

जो अनेक मृग समूहों और सेंकड़ों कमलों से व्याप्त, सर्वगुण श्रेष्ठ सुमेरु हैं, वह भी सुन्दर स्थान है ।५०। देवि ? इनमें से जिस स्थान को कहो, वही वृक्षादि से सुरम्य स्थान देखकर निवास करें ।५१। ब्रह्माजी बोले कि शिवजी ने जब इस प्रकार कहा तब सती शिवजी के समक्ष धीरे-धीरे अपने निवास स्थान का लक्षण कहने लगीं ।५२। सती ने कहा—हे शिवजी ! मैं आपके साथ हिमालय में निवास करना चाहती हूँ, आप उसी महापर्वत में शीघ्र चल कर निवास कीजिए ।५३। ब्रह्माजी ने कहा—सती की बात सुनकर मोहित हुए शिवजी सती के सहित हिमालय के उच्च शिखर में पहुँचे ।५४। जो वन सिद्धों की नारियों से सेवित हैं, जहाँ पक्षियों की भी पहुँच नहीं है, उस कमलों से सुशोभित पर्वत के मनोहर शिखर पर पहुँच गये ।५५। वह शिखर विचित्र रूप वाले कमलों से चित्रित था । प्रातःकालीन सूर्य के समान दीप्तिमान उस शिखर पर शिवजी सती के सहित पहुँचे ।५६।

स्फटिकाभ्रमये तस्मिन् शाद्वलद्रुमराजिते ।
विचित्रपुष्पावलिभिः सरसीभिश्च संयुते ॥५७
प्रफुल्लतरुशाखग्रं गुञ्जद्भ्रमरुसेवितम् ।
पंकेरुहैः प्रफुल्लैश्च नीलोत्पलचयैस्तथा ॥५८
शोभितं चावाकाद्यैः कादंबैर्हंसशङ्कुभिः ।
प्रमत्तसारसैः क्रौंचैर्नीलस्कन्धैश्च शद्वितः ।५९

पुंस्कोकिलानां निनदैर्मधुरैर्गणसेवितैः।
तुरङ्गवदनैः सिद्धैरप्सरोभिश्च गुच्छकैः ॥६०
विद्याधरीभिर्देवीभिः किन्नरीभिर्विपारितम्।
पुरं ध्रीभिः पार्वतीभिः कन्याभिरभिसङ्गतम् ॥६१
विपञ्चीतांत्रिकामत्तमृदङ्गपटहस्वनैः।
नृत्यद्भिरप्सरोभिश्च कौतुकैस्थैश्च शोभितम् ॥६२
देविकाभिर्दीर्गिकाभिर्गंधिभिः सुसमावृतम्।
लफुल्लकुसुमै नित्यं सुकुञ्जरुपशोभितम् ॥६३

वह स्फटिक मणि और अभ्रमय शाद्वल वृक्षों से सुशोभित विचित्र पुष्प-राजी और कमलनियों से सम्पन्न था।५७। प्रफुल्लित वृक्षों की अगली शाखा पर गुंजारते हुए भ्रमरों से सेवित तथा पंकरुह और नील-कमल के समूह से सम्पन्न।५८। चक्रवाक, कादम्ब, हंस शंकु मदमत्त सारस तथा नीले कंठ वाले क्रौंच पक्षियों से युक्त एव शब्दायमान।५९। कोयलों के मधुर आलाप तथा तुरङ्ग बदन वाले सिद्ध और अप्सराओं से युक्त था।६०। विद्याधरी देवी और किन्नरियों के विहार से युक्त तथा पहाड़िन स्त्रियों और कन्याओं से सम्पन्न।६१। मृदङ्ग, पटह, वीणा और सितार के स्वरों पर नृत्य करती हुई अप्सराओं के कौतुकों से युक्त।६२। देवताओं द्वारा निर्मित बावड़ी और उनसे आती हुई कमल की गंध से युक्त तथा प्रफुल्लित पुष्पों वाले वृक्षों की कुंजों से सुशोभित।६३।

शैलराजपुराभ्यर्णे शिखरे वृषभध्वजः।
सह सत्या चिरं रेमे एवं भूतेषु शोभनम् ॥६४
तस्मिन् स्वर्ग समे स्थाने दिव्यमानेन शङ्करः।
दशवर्षसहस्राणि रेमे सत्यासमं मुदा ॥६५
स कदाचित्ततः स्थानादन्यद्याति स्थल हरः।
कदाचिन्मेरुशिखरं देवीदेववृतं सदा ॥६६
द्वीपान्नाना तथोद्यानवनानि वसुधातलम्।
गत्वा गत्वा पुनस्तत्राभ्येत्य रेमे सतीसुखम् ॥६७
न यज्ञे स दिवरात्रौ क ब्रह्माणि तपः समम्।

सत्यां हि मनसा शंभुः प्रीतिमेव चकार ह ॥६८
एवं महादेवमुखं सत्यपश्यत्स्म सर्वदा ।
महादेवोऽपि सर्वत्र सदाऽद्राक्षीत्सतीमुखम् ॥६९
एवनन्योन्यसंसर्गादनुरागमहीरुषम् ।
वर्द्धयामासतु कालीशिवौ भावांबुसेचनैः ॥७०

सब प्राणियों से सुशोभित शैलराज के उस श्रेष्ठ शिखर पर सती के सहित शिवजी बहुत समय तक स्मरण करते रहे ।६४। उस स्वर्ग जैसे स्थान में सती सहित शंकर अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक दस हजार देव वर्ष तक विहार रत रहे ।६५। वे कभी उस स्थान से अन्य स्थान पर जाते और कभी देवी-देवताओं से युक्त मेरु शिखर पर भ्रमण करते ।६६। कभी पृथ्वी के अनेक द्वीप और दिव्य उद्यानों में विचरण करते हुए आदि का त्याग कर शिवजी ने सती में ही मन को रमा लिया ।६८। इस प्रकार सती सदा शिवजी का मुख देखती और शिवजी सदा सती का मुख देखते रहते थे ।६९। ऐसे पारस्परिक अनुराग में रत शिव और सती ने भाव-रूपी जल का सिंचन कर प्रेम रूपी वृक्ष की वृद्धि की ।७।

॥ शिव का सती के प्रति मोक्ष शास्त्र कथन ॥

सुप्रसन्नं प्रभुं नत्वा सा दक्षतनया सती ।
उवाच सांजलिर्भक्त्या विनयावनता ततः ॥१
ज्ञातुमिच्छामि देवेश परं तत्व सुखावहम् ।
यं न संसारदुःखाब्दं तरेज्जीवोंऽजसा हर ॥२
यत्कृत्वा विषयी जीवः स लभेत्परमं पदम् ।
संसारी न भवेन्नाथ तत्वं वद कृपां कुरु ॥३
इत्यपृच्छत्स्म सद्भक्त्या शंकरं सा सती मुने ।
आदिशक्तिर्महेशानी जीवोद्धाराय केवलम् ॥४
आकर्ण्य तच्छिवः स्वामी स्वेच्छयोपात्तविग्रह ।
अवोचत्परयप्रीतिः सती योगविरक्तधीः ॥५
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि दाक्षायणि महेश्वरि ।

परं तत्वं तदेवानुशयी मुक्तो भवेद्यतः ।।६
परतत्वं विजानीह विज्ञानं परमेश्वरि ।
द्वितीय स्मरणं यत्र नाहं ब्रह्मेति शुद्धधीः । ७

एक समय दक्षसुता सती अपने प्रसन्न हुए स्वामी को प्रणाम कर भक्ति-सहित नम्र होकर बोली ।१। हे देवेश ! मैं अब सुखदायक परम-तत्व को जाना चाहती हूं । हे शंकर ! जिससे यह जीव भव-बन्धन से मुक्त हो जाता है ।२। विषयी मनुष्य जिसे पाकर परमपद प्राप्त कर लेता है और पुनः संसारी नहीं होता । आप कृपा करके उसी तत्व को मेरे प्रति कहिये ।३। ब्रह्माजी ने कहा— सती ने भक्ति पूर्वक शिवजी से इस प्रकार प्रश्न किया और प्राणियों के उद्धार की इच्छा व्यक्त की ।४। तब स्वेच्छा से शरीर धारण करने वाले शंकर ने यह सुनकर, योग से विरक्त बुद्धि होते हुए सती से कहा ।५। शिवजी बोले—हे दक्षसुते ! जिस परमतत्व का ज्ञान प्राप्त कर यह अनुशयी जीव मोक्ष को प्राप्त होता है, उसे मैं तुम्हारे प्रति कहता हूँ, तुम श्रवण करो ।६। हे महेशानि तुम विज्ञान को ही परमतत्व समझो । उसमें बुद्धि पूर्वक ब्रह्म का ही स्मरण किया जाता है, किसी अन्य का नहीं ।७।

तद्दुर्लभं त्रिलोकेस्मिंस्तज्ज्ञाता विरलः प्रिये ।
यादृशो यः स दासोऽहं ब्रह्म साक्षात्परात्परः ।।८
तन्माता मम भक्तिश्च भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ।
सुलभा मत्प्रसादाद्धि नवधा सा प्रकीर्तिता ।।९
भक्तौ ज्ञाने न वेदो हि तत्कर्तुः सर्वदा सुखम् ।
विज्ञानंन भवत्येव सति भक्तिविरोधिन ।।१०
भक्त्या हीनः सदाहं वै तत्प्रभावाद्गृहेष्वपि ।
नीचानां जातिहीनानां यामि देवि न संशयः ।।११
सा भक्तिर्द्विविधा देवि सगुणा निर्गुणा मता ।
वैधी स्वाभाविकी या या वरा सा त्ववरा स्मृता ।।१२
नैष्ठिक्यनैष्ठिकी भेदाद्द्विविधे हि ते ।
षड् विधा नैष्ठिकी ज्ञेया द्वितीयैकविधा स्मृता ।।१३

विहिताविहिताभेदात्तामनेकां विदुर्बुधाः ।
तयो र्बहुविधत्वाच्च तत्वं त्वन्यत्र वर्णितम् ।।१४

हे प्रिये ! इस तत्वज्ञान का ज्ञाता कोई विरला ही होता है, यह अत्यन्त दुर्लभ है, क्योंकि वह ब्रह्म परे से भी परे हैं, मैं उसका दास हूँ ।८। उस विज्ञान की माता, भुक्ति मुक्ति की दात्री मेरी भक्ति है। परन्तु मेरी भक्ति भी मेरी ही कृपा से सुलभ होती है। उसके नौ प्रकार हैं भक्ति और ज्ञान में कोई भेद नहीं है। भक्ति करने वाला मनुष्य सदा सुखी होती है। जो मनुष्य भक्ति से विरोध करता है, उसे विज्ञान की प्राप्ति भी सम्भव नहीं ।६-१०। मैं अपने भक्त के सदा आधीन रहता हूँ, भक्ति के प्रभाव से निम्न जाति वालों के घरों में भी जाता हूँ।११। वह भक्ति भो सगुण-निगुण के भेद से दो प्रकार की है। इसमें प्रथम श्रेष्ठ और दूसरी निम्न है ।१२। दोनों प्रकार की भक्ति भी नैष्ठिकी के और अनैष्ठिकी के भेद से दो-दो प्रकार की हैं, इनमें भी नैष्ठिकी के छः प्रकार और अनैष्ठिकी का एक ही प्रकार है ।१३। इसको विहित और अविहित भेद से ज्ञानी जन अनेक प्रकार की मानते हैं। अनेक प्रकार की होने से उसका तत्व अन्यत्र कहा गया है ।१४।

ते नवांगेऽभेज्ञये वर्णिते मुनिभिः प्रिये ।
वर्णयामि नवांगानि प्रेमतः श्रृणु दक्षजे ।।१५
श्रवण कीर्तनं चैव स्मरण सेवनं तथा ।
दास्यं तथाऽर्चनं देवि बंदनं मम सर्वदा ।।१६
सख्यंमात्मापणं चेति नवांगानि विदुर्बुधाः ।
उपाङ्गानि शिवे तस्या बहूनि कथितानि वै ।।१७
श्रृणु देवि नवाँगानाँ लक्षणानि पृथक्-पृथक् ।
मम भक्तैर्मनो दत्वा भुक्तिमुक्तिप्रदानि हि ।।१८
कथादेर्नित्यसम्मानं कुवन्देहादिभिर्मुदा ।
स्थिरासनेन तत्पानं यत्तच्छ्रवणमुच्यते ।।१९
हृदाकाशेन संपश्यन् जन्मकर्माणि वै मम ।
प्रीत्योच्चोच्चारण तेषामेतत्कीर्तनमुच्यते ।।२०

व्यापकं देवि मां दृष्ट्वा नित्यं सर्वत्र सर्वदा ।
निर्भयत्वं सदा लोके स्मरणं तदुदाहृतम् ॥२

मुनियों ने उन दोनों के अंग नौ प्रकार के बताये हैं, उन नौ अंगों के लक्षण पृथक-पृथक कहता हूँ, तुम उन्हें ध्यान से श्रवण करो।१५। श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन दास्य, अर्चन और वन्दन ।१६। सख्य तथा आत्म समर्पण—यह नौ अङ्ग विज्ञजन बताते हैं, और उपांग तो असंख्य हैं ।१७। अब नौ अंगो का लक्षण पृथक-पृथक कहता हूँ, मेरा जो भक्त इनमें मन को लगायेगा, उसे भुक्ति-मुक्ति की प्राप्ति होगी ।१८। कथा आदि में देह आदि से सम्मान करना चाहिये, स्थिर आसन पर स्थित होकर उसका पान करे, इसे सुनना कहते हैं ।१६। हृदयाकाश में मेरे जन्म-कर्म को देखता हुआ प्रीतिपूर्वक उनका उच्चारण करे, यह कीर्तन कहा जाता है ।२०। मुझको नित्य, सर्वत्र सदा व्यापक मानकर भय--रहित रहकर लोक में सदैव विचरण करे ।२१।

अरुणोदयमारभ्य सेवाकालाञ्चिता हृदा ।
वाक्पाणिपादैस्तस्यार्चासेवन तदुदाहृतम् ॥२२
सदा सेव्यानुकूल्येन सेवनं तद्धि गोगणैः ।
हृदयामृतभागेन प्रियं दास्यमुदाहृतम् ॥२३
सदा भृत्यनुकूल्येन विधिना मे परात्मने ।
अर्पण षोडशानां वै पाद्यादीना तदर्चनम् ॥२४
मंत्रोच्चारणध्यानाभ्यां मनसा वचसा क्रमात् ।
यदष्टागेन भूस्पर्श तद्वै वंदन मुच्यते ॥२५
मंगलामगल यद्यत्करातीतीश्वरा हि मे ।
सर्वं तन्मगलायेति विश्वासः सख्यलक्षणम् ।२६
कृत्वा देहादिक तस्य प्रीत्यै सर्वं तदर्पणम् ।
निर्वाहाय च शून्यत्वं यत्तदात्मसमर्पणम् ॥२७
नवांगानानीति मद्भक्तेर्भुक्तिमुक्तिप्रदानि च ।
मम प्रियाणि चातीव ज्ञानोत्पत्तिकराणि च ॥२८

अरुणोदय से आरम्भ करे, सेवा काल में सदा हृदय से निर्भय रहता

हुआ स्मरण करे; इसे नाम स्मरण कहते हैं ।१२। सेवा परायण होकर अपनी इन्द्रियों को प्रभु सेवा में लगावे और हृदय से उनके अमृत का भोग करे और उनका चिन्तन करे, इसे दास्य करते हैं ।२३। भृत्य के समान सदैव मेरी अनुकूलता करे और षोडश प्रकार से मेरी पूजा करे तथा पाद्य अर्घ्य दे, इसे अर्चन कहा गया है ।२४। मन वचन कर्म के द्वारा मन्त्रोच्चारण तथा ध्यान करे और आठों अंगों से पृथिवी का स्पर्श करे, इसे वन्दन। कहते है ।२५। मङ्गल या अमङ्गल जो कुछ भी ईश्व--रेच्छा से होता हैं, वह सब मेरे लिए मङ्गल ही है,इस प्रकारका विश्वास-सख्य कहा गया है ।२६। देहादि को प्रीतिपूर्वक अर्पण कर देना और स्वयं शून्यत्व का भाव मानन, इसे आत्म-समर्पण कहा गया है ।२७। मेरी भक्ति के यह नवांग भुक्ति मुक्ति प्रदायक तथा ज्ञानोत्पादक हैं ओर मेरे लिए अत्यन्त प्रिय हैं ।२८।

इत्थं सांगोपांगभक्तिर्मम सर्वोत्तमा प्रिये ।
ज्ञानवैराग्यजननी मुक्तिदासी विराजते ।।२९
सर्वकर्मफलोत्पत्तिः सर्वदा त्वत्समप्रिया ।
यच्चित्ते सा स्थिता नित्य सर्वद, सोऽति मत्प्रियः ।।३०
त्रैलोक्ये भक्तिसदृशः पथा नास्ति सुखावहः ।
चतुर्युगेषु देवेशि कलौतु सुविशेषतः ।।३१
कलौ प्रत्यक्षफलदा भक्तिः नर्वयुगेष्वपि ।
यत्प्रभावादहं नित्य तद्वशो नाम संशयः ।।३२
यो भक्तिमान्पुमाँल्लोके सदाहं तत्सहायकृत् ।
बिघ्नहर्ता रिपुस्तस्य दण्ड्यो नात्र च संशयेः ।।३३
भक्तहेतोरहं देवि कालं क्रोफपरिप्लुतः ।
अहं बह्निता नेत्रभवेन निजरक्षकः ।।३४
किं बहूक्तेन देवेशि भक्ताधीनः सदा ह्यहम् ।
तत्कर्तुः पुरुषस्यातित्रशगो नात्र सशयः ।।३५
इत्थमाकर्ण्य भक्तेस्तु महत्वं दक्षजा सती ।
जहर्षातीव मनसि प्रणनाम शिवं मुदा ।।३६

इस प्रकार की सांगोपाँग भक्ति ज्ञान वैराग्य को उत्पन्न करने वाली एवँ परमश्रेष्ठ है। मुक्ति सदा इसकी दासी है ।२६। इसी के द्वारा सम्पूर्ण कर्म और फल उत्पन्न होते हैं, मेरे लिए यह सदैव तुम्हारे समान ही प्रिय है, जिसके चित्त में इसका वास है, वह मेरा प्रीति भोजन है। ।३०। भक्ति के समान अन्य कोई मार्ग त्रैलोक्य में सुख का देने वाला नहीं है यह चारों युगों में प्रधान मानी गयी है परन्तु कलियुग में विशेष रूप से हितकारिणी है।३१। सभी युगों, विशेष कर कलियुग में भक्ति विशेष फल के देने वाली हैं। इसका प्रत्यक्ष फल होता देखकर मैं सदा इसके वश में रहता हूँ।३२। लोक में जो पुरुष भक्ति-युग होता है मैं सदा उसकी सहायता करता हूँ। उसके यहाँ जो कोई विघ्न उपस्थित करता है, मैं उसके लिए शत्रु हो जाता हूँ।३३। भक्तों के निमित्त मैं ही काल रूप क्रोध से व्याप्त हूँ। भक्तों के हितार्थ ही मैंने अपने नेत्रों की अग्नि से उसे भस्म कर डाला था।३४। मैं सदा भक्ति के आधीन हूँ, जो पुरुष भक्ति करता है उसके वश में रहता हूँ।३५। ब्रह्माजी ने कहा कि शिवजी से इस प्रकार भक्ति का माहात्म्य श्रवण कर सती अत्यन्त प्रसन्न हुई और प्रेत सहित अपने स्वामी को प्रणाम किया।६।

।। दक्ष और शिव के विरोध का कारण ।।

पुराऽभवच्च सर्वेषामध्वरो विधिना महान् ।
प्रयागे समवेतानां मुनीमां च महात्मनाम् ।।१
तत्र सिद्धाः समाख्यातः सनकाद्याः सुरर्षयः ।
सप्रजापतयो देवा ज्ञानिनो ब्रह्मदर्शिनः ।।२
अहं समागतस्तत्र परिवारसमन्वितः ।
निगमैरागमैयुक्तो मूर्तिमद्भिर्महाप्रभै ।।३
समाजोऽभूद्विचित्रो हि तेषामुत्सवसयुतः ।
ज्ञानवादोऽभवत्तत्र नानाशास्त्रसमुद्भवः ।।४
तस्मिन्नवसरे रुद्रः सभवानीगणः प्रभुः ।
त्रिलोकहितकृत्स्वामी तत्रागात्सूतिकृन्मुने ।।
दृष्ट्वा शिवं सर्वैः सिद्धाश्च मुनयस्तथा ।

अनमंस्तं प्रभुं भक्त्या तुष्टुवुश्च तथा ह्यहम् ॥६
तस्थुश्शिवाज्ञया सर्वे यथास्थानं मुदान्विताः ।
प्रभुदर्शनसन्तुष्टा वर्णयन्तो निजं विधिम् ॥७

ब्रह्माजी ने कहा—प्राचीन में प्रयागराज में एकत्र हुए मुनियों द्वारा एक महान् यज्ञ हुआ ।१। उसमें सिद्ध परमर्षि, देवर्षि, सनाकादि, प्रजापति, ब्रह्मज्ञानी तथा देवगण एकत्र हुए ।२। मैं भी सपरिवार वहाँ गया, मेरे साथ निगमागम भी सकार रूप में वहाँ पहुँचे ।३। वहाँ उत्सव के सहित वह विचित्र समाज हुआ और अनेक शास्त्रों का ज्ञान तथा वाद उपस्थित हुआ ।४। उसी अवसर पर पार्वतीपति भी अपने गणों सहित त्रैलोक्य के हित साधनार्थ वहाँ आये ।५। शिवजी को देखते ही सब सिद्धों, देवताओं ऋषियों और मुनियों ने उन्हें अपना प्रभु मानते हुए प्रणाम किया और मैं भक्ति पूर्वक उनकी स्तुति करने लगा ।६। उस सयम शिवजी की आज्ञा से सभी अपने-अपने स्थान पर बैठ गये और उनके दर्शन करके अपने भाग्य की सराहना करने लगे ।७।

तस्मिन्नवसरे दक्षः प्रजापतिः प्रभुः ।
आगमत्तत्र सुप्रीतः सुचचस्वी यदृच्छया ॥८
सां प्रणक्ष्य स दक्षो हि न्युष्टस्तत्र मदाज्ञया ।
ब्रह्माण्डाधिपतिर्मान्य मानी तत्वबहिर्मुखः ॥९
स्तुतिभिः प्रणिपातैश्य दक्षः सर्वैः सुरर्षिभिः ।
पूजितो वरतेजस्वी करौ वद्ध्वा विनम्रकैः ॥११
नानाविहारकृन्नाथः स्वतन्त्रः परमोतिकृत् ।
नानमत्तं तदा दक्षं स्वासनस्थो महेश्वरः ॥११
दृष्ट्वाऽनतं हरं तत्र स मे पुत्रोऽप्रसन्नधीः ॥
अकुप्यत्सहसा रुद्रे तदा दक्षः प्रजापतिः ॥१२
क्रूरदृष्ट्वा महागर्वो दृष्ट्वा रुद्रं महाप्रभुम् ।
सर्वान्संश्रावयंन्नुच्चैरवोचज्ज्ञानवर्जितः ॥१३
एते हि सर्वे च सुरासुरा भृशं नमति मां विप्रवरास्तथर्षयः ।
कथं ह्यसौ दुजनवन्महामना त्वभूत्तु यः प्रेतपिशाचसवृतः ॥

उसी समय प्रजापतियों के भी पति अत्यन्त तेजस्वी दक्ष वहाँ प्रसन्नता पूर्वक आये ।८। ब्रह्माण्ड के अधिपति होने के अभिमान भरे से हुए दक्ष ने केवल मुझे प्रणाम किया और मेरी आज्ञा से वहाँ बैठ गये ।९। उस समय सभी देवताओं और ऋषियों ने उन अत्यन्त तेजस्वी दक्ष का स्तुति और प्रणामों से सत्कार किया तथा विनम्रता पूर्वक करबद्ध प्रार्थना की ।१०। परन्तु अनेक प्रकार की लीलाओं से युक्त परम स्वतन्त्र शंकर अपने आसन पर बैठे रहे, उन्होंने दक्ष को प्रणाम नहीं किया ।११। शिवजी को प्रणाम न करता देखकर मेरा पुत्र दक्ष अत्यन्त रुष्ट हुआ और शिवजी पर क्रोध करने लगा ।१२। और अत्यन्त अहङ्कारपूर्वक उसने क्रूर दृष्टि से शिवजी को देखा तथा उसको सुनाते हुए ज्ञान रहित वाक्य कहे ।१३। दक्ष ने कहा—यह सुर, असुर, विप्र, ऋषि सब मुझे देखकर प्रणाम करते हैं, परन्तु प्रेत-पिशाचों से घिरा हुआ, अत्यन्त अभिमानी यह दुर्जन के समान कैसे बैठा रहा ? ।१४।

श्मशानवासी निरपत्रयो ह्ययं कथं प्रणाम न करोति मेऽधुना ।
लुप्तक्रियो भूतपिशाचसेविता मत्तोऽविधो नीतिविदूषकः सदा ।।
पाखंडिनो दुर्जनपापशीला दृष्ट्वा द्विजं प्रोद्धतनिंदकाश्च ।
बध्वा सकासक्तरतिप्रवीणस्तस्मादमुं शप्तुमह प्रवृत्तः ।।१६
इत्यवमुक्त्वा स महाखलस्तदा रुषान्वितो रुद्रमिदं ह्य वोचत्।
शृण्वत्वती विप्रवरास्तथा सुरा वध्यं हि मे चार्हथ कर्तु मेतम्।।
रुद्रा ह्यय यज्ञवहिष्कृतो मे वर्णेष्वतीतोऽय विवर्णरूपः ।
देवैनं भाग लभतां सहैव श्मशानवासी कुलजन्महीनः ।।१८
इति दक्षोक्तमाकर्ण्य भृग्वाद्या बहवो जनाः ।।
अगर्हयन् धुष्टसत्व रुद्र नत्वाऽमरै बहवो जनाः ।।१९
नन्दी निशम्य तद्वाक्य लोलाक्षोऽतिरुषान्वितः ।
अब्रवीत्वरितं दक्षं शापं दातुमना गण ।।२०

इस श्मशान सेवी, निर्लज्ज क्रिया हीन, भूत पिशाचों से सेवित, नीति की हँसी उड़ाने वाले ने मुझे प्रणाम क्यों नहीं किया ।१५। इस पाखण्डी, दुर्जन, विप्र निन्दक को सदैव पत्नी में आसक्त रहने के कारण शाप देने

को उद्यत हुआ हूँ ।१६। ब्रह्माजी ने कहा कि इतना कहकर दुष्ट प्रजापति ने क्रोधपूर्वक रुद्र के प्रति कहा हे विप्रो, देवताओं ! सब सुनो, यह वध के योग्य है ।१७। मैं इसे यज्ञ से बाहर करता हूँ,वर्णों से भी बाहर,विवर्ण रूप, यह आज मे देवताओं में यज्ञ भाग प्राप्त न करेगा,क्योंकि यह श्मशान में रहने वाला और कुल-जन्म से हीन है ।१८। ब्रह्माजी बोले कि भृगु आदि अनेक ऋषि दक्ष के वचन सुनकर रुद्र को देवताओं के समान जानकर निन्दा करने लगे ।१९। परन्तु नन्दी के नेत्र लाल हो गये और उसने दक्ष को शाप देते हुए कहा ।२०।

रे रे शठ महामूढ दक्ष दुष्टमते त्वया ।
यज्ञ बाह्यो हि मे स्वामी हि कृताः कथम् ।।२१
यस्य स्मरणमात्रेण भवति सलफा मखाः ।
तीर्थानि च पवित्राणि सोऽयं शप्तो हरः कथम् ।।२२
वृथा ते ब्रह्मचापल्याच्छप्तोऽयं दक्षं दुर्मते ।
वृथोपहसितश्चैवादुष्टो रुद्रो महाप्रभुः ।।२३
येनेदं पाल्यते विश्व सृष्टमन्ते विनाशिनम् ।
शप्तोऽयं स कथं रुद्रो महेशो ब्राह्मणाधम् ।।२४
एव निर्भत्सितस्तेन नन्दिना हि प्रजापतिः ।
नन्दिनं च शशापाथ दक्षो रोषसमन्वितः ।।२५
यूयं सर्वे रुद्रगणा वेदबाह्या भर्वतु वे ।
वेदमार्गपरित्यक्तास्था त्वक्ता महार्षिभिः ।।२६
पाखडवादनिरताः शिष्टाचारबहिष्कृताः ।
मदिरापाननिरताः जटाभस्मास्थिधारिणः ।।२७
इतिशप्तास्तथा तेन दक्षेण शिवकिंकरा ।
तच्छ्रुत्वातिरुषाविष्टोऽभवन्नन्दी शिवप्रियः ।।२८

नन्दीश्वर ने कहा अरे महामूढ़ दक्ष ! तूने मेरे स्वामी महेश्वर को यज्ञ से किस कारण निकाल दिया है ? ।२१। जिनके स्मरण करने से ही यज्ञ सफल होते हैं और तीर्थ भी पवित्र हो जाते हैं, उन भगवान् शंकर को तूने शाप कैसे दिया ? ।२२। हे कुबुद्धि वाले दक्ष ! तूने चपलता से

शंकर को व्यर्थ ही शाप दिया है। तूने इन सरल हृदय वाले महाप्रभु की व्यर्थ ही हँसी उड़ाई है।२३। जो इस संसार को पालन करते और अन्त में विनाश करते हैं, उस रुद्र को तूने कैसे शाप दिया है।२४। इस प्रकार नन्दीश्वर द्वारा प्रजापति की भर्त्सना किये जाने पर दक्ष क्रोध में भर गया और उसने नन्दी को भी शाप दिया।२५। दक्ष ने कहा तुम सभी रुद्रगण वेद से बाहर होंगे तथा मनीषियों द्वारा भी तुम्हारा त्याग किया जायगा।२६। तुम पाखण्डी, अशिष्ट, मदिरा पीने वाले तथा जटा, भस्म और अस्थियों के धारण करने वाले होंगे।२७। ब्रह्माजी ने कहा कि दक्ष ने जब इस प्रकार शिवगणों को शाप दिया तब उसे सुनकर नन्दी अत्यन्त क्रोधित हुए।२८।

प्रत्युवाच दुतं दक्षं गर्वित तं महाखलम्।
शिलादतनयो नन्दी तेजस्वी शिववल्लभः ॥२९
रे दक्ष शठ दुर्बुद्धे वृथैव शिवकिंकराः।
शप्तास्ते ब्रह्मचापल्याच्छिवतत्वजानता ॥३०
भृग्वाद्यैर्दुष्टचित्तैश्च मूढः स उपाहिसता।
महाप्रभुमहेशानो ब्रह्मणास्त्वादहंमते ॥३१
ये रुद्राविमुखाश्चात्र ब्राह्मणास्त्वादृशाः खलाः।
रुद्रतेजः प्रभावत्वात्तेषां शापं ददाम्यहम् ॥३२
वेदवादरता यूयं वेदतत्वबहिर्मुखाः।
भवंतु सतत विप्रा नान्यदस्तीति वादिन ॥३३
कामात्मानः स्वर्गपराः क्रोधलोभमदान्विताः।
भवन्तु सततं विप्रा भिक्षुका निरपत्रपाः ॥३४
वेदमार्गं पुरस्कृत्या ब्रह्मणः शूद्रयाजिनः।
दरिद्रा वै भविष्यति प्रतिग्रहरताः सदा ॥३५

उस अहंकारी दुष्ट दक्ष से उस शिलादसुत नन्दी ने शीघ्रता से कहा कि अरे दुर्बुद्धि वाले दक्ष ! तू शिव-तत्व से अज्ञान है। तूने ब्रह्म-चपलता से शिवगणों को व्यर्थ ही शाप दिया।३०। तूने दुष्ट मन वाले भृगु आदि से उपहास कराया और ब्राह्मणत्व अहङ्कार में भर कर महाप्रभु शंकर

को निरादर किया ।३१। तेरे समान रुद्र से विमुख दुष्ट ब्राह्मणों को मैं रुद्र के तेज प्रकाश से शाप देता हूं ३२। तुम वेद-वाद परायण होकर भी वेद तत्व का ज्ञान न पा सकोगे। 'कुछ नहीं है' ऐसा ही निरन्तर कहने वाले होंगे ।३३। तुम कामना से ही अनुष्ठान करोगे स्वर्ग की इच्छा वाले लोभ, मद, क्रोध से युक्त, निर्लज्ज तथा भिक्षा माँगने वाले होंगे ।३४। वेद-मार्ग की दुहाई देकर कुयज्ञ कराओगे और कुदान लेने वाले दरिद्री होंगे ।३५।

असत्प्रतिग्रहाश्चैव सर्वे निरयगामिनः ।
भविष्यन्ति सदा दक्ष केचिद्वै ब्रह्मराक्षसाः ।।३६
यश्शिवं सुरसामान्यमुद्दिश्य परमेश्वरम् ।
द्रुह्यत्यजौ दुष्टमतिस्तत्वतो विमुखो भवेत् ।।३७
कूटधर्मेषु गेहेषु सदा ग्राम्यसुकेच्छया ।
कर्मतत्रं वितनु॒ा वेदवादं च शाश्वतम् ।।३८
विनष्टानदकमुखो विस्मृतात्मगतिः पशुः ।
भ्रष्टकर्मानयरतो दक्षो वस्तमुखोऽचिरात् ।।३९
शप्तास्ते कोपिना तत्र नंदिना ब्राह्मणा यदा ।
हाहाकारो महानासीच्छप्तो दक्षेण चेश्वरः ।।४०
तदाकर्ण्याहमत्यंतमनिंदं मुहुर्मुहुः ।
भृग्वादोनपि विप्रांश्च वेदसृट् शिवतत्ववितत् ।।४१
ईश्वरोऽपि वचः श्रुत्वा नदिनः प्रहसन्निव ।
उवाच मधुरं वाक्यं बोधयंस्त सदाशिवः ।।४२

तुम सत्य रहित प्रतिग्रह ग्रहण करने के कारण नरकगामी होंगे और इनमें भी कोई-कोई तो ब्रह्म राक्षस बनेगा ।३६। जिन भगवान् शंकर को तुम सामान्य देवता समझते हो, उनसे द्रोह करने वाला दुष्ट बुद्धि तथा तत्व से विमुख होगा ।३७। शंकर-द्रोही कूट-धर्म में रत रहकर घर में पड़े रहेंगे और ग्राम्य सुख की कामना करेंगे तथा कर्म-तन्त्र में लगकर वेद पर विवाद करते रहेंगे ।३७। इनके आनन्द का नाश होगी, अपनी गति का ज्ञान विस्मृत हो जाने से पशु रूप होंगे।

कर्मनीति से विमुख होने वाले इस दक्ष का मुख बकरे के समान हो जायगा ।३९। जिस समय क्रोधपूर्वक नन्दीश्वर ने ब्राह्मणों को और दक्ष को शाप दिया, उस समय सर्वत्र महान् हाहाकार मच गया ।४०। यह सुनकर मैंने दक्ष तथा भृगु आदि ब्राह्मणों की इसलिये निन्दा की कि उन्होंने वेद और शिवतत्व का ज्ञान होते हुए भी ऐसा किया ।४१। नन्दी के इन वचनों को सुनकर शंकर हँसे और उसे समझाते हुए कहने लगे ।४२।

शृणु नन्दिन् महाप्राज्ञ न कर्तुं क्रोधमर्हसि ।
वृथा शप्तं ब्रह्मकुलं मत्वा शप्तं च मां भ्रमात् ।।४३
वेदो मंत्राक्षरमयः साक्षात्सूक्तमयो भृशम् ।
सूक्ते प्रतिष्ठितो ह्यात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ।।४४
तस्मादात्मविदो नित्य त्व मा शप रुषान्वितः ।
शप्या न वेदाः केनापि दुर्द्धियाऽपि कदाचन ।।४५
अहं शप्तो न चेदानीं तत्वतो बोद्धमर्हसि ।
शान्तो भव महाधीमन् सनकादिविबोधकः ।।४६
यज्ञोऽहं यज्ञकर्माहं यज्ञांगानि च सर्वशः ।
यज्ञात्मा यज्ञनिरतो यज्ञवाह्योऽहमेव वै ।।४७
कोऽयं कस्त्वमिमे के हि सर्वोऽहमपि तत्वतः ।
इति बुद्धया हि विमृश वृथा शप्तास्त्वगा द्विजाः ।।४८
तत्वज्ञानेन निर्हृत्य प्रपंचरचनो भव ।
बुद्धःस्वस्थो महाबुद्धे नन्दिन् क्रोधादिवर्जितः ।।४९

शंकर ने कहा—हे नन्दी ! हे महाप्राज्ञ ! तुमको क्रोध करना उचित नहीं है । तुमने भ्रम से मुझे शाप देता हुआ देखकर ब्रह्मकुल को व्यर्थ ही शाप दे डाला ।४३। वेद मन्त्राक्षर युक्त हैं तथा सूक्त में सभी देहधारियों की आत्मा प्रतिष्ठित है ।४४। इसलिये आत्मज्ञानी होकर तुम क्रोधवश शाप मत दो, वेद कभी किसी दुर्बुद्धि से भी शाप के योग्य नहीं हैं ।४५। तुम तत्वज्ञान से यह समझ सकते हो कि मैं कभी शापित नहीं हो सकता । हे बुद्धिवन्त ! तुमने सनकादि को ज्ञान दिया था, तुम शान्त होओ ।४६। यज्ञ, यज्ञ के कर्म, यज्ञ के अङ्ग, यज्ञ की आत्मा, यज्ञ

में रत यज्ञ से बाहर सभी में मैं व्याप्त हूँ ।४७। तुम सब कौन हो ? तत्व से विचार कर देखो तो मैं ही हूँ और ऐसा विचार करने से ज्ञान होगा कि ब्राह्मणों को शाप व्यर्थ ही दिया गया ।४८। इस प्रपंच को तत्वज्ञान से जानकर शान्त होओ । क्रोध को त्याग कर स्वस्थ होओ और सम्पूर्ण रहस्य को समझो ।४९।

एव स बोधितस्तेन शम्भुना नन्दिकेश्वरः ।
विवेकपरमो भूत्वा शांतोऽभूत्क्रोधवर्जितः ।।५०
शिवोऽपि तं प्रबोध्याशु स्वगण प्राणवल्लभम् ।
सगणः स ययौ तस्मात्स्वस्थान प्रमुदान्वितः ।।५१
दक्षोऽपि स रुषाऽऽविष्टस्तैर्द्विजैः परिवारितः ।
स्वस्थानं च ययौ चित्ते शिवद्रोहपरायणः ।।५२
रुद्रं तदानीं परिशप्यमानं संस्मृत्य दक्षः पपया रुषान्वितः ।
श्रद्धां विहायैवंस मूढबुद्धिर्निन्दापरोऽभूच्छिवपूजकानाम् ।।५३
इत्युक्तो दक्षदुर्बुद्धिः शंभुना परमात्मना ।
परां बुद्धिषर्णा तस्य श्रृणु तात वदाम्यहम् ।।५४

ब्रह्माजी ने कहा—जब भगवान् शंकर ने इस प्रकार नन्दीश्वर को समझाया तब उन्हें परम बोध हुआ और क्रोध को छोड़कर वे शान्त हुए ।५०। इस प्रकार अपने प्रिय गण को समझा कर शिवजी गणों सहित उस स्थान से चले गये ।५१। तथा दक्ष भी मन में शिव के प्रति द्रोह धारण किये ब्राह्मणों सहित क्रोधपूर्वक अपने स्थान को गये ।५२। इस प्रकार शंकर को शाप देकर अत्यन्त क्रोध में भरे हुए दक्ष ने मूर्खता वश शिव-पूजकों की निन्दा करना प्रारम्भ किया ।५३। दुर्बुद्धि दक्ष की शंकर के प्रति धृष्टता का वर्णन किया गया, अब शंकर के द्वारा जो प्रति क्रिया हुई उसे ध्यानपूर्वक सुनो ।५४।

दक्षयज्ञ में शिव भाग न होने पर दधीचि का विरोध

एकदा तु मुने तेन यज्ञः प्रारम्भितो महान् ।
तत्राहूतास्तदा सर्वे दीक्षितेन सुरर्षयः ।।१
महर्षयोऽखिलास्तत्र निर्जराश्च समागताः ।

यद्यज्ञकरणार्थं हि शिवमायाविमोहिताः ॥२
अगस्त्यः कश्यपोऽत्रिश्च वामदेवस्तथा भृगुः ।
दधीचिर्भगवान् व्यासो भारद्वाजोऽथ गौतमः ॥३
पैलः पराशरो गर्गो भार्गवः ककुभः सितः ।
सुमन्तुत्रिककंकाश्च वैशंपायन एव च ॥४
एते चान्ये च वहवो मुनयो हर्षिता ययुः ।
मम पुत्रस्य दक्षस्या सदाराः ससुता मखम् ॥५
तथा सर्वे सुरगणा लोकपाला महोदयाः ।
तथोपनिर्जराः सर्वे स्वोपकारवलान्विताः ॥६
सत्यलोकात्समानीतो नुनोऽहं विश्वकारकः ।
ससुतः सपरिवारो मूर्तवेदादि संयुतः ॥७

ब्रह्माजी ने कहा—हे नारदजी ! उस समय दक्ष ने एक महायज्ञ का आरम्भ किया और दीक्षा लेकर सभी महर्षियों को आमन्त्रित किया ।१। शिवमाया में मोहित देवगण और ऋषिगण यज्ञ कराने के लिए वहाँ पहुँचे ।२। अगस्त्य, कश्यप, अत्रि, वामदेव, भृगु, दधीचि, व्यास, भरद्वाज तथा गौतम ।३। पैल, पराशर, गर्ग, भार्गव, ककुपमित, सुमन्तत्रिक, कंक और वैशम्पायन ।४। तथा अन्य अनेक मुनि प्रसन्न होकर वहाँ आये । यह सभी स्त्री-पुत्रों सहित दक्ष के यज्ञ में उपस्थित हुए ।५। इसी प्रकार सभी देवता, लोकपाल तथा अन्य देवता, उपकरण तथा बल से सम्पन्न वहाँ आये ।६। सत्यलोक से मुझे भी प्रार्थना करके आमन्त्रित किया गया और मैं भी सपरिवार तथा मूर्त वेद शास्त्रादि के सहित वहाँ पहुँचा ।७।

वैकुण्ठाच्च तथा विष्णुः संप्रार्थ्य विविधादरात् ।
सपार्षदपरीवारः समानीतो मखं प्रति ॥८
एवमन्ये समायाता दक्षयज्ञं विमोहिताः ।
सत्कृतास्तेन दक्षेण सर्वे ते हि दुरात्मना ॥९
भवनानि महार्हाणि सुप्रभावाणि महांति ।
त्वष्ट्रा कृतानि दिव्यानि तेभ्यो दत्तानि तेन वै ॥१०

तेषु सर्वेषु घिष्ण्येषु यथायोग्य च संस्थिताः ।
सम्मानित अराजस्ते सकला विष्णुना मया ॥११
वर्तमाने महायज्ञे तीर्थे कनखले तदा ।
ऋत्विजश्च कृतास्तेन भृग्वाद्यश्च तपोधनाः ॥१२
अधिष्ठाता स्वयं विष्णुः सह सर्वमरुद्गणैः ।
अहं तत्राभदं ब्रह्मा त्रयीविधिनिदर्शकः ॥१३
तथैव सर्वे दिक्पाला द्वारपालाश्च रक्षकाः ।
सायुधाः सपरीवाराः कुतूहलकराः सदा ॥१४

अत्यन्त आदर सहित वैकुण्ठ से भगवान् विष्णु को बुलाया और वे भी अपने पार्षद तथा परिवार सहित पधारे ।८। अन्य अनेक महात्मा मोहित होकर-दक्ष-यज्ञ में आये और उस शिवद्रोही दक्ष ने सभी का सत्कार किया ।६। विश्वकर्मा द्वारा निर्मित अत्यन्त प्रकाशमान भवन उन सबको रहने के लिये बता दिये ।१०। उन स्थानों में मेरे और नारायण के सहित सभी देवता सम्मानित होकर विराजमान हुए ।११। यह महायज्ञ उस कनखल तीर्थ में जैसे ही प्रारम्भ हुआ, उस समय भृगु आदि तपस्वी उसमें ऋत्विक् बने ।१२। सब मरुद्गणों के सहित विष्णु इसमें अधिष्ठाता हुए और त्रयी की विधि का ज्ञाता मैं उस यज्ञ में ब्रह्मा हुआ ।१३। इसी प्रकार सब दिक्पाल यज्ञ में द्वारपाल रूप से उसके रक्षक हुए, वे हाथों में आयुध धारण किये उस कुतूहल में सपरिवार संलग्न थे ।४१।

उपस्तस्थे स्वयं यज्ञः सुरूपस्तस्य चाध्वरे ।
सर्वे महानिश्रेष्ठाः स्वयं वेदधराऽभवन् ॥१५
तनूनपादपि निजं चक्रे रूपं सहस्रशः ।
हविषां ग्रहणयाशु तस्मिन् यज्ञे महोत्सवे ॥१६
अष्टाशीतिसहस्राणि जुह्वन्ति सह ऋत्विजः ।
उद्गातारश्चतुःषष्टिसहस्राणि सुरर्षयः ॥१७
अध्वर्यवोऽथ होतारस्तावन्तो नारदादयः ।
सप्तर्षयः समा गाथाः कुर्वन्तिस्म पृथक्पृथक् ॥१८
गंधर्वविद्याधरसिद्धसंघानादित्यसंघान् सयगणान् सयज्ञान् ।

संख्यावरान्नाग चरान् समस्तान् वव्रे स दक्षो हि महाध्वरे स्वे ॥१९
द्विजर्षिराजर्षिसुर्रार्षसंघा नृपाः समित्रा. सचिवाः ससैन्याः ।
वसुप्रमुख्या गणदेवाश्च सर्वे वृतस्तेन मखोपवेत्राः ॥२०
दीक्षायुक्तस्तदा दक्षः कृतकौतुकमंगलः ।
भार्यया सहितो रेजे कृतस्वस्त्ययनो भृशम् ॥२१

उस स्थान पर यज्ञ भी अपने स्वरूप में स्थित हो गया तथा सब महामुनि स्वयं ही वेद के धारण करने वाले हुए ।१५। अग्नि ने अपने सहस्रों रूप धारण किये और उस महोत्सव युक्त यज्ञ में आहुति ग्रहण करने लगे ।१६। अठासी हजार ऋषि आहुति दे रहे थे और चौंसठ हजार ऋषि उसमें उद्गाता थे ।१७। इतने ही अध्वर्य तथा होता थे तथा नारद आदि महर्षि पृथक्-पृथक् गाथा गान कर रहे थे ।१८। गन्धर्व, विद्याधर तथा सिद्धों के समूह, आदित्यगण, यक्षगण, समस्त संख्या वाले नाग तथा समस्त चर दक्ष द्वारा यज्ञ में वरण किये गये थे ।१९। ब्रह्मर्षि, राजर्षि, देवर्षि, मित्र मन्त्री तथा सेना सहित सभी राजा, वसु तथा गण देवताओं को दक्ष ने वरण किया था ।२०। कौतुक मंगल के उपरान्त दक्ष ने दीक्षा ग्रहण की तथा स्वस्तिवाचन के पश्चात् भार्या सहित सुशोभित हुआ ।२१।

तस्मिन् यज्ञे वृतः शंभुर्न दक्षेण दुरात्मना ।
कपालीति विनिश्चित्य तस्य यज्ञार्हता न हि ॥२२
कपालिभार्येति सती दयिता स्वसुतापि च ।
नाहूता यज्ञविषये दक्षेणागुणदर्शिना ॥२३
एव प्रवर्तमाने हि दक्षयज्ञ महोत्सवे ।
स्वकार्यमग्नास्तत्रासत् सर्वे तेऽध्वरसंमताः ॥२४
एतस्मिन्नंतरे तत्रादृष्ट्वा वै शंकरं प्रभुम् ।
प्रोद्विग्नमानसः शैवोः दधीचिर्वाक्यमब्रवीत् ॥२५
सर्वे शृणुत मद्वाक्यं देवर्षि प्रमुखा मुदा ।
कस्मान्नै वागता शंभुरस्मिन् यज्ञे महोत्सवे ॥२६

एते सुरेशा मुनयो सहत्तराः सलोकपालाश्च समागता हि।
तथापियज्ञस्तु न शोभतेभृशंपिनाकिना तेन महात्मना विना ॥२७
येनैव सर्वाण्यपि मङ्गलानि भवति शंसन्ति महाविपश्चितः।
सोऽसौ न दृष्टोऽत्रपुमान् पुराणो वृषध्वजो नीलगलः परेशः ॥२८

परन्तु उस दुरात्मा ने शिवजी को कपाली और अयोग्य कहकर उस यज्ञ में आमन्त्रित नहीं किया ।२२। यद्यपि उसको अपनी कन्या सती अत्यन्त प्रिय थी, किन्तु वह कपाली की पत्नी है, ऐसा विचार कर उसे भी यज्ञ में नहीं बुलाया ।२३। इस प्रकार दक्ष के यज्ञ महोत्सव का आरम्भ हुआ और सभी अध्वर्यु अपने कार्य में तत्पर हुए ।२४। तब वहाँ अपने स्वामी भगवान् शिव को न देखकर परम शैव्य दधीचि ने उद्विग्न मन से कहा ।२५। दधीचि ने कहा—सभी देवगण और ऋषिगण इस सभा में मेरा प्रश्न सुनें कि इस यज्ञ महोत्सव मे भगवान् शंकर क्यों नहीं पधारे ?।२६। सभी सुरेश्वर मुनीश्वर और लोकपाल इस यज्ञ में उपस्थित हैं, परन्तु महात्मा शिवजी के अभाव में यह यज्ञ शोभा नही पा रहा है ।२७। महात्मा जन जिनके द्वारा सम्पूर्ण मङ्गल होना कहते हैं, उन्हीं पुराण पुरुष, वृषभध्वज, नीलकण्ठ के यहाँ दर्शन नहीं हो रहे हैं ।२८।

अमङ्गलान्येव च मङ्गलानि भवन्ति येनाधिगताविदक्षः।
त्रिपंचकेचाप्यथ मङ्गलानि भवन्ति सद्यः परतः पुराणि ॥२६
तस्मात्वयैव कर्तव्यमाह्वानं परमेशितुः।
त्वरितं ब्रह्मणा वापि विष्णुना प्रभा विष्णुना ॥३०
इन्द्रेण लोकपालैश्च द्विजैः सिद्धैः सहाधुना।
सर्वथाऽऽनयनीयोऽसौ शङ्करो यज्ञपूर्त्तये ॥३१
सर्वैर्भद्भिर्गतव्यं नत्र देवो महेश्वरः।
दाक्षायण्या समं सम्भुमानयध्वं त्वरान्विताः ॥३२
तेन सर्वं पवित्रं स्याच्छम्भुना परमात्मना।
अत्रागतेन देवेशाः सांबेन परमात्मना ॥३३
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या समग्रं सुकृत भवेत्।

तस्मात्सर्व प्रयानेन ह्यानेतव्यो वृषध्वजः ।३४
समागते शंकरेऽत्र पावतो हि भवेन्मखः ।
भविष्यत्यन्यथाऽपूर्णः सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ।।३५

जिनके पाते ही सम्पूर्ण अमङ्गल मङ्गल रूप हो जाते हैं और आठों दिशायें मंगल से परिपूर्ण हो जाती हैं ।२६। इसलिए ब्रह्माजी या भगवान् विष्णु को भेजकर शीघ्र ही भगवान् शङ्कर को यहाँ बुलाना चाहिए ।३०। इन्द्र, लोकपाल या सिद्ध ब्राह्मणों के सहित यश पूर्ति के लिए शङ्कर को शीघ्र यहाँ लाना चाहिये ।३१। अथवा सभी उन महेश्वर के पास जाकर उन्हें दक्ष-सुता सहित यहाँ ले आवें ।३२। यदि वे देवेश यहाँ सती सहित आ गये तो यह यज्ञ पवित्र हो जायगा ।३३। उनके स्मरण करने अथवा नामोच्चारण करने से सब सुकृत होता है, उन वृषभध्वज को प्रयत्नपूर्वक यहाँ लाना चाहिए ।३४। मैं सत्य कहता हूँ कि शङ्कर के आने से ही यज्ञ पवित्र होगा, अन्यथा अपूर्ण रह जायगा ।३५।

तस्य तद्वचन श्रुत्वा दक्षो रोषसमन्वितः ।
उवाच त्वरितं मूढः प्रहसन्निव दुष्टधीः ।।३६
मूलं विष्णुर्देवतानां यत्र धर्मः सनातनः ।
समानीतो मया सम्यक् किमूनं यज्ञकर्मणि ।।३७
यस्मिन्वेदाश्च यज्ञाश्च कर्माणि विविधानि च ।
प्रतिष्ठितानि सर्वाणि सोऽसौ विष्णुरिहागतः ।।३८
सत्यलोकात्समायातौ ब्रह्मा लोकपितामह ।
वेदैः सोपनिषद्भिश्च विविधैरागमैः सहः ।।३९
तथा सूरगणैः साकमागतः सुरराट् स्वयम् ।
तथा यूयं समायातां ऋषयो वीतकल्मषाः ।।४०
ये ये यज्ञोचिता शान्ताः पात्रभूताः समागताः ।
वेदवेदार्थतत्वज्ञाः सर्वे यूयं दृढव्रता ।।४१

ब्रह्माजी ने कहा कि दधीचि के इस प्रकार वचन सुनकर दक्ष अत्यन्त

क्रोधित हुआ और अहङ्कार से हँसता हुआ कहने लगा ।३६। विष्णु भगवान् देवताओं के मूल हैं और सनातन धर्म उन्हीं में स्थित है, मैंने उनको इस ज्ञय में बुला ही लिया है तो अब न्यूनता ही क्या रह गयी ? ।३७। जिन विष्णु भगवान् में अनेक कर्म, यज्ञ और वेद भी स्थित हैं, वे यहाँ साक्षात् उपस्थित हैं ।३८। सत्यलोक से लोक पितामह ब्रह्मा भी आ गये हैं तथा उपनिषद् और आगम भी मूर्त रूप से उनके साथ यहाँ हैं ।३९। सब देवताओं के सहित देवराज यहाँ हैं ही और आप सब पाप-रहित ऋषिगण भी यहाँ हैं ।४०। यज्ञ में उचित पात्र रूप वेद वेदार्थ के तत्व-ज्ञाता एवं दृढ़व्रती जितने भी हैं, वे सभी यहाँ आ गये हैं ।४१।

अत्रैव च किमस्माकं रुद्रेणापि प्रयोजनम् ।
कन्या दत्ता मया विप्र ब्रह्मणा नोदितेन हि ॥४२
हरोऽकुलीनोऽसौ विप्र पितृमातृविवर्जितः ।
भूतप्रेतपिशाचानां परेतिको दुरत्ययः ॥४३
आत्मसम्भावितो मूढ स्तब्धो मौनी समत्सरः ।
कर्मण्यस्मिन्न योन्योऽसौ नानीतो हि मयाऽधुना ॥४४
तस्मात्त्वयेदृशं वाक्यं पुनर्वाच्यं न हि क्वचित् ।
सर्वैर्भवद्भिः कर्तव्यो यज्ञो मे सफलो महान् ॥४५
एतच्छ्रुत्या वचस्तस्य दधीचिर्वाक्यमब्रवीत ।
सर्वेषां शृण्वतां देवमुनीनां सारसंयुतम् ॥४६
अयज्ञोऽयं महाजातौ विना तेन शिवेन हि ।
विनाशोऽपि विशेषे ह्यत्र ते हि भविष्यति ॥४७
एवमुक्त्वा दधीचोऽसावेक एव विनिर्गमः ।
यज्ञावाटाच्च दक्षस्य त्वरितः स्वाश्रमं ययौ ॥४८
ततोऽन्ये शांकहा ये च मुख्याश्शिवमतानुगाः ।
निर्युयुः स्वाश्रमान् सद्यः शापं दत्वा तथैव च ॥४९

फिर रुद्र से हमें क्या प्रयोजन है ? ब्रह्माजी की आज्ञा से मैंने अपनी कन्या उनको दी थी ।४२। परन्तु, हे ब्रह्मन् ! वे तो अकुलीन,

माता-पिता हीन तथा भूत-पिशाचों के अधिपति और दुर्गम हैं ।४३। आत्मा की सम्भावना से युक्त, स्तब्ध, अहङ्कारी, कर्म में अयोग्य होने के कारण मैंने उन्हें नहीं बुलाया है ।४४। इसलिए आप सब मिलकर ही मेरे यज्ञ को सफल करें और रुद्र के विषय में फिर कुछ न कहें ।४५। ब्रह्माजी ने कहा—दक्ष की बात सुनकर दधीचि ने पुनः कहा, जिसे देवता, मुनि आदि सब ने सुना ।४६। दधीचि बोले—शिवजी के बिना यह यज्ञ, अयज्ञ ही है, इससे तुम नष्ट हो जाओगे ।४७। इतना कहकर दधीचि वहाँ से उठकर चले गये और अपने आश्रम में जा पहुँचे ।४८। इनके पश्चात् जो भी शिवभक्त वहाँ आये थे, सभी दक्ष को शाप देकर अपने-अपने स्थान को गये ।४९।

मुनो विनिर्गते तस्मिन् मखादन्येषु दुष्टधीः ।
शिवद्रोही मुनीन् दक्षः प्रहसन्निदमब्रवीत् ।।५०
गतः शिवप्रियो विप्रो दधीचो नाम नामतः ।
अन्ये तथाविधा ये च गतास्ते मम चाध्वरात् ।।५१
एतच्छुभतरं जातं ममतं मे हि सर्वदा ।
सत्यं ब्रवीमि देवेश सुराश्च मुनयस्तथा ।।५२
विनष्टचित्ता मंदाश्च मिथ्यावादरताः खलाः ।
वेदवाह्या दुराचारास्त्याज्यास्ते मखकर्मणि ।।५३
वेदवादरतायूयं सर्वे विष्णुपुरोगमाः ।
यज्ञं मे सफल विप्राः सुराः कुर्वन्तु मा चिरम् ।।५४
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य शिवमाया विमोहिताः ।
यन्मखे देवयजनं चक्रुः सर्वे सुरर्षयः ।।५५
इति तन्मखशापो हि वर्णितो मे मुनीश्वर ।
यज्ञविध्वंसयोगोऽपि प्रोच्यते शृणु सादरम् ।।५६

जब कुछ अन्य मुनिगण भी वहाँ से चले गये तब वह शिवद्रोही दक्ष उपस्थित जनों से कहने लगा ।५०। दक्ष ने कहा—शंकर का प्रिय दधीचि यहाँ से चला गया और उस जैसे अन्य व्यक्ति भी यहाँ से उठकर चले गये ।५१। यह अत्यन्त शुभ हुआ, मैं भी यही चाहता था, मैं

यह सत्य ही कह रहा हूँ ।५२। जिनकी बुद्धि नष्ट हो गई हो, आत्मा अस्वच्छ हों, मिथ्यावाद में रत हों, वेद से विरुद्ध तथा दुराचार से प्रवृत्त हों, ऐसों को कभी भी यज्ञ में न बुलावें ।५३। विष्णु आदि आप सभी वेदवाद में निरत हैं। हे विप्रो ! हे देवताओं ! आप ही मेरे यज्ञ को सफल कीजिये ।५४। ब्रह्माजी ने कहा- दक्ष के ऐसे वचन सुनकर शिव-माया में विमोहित हुए देवता और ऋषि उस यज्ञ में देव-यजन करने लगे ।५५। इस प्रकार यज्ञ में शाप देने का वर्णन हुआ अब यज्ञ विध्वंस का वृत्तान्त आदर सहित श्रवण करो ।५६।

सती का पिता के यज्ञ में जाने के लिये आग्रह

यदा ययुर्दक्षमखमुत्सवेन सुरर्षयः ।
तस्मिन्नेवांतरे देवी पर्वते गन्धमादने ।।१
धारागृहे वितानेन सखीभिः परिवारिता ।
दाक्षायणी महाक्रीड़ाश्चकार विविधाः सती ।।२
क्रीडासक्ता तदा देवी ददर्शाय मुद्रा सती ।
दक्षयज्ञे प्रयांतं च रोहिण्यापृच्छ्य सत्वरम् ।।३
दृष्ट्वा सीमंतया भूतां विजयां प्राह सा सती ।
स्वसखप्रवरां प्राणप्रियां सा हि हितावहाम् ।।४
हे सखीप्रवरे प्राणप्रिये त्व विजये मम ।
क्व गमिष्यति चन्द्रोऽयं रोहिण्यापृच्छ्य सत्वरम् ।।५
तथोक्ता विजया सत्या गत्वा तत्सन्निधौ द्रुतम् ।
क्व गच्छसीति पप्रच्छ शशिनं यथोचितम् ।।६
विजयोक्तमयाकर्ण्य स्वयात्रां पूर्वमादरात् ।
कथितं तेन तत्सर्वं दक्षयज्ञोत्सवादिकम् ।।७

ब्रह्माजी ने कहा जब दक्ष-यज्ञ के लिये देवता और ऋषि जा रहे थे, उस अवसर पर सती गन्धमादन पर्वत पर ।१। वितान के नीचे अपनी सखियों के साथ विभिन्न प्रकार की क्रीड़ा में रत थीं ।२। उस क्रीड़ा के समय सती ने दक्ष-यज्ञ में जाती हुई रोहिणी के विषय में पूछा ।३। उसको श्रृङ्गार करते हुए देखकर सती ने विजया से कहा, क्योंकि

विजय सती की अत्यन्त प्रिय सखी तथा हितसाधिका थी ।४। सती ने कहा—हे विजया ! तू मेरी अत्यन्त प्रिय सखी है । यह चन्द्रमा कहाँ जा रहा है, यह बात तू रोहिणी से जाकर पूछ ।५। ब्रह्माजी ने कहा—सती की बात सुनकर विजया ने चन्द्रमा के पास जाकर पूछा कि तुम कहाँ जा रहे हो ? ।६। विजया की बात सुनकर चन्द्रमा ने दक्ष के यहाँ यज्ञ महोत्सव का सम्पूर्ण वृत्तान्त कहकर अपने वहाँ जाने की बात बताई ।७।

तच्छ्रुत्वा विजया देवीं त्वरिता जातसभ्रमा ।
कथयामास तत्सर्वं यदुक्तं शशिना सतीम् ॥८
तच्छ्रुत्वा कालिका देवी विस्मिताभूत्सती तदा ।
विमृश्य कारणं तत्राज्ञात्वा चेतस्य चिन्तयत् ॥९
दक्षः पिता मे माया च वीरिणी नो कुतः सती ।
आह्वानं न करोति स्म विस्मृता मां प्रियां सुताम् ॥१०
पृच्छेयं शंकरं तत्र कारणं सर्वमादरात् ।
चिंतयित्वेति सासीद्वै तत्र गन्तुं सुनिश्चया ॥११
अथ दक्षायणी देवी विजयां प्रवरां सखीम् ।
स्थापयित्वा द्रुतं तत्र समगच्छच्छिवांतिकम् ॥१२
ददर्श त सभामध्ये संस्थित बहुभिर्गणैः ।
नद्यादिभिर्महावीरैः प्रवरैर्यूथयूथपैः ॥१३
दृष्ट्वा तप्रभुमीशानस्वपति साथ दक्षजा ।
प्रष्टुं तत्कारणं शीघ्रं प्राप शंकरसनिधम् ॥१४-१५॥

यह सुनकर विजया अत्यन्त विस्मित हुई और उसने सती के पास आकर वह सब वृत्तान्त कह सुनाया, जो उससे चन्द्रमा ने कहा था ।८। यह सुनकर सती को भी बड़ा आश्चर्य हुआ और उसका कारण समझ में न आने से वह सोचने लगी ।९। दक्ष मेरे पिता है, मेरी माता वीरिणी हैं, इन्होंने मुझे यज्ञोत्सव में क्यों नहीं बुलाया ? मुझे वे क्यों भूल गये ? ।१०। मैं शिवजी के पास चलकर इसका कारण पूछूँ, यह सोचकर शिवजी के पास जाने का निश्चय किया ।११। सती विजया

को वहीं छोड़कर शिवजी के पास शीघ्रता से पहुँची ।१२। वहाँ सभा जुड़ी हुई देखी—नन्दी आदि महागणों के मध्य में शिवजी विराजमान थे ।१३। दक्षसुता ने अपने पति को इस प्रकार यूथपों के बीच में देखा और वह शीघ्रता से उनके समीप जा पहुँची ।१४-१५।

अथ शंभुर्महालीलः सर्वेशः सुखदः सताम् !
सतीमुवाच त्वरितं गणमध्यस्थ आदरात् ॥ १६
किमर्थमागताऽत्र त्वं सभामध्ये सविस्मया ।
कारणं तस्य सुप्रीत्या शीघ्रं वद सुमध्यमे ॥१७
एवमुक्ता तदा तेन महेशेन मुनीश्वर ।
सांजलिः सुप्रणम्यामु भत्युवाच प्रभुं शिवा ॥१८
पितुर्मम महान्यज्ञो भवतीति मया मया श्रुतम् ।
तत्रोत्सवो महानस्ति समवेताः सुरर्षयः ॥१९
पितुर्मम महायज्ञे कस्मात्तव न रोचते ।
गमनं देवदेवेश तत्सर्वं तत्सर्वं कथय प्रभो ॥२०
सुहृदामेष वै धर्मः सुहृद्भिः सह सङ्गतिः ।
कुर्वन्ति यन्महादेव सुहृदः प्रीतिवर्द्धिनीम् ॥२१

उस समय महाकौतुकी एवं सत्पुरुषों के लिए कल्याणप्रद शिवजी गणों के मध्य बैठे हुए ही सती से बोले ।१६। शिवजी ने कहा—तुम आश्चर्यचकित-सी इतनी द्रुति-गति से सभा के मध्य क्यों आई हो, यह मुझे शीघ्र बताओ ।१७। ब्रह्माजी ने कहा कि शंकर के इस प्रकार कहने पर सती ने हाथ जोड़कर अपने स्वामी से कहा ।१८। सती बोली—हे प्रभो ! मेंरे पिता के यहाँ महान् यज्ञ हो रहा है, ऐसा मैंने सुना है । उस महोत्सव में सब ऋषि मुनि एकत्र हुए हैं ।१९। आपको मेरे पिता का यज्ञ अच्छा क्यों नहीं लगा ? आप वहां क्यों नहीं गये ? यह मुझे बताइये ।२०। सुहृदों का सुहृयों से मिलन परम धर्म है । आप भी प्रीति की वृद्धि करने वाली इस नीति का पालन करें ।२१।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेम मया गच्छ सह प्रभो ।
यज्ञवाटं पितुर्मेद्य स्वामिन् प्रार्थनया मम ॥२२

तस्यास्तद्ववचनं श्रुत्वा सत्या देवेश्वरः ।
दक्षवाग्विपृहृद्विद्धो बभाषे सूनृतं वचः ॥२३
दक्षस्तव पिता देवि मम द्रोही विशेषतः ॥२४
यस्य ये मानिनः सर्वे ससुरर्षिमुखाः परे ।
ते मूढा यजनं प्राप्ताः पितुस्ते ज्ञानवर्जिताः ॥२५
अनाहूताच्च ये देवि गच्छंति परमंदिरम् ।
अवमानं प्राप्नुवंति मरणादधिकं तथा ॥२६
परालय गतोऽपीन्द्रो लघुर्भवति तद्विधः ।
का कथा च परेषां वै रीढा यात्रा हि तद्विधा ॥२७
तस्मात्त्वया मया चापि दक्षस्य यजनं प्रति ।
न गंतव्यं विशेषेण सत्यमुक्तं मया प्रिये ॥२८

हे प्रभो ! आप मेरे साथ वहाँ चलिए हे स्वामिन् ! मेरा निवेदन है कि आप मेरे पिताजी के यज्ञ महोत्सव में अवश्य चल ।२२। ब्रह्माजी ने कहा— सती के यह वचन सुनकर दक्ष के वचनों को स्मरण करते हुए शंकर ने सत्य वचन कहे ।२३। शिव ने कहा हे देवि ! तुम्हारे पिता दक्ष मुझसे द्वेष रखते हैं ।२४। जो देवता-ऋषि उनके लिए मान्य हैं, वही मूर्ख बुद्धि वाले तुम्हारे पिता के यज्ञ में पहुंचे हैं ।२५। हे प्रिये ! जो किसी के यहाँ बिना बुलाये जा पहुँचते हैं वे तिरस्कृत होते हैं और उन्हें मरणादि तक प्राप्त हो सकता है ।२६। दूसरे के घर जाने पर इन्द्र की गरिमा भी नहीं रहती । बिना बुलाये जाना अनर्थक है ।२७। अतः दक्ष यज्ञ में मेरा जाना ठीक नहीं तुम मेरी यह बात सत्य समझो ।२८।

तथारिभिर्न व्यथते ह्यर्दितोऽपि शरैर्जनः ।
स्वानां दुरुक्तिभिर्मर्म ताडितः स यथा मतः ॥२९
विद्यादिभिर्गुणैः षड्भिरसन्दयैः सतां स्मृतौ ।
हतायां भूयसां धाम न पश्यति खलाः प्रिये ॥३०
एवमुक्ता सती तेन महेशेन महात्मना ।
उवाच रोषसंयुक्ता शिवं वाक्यविदां वरम् ॥३१
यज्ञः स्यात्सफला येन स त्वं शंभोऽखिलेश्वर ।

अनाहूतोऽसि तेनाद्य पित्रा मे दुष्टकारिणा ॥३१
तत्सर्वं ज्ञातुमिच्छामि भव भावं दुरात्मनः ।
सुरर्षीणां च सर्वेषामागतानां दुरात्मनाम् ॥३३
तस्माच्चाद्यैव गच्छामि स्वपितुर्यजनं प्रभो ।
अनुज्ञां देहि मे नाथ तत्र गन्तुं महेश्वर ॥३४
इत्युक्तो भगवान् रुद्रस्तया देव्या शिवः स्वयम् ।
विज्ञाताखिलदृक् द्रष्टा सती सूतिकरोऽब्रवीत् ॥३५

स्वजनों के दुर्वाक्यों से अन्तःकरण जितना व्यथित होता है, उतना तो शत्रुओं के वाणों से भी नहीं होता ।२९। हे प्रिये ! विद्यादि छः गुणों से सम्पन्न भी खलों द्वारा तेजहीन हो जाते हैं ।३०। ब्रह्माजी ने कहा—जब शिवजी ने सती से इस प्रकार कहा तब सती ने शङ्कर से क्रोधपूर्वक कहा ।३१। सती बोली—हे शंकर ! आप सबके ईश्वर हैं । आपके वहाँ जाने से यज्ञ सफल हो जाता, परन्तु मेरे दुष्कर्मा पिता ने आपको निमन्त्रित नहीं किया ।३२। इसलिए मैं उस दुरात्मा के भाव को जानना चाहती हूँ । वहाँ दुरात्मा होकर सभी देवता और ऋषि पहुँचे हैं ।३३। इसलिये मैं भी उस यज्ञ में अवश्य जाऊँगी । हे प्रभो ! आप मुझे वहाँ जावे की अनुमति दें ।३४। ब्रह्माजी ने कहा—जब इस प्रकार सती ने कहा तो सर्वज्ञाता भगवान् शंकर ने उससे कहा ।३५।

यद्येवं ते रुचिर्देवि तत्र गंतुमवश्यकम् ।
सुव्रते वचनान्मे त्वं गच्छ शीघ्रं पितुर्मखम् ॥३६
एतं नदिनमारुह्य वृषभं सज्जमादरात् ।
महाराजोपचाराणि कृत्वा बहुगुणान्विता ॥३६
भूषितं वृषमारोहेत्युक्ता रुद्रेण सा सती ।
सुभूषिता सती युक्ता ह्यगमत्पितृमंदिरम् ॥३८
महाराजोपचाराणि दत्तानि परमात्मना ।
सुच्छत्रचामरादीनि सद्वस्त्राभरणानि च ॥३९
गणा षष्टिसहस्राणि रौद्रा जग्मुश्शिवाज्ञया ।
कुतूहलयुताः प्रीता महोत्सवसमन्विताः ॥४०

तदोत्सवो महानासोद्यजने तत्र सर्वतः ।
सत्याशिवप्रियायस्तु वामदेवगणैः कृतः ।।४१
कुतूहलं गणाश्चक्रुशिवयोर्यश उज्जगुः ।
बालांतः पुप्लुनुः प्रीत्या महावीराशिवप्रियाः ।।४२
सर्वथासीऽऽन्महाशोभा गमने जागदम्बिके ।
सुखारावः संवभूव पूरित भुवनत्रयम् ।।४३

हे देवि ! यदि तुम वहाँ जाना ही चाहती हो तो मेरी आज्ञा से अवश्य ही जाओ ।३६। इस नन्दी वृषभ को सुसज्जित कर और इस पर चढ़ कर ।३७। अपने सभी आभूषण धारण कर शीघ्र जाओ। यह सुनकर सती सभी साज-सज्जा मुक्त होकर अपने पितृगेह को चली ।३८। भगवान् शंकर ने महाराजों जैसी साज-सज्जा प्रदान की छत्र, चँवर-आभरण आदि दिये ।३६। शिवजी की आज्ञा से आठ हजार शिवगण सती के साथ महोत्सव करते हुये चले ।४०। उस समय उस देव यजन भूमि से महोत्सव आरम्भ हुआ और सती के साथ अनेक वाम-देव गणों ने प्रस्थान किया ।४१। शिवजी तथा शिवा का गुणागन करते करते हुए शिवगण कुतूहलपूर्वक दूर दूर तक कूदते-फाँदते चले ।४२। सती के चलने में सब प्रकार शोभा हुई और उनके मुख से निकाले हुए शब्दों से तीनों भुवन परिपूर्ण हो गये ।४३।

।। दक्ष द्वारा सती का तिरस्कार ।।

दाक्षायणी गता तत्र यत्र यज्ञो महाप्रभः ।
सुरासुरमुनीन्द्रादिकुतूहलसमन्वितः ।।१
स्वपितुर्भवनं तत्र नानाश्चर्यसमन्वितम् ।
ददर्श सुप्रभं चारु सुरर्षिगणसंयुतम् ।।२
द्वारिस्थिता तदा देवी ह्यवरुह्य निजासनात् ।
नन्दिनोऽयंतरं शीघ्रमेकैवागच्छदध्वरम् ।।३
आगतां च सतीं दृष्ट्वाऽसिक्नी माता यशस्विनी ।
अकरोदादरं तस्या भगिन्यश्च यथोचितम् ।।४
नाकरोदादरं दक्षो दृष्ट्वा तामपि किंचन ।

नान्योऽपि तद्भयातत्र शिवमायाविमोहितः ।।५
अथ सा मातरं देवी पितरं च सती मुने ।
अनमद्विस्मितात्यतं सर्वलोकपराऽभवत् ।।६
भागानपश्यद्देवानां हर्यादीनां तदध्वरे ।
न शंभुभागमकरोत् क्रोधं दुर्विषहं सती ।।७

इस प्रकार सती वहाँ पहुंच गई, जहाँ अत्यन्त प्रभावशाली यज्ञ हो रहा था। देवता दैत्य, मुनि और इन्द्रादि वहाँ कुतूहल कर रहे थे ।१। उस समय सती ने अपने पिता के स्थान को अनेक आश्चर्यों तथा देवता और मुनियों से युक्त देखा ।२। सती अपने आसन से द्वार में उतर पड़ी और केवल नन्दी को साथ लेकर यज्ञ भूमि में पहुँची ।३। सती को आयी हुई देखकर उसकी माता और बहिनों ने उसका स्वागत किया ।४। परन्तु दक्ष ने उसे देखकर भी आदर नहीं किया तथा शिवमाया में मोहित अन्य व्यक्तियों ने भी आदर नहीं किया ।५। तब सती ने अत्यन्त आश्चर्य से अपने माता-पिता को प्रणाम किया और अत्यन्त दुःखी हुई ।६। सती ने इस यज्ञ में विष्णु आदि सब देवताओं का भाग पृथक्-पृथक् देखा, परन्तु शिव का भाग न देखकर अत्यन्त क्रोधित हुई ।७।

तदा दक्ष दहन्तीव रुषा पूर्णा सती भृशम् ।
क्रूरदृष्ट्या विलोक्यैव सर्वानप्यपमानिता ।।८
अनाहूतस्त्वया कस्माच्छंभः परमशोभनः ।
येन पूतमिदं विश्वं समग्रं सचराचरम् ।।९
यज्ञो यज्ञविदां श्रेष्ठो यज्ञांगो यज्ञदक्षिणाः ।
यज्ञकर्ता च यः शंभुस्तं बिना च कथं मखः ।।१०
यस्य स्मरणमात्रेण सर्वं पूतं भवत्यहो ।
विना तेन कृत सर्वमपवित्रं भविष्यति ।।११
द्रव्यमंत्रानिकं सर्वं हव्य च यन्मयम् ।
शंभुना हि विना तेन कथं यज्ञः प्रवर्तितः ।।१२
कि शिवं सुरसामान्यं मत्वाकार्षीरनादरम् ।
भ्रष्टबुद्धिर्भवानद्य जातोऽसि जनकाधम ।।१३

विष्णु ब्रह्मादयो देवा यं संसेव्य महेश्वर ।
प्राप्तः स्वपदवीं सर्वे तं न जानासि रे हरम् ॥१४

अत्यन्त क्रोध में जैसे दक्ष को भस्म करना चाहती हो अत्यन्त अपमान अनुभव करते हुए उसने कहा ।८। कि जिनकी कृपा से यह सम्पूर्ण चराचर जगत पवित्र हो जाता है, उन शिव को तुमने क्यों नहीं बुलाया ? ।६। यज्ञ स्वरूप, यज्ञ-ज्ञाताओं में श्रेष्ठ, यज्ञ के अङ्ग, यज्ञ के दक्षिणास्वरूप तथा यज्ञ-कर्ता शंकर के बिना यज्ञ का सम्पादन कैसा ? ।१०। जिनके स्मरण मात्र से ही सब कुछ पवित्र हो जाता है, उसके न होने पर सब अपवित्र ही रहेगा ।११। सम्पूर्ण द्रव्य, मन्त्र तथा हव्य—काव्य उनके बिना निरर्थक है तब इस यज्ञ की प्रवृत्ति ही उनके बिना किस प्रकार हुई ? ।१२। क्या तुमने शिवजी को सामान्य देवता समझ कर उनका निरादर किया है ? हे पिता ! तुम अधम और बुद्धिभ्रष्ट हो ।१३। विष्णु, ब्रह्मा आदि भी जिन शंकर की सेवा करके अपनी पदवी को प्राप्त हुए हैं तुम उन महेश्वर को नहीं जानते ? ।१४।

एते कथ समायाता विष्णुब्रह्मादयः सुराः ।
तव यज्ञे बिना शंभुं स्वप्रभुं मुनयस्तथा ॥१५
इत्युक्त्वा परमेशानी विष्ण्वादीन्सकलान् प्रति ।
पृथक्पृथगवोचत्सा भर्त्सयती भवात्मिका ॥१६
हे विष्णो त्व महादेवं किं न जानासि तत्त्वतः ।
सगुणं निर्गुणं चापि श्रुतयो यं वदन्ति ह ॥१७
यद्यपि त्वां करं दत्त्वा बहुवारं महेश्वरः ।
अशिक्षयत्पुरा शाल्वप्रमुखाकृतिभिर्हरे ॥१८
तदपि ज्ञानमायातं न ते चेतसि दुर्मते ।
भागार्थी दक्षयज्ञेऽस्मिन् शिवं स्वस्वामिन विना ॥१९
पुरा पंचमुखो भूत्वा गर्वितोऽसि सदाशिवम् ।
कृतश्चतुर्मुखस्तेन विस्मृतोऽसि तदद्भुतम् ॥२०
इन्द्र त्वं किं न जानासि महादेवस्य विक्रमम् ।
भस्मीकृतः पविस्तेनि हरेण क्रूरकर्मणः ॥२१

यह विष्णु तथा ब्रह्मादि देवता अपने स्वामी शंकर के बिना यहाँ कैसे आ गये ? ।१५। ब्रह्माजी बोले कि सब देवताओं के प्रति इस प्रकार कहती हुई सती ने क्रोधपूर्ण मुद्रा में देखते हुए कहा ।१६। सती ने कहा- हे विष्णु ! क्या आप तत्व से शिवजी को नहीं जानते । श्रुतियां उनको गुण-रहित बताती हैं ।१७। हे विष्णो ! यद्यपि शिवजी ने अनेक बार शाल्व आदि के समय हाथ देकर तुम्हें शिक्षा दी है ।१८। हे मतिहीन ! फिर भी तुमको ज्ञान नहीं हुआ और अपने स्वामी का भाग न देखकर भी अपना भाग स्वीकार कर लिया ।१९। हे ब्रह्मा ! तुम पहिले अहंकार वश शिवजी के प्रति द्रोह किया करते थे । तुम्हारे पाँच मुख थे परन्तु शिवजी ने चार कर डाले । इसे क्या तुम भूल गये ? ।२०। हे इन्द्र ! क्या तुम्हें शिवजी का पराक्रम ज्ञात नहीं है । कठिनकर्मा रुद्र ने तुम्हारे वज्र तक को भस्म कर डाला था ।२१।

हे सुराः किन्न जानीथ महादेवस्य विक्रमम् ।
अत्रे वसिष्ठ मुनयो युष्माभिः किं कृतं त्विह ॥२२
भिक्षाटनं च कृतवान् पुरा दारुबने विभुः ।
शप्तो यद्भिक्षुको रुद्रो भवद्भिर्मुनिभिस्तदा ॥२३
शप्तेनापि च रुद्रेण यत्कृत विस्मृतं कथम् ।
सर्वे वेदाश्व संभूत सांगाः शास्त्राणि वाग्यतः ।
सोऽसौ वेदांतगः शंभु कैश्चिज्ज्ञातुं न पार्यते ॥२५
सर्वं मूढाश्च संजाता विष्णुब्रह्मादयः सुराः ।
मुनयोऽन्ये विना शभुमागता यदिहाध्वरे ॥२६
इत्यनेकविधां वाणीमगदज्जगदम्बिका ।
कोपान्विता सती तत्र हृदयेन विदूयता ॥२७

हे देवगण ! क्या तुम शंकर के कम से अनभिज्ञ हो ? हे अत्रि ! हे वसिष्ठ ! तुमने यह क्या किया ? ।२२। जब वे दारुवन में भीख माँगने गये थे, उस समय तुम ऋषियों ने उन भिखारी के वेश वाले शिवजी को शाप दे दिया था ।२३। उन शापित शिव ने जो किया,

उसे क्या तुम भूल गये ? उस शिव लिंग से चराचर जगत् भस्म होने लगा था।२४। उस समय विष्णु आदि सभी देवता मूढ़ हो गये हैं जो शिवजी के बिना इस यज्ञ में उपस्थित हुए हैं।२५। यहाँ अंगों सहित वेदशास्त्र भी मौन हैं, परन्तु वेदान्त से जानने के योग्य भगवान शिव को जानने में समर्थ कोई भी नहीं है।२६। ब्रह्माजी ने कहा कि सती ने ऐसे वचन क्रोधपूर्वक कहे और वह दुःखी हृदय से क्रोध में खड़ी रही।२७।

विष्ण्वादयोऽखिला देवा मुनयो ये तद्वच ।
मौनी भूतास्तदाकर्ण्य भवव्याकुलमानसाः ।।२८
अथ दक्षः समाकर्ण्य स्वपुत्र्यास्तादृशं वचः ।
विलोक्य क्रूरदृष्ट्या तां सतीं क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ।।२९
तव किं बहुनोक्तेन कार्यं नास्तीह सांप्रतम् ।
गच्छ वा तिष्ठ वा भद्रे कस्मात्त्वं हि समागता ।।३०
अमंगलस्तु ते भर्ता शिवोऽसौ गम्यते वुधैः ।
अकुलीनो वेदबाह्यो भूतप्रेतपिशाचराट् ।।३१
तस्मान्ना ह्वायितो रुद्रो यज्ञार्थं सुकुवेसभृत् ।
देवर्षिसंसदि मया ज्ञात्वा पुत्रि विपश्चिता ।।३२
विधिना प्रेरितं न त्वं दत्ता मंदेन पापिना ।
रुद्रायाविदितार्थाय चोद्धताय दुरात्मने ।।३३
तस्मात्कोपं परित्यज्य स्वस्था भव शुचिस्मिते ।
यद्यागतासि यज्ञेऽस्मिन् बाय गृह्णीष्व चात्मना ।।३४
दक्षेणोक्तेति सा पुत्री सती त्रैलोक्यपूजिता ।
निन्दायुक्तं स्वपितरं दृष्ट्वाऽऽसीद्रुषिता भृशम् ।।३५

सती के क्रोध पूर्ण वाक्यों को सुनकर विष्णु आदि सभी देवता भयभीत मन मौन बैठे रहे।२८। अपनी पुत्री के वैसे वचन सुनकर दक्ष ने उसे क्रूर दृष्टि से देखा और क्रोधपूर्वक कहने लगा।२९। दक्ष ने कहा-हे भद्रे ! तू अधिक यह सब क्या कह रही है। तेरा यहाँ कोई प्रयोजन नहीं है, तू रह चाहे चली जा। तू यहाँ किसलिये आई है !

।३०। सब मेधावीजन जानते है कि तुम्हारे पति शंकर अमंगलमत लक्षण वाले अकुलीन, वेद से बहिर्मुख और भूत-पिशाचों के अधिपति हैं ।३१। इसीलिए उन कुवेश वाले शिव को यहाँ नहीं बुलाया । मैंने बुद्धिपूर्वक समझ लिया कि देवताओं और ऋषियों की सभा में उनका क्या प्रयोजन है ? ।३२। मुझ मन्द बुद्धि वाले ने ब्रह्माजी के कहने से तुझे उनको दे दिया मैं यह नहीं जानता था कि रुद्र क्रोधी तथा दुरात्मा है ।३३। हे पुत्री ! इसलिए तू क्रोध को छोड़कर स्वस्थ हो और इस यज्ञ में आ गई तो अपना भाग ग्रहण कर ।३४। ब्रह्माजी ने कहा — दक्ष के इस प्रकार कहने पर सती अपने पिता को निन्दायुक्त दृष्टि से देखते हुए अत्यन्त रोष करने लगी ।३५।

अचिंतयत्तदा से त कथं यास्यामि शङ्करम् ।
शङ्करं द्रष्टुकामाऽहं पृष्टा वक्ष्ये किमुत्तरम् ।।३६
अथ प्रोवाच पितरं दक्षं तं दुष्टमानसम् ।
निःश्वसंती रुषाविष्ठा सा सती त्रिजगत्प्रसूः ।।३७
यो निंदति महादेव निद्यमानं शृणोति वा ।
तावुभौ नरकं यातौ यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।।३८
तस्मात्त्यक्ष्याम्यहं देह प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ।
किं जीवितेन मे तात शृण्वंत्यामादरं प्रभोः ।।३९
यदि शक्तः स्वयं शंभोर्निन्दकस्य विशेषतः ।
छिंद्यात् प्रसह्य रसनां तदा शुद्धयन्न संशयः ।।४०
यद्यशक्तो जनस्तत्र निरयात्सुपिधाय वै ।
कर्णौ धीमान् ततश्शुचेद्वदंतीदं बुधा वराः ।।४१
इत्यमुक्त्वा धर्मनीति पश्चात्त पमवाप सा ।
अस्मरच्छांकरं वाक्य दूययानेन चेतसा ।।४२

सती विचार करने लगी कि मैं शिवजी के पास किस प्रकार पहुँचूँ ? इस समय मुझे शिवजी के दर्शन की कामना है, परन्तु जब वे मुझसे यहाँ का हाल पूछेगे तो उन्हें क्या उत्तर दूँगी ? ।३६। तीनों लोकों को उत्पन्न करने वाली सती क्रोध से बारम्बार श्वांस खींचती

हुई अपने दुष्ट-हृदय पिता दक्ष से कहने लगी ।३७। सती ने कहा—जो शिवजी की निन्दा करते या उनकी निन्दा सुनते हैं, वह निश्चय ही नरक में पड़ते हैं ।३८। इसलिये मैं अग्नि में प्रविष्ट होकर देह छोड़ती हूँ। क्योंकि अपने स्वामी की निन्दा सुनकर मैं जीवित नहीं रह सकती ।३९। यदि सामर्थ्य हो तो निन्दा करने वाले की जिह्वा को काट डाले, तभी दोष छूटता है, इनमें सन्देह नहीं है ।४०। यदि सामर्थ्य न हो तो अपने कानों पर हाथ रखकर वहाँ से दूर चला जाय, ज्ञानियों का यही कहना है ।४१। ब्रह्माजी ने कहा कि इस प्रकार नीति वचन कहकर सती अत्यन्त दुःखी मन से शिवजी को याद करने लगी ।४२।

ततः सक्रुद्धय सा दक्ष निःशकं प्राह तानपि ।
सर्वान्विष्णवादिकान्देवान्मुनीनपि सती ध्रुवम् ॥४३
तात त्व निन्दकः शभोः पश्चात्तापं गमिष्यसि ।
इह भुक्त्वा महादुःखमते यास्यसि यातनाम् ॥४४
यस्य लोकेऽप्रियो नास्ति प्रियश्चैव परात्मनः ।
तस्मिन्नवैरे शर्वेऽस्मिन् त्वां दिनाः कः प्रतीपकः ॥४५
महाद्विनिंदा नाश्चर्यं सर्वदाऽसत्सु सेर्ष्यकम् ।
महदध्रिरजोध्वस्ततसः सु सैव शोभना ॥४६
शिवेति द्व्यक्षरं यस्य नृणां नाम गिरेरितम् ।
सकृत्प्रसंगात्सकलमघमाशु निहंति तत ॥४७
पवित्रं कीर्तितमलं भवान् द्वेष्टि शिवेतरः ।
अलंघ्यशासनं शंभुमहो सश्ववेंश्वरं खलः ॥४८
यत्पादपद्म महतां मनोऽलिमुनिषेवितम् ।
सर्वार्थदं ब्रह्म रसैः सर्वार्थिभिरथादरात् ॥४९

फिर निःशंक भाव से विष्णु आदि देवताओं और मुनियों से क्रोधपूर्वक कहने लगी ।४३। सती ने कहा—तुम सब शिवनिन्दक अत्यन्त पश्चाताप को प्राप्त होगे । यहाँ महा दुःख प्राप्त करते हुए अन्त में यमलोक के कष्ट सहोगे ।४४। जिसका विश्व में कोई अप्रिय नहीं,

सब ही उनके प्रिय हैं, उन निवर शिवजी से तुम्हारे सिवाय अन्य कौन वैर करेगा ? ।४५। इसमें विस्मय भी क्या है ? असत् व्यक्ति महान् पुरुषों की निन्दा करते हैं परन्तु महापुरुषों की चरण-रज से अज्ञान नष्ट कर लेने में ही शोभा है ।४६। जिसने अपनी वाणी से 'शिव' इन दो अक्षरों का उच्चारण किया, उसके पाप एक बार के उच्चारण से ही नष्ट हो गये ।४७। भगवान् शिव का शासन लङ्घन के योग्य नहीं है, परन्तु तुम अमंगल स्वरूप इन पवित्र प्रभु से द्वेष करते हो ।४८। जिनके पद-पद्मों में बड़े-बड़े सन्त पुरुषों का मन रमा रहता है, जो ब्रह्मरस के द्वारा सभी कामना करने वालों को उनके अनुसार फल देते हैं ।४९।

यद्वर्षत्यर्थिनः शीघ्रं लोकस्य शिव आदरात् ।
भवान् द्रुह्यति मूर्खत्वात्तस्मै चाशेषबंधवे ॥५०
किं वा शिवाख्यमशिवं त्वदन्ये न विदुर्बुधाः ।
ब्रह्मादस्तं मुनयः सनकाद्यास्तथा परे ॥५१
अवकीर्य जटा भूतैः श्मशाने स कपालधृक् ।
तन्माल्सभस्म त्रा ज्ञात्वा प्रीत्यावसदुदारधीः ॥५२
ये मूर्द्धाभिर्दधति तच्चरणोत्सृष्टमादरात् ।
निर्माल्यं मुनयो देवाः स शिवः परमेश्वर ॥५३
प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म चोदितम् ।
वेदे विविच्य वृत्तं च तद्विचार्य मनीषिभः ॥५४
विरोधियौगपद्यैककर्तृके च तथा द्वयम् ।
परब्रह्मणि शम्भौ तु कर्मच्छंन्ति न किंचन ॥५५
मा वः पदव्यः स्म पितः या अस्मदाथिताः सदा ।
यज्ञशालासु वो धूम्रवर्त्मभुक्तोज्झिता परम् ॥५६

जो शिवजी अभ्यर्थियों पर शीघ्र ही कामना की वृष्टि करते हैं, उन लोकबन्धु शिवजी से तुम शत्रुता करते हो ।५०। उन शिव को तुम्हारे सिवा कोई अन्य 'अशिव' नहीं जानता, ब्रह्मादि, सनकादि तथा अन्य मुनि क्या उन्हें नहीं जानते ? ।५१। वे भूतगणों के साथ श्मशान

में जटा खोलकर कपाल धारण करते हैं। वे उदार बुद्धि वाले प्रेम से मृतक की अस्थियों की माला और भस्म को धारण करते हैं।५२। उनकी चरणरज को आदर सहित शिर पर धारण करने वाले मनुष्य पाप रहित हो जाते हैं। जिनके निर्माल्य की कामना मुनि और देवता करते हैं, वह परमेश्वर शिव ही हैं।५३। वेद के अनुसार प्रवृत्ति और निवृत्ति के भेद से दो प्रकार के कर्म हैं, बुद्धिमानों को उन पर विचार करना चाहिए।५४। एकही कर्त्ता में वे दोनों विरोधी हो जाते हैं परन्तु शिवजी के लिए किसी कर्मादा की इच्छा नहीं है।५५। हे पिता ! तुम्हारी यज्ञशाला का धूम्र अपने मार्ग को छोड़ दे और तुम्हारे पद का व्यय न हो।५६।

नो व्यक्तलिंगः सततमवधूतसुसेवितः।
अभिमानमतो न त्वं कुरु तात कुबुद्धिधृक् ।।५७
किं बहूक्तेन वचसा दुष्टस्वत्वं सर्वथा कुधीः।
त्वदुद्भवेम देहेन न मे किंचित्प्रयोजनम् ।।५८
तज्जन्म धिग्यो महतां सर्वथावद्यकृत्खलः।
परित्याज्यो विशेषेथ तत्सम्बन्धो विपश्चिता ।।५९
गोत्रं त्वदीयं भगवान् यदाह वृषभध्वजः।
दाक्षायणीति सहसाऽहं भवामि सुदुर्मनाः ।।६०
तस्मात्त्वदंगज देहं कुणपं गर्हिप सदा।
व्युसृज्य नूनमधुनाभविष्यामि सुखावहा ।।६१
हे सुरा मुनय सर्वे यूयं शृणुत मद्वचः।
सर्वथाऽनुचितं कर्म युष्माक दुष्टचेतसाम् ।।६२
सर्वे यूयं विमूढा हि शिवनिंदाः कलिप्रियाः।
प्राप्स्यन्ति दण्डं नियतमखिलं च हराद्ध्रुवम् ।।६३
दक्षमुक्त्वाऽध्वरे तांश्च व्यरमत्सा सती तदा।
अनुद्य चेतसां भभुमस्मरत् प्राणवल्लभम् ।।६४

वह अव्यक्त लिंग अवधूतों के द्वारा सदा सेवित हैं, तुम कुबुद्धि से उनके प्रति अभिमान न करो।५७। कुबुद्धिवश तुम महादुष्ट हो गये

हो। तुम्हारे द्वारा उत्पन्न इस देह को रखना ठीक नहीं हैं।५८। जिस जन्म में महान पुरुषों की निन्दा हो उस जन्म को धिक्कार है। बुद्धिमान व्यक्ति को तुमसे सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये।५९। तुम्हारे द्वारा उत्पन्न होने के कारण शिवजी मुझे दाक्षायणी कहते हैं, मुझे इस उच्चारण से अब दुःख होगा।६०। इसलिए तुम्हारे देह से उत्पन्न हुए गर्हित शरीर को अभी छोड़कर सुखी होऊँगी।६१। हे देवगण! हे मुनिगण! तुम सब मेरे वचनों को सुनो। तुम सब दुष्ट चित्त वाले हो और तुम्हारा यह कर्म सर्वथा निन्दा के योग्य है।६२। तुम सभी मूर्ख हो गये जो तुमने शिव की निन्दा की हैं, इसलिए भगवान् शंकर द्वारा तुम्हें इसका दण्ड शीघ्र ही प्राप्त होगा।६३। यह कहकर सती दुख से व्याकुल हुई अपने प्राणवल्लभ शिवजी का चिन्तन करने लगी।६४।

॥ यज्ञ स्थल में सती का देह त्याग ॥

मौनीभूता यदा साऽऽसीत्सती शंकरवल्लभा।
चरित्रं किमभूत्तत्र विधे तद्वद चादरात् ॥१
मौनीभूता सती देवी स्मृत्वा स्वपतिमादरात्।
क्षितावुदीच्यां सहता निषसाद प्रशांतधीः॥२
जलमाचम्य विधिवत संवृता वाससा शुचि।
दृङ् निमील्य पति स्मृत्वा योगमार्ग ॥३
कृत्वा समानावनिलौ प्राणापानौ सितानन।
उत्थाप्योदानमथ च यत्नात्सा नाभिचक्रतः ॥४
हृदि स्थाप्योरसि धिया स्थितं कंठाद्भ्रुवोः सती।
अनिंदिताऽनयन्मध्य शंकरप्राणवल्लभा ॥५
एव स्वदेहं सहसा दक्षकोपाज्जिहासती।
दाधे गात्रे वायुशुचिधारणं योगमार्गतः ॥६
तत स्व भतुश्चरणं चिंतयंती न चापरम्।
अपश्यत्सा सती तत्र योग मार्गनिविष्टधीः ॥७

नारदजी ने कहा—हे ब्रह्माजी! जब सती चुप हो गई, तब क्या

हुआ वह आप सादर मेरे प्रति कहें।१। ब्रह्माजी ने कहा—अपने पति का स्मरण करती हुई सती मौन एवं शांत होकर भूमि में उत्तर की ओर बैठ गई।६। उसने विधिपूर्वक आचमन किया और नियम में तत्पर होकर शुद्ध वस्त्र पहिन कर नेत्र मूंद लिये तथा शिवजी के स्मरण पूर्व योच-मार्ग में लीन हो गई।३। उसने प्राण-अपान वायु को समान कर और यत्नपूर्वक उदान को नाभिचक्र से उठाकर।४। उन्हें हृदय को स्थापित किया और फिर कंठ में लाकर भौंके बीच में प्राण वायु को स्थापित किया।५। दक्ष के कारण क्रोधपूर्वक सहसा अपने शरीर को छोड़ने की इच्छा से सती ने इस प्रकार योग धारण किया और वायु से ही शरीर को भस्म करना प्रारम्भ किया।६। उस समय उसने केवल अपने पति के चरण कमलों का स्मरण किया वह शिवजी का ध्यान करते हुए योग-मार्ग में प्रवृत्ति हुई।७।

हतकल्मषतद्देहः प्रापतच्च तदग्निना।
भस्मसादभवत्सद्यो मुनिश्रेष्ठ तदिच्छया ॥८
तत्पश्यतां च खे भूमौ वादोऽभूत्सुमहांस्तदा।
हाहेति सोऽद्भुतश्चित्रः सुरादीनां भयावहः ॥९
हंत प्रिया परा शंभोर्देवी दैवतमस्य हि।
अहदसून् सती केन सुदुष्टेन प्रकोपिता ॥१०
अहो त्वनात्म्यं सुमहदस्य दक्षस्य पश्यत।
चराचरं प्रजा यस्य यत्पुत्रस्य प्रजापतेः ॥११
अहोऽद्य विमनाऽभूत्सा सती देवी मनस्विनी।
वृषध्वजप्रियाऽभीक्ष्णं मानयोग्या सतां सदा ॥१२
सोयं दुर्मर्षहृदयो ब्रह्मध्रुक्स प्रजापतिः।
महतीमपकीर्तिं हि प्राप्स्यति त्वखिले भवे ॥१३
यत्स्वांगजां सुतां शंभुद्विट्न्यषेधत्समुद्यताम्।
महानरक भोगी स मृतये नोऽपराधतः ॥१४

उसका शरीर विकार रहित हो गया और सब ओर से उसमें अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी और उसकी इच्छा से तत्काल ही सम्पूर्ण शरीर

भस्म हो गया ।८। यह होते ही पृथिवी और आकाश में बड़ा कोलाहल मचा, देवताओं के हाहाकार गूँज उठे, सभी उस अद्भुत दृश्य से विस्मित थे ।९। खेद हैं कि परम देव शिवजी की प्रिया सती ने अपने प्राण त्याग दिये, इसे किस दुष्ट ने रुष्ट किया था ? ।१०। इस दक्ष की घोर मूर्खता देखो, चराचर प्रजा, जिस प्रजापति की पुत्र रूप है, उसके अज्ञान को तो देखो ।११। देखो, आज सती का यह क्या हुआ ? निश्चय ही वह शिव-पिया अपमान के योग्य नहीं थी ।१२। परन्तु, यह प्रजापति घोर अहंकारी और ब्रह्म द्रोही होगया, इसने संसार में इस कर्म से घोर अपयश को प्राप्त किया है ।१३। जिसने अपने देह से उत्पन्न हुई पुत्री का शिवद्रोह के वश तिरस्कार किया, यह इसका घोर अपराध हुआ है, इसे अन्त में महानरक भोगना पड़ेगा ।१४।

वदत्येवं जने सत्या दृष्ट्वाऽसुत्यागमद्भुतम् ।
द्रुत तत्पार्षदाः क्रोधादुदतिष्ठन्नुदायुधाः ॥१५
द्वारि स्थिता गणाः सव रसायुतमिता रुषा ।
शंकरस्य प्रभोरते वाऽक्रुध्यन्नतिमहाबलाः ॥१६
हाहाकारमकुर्वस्ते धिग्धिग न नेति वादिनः ।
उच्चै स्सर्वेऽसक्रुवीराः शंकरस्य गणाधिपाः ॥१७
हाहाकारेण महता व्याप्तमासीद्दिगन्तरम् ।
सर्वे प्रापन् भयं देवा मुनयोऽन्येऽपि ते स्थिताः ॥१८
गणा समंत्र्य ते सर्वेऽभूवन् क्रुद्धा उदायुधाः ।
कुर्वन्तः प्रलयं वाद्यशस्त्रै र्व्याप्तं दिगंतरम् ॥१९
शस्त्रै रघ्नन्निजांगानि केचित्तत्र शुचाकुलाः ।
शिरोमुखानि देवर्षे सुतीक्ष्णैः प्राणनाशिभिः ॥२०
इत्थं ते विलयं प्राप्ता दाक्षायण्या समं तदा ।
गणायुते द्वे च तदा तदद्भुतमिवाभवत् ॥२१

सती के देह त्याग के पश्चात् सभी इस प्रकार कह रहे थे। इस काण्ड को देखकर शिवगण भी हाथों में आयुध ग्रहण कर उठ खड़े हुए

।१५। यज्ञद्वार में साठ हजार शिवगण उपस्थित थे, वे महाबली थे, उन्हें बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ ।१६। वे सब हाहाकार करते हुए अपने को धिक्कारने लगे तथा क्रोधपूवक वे उच्च स्वर से चिल्लाये ।१७। उनके हाहाकार से पृथिवी और आकाश भर उठे । वहाँ उपस्थित सभी देवता और मुनि अत्यन्त भयभीत हुए ।१८। गणों ने परस्पर सलाह कर अस्त्र ग्रहण किये उनके वाद्य तथा अस्त्रों के भीषण शब्द से प्रलय का-सा दृश्य उपस्थित हो गया ।१९। किसी-किसी ने तो अपने अंग काट डाले और किसी-किसी ने उन तीक्ष्ण शास्त्रों से अपने शिर और मुख नष्ट कर लिये ।२०। इस प्रकार वे सती के साथ स्वयं भी नष्ट हो गए । इस प्रकार बीस हजार गण स्वय नष्ट हो गए, यह अत्यन्त अद्भुत बात हुई ।२१।

गणा नाशवशिष्टा ये शकरस्य महात्मनः ।
दक्षं त क्रोधित हन्तुमुदातिष्ठन्नुदायुधाः ।।२२
तेषामापततां वेगं निशस्य भगवान् भृगुः ।
यज्ञघ्नघ्नेन यजुषा दक्षिणाग्नौ जुहोन्मुन ।।२३
हूयमाने च भृगुणा समुत्पेतुर्महासुराः ।
ऋभवो नाम प्रबला वोरास्तत्र सहस्रशः ।।२४
तैरलातायुधैस्तत्र प्रमथानां मुनीश्वर ।
अभूद्यद्धं सुविकटं शृण्वतां रामहषणम् ।।२५
ऋभुभिन्तैर्महावीरैर्हन्यमानाः समन्ततः ।
अयत्नयानाः प्रथमा उशद्शिब्रह्मतेजसा ।।२६
एवं शिवगणस्ते वै हता विद्राविता द्रुतम् ।
शिवेच्छया महाशक्त्या तदद्भुतमिवाभवत् ।।२७
तद्दृष्टा ऋषयो देवा शक्राद्याः समरुद्गणाः ।
विश्वेऽश्विनौ लोपालास्तूष्णींभूतास्तदाऽभवन् ।।२८

जो शिवगण शेष रहे उन्होंने दक्ष का वध करने के लिए क्रोधपूर्वक आयुध ग्रहण किये ।२२। महर्षि भृगु ने उनका यह विचार देखकर यज्ञ के विघ्न को दूर करने वाले यजुर्मन्त्रों से दक्षिणाग्नि में आहुति देना

प्रारम्भ किया ।२३। भृगु की आहुतियों से ऋभवनामक सहस्रों महावीर उस कुण्ड से उत्पन्न हुए ।२३। हे मुनीश्वर ! उनके चक्रायुधों से शंकर के हजारों वीर युद्ध करने लगे और वहां अत्यन्त भयंकर युद्ध होने लगा ।२५। ऋभु और महावीरगण परस्पर भिड़ गये और ब्रह्म तेज के कारण प्रयत्न के बिना ही शिवगण मृत्यु को प्राप्त होने लगे ।२६। शिव की इच्छा रूप महाशक्ति से वह शिवगण मरने लगे, यह बात विचित्र-सी हुई ।२७। इसे देखकर इन्द्रादि देवता, मरुद्गण विश्वेदेवा, अश्विनी-कुमार तथा सब लोकपाल मौन बैठे रहे ।२८।

केचिद्विष्णुं प्रभुं तत्र प्रार्थयन्यः समन्ततः ।
उद्विग्ना मन्त्रयन्तश्च विघ्नाभावं मुहुर्मुहुः ॥२९
सुविचार्योदर्कफलं महोद्विग्ना. सुबुद्धयः ।
सुरविष्णवादयोऽभूवस्तन्नाशाद्रावणान्मुहुः ॥३०
एवंभूतस्तदा यज्ञो विघ्नो जातो दुरात्मनः ।
ब्रह्मबन्धोश्च दक्षस्य शकरद्रोहिणो मुने ॥३१

किसी ने उस समय भगवान् विष्णु से प्रार्थना की, किसी ने उद्विग्न होकर विघ्नों के नष्ट होने की प्रार्थना की ।२९। आगामी परिणाम को विचारते हुए विष्णु आदि चिन्ता करने लगे और विघ्न को नष्ट न कर सकने के कारण उनमें अत्यन्त उद्विग्नता हुई ।३०। इस प्रकार शिवद्रोही दुरात्मा दक्ष के यज्ञ में विघ्न उपस्थित हुआ ।३१।

दैव-वाणी द्वारा दक्ष की भर्त्सना और भविष्य-कथन

एतस्मिन्नन्तरे तत्र नभोवाणी मुनीश्वर ।
अवोचच्छृण्वतां दक्षसुरादीनां यथार्थतः ॥१
रे रे दक्ष दुराचार दम्भाचारपरायण ।
किं कृतं ते महामूढ कर्म चानर्थकारकम् ॥२
न कृतं शैवराजस्य दधीचेर्वचनस्य हि ।
प्रमाणं तत्कृते मूढ सर्वानन्दकरं शुभम् ॥३
निर्गतस्ते मखाद्विप्रः शापं दत्वा सुदुःसहम् ।

ततोऽपि बुद्धं किंचिन्नो त्वया मूढेन चेतसि ॥४

ततः कृतः कथं चैव स्वपुत्र्यास्त्वादरः परः ।
समागतायाः सत्याश्च मंगलाया ग्रहं स्वतः ॥५

सतीभवौ नार्चितौ हि किमिदं ज्ञानदुर्बल ।
ब्रह्मपुत्र इति वृथा गर्वितोऽसि विमोहितः ॥६

सा सत्येव सदाराध्या सर्वपापफलप्रदा ।
त्रिलोकमाता कल्याणी शङ्कराद्धांगभागिनी ॥७

ब्रह्माजी ने कहा—हे मुनीश्वर ! दक्ष और देवता आदि सभी के सम्मुख उसी समय वहां आकाशवाणी हुई—।१। हे दुराचारी दक्ष ! तूने दम्भ में भर कर यह कैसा अनर्थ-कर्म कर डाला है ? ।२। अरे मूर्ख ! तूने शैव्यराज दधीचि के सर्वानन्ददायक वचनों पर भी ध्यान नहीं दिया ।३। वह ब्राह्मण तुझे घोर शाप देकर तेरे यज्ञ से उठकर चला गया, तो भी तू अपने चित्त में कुछ भी न समझ सका ।४। फिर तूने अपनी कन्या का भी तिरस्कार किया. वह मङ्गलमयी सती स्वयं तेरे घर पर उपस्थित हुई थी ।५। हे मूर्ख ! तूने शिवा और शिव का अनादर किया. तुझे ब्रह्मा का पुत्र होने का घोर अहङ्कार है ।६। तुझे सर्वपुण्यदात्री सती की आराधना करनी चाहिए थी, वह त्रैलोक्य माता शिवजी के अर्द्धांग में सदा निवास करती थी ।७।

सा सत्येवार्चिता नित्यं सर्वसौभाग्यदायिनी ।
माहेश्वरी स्वभक्तानां सर्वमङ्गलदायिनी ॥८

सा सत्येवार्चिता नित्य संसारभयनाशिनीं ।
मनोऽभीष्टप्रदा देवी सर्वोपद्रवहारिणी ॥९

सा सत्येवार्चिता नित्यं कीर्तिसम्पत्प्रदायिनी ।
परमा परमेशानी भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥१०

सा सत्येव जगद्धात्रा जगद्रक्षणकारिणी ।
अतादिशक्तिः कल्पान्ते जगत्संहारकारिणी ॥११

सा सत्येव जगन्माया विष्णुमाता विलासिनी ।
ब्रह्मेन्द्रवह्न्यर्कदेवादिजननी स्मृता ॥१२

सा सत्येव तपोधर्मदानादिफलदायिनी।
शम्भुशक्तिर्महादेवी दुष्टहत्री परात्परा ॥१३
ईदृग्विधा सती देवी यस्य सदा प्रिया।
तस्मै भागो न दत्तस्ते मूढेन कुविचारिणी ॥१४

वह माहेश्वरी अपने भक्तों की सदा मङ्गलदायिनी है, तुझे उस सौभाग्यदात्री सती की सेवा करनी चाहिए थी ।८। वह नित्य पूजन करने से जगत के भय को दूर करने वाली, कामना की देने वाली और सभी उपद्रवों को नष्ट करने वाली थी ।६। नित्य पूजन से वह कीर्त्ति और वैभव के देने वाली तथा भुक्ति-मुक्ति प्रद.यिनी परमेशानि थी ।१०। वह विश्वमाता सती संसार की रक्षा करने वाली तथा कल्प के अन्त में सहार करने वाली अनादि शक्ति है ।११। सती ही संसार की माता, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि चन्द्रमा तथा सूर्यादि सभी की जननी है ।१२। वही तप दान, का धर्म का फल देने वाली, शिवजी की शक्ति, महादेवी, दुष्टों का संसार करने वाली तथा परे से भी परे है ।१ । इस प्रकार वह सती जिसकी प्राणवल्लभा थी उसे तूने यज्ञ भाग भी नहीं दिया ।१४।

शम्भुर्हि परमेशानः सर्वस्वामी परात्परः।
विष्णुब्रह्मादिससेव्यः सर्वकल्याणकारकः ॥१५
तप्यते हि तपः सिद्धै रैतद्दर्शनकांक्षिभिः।
पूज्यते योगिभिर्योगैरेतद्दनकांक्षिभिः ॥१६
अनन्त धनधान्यानां यागानीनां तथैव च।
दर्शन शङ्करस्यैव महत्फलमुदाहृतम् ॥१७
शिव एव जगद्धाता सर्वविद्यापतिः प्रभु।
आदिविद्याधरः स्वामी सर्वमङ्गलमङ्गला ॥१८
तच्छक्तेनकृतो यस्मात्सत्कारोऽद्य त्वया खल।
अत एवाध्वरास्यास्य विनाशो हि भविष्यति ॥१९
अमङ्गलं भवत्येव पूजार्हाणासपूजया।
पूज्यमाना च नासौहि यतः पूज्यतमा शिवा ॥२०

सहस्रेणापि शिरसां शेषो यत्पादजं रजः ।
वहत्यहरहः प्रीत्या शक्तिः शिवा सतीं ॥२१

भगवान् शङ्कर ही सबके अधीश्वर एवं ब्रह्मा विष्णु आदि से सेवित हैं, वही सब का कल्याण करने वाले हैं ।१५। इनके दर्शनों की कामना से ही सिद्धजन तपस्या करते हैं और योगीजन योगाभ्मास में लीन रहते हैं ।१६। अनन्त धन, धान्य तथा यज्ञादि का जो फल होता है, वह फल भगवान् शंकर के दर्शन मात्र से प्राप्त हो जाता है ।१७। वही विश्व के धाता तथा सभी विद्याओं के अधीश्वर हैं, वही आदि विद्या के अधिपति तथा मङ्गलों के भी मङ्गलकर्त्ता है ।१८। तूने मूर्खतावश उनकी शक्ति का सत्कार न कर निरादर किया इस कारण तेरा यज्ञ नष्ट हो जायगा ।१९। जहाँ पूजन के योग्य पुरुषों का पूजन नहीं होता, वहाँ अमङ्गल होना स्वाभाविक है ।२०। जिसकी चरण-रज को शेषजी अपने हजार शिर से प्रीति सहित धारण करते हैं, यह वही शिवा है ।२१।

यत्पादपद्ममनिश ध्यात्वा सम्पूच्य सादरम् ।
विष्णुर्विष्णुत्वमापन्नस्तस्य शम्भो प्रिया सती ॥२२
यत्पादद्ममनिशं ध्यात्वा सम्पूज्य सादरम् ।
ब्रह्माब्रह्मत्वमापन्नस्तस्य शम्भोः प्रिया सती ॥२३
यत्पादपद्मसनिशं ध्यात्वा सम्पूज्य सादरम् ।
इन्द्रादयो लोकपालाः प्रापुः स्वं स्वं परं पदम् ॥२४
जगत्पिता शिवः शक्तिर्जगन्माता च सा सती ।
सत्कृतौ न त्वया मूढ़ कथ श्रेयो भविष्यति ॥२५
दौर्भाग्य त्वयि संक्रांतं संक्रांतास्त्वयि चापदः ।
यौ चानाराधितौ भक्त्या भवानीशङ्करौ च तौ ॥२६
अनभ्यर्च्य शिवं शम्भु कल्याण प्राप्नुयामिति ।
किमस्ति गर्वो दुर्वारः स गर्वोऽद्य विनश्यति ॥२७
सर्वेशविमुखो भूत्वा देवेष्वेतेषु कस्तव ।
करिष्यति सहायं तं न ते पश्यामि सर्वथा ॥२८

जिसके चरणों का निरन्तर ध्यान करने से विष्णु को विष्णुत्व की प्राप्ति हुई है, यह वही शिवा है ।२२। जिसके चरणों का ध्यान और पूजन करने से ब्रह्मा को ब्रह्मत्व की प्राप्ति हुई है, यह वही शिवा है ।२३। जिनके चरणों के ध्यान और पूजन से इन्द्र आदि लोकपालों को उनके पद की प्राप्ति हुई है, यह वही शिवा है ।२४। यह शिवा ही जगत् की माता और शिव ही जगत्पिता हैं, अरे मूर्ख तूने उनका निरादर किया है तो तेरा कल्याण किस प्रकार सम्भव है ? ।२५। तेरा दुर्भाग्य उपस्थित हो गया जो तूने भक्तिपूर्वक उस भवानी की और शिव की आराधना नहीं की ।२६। शिव के पूजन बिना ही मैं अपना मङ्गल कर लूँगा' तेरा यह मिथ्या गर्व आज खण्डित हो जायगा ।२७। सर्वेश्वर शिव से विरोध लेकर कौन-सा देवता तेरी सहायता करेगा ? मैं तो ऐसा कोई भी नहीं देखता ।२८।

यदि देवा करिष्यन्ति साहाय्यमधुना तव ।
तदा नाशं समाप्स्यन्ति शलभा इव वह्निना ।।२९
ज्वलत्वद्य मुखं ते वै यज्ञध्वंसो भवत्विति ।
सहायास्तव यावन्तस्ते ज्वलंत्वद्य सत्वरम् ।।३०
अमराणां च सर्वेषां शपथोऽमङ्गलाय ते ।
करिष्यन्त्यद्य साहाय्यं यदेतस्य दुरात्मनः ।।३१
निर्गच्छत्वमराः स्वोकमेतदध्वरमंडपात् ।
अन्यथा भवतो नाशो भविष्यत्यद्य सर्वथा ।।३२
निर्गच्छंत्वपरे सर्वे मुनिनागादयो मखात् ।
अन्यथा भवतां नाशो भविष्यत्यद्य सर्वथा ।।३३
निर्गच्छ त्वं हरे शीघ्रमेतदध्वरमंडपात् ।
अन्यथा भवतो नाशो भविष्यत्यद्य सर्वथा ।।३४
निर्गच्छ त्वं विधे शीघ्रे शीघ्रमेतदध्वरमंडपात् ।
अन्यथा भवतो नाशो भविष्यत्यद्य सर्वथा ।।३५
इत्युक्त्वाध्वरशालायामखिलायां सुसंस्थितान् ।
व्यरमत्सा नभोवाणी सर्वकल्याणकारिणी ।।३६

तच्छ्रुत्वा व्योमवचनं सर्वे हर्यादयः सुराः ।
अकार्षुर्विस्मयं तात मनुष्यश्च तथाऽपरे ॥३७

इस समय जो देवता तेरी सहायता करेंगे वे भी इस प्रकार नष्ट हो जायेंगे, जैसे अग्नि में शलभ भस्म हो जाता है ।२६। तेरा मुख भस्म हो जाय, तेरे सभी सहायक भस्म हो जाँय और तेरा यज्ञ भी विध्वंस हो जाय ।३०। सभी देवताओं को अमङ्गलार्थ शपथ है यदि कोई इस दुरात्मा की सहायता करे ।३१। सब देवता इस यज्ञ मंडल से शीघ्र ही बाहर हो जाँय, अन्यथा उनका सर्वथा नाश, हो जायगा ।३२। मुनिगण और नाग आदि भी शीघ्र ही यहाँ से चले जाँय, अन्यथा वे नष्ट हो जाँयगे ।३३। हे विष्णो ! तुम भी इस मण्डप से शीघ्र चले जाओ, अन्यथा तुम्हारा भी नाश हो जायगा ।३४। हे ब्रह्मा ! तुम भी इस स्थान से शीघ्र ही बाहर चले जाओ, अन्यथा तुम भी नष्ट हो जाओगे ।३५। ब्रह्माजी ने कहा इस प्रकार यज्ञशाला में सबकी उपस्थित में वह आकाशवाणी सबके कल्याणार्थ उपदेश कर मौन हो गई ।३६। विष्णु आदि सभी देवता और मुनिगण आकाशवाणी को सुनकर अत्यन्त आश्चर्य मानने लगे ।३७।

सती-मरण सुनकर शिवजी का वीरभद्र को प्रकट करना

श्रुत्वाव्योमगिरं दक्षः किमकार्षीत्तदाऽबुधः ।
अन्ये च कृतवन्तः किं ततश्च किमभूद्वद ॥१
पराजिताः शिवगणा भृगुमन्त्रबलेन वै ।
किमकार्षुः कुत्र गतास्तत्वं वद महामते ॥२
श्रुत्वा व्योमगिरं सर्वे विस्मिताश्च सुरादयः ।
नवोचकिञ्चिदपि ते तिष्ठन्तुस्तु विमोहिताः ॥३
हलायमाना ये वीरा भृगुमन्त्रबलेन ते ।
अवशिष्टाः शिवगणाः शिव शरणमाययुः ॥४
सर्वं दिवेदयामासू रुद्रायासिततेजरे ।
चरित्रं च तथाभूतसुप्रणम्यादराच्व ते ॥५

देवदेव महादेव पाहि नः शरणागतान् ।
संश्रृण्वादरतो नाथ सतीवार्त्ता च विस्तरात् ॥६
गर्वितेन महेशानि दक्षेण सुदुरात्मना ।
अपमान. कृतः सत्याऽनादरो निजरैस्तथा ॥७

नारदजी ने पूछा—आकाशवाणी को सुनकर उस अदूरदर्शी दक्ष ने तथा वहाँ उपस्थित अन्य व्यक्तियों ने क्या किया, यह मेरे प्रति कहिये ।१। जब शिवगण भृगु के मन्त्र बल से परास्त हो गए तब उन्होंने क्या किया और वे कहाँ गये ? इस सब वृत्तान्त को मुझ से कहिये ।२। ब्रह्मा जी ने कहा—आकाशवाणी सुनकर सभी देवता आश्चर्य चकित होकर मौन का अवलम्बन कर बैठे रहे ।३। उधर भृगु के मन्त्र से परास्त होकर भागे हुए शिवगण शिवजी की शरण में पहुँचे ।४। और उनके समक्ष उपस्थित होकर प्रणाम किया तथा आदर सहित सम्पूर्ण वृत्तान्त उन्हें सुनाया ।५। गणों ने कहा—हे देव देव ! हम शरणागतों की रक्षा करिए । हे प्रभो ! आप विस्तारपूर्वक सती की बात सुनें ।६। हे प्रभो ! उस दुरात्मा दक्ष ने अत्यन्त अहङ्कार पूर्वक देवताओं सहित सती का तिरस्कार किया ।७।

तुभ्यं भागसदान्नः स देवेभ्यश्च प्रदत्तवान् ।
दुर्वचांस्यवदत्प्रोच्चैर्दुष्टो दक्षः सुगर्वितः ॥८
ततो दृष्ट्वा न ते भाग यज्ञेऽकुप्यत्सती प्रभो ।
विनिंद्य बहुशस्तातमधाक्षीत्स्वतनुं तदा ॥९
गणास्त्वयुतसख्या का मृतास्तत्र मिलज्जया ।
स्वांगान्याच्छिद्य शस्त्रैश्चक्रुध्यामह्यपरेवयम् ॥१०
तद्यज्ञं ध्वसितुं वेगात्सन्नद्धास्तु भयावहाः ।
तिरस्कृता हि भृगुणा स्वप्रभावाद्विरोधिना ॥११
ते वयं शरणं प्राप्तास्तव विश्वम्भर प्रभो ।
निर्दयान् कुरु नस्तस्माद्दयमान भवद्भयात् ॥१२
अपमानं विशेषेण तस्मिन् यज्ञे महाप्रभो ।
दक्षाद्यास्तेऽखिला दुष्टा शकुर्वन् गर्विता अति ॥१३

इत्युक्तं निखिलं वृत्तं स्वेषां सत्याश्चनारद ।
तेषां च मूढ़ बुद्धीनां यथेच्छसि तथा कुरु ॥१४

आपको यज्ञ भाग न देकर अन्य सभी देवताओं को दिया और अहङ्कार पूर्वक बहुत-से दुर्वचन दक्ष ने कहे हैं ।८। हे नाथ ! आपका भाग यज्ञ में न देखकर सती को अत्यन्त क्रोध हुआ और उन्होंने अपने पिता की अनेक प्रकार से भर्त्सना करके अपने देह का त्याग कर दिया ।९। लज्जा के कारण हजारों शिवगणों ने वहाँ अपने अङ्गों को काटकर प्राण त्याग दिये, परन्तु जब हम उसे मारने और यज्ञ विध्वंस करने लगे, तब आपके विरोधी भृगु ने मन्त्र बल से हमको रोक दिया ।१०-११। हे प्रभो ! हम भयभीत होकर आपके शरण में आये हैं, हमारा निर्दयता पूर्वक पराभव हुआ है, हमको भय रहित कीजिए, हे नाथ ! हम पर दया करिये ।१२। हे शंकर ! हमारा उस यज्ञ में घोर अपमान हुआ है, उन दुष्ट दक्ष आदि ने हमारा पूर्ण तिरस्कार किया है ।१३। हमने सती की और अपनी सम्पूर्ण वार्ता आपसे निवेदन कर दी, अब आप जैसा उचित समझें, वैसा ही करें ।१४।

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य स्वगणानां वचः प्रभुः ।
सस्मार नारदं ज्ञातुं तच्चरितं लघु ॥१५
आगतस्त्वं द्रुतं तत्र देवर्षे दिव्यदर्शनः ।
प्रणम्य शङ्करं भक्त्या सांजलिस्तत्र तस्थिवान् ॥१६
त्वां प्रशस्याथ स स्वामी सत्या वार्ता च पृष्टवान् ।
दक्षयज्ञगताया वै परं च चरितं तथा ॥१७
पृष्टेव शंभुना ताता त्वयाऽऽश्वेव शिवात्मना ।
तत्सर्वं कथितं वृत्तं जातं दक्षाध्वरे हि यत् ॥१८
तदाकर्ण्येश्वरो वाक्यं मुने तत्वन्मुखोदितम् ।
चुकोपातिद्रुतं रुद्रो महारौद्रपराक्रमः ॥१९
उत्पाट्यैकां जटां रुद्रो लोकसंहार कारकः ।
आस्फालयामास रुषा पर्वतस्य तपोपरि ॥२०

तोदनाच्च द्विधा भूता सा जटा च मुने प्रभोः ।
सम्बभूव महारावो महाप्रलयभीषणः ॥२१

ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार अपने गणों की बात सुनकर उस चरित्र को शीघ्र जान लेने की इच्छा से भगवान् शंकर ने नारदजी को याद किया ।१५। तब, हे दिव्य दर्शन नारदजी ! तुम तुरन्त ही वहाँ पहुंचे और शिवजी को भक्तिपूर्वक प्रणाम कर हाथ जोड़े ।१६। उस समय शिव ने तुम्हारी प्रशंसा करके सती का वृत्तान्त तथा दक्ष-यज्ञ में जाने का सम्पूर्ण समाचार कहने को कहा ।१७। शिवजी द्वारा ऐसा प्रश्न करने पर वहाँ जो कुछ घटना घटी थी, वह सब तुमने उनको सुनाई ।१८। तुम्हारे मुख से सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर शिवजी अत्यन्त क्रोधित होकर महारौद्र रूप हो गये ।१९। लोक सहारक रुद्र ने अपनी एक जटा उखाड़ क्रोध-पूर्वक पर्वत पर दे मारी ।२०। जटा के मारते ही उसके दो खण्ड हो गये और उससे महाप्रलय के समान भयङ्कर शब्द हुआ ।२१।

तज्जटायाः समुद्भूतो वीरभद्रो महाबलः ।
पूर्व भागेन देवर्षे महाभीमो गणाग्रणीः ॥२२
स भूमिं विश्वतोवृत्य चात्यतिद्दशांगुलम् ।
प्रलयानलसंकाशः प्रोन्नतो दोः सहस्रवान् ॥२३
कोप निःश्वासतस्तत्र महारुद्रस्य चेशितुः ।
जातं ज्वराणां शतकं संनिपातास्त्रयोदश ॥२४
महाकाली समुत्पन्ना तज्जटापरधागतः ।
महाभयंकरा तात भूतकोटिभिरावृता ॥२५
सर्वे मूर्तिधराः क्रूरा ज्वरा लोकभयंकराः ।
स्वतेजसा प्रज्वलतो दहत इव सर्वतः ॥२६
अथ वीरो वीरभद्रः प्रणम्य परमेश्वरम् ।
कृतांजलिपुटः प्राह वाक्य वाक्यविशारदः ॥२७
महारुद्र महारौद्र सोमसूर्याग्निलोचन ।
किं कर्त्तव्य मया कार्यं शीघ्रमाज्ञापय प्रभो ॥२८

उस जटा से महाबली वीरभद्र प्रकट हुआ। जटा के पूर्व भाग से उत्पन्न यह वीर, वीरों में अग्रणी तथा अत्यन्त भयङ्कर था।२२। इसने संपूर्ण पृथिवी को व्याप्त कर लिया तथा वह दश अगुल परिमाण स्थान में स्थित था। वह प्रलय की अग्नि के समान तेजस्वी था और उसके दो हजार भुजाएँ थीं।२३। महारुद्र के क्रोध से उस समय सौ ज्वर और तेरह प्रकार के संन्निपाप उत्पन्न हुए।२४। जटा के दूसरे भाग से महाकाली उत्पन्न हुई, वह महा भयङ्कर और करोड़ भूतों से घिरी हुई थीं।२५। यह सभी महा भयङ्कर क्रूर स्वरूप वाले थे, वे अपने तेज से प्रज्वलिज हुए सब दिशाओं को दग्ध करते हुए से प्रतीत होते थे।२६। उस समय वह वीरभद्र शिवजी को प्रणाम कर हाथ जोड़ता हुआ इस प्रकार कहने लगा।२७। वीरभद्र ने कहा– हे महारुद्र ! हे सोम सूर्य और अग्नि जैसे नेत्र वाले ? मुझे क्या कार्य करना है, इसकी शीघ्र ही आज्ञा दीजिए।२८।

शोषणीयाः किमीशान क्षणार्द्धेनैव सिंधवः।
पेषणीयाः किमीशान क्षणार्द्धेनैव पर्वता ॥२९
क्षणेन भस्मसात्कुर्यां ब्रह्मांडमुत किं ।
क्षणेन भस्मसात्कुर्या सुरान्वा किं मुनीश्वरान् ॥३०
व्याश्वासः सर्व लोकानां किमुकार्यो हि शङ्कर।
वर्तव्य किमुतेशान सर्वप्राणिविहिंसनम् ॥३१
ममाशक्यं न कुत्रापि त्वत्प्रसादान्महेश्वर।
पराक्रमेण मत्तुल्यो न भूता न भविष्यति ॥३२
यत्र यत्कार्यमुदिश्य प्रेषयिष्यसि मां प्रभो।
तत्कार्यं साधयाम्येव सत्वरं त्वत्प्रसादतः ॥३३
क्षुद्रास्तरन्ति लोकाब्धि शासनाच्छंकरस्यते।
हरातोऽहं न किं तर्तुं महायत्सागरं क्षयः ॥३४
त्वत्प्रेषिततृणेनापि महत्कार्यमयत्नतः।
क्षणेन शक्यये कर्तुं शङ्करात्र न संशयः ॥३५

हे ईशान ? आज्ञा हो तो क्षणमात्र में समुद्र का शोषण कर डालूँ

अथवा क्षण मात्र में ही पर्वतों को चूर्ण कर डालूँ।२९। हे शङ्कर ! क्षण मात्र में ब्रह्माण्ड को भस्म करदूँ या देवताओं और मुनीश्वरों को दग्ध कर डालूँ।३०। सब लोकों को अस्त व्यस्त करदूँ।३१। अथवा सब प्राणियों को ही नष्ट कर डालूँ। आपके प्रसाद से मैं सब कुछ करने में समर्थ हूँ क्योंकि मेरे समान पराक्रमी न कोई हुआ न होगा।३२। हे नाथ ! आप जिस-जिस कार्य के लिए जहाँ-जहाँ मुझे भेजेंगे, मैं वहीं-वहीं जाकर उस-उस कार्य को करूँगा।३३। हे शङ्कर ! आपके शासन से क्षुद्र प्राणी भी भवसागर से तर जाते हैं, तो क्या मैं आपकी कृपा से महा विपत्ति के सागर से तरने में अशक्य हूँ ? ।३४। आपकी कृपा से तिनका भी महान् कार्य करने में समर्थ होता है और क्षणभर में कर सकता है, इसमें संशय नहीं है।३५।

लीलामात्रेण ते शम्भो कार्यं यद्यपि सिद्ध्यति।
तथाप्यहं प्रेषणीयस्तवैवानुग्रहो ह्ययम् ॥३६
शक्तिरेतादृशी शम्भो ममापि त्वदनुग्रहात्।
विना शक्तिर्न कस्यापि शङ्कर त्वदनुग्रहात् ॥३७
त्वदाज्ञया विना कोऽपि तृणादीनि वस्तुतः।
नव चालयितुं शक्तः सत्यमेतन्न संशयः ॥३८
शम्भो नियम्याः सर्वेऽपि देवाद्यस्ते महेश्वर।
तथैवाहं नियम्यस्ते नियन्तुः सर्वदेहिनाम् ॥३९
प्रणतोऽस्मि महादेव भूयोऽपि प्रणतोऽस्म्यहम्।
प्रेषय स्वेष्टसिद्ध्यर्थं मामाद्य हर सत्वरम् ॥४०
स्पन्दोऽपि जायते शम्भो सव्यांङ्गानां मुहुर्मुहुः।
भविष्यत्यद्यविजयो मामतः प्रेषयः प्रभो ॥४१
हर्षोत्साहविशेषोऽपि जायते मम कश्चन।
शम्भो त्वत्पादकमले संसक्तश्च मनो मम ॥४२

हे प्रभो ! यद्यपि आपकी लीला से ही सब कार्य पूर्ण हो जाते हैं, फिर भी आप कृपा करके मुझे कार्य के लिए भेजिए।३६। हे नाथ ! आपके अनुग्रह से मुझ में जो शक्ति है, वह आपकी कृपा के अभाव में कभी

सम्भव नहीं हैं ।३७। आपकी आज्ञा के विना कोई तिनके को भी चलायमान नहीं करता, यह मैं सत्य ही कह रहा हूँ ।३८। हे शिव ! जैसे सब देवता आपके नियम में स्थित हैं, वैसे ही मैं भी आपके नियम में पूर्णतया स्थित हूँ ।३९। हे शंकर मैं आपको वारम्बार प्रणाम करता हूँ. आप अपनी इच्छा पूर्ति के लिए मुझे अवश्य भेजिये ।४०। हे प्रभो ! मेरे दक्षिण अंग निरन्तर फड़क रहे हैं,आप मुझे जहाँ कहीं भेजेंगे, वहीं विजय होना निश्चित है ।४१। हे प्रभो ! मेरा मन आपके पद-पद्मों में है और मुझे एक विशेष प्रकाद का उत्साह तथा हर्ष हो रहा है ।४२।

भविष्यत्यति प्रतिपद शुभसग्तानसततिः ।।४३
तस्यैव विजयो नित्यं तस्यैव शुभमन्वहम् ।
यस्य शम्भो दृढा भक्तिस्त्वयि शोभनसश्रये ।।४४
इत्युक्त तद्वचः श्रुत्वा सन्तुष्टो मङ्गलापति ।
वीरभद्र जयेति त्वं प्रोक्ताशीः प्राहः त पुनः ।४५
शृणु मद्वचनं तात वीरभद्र सुचेतसा ।
करणीयं प्रयत्नेन तद्द्रुत मे प्रतोषकम् ।।४६
याग कर्तुं समुद्युक्तो दक्षो विधिसुतः खलः ।
मद्विरोधी विशेषेण महागर्वोऽबुधोऽधुना ।।४७
तन्मखं भस्मात्कृत्वा संयोगपरिवारकम् ।
पुनरायाहि मत्स्थानं सत्वरं गणसत्तम ।।४८
सुरा भवतु गन्धर्वा यक्षा वाग्ये च केचन ।
तानप्यद्यैव सहसा भस्मसात्कुरु सत्वरम् ।।४९

अच्छी सन्तान की सन्तिति भी प्रत्येक पद में अच्छी ही होती है ।४३। आप सुन्दर आश्रय वाले शंकर के चरणों में जिसकी भक्ति हो, उसी की नित्य विजय तथा सब प्रकार मङ्गल होगा ।४४। ब्रह्माजी ने कहा—भगवान् शंकर उसके वचनों से सन्तुष्ट हो गये और उन्होंने वीरभद्र ! तेरी जय हो । इस प्रकार उसे आशीर्वाद दिया ।४५। शिवजी बोले—हे वीरभद्र ! तुम श्रेष्ठ मन से मेरी वात सुनो और मेरे सन्तोष के लिए मेरा आदेश पालन करो ।४६। वह दुष्ट ब्रह्मपुत्र दक्ष यज्ञ कर

रहा है, वह मेरा द्रोही, मूर्ख तथा घोर अहङ्कारी है।४७। सपरिवार उसका यज्ञ नष्ट करके तुम शीघ्र ही मेरे पास लौट आओ।४८। वहाँ देवता, गन्धर्व जो कोई भी उपस्थित हों, उन सभी को भस्म कर डालो।४६।

तस्त्रास्तु विष्णुर्ब्रह्मा वा शचीशो वा यमोऽपि वा ।
अपि चाद्यैव तान्सर्वान्पातय॒व प्रयत्नतः ॥५०
सुरा भवन्तु गन्धर्वा यक्षा वान्ये च केचन ।
तानप्यद्यैव सहसा भस्मसात्कुरु सत्वरम् ॥५१
दधीचिकृतमुल्लंध्य शपथं मयि तत्र ये ।
तिष्ठन्ति ते प्रयत्नेन ज्वालनीयास्त्वया ध्रुवम् ॥५२
प्रथमाश्चागमिष्यन्ति यदि विष्णुवादयो भ्रमात् ।
नानाकर्षणमन्त्रेण ज्वालयाऽऽनीय सत्वरम् ॥५३
ये तत्रोल्लध्य शपथं मदीय गर्विताः ।
ते हि मद्द्रोहिणीऽतस्तान् ज्वालयानमालया ॥५४
सपत्नीकान्सासारांश्च दक्षयोगस्थलस्थितान् ।
प्रज्वाल्य भस्मसात्कृत्वा पुनरायाहि सत्वरम् ॥५५
तत्र त्वयि गते देवा विश्वाद्या अपि सादरम् ।
स्तोष्यन्ति त्वां तदात्याशु ज्वालया ज्वालयैव तान् ॥५६

विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, यम जो कोई वहाँ मिले, उसी को नष्ट कर दो।५०। देव, गन्धर्व, यक्ष जो कोई हो उसे दग्ध करो।५१। दधीचि की शपथ का उल्लंघन कर जो कोई वहाँ स्थित रहे उन सभी को भस्म कर दो।५२। यदि विष्णु भी उनके साथ कोई भ्रमपूर्ण कार्य करें तो अनेक प्रकार के आकर्षण मन्त्रों द्वारा उन्हें जला दो।५३। उस ऋषि की शपथ का उल्लंघन करके वहाँ ठहरने वाले सभी मेरे द्रोही हैं उन्हें अग्नि-लपटों से भस्म कर दो।५४। जो भी स्त्री धन आदि के सहित दक्ष यज्ञ में स्थित हों, उन सभी को भस्म करके मेरे पास शीघ्र लौट आओ।५५। तुम्हारे वहाँ पहुँचने पर यदि विश्वदेवा आदि देवता तुम्हारी स्तुति करें तो भी उन्हें न छोड़ना और भस्म कर देना।५६।

देवानापि क्र ।द्रोहान् ज्वालमालासमाकुलैः ।
ज्वालय ज्वलनैः शीघ्रं मामाध्यायपालकम् ।५७
दक्षादीन्सकलांस्तत्र सपत्नीकन्सबांधवान् ।
प्रज्वाल्य वीर दक्षं नु सलीलं सलिलं पिब ।।५८
इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षो वेदमर्यादपालकः ।
विरराम महावीरं कालारिः सकलेश्वरः ।।५९

जो देवता हमारे द्रोही हैं, उनको शीघ्र ही अग्नि की लपटों से भस्म कर देना। उनके मन्त्र पालक होने का भी ध्यान न करना।५७। सपत्नीक गन्धर्वादि सहित दक्ष आदि को भस्म करके फिर नील धारा का जलपान करना।५८। ब्रह्माजी ने कहा कि वेद मर्यादा का पालन करने वाले भगवान् शङ्कर क्रोध से रक्तवर्ण युक्त नेत्र वाले तथा काल के भी शत्रु वीरभद्र से ऐसा कह कर मौन गए।५९।

वीरभद्र का सेना सहित गमन

इत्युक्तं श्रीमहेशस्य श्रुत्वा वचनमादरात् ।
वीरभद्रोऽतिसतुष्टः प्रणनाम महेश्वरम् ।।१
शासनं शिरसा धृत्वा देवदेवस्य शूलिनः ।
प्रचचाल ततः शीघ्रं वीरभद्रा मख प्रति ।।२
शिवोऽथ प्रेषयामास शोभार्थं कोटिशो गणान् ।
तेन सार्द्धं महावीरान्प्रलयानलसन्निभान् ।।३
अथ ते वीरभद्रस्य पुरतः प्रबला गणाः ।
पश्चादपि ययुर्वीराः कुतूहलकरागणाः ।।४
वीरभद्रसमेता ये गणाः शतसहस्रशः ।
पाषदाः कालकालस्य सर्वे रुद्रस्वरूपिणः ।।५
गणैः समेतः किलः तेमहात्मा स वीरभद्रो हरवेषभूषणः ।
सहस्रबाहुर्भुजगाधिपाढ्यो ययो रथस्थः प्रबलोऽतिभीकरः ।।६
नल्वानां च सहस्रे द्वे प्रमाणं स्यन्दनस्य हि ।
अयुतेनैव सिहानां पाहनानां प्रयत्नतः ।।७

ब्रह्मा जी ने कहा—शिवजी के उक्त वचनों को आदरपूर्वक सुन कर अत्यन्त सन्तोष सहित वीरभद्र ने उन्हें प्रणाम किया।१। देवदेव महादेव के शासन को शीश चढ़ाकर वीरभद्र तुरन्त ही यज्ञ स्थान को चल पड़ा।२। शिव ने भी शोभा के लिए करोड़ों गणों को उसके साथ भेजा जो प्रलयाग्नि के समान वीरभद्र के पीछे-पीछे चले।३। उस समय वे महाबली गण कुछ वीरभद्र के आगे और कुछ पीछे हो लिए और मार्ग में कुतूहल करने लगे।४। वीरभद्र के साथ जो गण चले वे सभी काल के भी काल तथा साक्षात् रुद्र रूप थे।५। वीरभद्र भी शिवजी जैसा वेश धारण किए हुए था। वह सहस्र भुजा वाला, सर्पों को लपेटे हुए, महाप्रबल शत्रुओं को भी भयभीत करने वाला था, वह रथारूढ़ होकर चला।६। उसके रथ का प्रमाण दो हजार नल्व था, उस रथ में दश हजार सिंह जुते हुए थे।७।

तथैव प्रबला सिंहा बहवः पार्श्व रक्षकः।
शार्दूला मकरा मत्स्या गजास्तत्र सहस्रशः ॥८

वीरभद्रे प्रचलिते दक्षनाशाय सत्वरम्।
कल्पवृक्षसमुत्सृष्टा पुष्पवृष्टिरभूत्तदा ॥९
तष्टुवुश्च गणा वीरं शिपिविष्टे प्रवेष्टितम्।
चक्रूः कुतूहल सर्वे तस्मिंश्च गमनोत्सवे ॥१०

काली कात्यायनी शानी चामुण्डा मुण्डमर्दिनी।
भद्रकाली तथा भद्रा त्वरिता वैष्णवी तथा ॥११
एताभिर्नवदुर्गाभिर्महाकाली समन्विता।
ययौ दक्षविनाशाय सर्व भूतगणैः सह ॥१२
डाकिनी शाकिनी चैव भूतप्रमथगुह्यकाः।
कूष्मांडाः पर्पटाश्चैव चटका ब्रह्मराक्षसाः ॥१३
भैरवाः क्षेत्रपालाश्च दक्षयज्ञविनाशकाः।
निर्ययुस्त्वरितं वीराः शिवाज्ञा प्रतिपालकः ॥१४

इस प्रकार असंख्य सिंह पार्श्वरक्षक थे, तथा शार्दूल, मकर, मत्स्य और हाथी भी हजारों की संख्या में साथ थे।८। जब वीरभद्र दक्ष का संहार करने के लिए चला, तब उस पर कल्प-वृक्ष के पुष्पों की वृष्टि होने लगी।६। शिव, चेष्टा वाले उस वीरभद्र की शिवगण स्तुति करने लगे और उसके साथ चलते हुए सभी कुतूहल करने लगे।१०। काली, कात्यायनी, ईशानी, चामुण्डा, मुन्डमर्दिनी, भद्रकाली, भद्रा, त्वरिता तथा वैष्णवी।११। इन नौ दुर्गाओं के साथ महाकाली दक्ष-संहार के निमित्त उन भूतगणों के साथ चली।१२। डाकिनी, शकिनी, भूत, प्रथम गुह्यक, कुष्माण्ड, पर्पट, चटक तथा ब्रह्मराक्षस।१३। भैरव, क्षेत्रपाल यह सभी शिवाज्ञा से दक्ष को नष्ट करने के निमित्त द्रुत गति से चले।१४।

तथैव योगिनीचक्र चतुःषष्टिगणान्वितम्।
निर्ययौ सहसा क्रुद्धं दक्षयज्ञं विनाशितुम्॥१५
तेषां गणानां सर्वेषां संख्यानं श्रृणु नारद।
महाबलवतां संघो मुख्यानां धैर्यशालिनाम्॥१६
अभ्ययाच्छंकुकर्णश्च दशकोटया गणेश्वरः।
दशभिः केकराक्षश्च विकृतोऽष्टाभिरेव च॥१७
चतुःषष्टयाः विशाखश्च नवभिः पारियात्रिकः।
षड्भिः सर्वांकको वीरस्तथेव विकृताननः॥१८
ज्वालकेशो द्वादशभिः कोटिभिर्गणपुंगवः।
सप्तभिः समद्धीमान् दुद्रमीऽमीष्ठाभिरेव च॥१९
पञ्चभिश्च कपालीशः षड्भिः सदारको गणः।
कोटिकोटिभिरेवेह कोटिकुंडस्थैव च॥२०
विष्टंभोऽष्टाष्टभिर्वीरैः कोटिभिगणसत्तमः।
सहस्रकोटिभिस्तात संनादः पिप्पलस्तया॥२१

उन गणों के साथ चौंसठ योगनियाँ भी चलीं। यह सभी क्रोधपूर्वक दक्ष का विनाश करने के लिए उद्यत थे।१५। हे नारद! उन गणों की संख्या मैं तुमसे कहता हूँ, उन महाबली तथा धैर्यशाली गणों में संघगण

मुख्य था ।१६। शकुकर्ण दश करोण गण लेकर चला, केशराक्ष ने भी दश करोड़ तथा विकृत ने आठ करोड़ गण साथ लिए ।१७। विशाख के साथ चौंसठ करोड़, पारियात्र के साथ नौ करोड़, सर्वांकक के साथ छः करोड़ और वीर वृतानन के साथ छः करोड़ ।१६। उगणश्रेष्ठ वालाकोष के साथ बारह करोड़, समत् के साथ सात करोड़ और दद्रुम के साथ आठ करोड़ थे, ।१६। कपालीश के साथ पाँच करोड़, संदारक के साथ छः करोड़ तथा कोटि और कुण्ड के साथ एक-एक करोड़ थे ।२०। विष्टभवीर के साथ आठ करोड़, वीर के साथ सात करोड़ तथा संनाद और विप्पल के साथ हजार-हजार करोड़ चले ।२१।

आवेशनस्तथाष्टाभिरष्टाभिश्चन्द्रातापनः ।
महावेशः सहस्रेण कोटिता गणपो वृतः ।।२२
कुण्डी द्वादशकोटिभिस्तथा पर्वतको मुने ।
विनाशितुं दक्षयज्ञं निर्ययौ गणसत्तमः ।।२४
कालश्च कालकश्चंव महाकालस्तथैव च ।
कोटिनां शतकेनैव दक्षयज्ञं ययौ प्रति ।।२३
अग्निकृच्छतकोटचा च कोटिचाग्निमुख एव च ।
आदित्यामूर्धा कोटचा च तथा चौव घनावहः ।२५
सन्नाहःशतकोटचा च कोट्या च कुमुदो गणः ।
अमोघः कोकिलाश्चैव कोटिकोट्या गणाधिपः ।
काष्ठगूढश्चतुषष्ट्या सुकेशी वृषभस्तथा ।
सुमन्त्रकोगणाधीशस्तथा तात सुनिर्ययौ ।।२७
कामपादो-रः षष्ठिकोटिभिर्गणसत्तमः ।
तथा सन्तानकः षष्टिकोटिभिर्गणपुङ्गवः ।।२८

आवेशन के साथ आठ करोड़, चन्द्रतापन के साथ भी आठ करोड़, महावेश गणपति के साथ सहस्र करोड़ चले ।२२। कुण्डी और पर्वतक ने बाहर करोड सेना साथ लेकर दक्ष-नाश के निमित्त गमन किया ।२३। काल, कातक और महाकाल सौ-सौ करोड़ गण लेकर दक्ष-नाश के हेतु चले ।२४। अग्निकृत ने सौ करोड़, अग्निमु ने एक करोड़, आदित्यामूर्धा

और धनावह ने भी एक-एक करोड़ सेना साथ ली ।२४। सन्नाह ने भी करोड़, कुमुद ने एक करोड़, अमोघ तथा कोकिल गणाधिप ने भी एक-एक करोड़ गण साथ लिये ।२५। काष्ट गूढ़ सुकेशी, वृषभ गणाधीष और सुमन्त्रक यज्ञ चोंसठ-चोंसठ करोड़ गण लेकर चले । २६ । काकपादोदर ने साठ करोड़ तथा सन्नातक ने साठ करोड़ गण लिए ।२।

महावलश्व नवभिः कोटिभि पुङ्गवस्तथा ।।२९
मधुपिगस्तथा तात गथाधीशो हि निर्ययौ ।
नीतो नवत्या कोटिनां पूर्णभदस्तथैव च ।।३०
निर्ययौ शतकोटीभिच्चतुर्वक्त्रो गणाधिपः ।
काष्ठागूढश्चतु षष्ट्या सुकेशो वृषभस्तथा ।।३१
विरूपाक्षश्व कोटोनां चतुःषष्ट्या गणेश्वरः ।
त लकेतुः षड स्यश्च पञ्चास्यश्च गणाधिपः ।।२२
संवर्तकस्तथा चैव कुलीशश्च स्वयं प्रभुः ।
लोकांलकश्च दीप्तात्मा तथा दैत्यान्तको मुने ।।३३
गणो भृङ्गी रिटिः श्रीमान् देवदेवप्रियस्तथा ।
अशनिर्भालकश्चव चतुःट्या सहस्रकः ।।६४
कोटिकोटिसहस्राणां शतविंशतिभिर्वतः ।
वीरेशी ह्याम्ययाद्वीरो वीरभद्रः शिवाज्ञया ।।३५

श्रेष्ठगण महाबल ने नौ करोड़ गण लिये ।२९। गणाधीश मधुपिंग भी इसी प्रकार चला था नील और पूर्ण भद्र ने नब्वे करोड़ गण साथ लिए ।३०। चतुर्वक्र ने सौ करोड़ तथा कष्ठागूढ़, सुकेश और वृषभ ने चौंसठ करोड़ गणों को साथ लिया ।१३। गणेश्वर विरूपाक्ष ने चोंसठ करोड़ गण साथ लिये तथा तालुकेतु, षट्मुख, पञ्चमुख और गणेश्वर ।३। सवर्तक कुलिश, लोकान्तक, दीप्तात्मा और दैत्यान्तक शिवजी के प्रिय भृङ्गीरिटि, अशनी और मालककण ने चौंसठ हजार करोड़ सेना साथ ली ।३३-३४। इस प्रकार शिवाज्ञा से वीरभद्र हजारों, सैकड़ों, बीसियों करोड़ सेना से घिर कर चला ।३५।

भूतकोटिसहस्र`स्तु प्रययौ कोटिभिस्त्रिभिः।
रोमजैः श्वगणैश्चैव तथा वीरो ययौ द्रुतम् ॥३६
तदा भेरी महानादः शंखाश्च विवधस्वनाः।
जटहारो मुखाश्चैव शृङ्गाणि विविधानि च ॥३७
ते तानि विततान्येव वन्धनानि सुखानि च।
वादित्राणि विनेदुश्च विविधानि महोत्सवे ॥३८
वीरभद्रस्य यात्रायां सबलस्य महामुने।
शकुनान्यभवंस्तत्र भूरिणि सुखदानि च ॥३९

हजारों करोड़ भूत तथा तीन करोड़ अन्य जाति के भूत तथा रोमज और श्वगणों सहित वीरभद्र ने गमन किया।३६। उस समय भेरी का तीक्ष्ण नाद होने लगा, जटाहार और मुखों के अनेक प्रकार के शब्द तथा शृङ्गों के शब्द होने लगे।३७। वन्त्र स्थानों पर सुखदायक शब्द बढ़ने लगे तथा वह उत्सव अनेक प्रकार के शब्दो से भर उठा।३८। हे नारद ! बलवान वीरभद्र की यात्रा में सुख देने वाले अनेक शकुन होने लगे।३९।

यज्ञ में देवी उत्पातों का दर्शन

एवं प्रचलिते चास्मिन् वीरभद्रे गणान्विये।
दुष्टचिह्नानि दक्षेण दृष्टानि विबुधैरपि ॥१
उत्पाता विवधाश्चासन् वीरभद्रे गणान्विये।
त्रिविधा अपि देवर्षे यज्ञध्विंससूचकाः ॥२
दक्षावामाक्षिव हूहविस्पदः समजायत।
नानाकष्टप्रदस्तात सर्वथाऽशुभसूचकः ॥३
भूकंपः समभूत्तत्र दक्षयागस्थले तदा।
दक्षोऽपश्यच्च मध्याह्ने नक्षत्राण्यद्भुतानि च ॥४
दिशश्चासन्सुमलिनाः कर्बुरोऽभूद्दिवाकरः न।
परिवेषसहस्रेण संक्रांतश्च भयङ्करः ॥५
नक्षत्राणि पतन्ति स्म विद्युदग्निप्रभाणि च।
नक्षत्राणामभद्रका गतिश्चाधोमुखी तदा ॥६

गृध्रा दक्षशिरःस्पृष्टा समुद्भूता सहस्रशः ।
आसीवगृध्रपक्षच्छायः सच्छायो यागमण्डपः ।७

ब्रह्माजी ने कहा – जब इस प्रकार गणों को साथ लेकर वीरभद्र ने गमन किया, तब दक्ष ने देवताओं सहित उसके लक्षण देखे । ।हे नारद ! वीरभद्र के गमन समय मे यज्ञ के विध्वंस होने के सूचक तीन उत्पात हुए ।२। दक्ष का वाम नेत्र, बाहु, अरु आदि अङ्ग पकड़ने लगे तथा अन्य अनेक कष्टदायक उत्पात दिखाई दिए ।३। यज्ञ की भूमि कम्पायमान हो उठी, मध्याह्न में ही नक्षत्र दिखाई देने लगे ।४। दिशायें मलीन हो गईं सूर्य में काले धब्बे दिखाई पड़ने लगे, अन्य सैकड़ों भयङ्कर अपशुग हुए ।५। बिजली और अग्नि के समान तारे गिरने लगे, नछत्रों की गति टेढ़ी तथा अधोमुखी हो गई ।६। दक्ष के सिर को स्पर्श करते हुए सैकड़ों गृद्ध उड़ने लगे, उनकी छाया से तज्ञ मण्डप ढक गया ।७।

ववाशिरे यागभूमौ क्रोष्टारो नेत्रकस्तदाः ।
उल्वावृष्टिरभूतत्र श्वेतवृश्चिकसभवा ।८
खपा वाता ववुस्तत्र पांशुवृष्टिसमन्विता ।
शलभाश्च समुद्भूता विवर्तानिलकंपिताः ।९
रीतैश्च पवनैरूर्ध्वं स दक्षाध्वरमण्णपः ।
देवान्वितेन दक्षेण यः कृतो नूतनोऽद्भुतः ।१०
वेमुर्दक्षादय सर्वे तदा शोणितमद्भुतम् ।
वेमुश्च मांसखंडाणि संशल्यानिमुहुर्मुहुः ।।११
सकपाश्च वभूवुस्ते दीपा वातहता इव ।
दुःखिताश्चा भवन्सर्वे शस्त्र धाराहता इव ।१२
तदा निनादजातानि बाष्पवर्षाणि तत्क्षणे ।
प्रातस्तुषारवर्षीणि पद्मानीव वनान्तये ।१३
दक्षाद्यक्षीणि जाताणि ह्यकस्माद्विशदान्यपि ।
निशायां कमलाश्चैव कुमुदानीव सङ्कवे ।१४

गीदड़ और नेत्रक पक्षी शब्द करने लगे, श्वेत वृश्चकों के साथ उल्का पात होने लगा ।८। पाँशुवृष्टि के साथ तीखी वायु चल पड़ी, सब ओर से

शलभ प्रकट हो गए तथा आवर्त की वायु अत्यन्त वेग से चलने लगा ।९। दक्ष का मण्डप रीति वाली वायु से ही उड़ने लगा यक्ष यज्ञ में यह बात दैववश अत्यन्त अद्भुत और नवीन हुई ।१०। दक्षादि सब रक्तवमन करने उगे तथा शल्य सहित माँस के टुकड़े मुख के द्वारा गिरने लगे ।११। वायु के कारण सब दीपक काँपने लगे तथा सभी जीव शस्त्र की धार से आहत हुए के समान दुःखी हो गये ।१२। उस बड़े शब्द से आंसुओं की वर्षा होने लगी, जैसे प्रातःकालीन ओस से कमल व्याप्त हों, सभी के मुख एसे हो रहे थे ।१३। जैसे रात्रि में कुमुद विशद हो जाते हैं वैसे ही दक्ष आदि के नेत्र अकस्मात् खड़े हो गये ।।२४।।

असृग्ववर्ष देवश्च तिमिरेणावृता दिशः ।
दिग्दाहोऽभूद्विशेषेण त्रासयन् सकलाञ्जानान् ।१५
एवंविधान्यरिष्टानि ददृशुर्विबुधादयः ।
भयमापेदिरेऽत्यतं मुने विष्ण्वादिकास्तदा ।१६
भुवि ते मूर्च्छिताः पेतुर्हा हताः स्म इतीरयत् ।
तरवरवीरसजाता नदीवेगृहता इव ।१७
पतित्वा ते स्थिता भूमौ क्रूराः सर्पा हता इव ।
कंदुका इव ते भूयः पतिताः पुनरुत्थिता ।१८
ततस्ते तापसंतप्ता रुरुदुः कुररी इव ।
रोदनध्वनिसं क्रांतोक्तिप्रत्युक्तिका इव ।१९
सवैकुण्ठास्तत सर्वे तदा कुण्ठिशक्तयः ।
स्वस्वोपकंठमाकंठं लुलुठुः कमठा इव ।२०
एतस्मिन्नन्तरे तत्र संजाता चाशरीरवाक् !
श्रावत्यखिलान् देवान्दक्ष चैव विशेषतः ।२१

आकाश से लोहित वर्षा होने लगी, दिशायें अन्धकार से भर गयीं, सब प्राणियों के लिए दुःखदायी दिग्दाह होने लगा ।१५। हे मुने ! इस प्रकार देवताओं ने बहुत उत्पात देखे विष्णु आदि को भी बड़ा भय प्रतीत हुआ ।१६। 'हाय हम रे' कहते हुए वे वैसे ही गिर पड़े जैसे

नदी के वेग से तट के वृक्ष गिर जाते हैं ।१७। क्रूर सर्प द्वारा डसे हुए समान वे पृथिवी पर गिर गये तथा गेंद के समान उठते और पुनः गिर पड़ते थे ।१८। फिर वह ताप संतप्त होकर कुररी के समान रोने लगे और उक्ति तथा प्रत्युक्ति करने लगे ।१९। विष्णु सहित सभी की शक्ति क्षीण हो गई और वे कमल के समान अपने-अपने स्थानों के लिए लौट पड़े ।२०। तभी वहाँ आकाशवाणी हुई, उसे सभी देवताओं ने और विशेष कर दक्ष ने भी सुना ।२१

धिग् जन्म तव ददाक्ष महामूढोऽसि पापधीः ।
भविष्यति महद्दुःखमनिवार्यं हरोद्भवम् ॥२२
हाहापि नीऽत्र ये मूढास्तव देवादयः स्थिताः ।
तेषामपि महादुखं भविष्यति न संशय ॥२३
तच्छ्रुत्वाकाऽऽशवचनं दृष्ट्वारिष्टानि तानि च ।
दक्षः प्रापद्भयं चाति ररे देवदायोऽपि ह ॥२४
वेषमानस्तदा दक्षो विकलश्चाति चेतसि ।
अगच्छच्छरणं विष्णोः स्वप्रभोरिंदिरापतेः ॥२५
सुप्रणम्य भयाविष्टः संस्तूय च विचेतनः ।
अवोचद्देवदेवं तं विष्णुः स्वजनवत्सलम् ॥२६

आकाशवाणी ने कहा—हे दक्ष ! तुम अत्यन्त पापी और मूढ़ को धिक्कार है । शिवजी द्वारा तुम्हें दुख प्राप्ति अवश्य होगी ।२२। वहाँ जितने देवता उपस्थित हैं, वे सब भी महा दुःख प्राप्त करेंगे ।२३। ब्रह्माजी ने कहा—ऐसी आकाशवाणी सुनकर और उत्पात देखकर दक्ष तथा देवताओं ने बड़ा दुःख माना ।२४। दक्ष-अत्यन्त कम्पित और व्याकुल हुआ अपने स्वामी नारायण की शरण में गया ।२५। प्रणाम कर स्तुति की तथा भय से अचेत होता हुआ उनसे बोला ।२६।

विष्णु द्वारा शिव की सामर्थ्य वर्णन

देवदेवं हरे विष्णो दीन बन्धो कृपानिधे ।
मम रक्षा विधातव्या भवता सध्वरस्य च ॥१
रक्षकस्त्व मखस्यैव मखकर्मा मखात्मकः ।

कृपा विधेया यजस्य भङ्गो भवतु न प्रभो ॥२
इत्थ बहुविधा दक्ष कृत्वा विज्ञप्तिमादरात् ।
पपात पादयोस्तस्य भयव्याकुलमानसः ॥३
उत्थाप्न तं ततो विष्णुर्दक्ष विक्लिन्नमानसम् ।
श्रुत्वा च तस्य तद्वाक्य कुमतेरस्मरच्छिवम् ॥४
स्मृत्वा शिवं महेशानं स्वप्रभुं परमेश्वरम् ।
अवदच्छिवतत्त्वज्ञो दक्षं सम्बोधयन्हरिः ॥५
शृणु दक्ष प्रवच्यामि तत्त्वतः शृणुमे वचः ।
सर्वथा ते हितकरं महामन्त्र सुखप्रदम् ॥६
अवज्ञा हि कृता दक्ष त्वता तत्वमजानता ।
सकलाधीश्वरस्यैव शंकरस्य परात्मनः ॥७

दक्ष ने कहा—देवदेव ! हे दीनबन्धो ! हे विष्णो ! आप कृपा के सिन्धु हैं, जैसे भी हो सके, इस यज्ञ में मेरी रक्षा करें ।१। आप यज्ञ कर्म वाले, यज्ञ-रक्षक तथा साक्षात् याज्ञात्मा हैं, मेरा यज्ञ भङ्ग न हो, ऐसी कृपा कीजिये ।२। ब्रह्माजी ने कहा कि दक्ष ने इस प्रकार बहुत भांति की प्रार्थना की और भय से व्याकुल होकर वह उनके चरणों में गिर पड़ा ।३। विष्णुजी ने उस व्याकुल दक्ष को उठाया और उसकी बात सुनकर उन्होंने शिवजी का स्मरण किया ।४। अपने प्रभु भगवान शंकर का स्मरण कर, शिवतत्व के ज्ञाता नारायण बोले—हे दक्ष ! तुम मेरी बात सुनो ! मैं तुम्हारे लिए हितकारी महामन्त्र कहता हूँ ।६। तुमने सर्वोश्वर शंकर का तत्व न जानकर उनका निरादर किया है ।७।

ईश्वरावज्ञा सर्व कर्म भवति सर्वथा ।
विफलं केवलं नैव विपत्तिश्च पदे पदे ॥८
अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूजनीयो न पूज्यते ।
त्रीणि तत्र भवित्यन्ति दारिद्र्यं मरणं भयम् ॥९
स्मात्सर्वप्रयत्नेन माननीयो वृषध्वजः ।
अमानितान्महेशाच्च महद्भयमुपस्थितम् ॥१०

अद्यापि न व्ययं सर्वे प्रभवः प्रभवामहे ।
भवतो दुर्नयेनैव मया सत्यमुदीर्य्यते ।११
विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा दक्षश्चिंतापरोऽभवत् ।
विवर्णवदनो भूत्वा तूष्णीमासीद्भुवि स्थितः ।१२
एतस्मिन्नन्तरे वीरभद्रः सैन्यसमन्वितः ।
अगच्छदध्वरं रुद्रप्रेरितो गणनायकः ।१३
पृष्टे केचित्समायाता गगने केचिदागताः ।
दिदश्च विदिशः सर्वे समावृत्य तथाऽपरे ।१४

ईश्वर की अवज्ञा करने वाले को केवल कार्य में सफलता नहीं, पद-पद पर विपत्ति उठानी पड़ती है ।८। जहाँ अपूजनीयों का पूजन और पूजनीयों का निरादर होता है, वहाँ दरिद्रय, मृत्यु और भय तीनों की प्राप्ति होती है ।९। भगवान् शिवजी सब प्रकार मान्य हैं, उनका तिरस्कार करने से ही इस घोर भय की तुम्हें प्राप्ति हुई है ।१०। तुम्हरी दुर्नीति के कारण ही अब हम सभी का प्रभाव न रहेगा, यह बात सत्य समझो ।।११।। ब्रह्माजी ने कहा कि भगवान् विष्णु की बात से दक्ष अत्यन्त चिन्तित हुआ और व्याकुल मन से, विवर्ण होकर मौन खड़ा रहा ।१२। इसी समय महान् सेना के सहित रुद्र द्वारा भेजा गया वीरभद्र वहाँ आ पहुँचा ।१३। कई गण उसके पीछे से और कोई नभ-मार्ग से तथा कोई दिशा, विदिशा से वहां आ गये ।१४।

शर्वाज्ञया गणाः शूरा निर्भया रुद्रविक्रमाः ।
असंख्याः सिंहनादा वै कुर्वतो वीरसत्तमाः ।१५
तेन नादेन महता नादितं भुवनत्रयम् ।
रजसा चावृतं व्योम तपसा चावृता दिशः ।१६
सप्तद्वीपान्विता पृथ्वी चचालातिभयाकुला ।
शशैलकाना तत्र चुक्षुभुः सकलाब्धयः ।१७
एवंभूतं च तत्सैन्य लोकक्षयकरं महत् ।
दृष्ट्वा च विस्मिताः सर्वे बभूवुरमादयः ।१८
सैन्योद्योगमथालोक्य दक्षश्चासृङ् मुखाकुलः ।

दण्डवत्पतितो विष्णुं सकलाश्रोऽभ्यभाषत् । ९
भवद्बलेनैव मया यज्ञः प्रारम्भितो महान् ।
सत्कर्मसिद्धये विष्णो प्रमाण त्वं महाप्रभो ।२०
विष्णो त्वं कर्मणां साक्षी यज्ञानां प्रतिपालकः ।
धर्मस्य वेदगर्भस्य ब्रह्मणस्त्वं प्रहाप्रभो ।२१
तस्माद्रक्षा विधातव्या यज्ञस्यास्य मम प्रभो ।
त्वदन्यः कः समर्थोऽस्ति यमस्त्वं सकलप्रभुः ।२२।

शिव आज्ञा से वह गण निर्भय, पराक्रमी तथा शूर थे, वे सब वीर वहाँ असंख्य सिंहनाद करने लगे उससे तीनों भुवन शब्दायमान हो गये तथा आकश धूल से और दिशायें अन्धकार से परिपूर्ण हो गयीं ।१६। सप्तद्वीप युक्त पृथिवी भय के कारण काँपने लगी तथा वनों सहित पर्वत और समुद्र भी चलायमान हो गये !१७। इस प्रकार उस लोक-नाशक महासेना को आया देख कर देवता आदि सभी क्षुब्ध हो उठे।१८। सेना का उद्यम देखकर दक्ष का शीश झुक गया और वह भगवान विष्णु के समक्ष दंड के समान गिरता हुआ कहने लगा ।१९। दक्ष ने कहा—हे प्रभो ! मैंने आपके बल के भरोसे ही इस महान् यज्ञ का प्रारम्भ किया था और इस कार्य की सिद्धि आपकी कृपा से ही सम्भव है ।।२०।। हे, विष्णो ! आप कर्मों के साथी तथा यज्ञो के पालन कर्ता हैं । हे प्रभो ! आप ही वेद-धर्म के अधिष्ठान स्वरूप ब्रह्म हैं । ३१ । इसलिए आपको इस यज्ञ की रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि आपके अतिरिक्त अन्य कौन इस कार्य में समर्थ हो सकता है ? ।।२३।।

दक्षस्य वचनं श्रुत्वा विष्णुर्दीनतरं तदा ।
अवौचद्बोधवंस्तं वै शिवतत्तत्वराङ्मुखम् ।२३
मया रक्षा विधातव्या यव तज्ञस्य दक्षं वै ।
ख्यायो मम पणः सत्यो धर्मस्य परिपालनम् ।
तत्सत्यं तु त्वयोक्तं हि किं तत्तस्य व्यतिक्रमः ।
श्रणु त्वं वच्म्यह दक्ष क्रूरबुद्धि त्यजाधुना ।२५।
नेमोषिऽनिर्मिषक्षेत्रे यज्जायं वृतमद्भुतम् ।

तत्किं न स्मर्यते दक्ष विस्मृत किं बुद्धिना ।।२६
रुद्रकोपाच्च को ह्यत्र समर्थो रक्षणे तव ।
न यस्याभिमतं दक्ष यस्त्वां दुर्मति ।।२७
किं कर्म किमकर्मेति तन्न पश्यति दुर्मतिः ।
समर्थं केवलं कर्म न भविष्यति सर्वदा ।१८

ब्रह्माजी ने कहा—दक्ष के वचन सुनकर विष्णुजी सन्तुष्ट हो गये तथा दक्ष को शिवतत्व से पराङ्गमुख समझते हुए कहने लगे ।३। बिष्णु जी ने कहा—हे दक्ष ! धर्म का पालन मेरा कर्त्तव्य है, इसलिए मैं तुम्हारे यज्ञ की रक्षा करूँगा ।२४। तुमने सत्य कहा है, परन्तु तुम अब अपनी क्रूर बुद्धि को छोड़ दो इसी में कल्याण है ।२५। हे दक्ष ! नैमिषारण्य में जो घटना हुई थी, क्या वह तुम्हें याद नहीं है ? क्रूर बुद्धि से तुम उसे भुला बैठे हो ।.६। हे दक्ष ! तुम्हारी रक्षा करना भी सुमति नहीं है, रुद्र के कोप से तुम्हारी रक्षा करने में कौन समर्थ होगा । २ । हे दुर्बुद्धि वाले ! तुम कर्म-अकर्भ को नहीं देखते हो, परन्तु सब बातों में ही कर्म को सफलता नहीं हो सकती ।२८।

स्वकर्म विद्धि तद्येन समर्थत्वेन जायये ।
न त्वन्यः कर्मणो दाता शं भवेदीश्वर विना ।।२९
ईश्वरस्य च यो भक्तया शांतस्तद्गतमानसः ।
कर्मणो हि फलं तस्य प्रयच्छति तदा शिवः ।।३०
केवल ज्ञानमाश्रित्य निरीश्वरपरा नराः ।
निरयं ते च गच्छति कल्पकोटिशतानि च ।।३१
पुनः कर्ममयैः पाशैर्बद्ध्वाजन्मनि जन्मनि ।
निरयेषु प्रपच्यं ते केवल कर्मरूपिणः ।।३२
अयं रुद्रगणाधीशो वीरभद्रोऽरिमर्दनः
रुद्रकोपाग्निसंभूतः समायातोऽध्वरांगणे ।।३३
अयमस्मद्विनाशार्थमागतोऽस्ति न संशय ।
अशक्यमस्य नास्त्तेव किमप्युस्तु वस्तुतः ।।३४
प्रज्वाल्यास्मानयं सर्वान् ध्रुवमेव महाप्रभुः ।

ततः प्रशांतहृदयो भविष्यति न संशयः ॥३५

अपना कर्म वही समझो, जिसमें सामर्थ्य हो, कर्म का फल देने में समर्थ शिव के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है।२६। शान्त चित्त से भक्ति पूर्वक ईश्वर में मन लगाने वाले को ही शिवजी कर्म का फल प्रदान करते हैं।३। जो मनुष्य ईश्वर को नहीं मानते और केवल ज्ञान के आश्रय में ही बढ़ने की इच्छा करते हैं; वे सैकड़ों करोड़ वर्षों तक नरक में पड़ते हैं।३१। फिर जन्म जन्मान्तर रूप कर्म के फन्दा में बँध कर कर्म रूपी नरक को बारम्बार प्राप्त होते हैं।३२। यह शत्रुओं का नाश करने वाला वीरभद्र रुद्रगणों का अधीश्वर है तथा रुद्र की क्रोधाग्नि से उत्पन्न होकर ही यहाँ आया है।३३। इसमें सन्देह नहीं कि हमारे विनशार्थ ही यहाँ आया है, इसको शान्त करना यथार्थ से तो क्या कल्पना में भी सम्भव नहीं है।३४। यह हम सबको इस यज्ञ में भस्म करके फिर शान्त होगा, इसमें संशय नहीं है।३५।

श्रीमादेवशेपथ समुल्लंघ्य भ्रमान्मया।
यतः स्थितं ततः प्राप्यं मया दुःख त्वया सह ॥३६
शक्तिर्मम तु नास्येय दक्षाद्य तन्निवारणे।
शपलोल्लंभनादेव शिवद्रोही यतोऽस्म्यहम् ॥३७
कालत्रयेऽि न यतों महेशद्रोहिणां सुखम्।
ततोऽवश्यं मया प्राप्तं दुःखमद्य त्वया सह ॥३८
सुदर्शनाभिधं चक्रमेतस्मिन्न लगिष्यति।
शैवं चक्रमिदं यस्मादशैवलयकारणम् ॥३९
विनापि वीरभद्रेण नामैतच्चक्रमैश्वरम्।
हत्वा गमिष्यत्यधुना सत्वरं हरसन्निधौ ॥४०
शैव शपथमुल्लंघ्य स्थिरं मां चक्रमीदृशम्।
असंहत्यैव सहसा कृपयैव स्थिरं परम् ॥४१
अतः परमिद चक्रमपि न स्थास्यति ध्रुवम्।
गमिष्यत्धुना शीघ्र ज्वालमालासमाकुलम् ॥४२

भ्रमवश से शिवजी की शपथ का उल्लंघन कर यहाँ ठहरा उसका

परिणाम तुम्हारे सहित प्रत्यक्ष ही प्राप्त है ।३६। हे दक्ष ! इस उत्पादन को शान्त कहना मेरी सामर्थ्य से बाहर हैं शपथ का उल्लघन करने के कारण मैं भी शिवद्रोही हो गया ।३७। शिवद्रोही को त्रिकाल में भी सुख की प्राप्ति नहीं होती, तुम्हारे इसी दुष्कर्म के कारण मुझे भी दुख मिला है ।३८। इस पर सुदर्शन चक्र भी प्रहार करन में समर्थ नही है, क्योंकि यह शैव्य-चक्र अशैव्यों पर ही प्रहार करता है ।३९। यदि इस चक्र को छोड़ा गया तो यह वीरभद्र पर प्रहार किये बिना ही शङ्कर के पास पहुँच जायगा ।४०। शवजी की शपथ का उल्लंघन करने पर भी वह चक्र मेरे पास स्थित है, इसे शिवजी की परम कृपा ही समझनी चाहिए ।४१। अन्यथा यह चक्र किसी प्रकार भी नहीं ठहर उकता और ज्वालामुखी से व्याकुल होकर तुरन्त ही यहाँ से चला जायगा ।४२।

वीरभद्रः पूजितोऽपि शीघ्रसस्माभिरादरात् ।
महाक्रोधसमाक्रांतो नास्मान् संरक्षयिष्यति ।४३।
अकांडप्रलोऽस्माकमागतोऽद्य हि हहा ।
हा हा वत तवेदानीं नाशोऽस्माकामुपस्थितः ।४४।
शरण्योऽस्माकमधुना नास्त्येव हि जगत्त्रये ।
शंकरद्रोहिणो लोके कः शरण्यो भविष्यति ।४५
तनुनाशेऽपि संप्राप्यास्तैश्चापि यमयातनाः ।
स नैव शक्यते सोढुं बहुदुःखप्रदायिनीः ।४६।
शिवदोहिणमालोक्य दृष्टदन्तो यमः स्वयम् ।
मप्ततैलकटाहेषु पापर्यत्ये नान्यथा ।४७।
गन्तुमेवाहमुद्युक्तं सर्वथा शपथोत्तरम् ।
तथापि न गतः शीघ्रं दुष्टसंगपायतः ।४८।
यद्द्य क्रियनेऽस्नाभिः पलायनमिस्तदा ।
शार्वो ना कर्षकः शस्त्रैरस्मानाकर्षयिष्यति ।४९।

यदि हम यहां आदरपूर्वक वीरभद्र का पूजन करें तो भी भगवान् शंकर के क्रोधित हने के कारण यह हमारी रक्षा किसी प्रकार न कर

पायेगा ।४३। इस कुसमय में यह कैसा प्रलयकाल उपस्थित हुआ और हमारा तुम्हारा अन्तकाल आ गया ।४४। इस समय तीनों लोकों में हमारा कोई रक्षक नहीं है, क्योंकि शिवद्रोही की रक्षा कौन कर सकता है ? ।४५। देह का नष्ट होना और यम-यातना को सहन करना यह दुःख हम से किस प्रकार भोगा जायेगा ? ।४६। शिवद्रोही को देखते ही यम-राज दाँत पीसते हैं और उसको गर्म तेल कढ़ाव में डाल देते हैं ।४६। मैं शपथ से सर्वथा मुक्त हो सकता था, परन्तु दुष्ट-सङ्ग के कारण मैं उससे न निकाल सका ।४८। अब यदि हम यहाँ से भागे तो भी शिव अपने आकर्षणास्त्रों में हमको खींच लेंगे ।४९।

स्वर्गे वा भुवि पातालेयत्र कुत्रापि चा यत. ।
श्रीवीरभद्राशस्त्राणां गमनं नहि दुर्लभम् ।५०।
यावतश्व गण: सन्ति श्रीरुद्रस्य त्रिशूलिनः ।
तावनामपि सर्वेषां शक्तिरेतादृशी ध्रुवम् ।।५१
श्रीकालभैरवः काश्यां नखाग्रेणैव लीलया ।
पुरा शिरश्च विच्छेद पञ्चमं ब्रह्मणो ध्रुवम् ।५२।
एतदद्युक्त्वा स्थितो विष्णुरतित्रस्तमुखाम्बुजः ।
वीरभद्रोऽपि संप्राप तदैवाध्वरमंडपम् ।५३।
एवं ब्रुवति गोविन्द आगत सैन्यसागरम् ।
वीरभद्रेण सहित ददृशुच्च सुरादयः ।५४।

स्वर्ग, पृथिवी, पाताल कहीं भी चले जायें, वीरभद्र के शस्त्र सभी स्थानों में पहुंच सकते हैं ।५०। त्रिशूलधारी भगवान शिव के सब गणों की ऐसी ही शक्ति है ।५१। शिवजी की आज्ञा से श्रीकालभैरव ने अपने नखों से ही काशी में ब्रह्माजी का पाँचवां शीश काट डाला ।५२। यह कहकर नारायण अत्यन्त व्याकुल-मुख हो गये, तभी वीरभद्र भी यज्ञ-मंडप में आ पहुँचा ।५३। साथ ही सेना रूप सागर उपड़ आया और सभी देवताओं ने वीरभद्र के साथ इस सेना को देखा ।५४।

वीरभद्र द्वारा लोकपालों की पराजय

इन्द्रोऽपि प्रहसन् विष्णुमात्मवादरतं तदा ।

वज्रपाणिः सुरैः सार्द्धं योद्धुकामोऽभवत्तदा ।।१

तदेन्द्रो गजमारूढो वस्तारूढोऽननेस्तथा ।

यमो महिषमारूढो निर्ऋतिः प्रेतसेव च ।।२

पाशी च मकरारूढो मृगारूढः सदागतिः ।

कुबेरः पुष्पकारूढः संतद्धोऽभूदतन्द्रितः ।।३

तथान्ये सुरसंगाश्च यक्षचारणगुह्यकाः ।

आरुह्य वाहानान्येव स्वानि स्वानि प्रतापिनः ।।४

तेषामुद्योगमालाक्य दक्षाश्चसृङ्मुखस्ततः ।

तदन्तिकं समागत्य सकलत्रोऽभ्यभाषित ।।५

युष्मद्बलेनैव मया यज्ञ प्रारम्भितो महान् ।

सत्कर्मसिद्धये यूयं प्रमाणा स्युर्महाप्रभाः ।।६

तच्छ्रुत्वा दक्षवचनं सर्वे देवाः सवासवाः ।

निर्ययुस्त्वरितं तत्र युद्धं कर्तुं समुद्यताः ।।७

ब्रह्माजी ने कहा—उस इन्द्र ने नारायण का उपहास करते हुए आत्मप्रशंसा पूर्वक वज्र ग्रहण किया और देवताओं के सहित वीरभद्र से युद्ध करने को तत्पर हुए ।१। उस अवसर पर इन्द्र ऐरावत पर, अग्नि मेढे पर, यम महिष पर और निर्ऋति प्रेत पर ।२। वरुण मकर पर, वायु मृग पर, कुवेर पुष्कर पर चढ़े तथा अन्य सभी देवता तैयार हो गये ।३। इसी प्रकार असंख्य देवता, यक्ष, चारण, गुह्यक अपने-अपने वाहनों पर चढ़कर चल दिये ।४। उनको युद्ध के लिए तत्पर देखकर नीचा मुख किये हुए दक्ष ने इन्द्र के पास आकर कहा ।५। दक्ष बोला—मैंने यह यज्ञ आपके भरोसे पर आरम्भ किया, क्योंकि आप अत्यन्त प्रभाव वाले हैं और इस यज्ञ की सिद्धि आप पर ही निर्भर है ।६। दक्ष की वात सुनकर इन्द्र के सहित सभी देवता अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक युद्ध करने के लिए चले ।।७।।

अथ देवगणाः सर्वे युयुधुस्ते बलान्विताः ।

शक्रादयो लोकपाला मोहिताः शिवमायया ।।८

देवानां च गजानां च तदासीत्समरो महान् ।

तीक्ष्णतोमरनाराचैर्युयुधुस्ते बलान्विताः ॥९
नेदुः शंखश्च वेर्य्यश्च तस्मिन् रथमहोत्सवे ।
महादुन्दुभयो नेदुः पटहा डिडिमादयः ॥१०
तेन शब्देन महता श्लघ्यमानास्तदा सुराः ।
लोकपालैश्च सहिता जघ्नुस्तांछिवकिंकरान् ॥११
इन्द्राद्यै लोकपालैश्च गणाः शंभोः पराङ्मुखाः ।
कृताच्च मुनीशार्दूल भृगौर्मन्त्रबलेन च ॥१२
उच्चाटन कृत तेषां भृगुणा यज्वना तदा ।
यजनार्थं च देवानां तुट्यर्थं दीक्षितस्य च ॥१३
पराजितास्वकान्दृष्ट्वा वीरभद्रो रुषान्वितः ।
भूतप्रेतपिशाचांश्च कृत्वा तानेन पृष्ठतः ॥१४

फिर वे सभी बलवान देवता युद्ध करने लगे । वे सभी इन्द्रादि के सहित शिवमाया से मोहित हो रहे थे ।८। उस समय देवताओं और शिवगणों का भयङ्कर युद्ध हुआ, वे तीक्ष्ण तोमर और नाराचों में सुद्ध करने लगे ।९। उस समय शङ्ख और भेरियाँ बजने लगीं तथा दुन्दुभि, पटह और डुमडुमी भी बजीं ।१०। उस महान शब्द से उत्साहित हुए देवता लोकपालों सहित उन शिवगणों को मारने लगे ।११। उस समय भृगु के मन्त्र बल से इन्द्रादि लोकपालों ने शिवगणों का संहार कर डाला ।१२। देव यजन और दक्ष के सन्तोष के निमित्त यज्ञ कर्त्ता भृगुजी ने सबका उच्चाटन कर दिया ।१३। उन भूत, प्रेत, पिचाचों को हारता हुआ देखकर वीरभद्र ने क्रोधपूर्वक उन्हें पीछे कर दिया ॥१४॥

वृषभस्थाम् पुरकृत्य स्वयं चेव महालयः ।
महात्रिशूलमादाय पातयामास निर्जरान् ॥१५
देवान् यक्षान् साध्यगणान् गुह्यकान् चारणानपि ।
शूलघातैश्च ते सर्वेगणाः वेगात्प्रजघ्निरे ॥१६
केचिद्द्विधा कृताः खंगैर्मुद्गरैश्च विपोथिताः ।
अन्यैः शस्त्रैरपि सुरा वर्णैर्भिन्नास्तदाऽप्रवन् ॥१७
एवं पराजिता सर्वे पलायनपरायणाः ।

परस्परं परित्यज्य गता देवास्त्रिविष्टपम् ।१८।
केवलं लोकपालास्ते शक्राद्यास्तस्थुरुत्सुकाः ।
स ग्रामे दारुणे तस्मिन् धृत्वा धैर्यं महाबलाः ।१९।
सर्वे मिलित्वा शक्राधा देवास्तत्र रणाजिरे ।
बृहस्पतिं पप्रच्छुर्विनयावनतास्तदा ।२०।
गुरो बृहस्पते तात महाप्राज्ञ दयानिधे ।
शीघ्रं वद पृच्छतो नः कुतोऽस्माकं जयो भवेत् ।२१।
इत्याकर्ण्य वचस्तेषां स्मृत्वा शम्भुं प्रयत्नवान् ।

उस वृषभ में स्थित महाबली ने त्रिशूल से देवताओं को मारकर गिराना प्रारम्भ किया ॥१४॥ देवता, यक्ष, साध्य गुह्यक और चराणादि को त्रिशूल का प्रहार कर धराशयी कर दिया ।१६। खड्ग से किसी के दो टुकड़े किये, किसी पर मुग्दर प्रहार किया तथा अन्य शिवगणों ने भी शस्त्र प्रहार द्वारा देवताओं को विदीर्ण किया ।१७। इस प्रकार पराजित होते हुए देवता एक दूसरे का त्याग कर भागते हुए स्वर्ग को गये ।१८। तब इन्द्रादि देवताओं ने भी युद्धभूमि त्याग दी और अत्यन्त नम्रतापूर्वक वृहस्पतिजी ने कहा ।१९-२०। लोकपालों ने कहा हे गुरो ! हे महा-पंडित ! हे दयासिन्धो ! आप शीघ्र ही हमको वह उपाय बताइये जिससे हमारी विजय हो सके । ब्रह्माजी ने कहा—उन सबकी बात सुनकर भगवान् शिव का स्मरण करके ज्ञान दुर्बल इन्द्र से वृहस्पतिजी ने कहा ।२१-२२।

यदुक्तं विष्णुना पूर्वं तत्सर्वं जातमद्य वै ।
तदेव विवृणोमीन्द्र सावधानतया श्रवणु ।२३।
अस्ति यश्केश्चरः कश्चिद् फलदः सर्वकर्मणाम् ।
कर्तारं भजते सोऽपि न स्त्रकर्तुं प्रभुर्हि सः ।२४।
न मन्त्रौषधयः सर्वे नाभिचारा न लौकिकः ।
न कर्माणि न वेदाश्ज न भीमांसाद्वयं तथा ।२५।
अन्यान्यपि च शस्त्राणि नानवेपयुतानि च ।

ज्ञातुं नेशं संभवति वदंत्येवं पुरातनः ॥२६
न स्वज्ञेयी महेशानः सर्ववेदायुतेन सः ।
भक्तैरनन्यशरणैर्नान्यथति महाश्रुतिः ॥२७
शांत्या च परया दृष्ट्या सर्वथा निर्विकारया ।
तदनुग्रहतो नूनं ज्ञातव्यो हि सदाशिवः ॥२८
परं तु संवदिष्यामि कार्याकार्यविवक्षितौ ।
सिद्ध्यशं च सुरेशान तं शृणुत्व हिताय वै ॥२६

बृहस्पति बोले—हे इन्द्र ! पहिले नारायण ने जो कुछ कहा था, वही हो गया तब तुम मेरी बात को सावधानी पूर्वक श्रवण करो । सभी कर्मों का फलदाता ईश्वर भी कर्त्ता की अपेक्षा करता है, क्योंकि स्वयं करने में वह भी समर्थ नहीं है ।२३-२४। मन्त्र, औषधि, अभिचार तथा लौकिक कर्म और वेद मीमांआ तथा वेद सम्मत अन्य सभी शास्त्र, उसके बिना कुछ नहीं हैं और न उस ईश्वर को जानने में समर्थ हैं, ऐसा विज्ञजन कहते हैं ।२५। भगवान शंकर को सम्पूर्ण वेदों का ज्ञाता भी जानने में समर्थ नहीं, उन्हें तो केवल उन्हीं की शरण को प्राप्त भक्त जान सकता है ।२६। शान्त, निर्विकार पर दृष्टि होने तथा उनकी कृपा होने पर ही शिव तत्व का ज्ञान हो सकता है । फिर भी, हे इन्द्र ! कार्य-अकार्य के निर्णय में सिद्ध हुए अंश को मैं तुमसे कहता हूँ, सावधानी से सुनो ।२७-२६।

त्वमिंद्र बालिशो भूत्वा लोकपालैः सहाद्यवै ।
आद्वतो दक्षयज्ञं हि किं करिष्यासि विक्रमम् ॥३०
एते रुद्रसहायाश्च गणा परमकोपनाः ।
आगता यज्ञविघ्नार्थं तं करिष्यंत्यसंशयम् ॥३१
सर्वथा न ह्युपायोऽत्र केषांचिदपि तत्वत ।
यज्ञविघ्नविनाशार्थं सत्य सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥३२
एवं बृहस्पतेर्वाक्य श्रुत्वा ते हि दिवौकसः ।
चिंतामापेदिरे सर्वे लोकपालाः सवासवाः ॥३३
ततोऽब्रवीद्वीरभद्रो महावीरगणैर्वृतः ।

इन्द्रादींल्लोकपालांस्तान् स्मृत्वा मनसि शंकरम् ।।३४
सर्वे यूयं बालिशत्वादवदानार्थं मागताः ।
अवदानं प्रयच्छामि आगच्छत ममांतिकम् ।।३५
हे शक्र हे शुचे भानो हे शशिनू हे धनाधिप ।
हे पाशपाणे हे वायो निर्ऋते यम शेष हे ।।३६

हे इन्द्र ! तुम लोकपालों सहित मूर्खतावश इस यज्ञ में आये हो तो भला तुम पराक्रम करने में समर्थ हो ? रुद्र के अत्यन्त क्रोध वाले यह गण यज्ञ को विध्वंश करने आये हैं तो अपना कार्य अवश्य करेंगे ।३९। मैं तुम से सत्य ही कहता हूँ कि इस यज्ञ के विध्वंस को रोकने का कोई भी उपाय नहीं है ।३२। ब्रह्माजी ने कहा कि वे सभी देवता वृहस्पति जो की बात सुनकर इन्द्र और लोकपालों सहित चिन्ता मग्न हो गये ।३२। तभी अत्यन्त क्रोधपूर्वक उस महावली वीरभद्र ने इन्द्रादि लोकपालों से कहा ।३३। वीरभद्र बोला—तुम सब अपनी मूर्खता से इस यज्ञ में आये हो । इसका उत्तम फल तुमको चखाऊँगा । हे इन्द्र ! अग्ने ! सूर्य, चन्द्र, कुबेर, वरुण, वायो, निर्ऋतियम और शेष । ४-३६ ।

हे सुरासुरसंवा हीहैत यूयं हे विचक्षणाः ।
अवदानानि दास्यामि आतृप्त्याद्यासतां वरान् ।।३७
एवमुक्त्वा सितैर्वाणैर्जघानाथ रुषान्वितः ।
निखिलांस्वान् सुरान् सद्यो वीरभद्रो गणाग्रणीः ।
तैर्बाणैर्निहताः सर्वे वासवाद्याः सुरेश्वराः ।।३८
पलायनपरा भूत्वा जग्मुस्ते च दिशो दश ।
गतेषुलोकपालेषु विद्रतेषु सुरेषु च ।
यज्ञवाटोपकंठे हि वीरभद्रोऽगमद्‌यणैः ।।३९
तथा ते ऋषयः सर्वे सुभीता हि परमेश्वरम् ।
विज्ञप्तुकामाः सहसा शीघ्रमूचुर्नता भृशम् ।।४०
देवदेव रमानाथ सर्वेश्वर महाप्रभो ।
रथ यज्ञं हि दक्षस्य यशोऽसि त्वं न संशयः ।।४१
यज्ञकर्मा यज्ञरूपो यज्ञांगो यज्ञरक्षकः ।

रथ यज्ञमतो रक्ष त्वत्तोऽन्यो नहि रक्षकः ॥४२
इत्याकर्ण्य वचस्तेषामृषीणां वचनं हरिः ।
योद्ध कामो भयाद्विष्णुर्वीरभद्रेण तेन वै ॥४३

हे सुरो ! हे चतुरो ! तुम्हें मैं अब इसका फल देता हूँ, भले प्रकार उसका भोग करो । ब्रह्माजी ने कहा—यह कह कर वीरभद्र तीक्ष्ण बाणों से देवताओं पर प्रहार करने लगा । उस समय उनकी चोट से इन्द्रादि देवता अत्यन्त व्यथित हुए । ३७ । फिर वे दशों दिशाओं में भागने लगे । लोकपालों को भागा हुआ देखकर वीरभद्र गणों के सहित यज्ञशाला में आया । ३८ । तब सभी ऋषि भगवान नारायण के पास पहुँचे और भय के कारण शीघ्रता से बोले ।३६। ऋषियों ने कहा—हे लक्ष्मीपते ! हे महाप्रभो ! आप साक्षात यज्ञ स्वरूप हैं, दक्ष के इस यज्ञ की रक्षा कीजिये । ४० । आप ही यज्ञ के अंग यज्ञ स्वरूप तथा यज्ञ रक्षक हैं, अतः आप यज्ञ की रक्षा कीजिए आप के अतिरिक्त कौन रक्षा करने में समर्थ है ? । ४१ । ब्रह्माजी ने कहा— उन ऋषियों के यह वचन सुनकर वीरभद्र से भयभीत हुए विष्णु उससे युद्ध करने का विचार करने लगे । ४२-४३ ।

चतुर्भुजः सुसंनद्धो चक्रायुधधरः करैः ।
महाबलोऽमरगणैर्यज्ञवाटात्स निर्ययौ ॥४४
वीरभद्रः शूलपाणिर्नानाबलसमन्वितः ।
ददर्श विष्णुं संनद्धं योद्धुकामं महाप्रभुम् ॥४५
तं दृष्ट्वा वीरभद्राऽभूद्भ्रकुटीकुटिलाननः ।
कृतांत इव पापिष्ठं मृगेन्द्र इव वारणम् ॥४६
तथापिधं हरिं दृष्ट्वा वीरभद्रोऽरिमर्दनः ।
अत्रदत्वरितः क्रुद्धो गणैर्वीरैः समावृतः ॥४७
रे रे हरे महादेवशपथोल्लंघनं त्वया ।
कथमद्य कृतं चित्त गर्वः किमभयत्तव ॥४८
तवं श्रीरुद्रदपथोल्लंखन शक्तिरस्ति किम् ।
को वा त्वमसि को वा ते रक्षकोऽस्ति जगत्त्रयये ॥४६

अत्र त्वमागतः कस्माद्वयं तन्नैव विद्यहे ।
दक्षस्य यज्ञपाता त्वं कथं जातोऽसि तद्वद ।।५०

वे चार भुजाधारी, सुदर्शन चक्र धारण किये, महाबलव व देवताओं को साथ लेकर यज्ञशाला से बाहर निकले। इधर गणों के सहित त्रिशूल हाथ में लिए वीरभद्र ने विष्णु को युद्ध की इच्छा से आते देखा ।४४। विष्णु को देखते ही वीरभद्र ने टेढ़ी भौंह करके उन्हें देखा, जैसे काल किसी पापी को अथवा सिंह किसी हाथी को देखता है ।४५। इस प्रकार वीरों से घिरे शत्रु संहारक वीरभद्र ने विष्णु की ओर देखा और क्रोध-पूर्वक शीघ्रता से कहा ।४६। हे विष्णु ! तुमने शंकर की शपथ का उल्लंघन, किस अभिमान के वशीभूत होकर किया है ? ।४७। क्या शिवजी की शपथ को तोड़ने में तुम समर्थ हो ? तुम कौन हो ? तीनों लोकों में तुम्हारी रक्षा करने वाला कौन है ? ।४८। मैं नहीं जानता कि तुम यहाँ कैसे आये ? तुम दक्ष-यज्ञ की रक्षा कैसे कर सकते हो ? यह मुझे बताओ ।४९-५०।

दाक्षायण्या कृतं यच्च तन्न दृष्ट किमु त्वया ।
प्रोक्तं यच्च दधीचेन श्रुतं तन्नाकिप्र त्वया ।।५१
त्वञ्चापि दक्षयज्ञेऽस्मिन्नवदानार्थमागतः ।
अवदानं प्रयच्छामि तव चापि महाभुज ।।५२
वक्षो विदारयिष्यामि त्रिशूलेन हरे तव ।
कस्तवास्ति समायातो रक्षकोऽद्य ममांतिकम् ।।५३
पातयिष्यामि भूपृष्ठ ज्वालयिष्याति वह्निना ।
दुग्धं भवंतमधुना पेषयिष्यामि सत्वरम् ।।५४
रे रे हरे दुराचार महेशविमुखाधम ।
श्रीमहारुद्रमाहात्म्यं किन्न जानासि पावनम् ।५५
अथापि त्वं महाबाहो योद्धुकोऽग्रतः स्थितः ।
नेष्यामि पुनरावृत्ति यदि तिष्ठेस्त्वमात्मना ।।५६
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वीरभद्रस्य बुद्धिमान् ।
उवाच विहसनप्रीत्या विस्णुस्तत्र सुरेश्वरः ।।५७

सती ने जो कुछ किया, क्या उसे तुमने नहीं देखा ? क्या दधीचि के वाक्यों को तुमने नहीं सुना ? क्या तुम भी दक्ष के यज्ञ में कुत्सित दान ग्रहण करने आये हो ? लो तुम्हें मैं इसका कुत्सित दान देता हूँ ।५१। हे विष्णो ! मैं तुम्हारे हृदय को त्रिशूल से विदीर्ण कर दूँगा, तुम्हारा जो रक्षक हो उसे भी मेरे निकट बुला लो ।५२। मैं तुम्हें पृथिवी में डाल कर जला दूँगा तथा भस्म करके पीस डालूँगा ।५३। हे दुराचारी विष्णु ! हे शिव-विमुख अधम ! क्या तुम शिवजी के पवित्र महात्म्य से अनभिज्ञ हो ? ।५४। फिर भी तुम युद्ध की इच्छा से आगे बढ़े हो, यदि यदि यहाँ ठहरे तो मैं तुम्हें ऐसे स्थान को भेज दूँगा, जहाँ से फिर लौटना न पड़े ।५५। ब्रह्माजी ने कहा—वीरभद्र की बात सुनकर देवाधिदेव भगवान विष्णु हँसते हुए बोले ।५६-५७।

शृणु त्वं वीरभद्राद्य प्रवक्ष्यामि त्वदग्रतः ।
न रुद्रविमुखं मा त्वं वद शंकरसेवकम् ।।५८
अनेन प्राथितः पूर्व यज्ञार्थं च पुनः पुनः ।
दक्षणाविदितार्थेन कर्मनिष्ठेन मौढ्यतः ।।५९
अहं भक्तपराधीनस्तथा सोऽपि महेश्वरः ।
दक्षो भक्तो हि तात तस्मादत्रागतो मखे ।।६०
शृणु प्रतिज्ञां से वीर रुद्रकोपसमुद्भव ।
रुद्रतेजःस्वरूपो हि सुप्रतापालाय प्रभो ।।६१
अहं निवारयामि त्वां त्व च मां विनवारय ।
तद्भविष्यति यद्भावि करिष्येऽहं पराक्रमम् ।।६२
इत्युक्तवति गोविन्दे प्रहस्य स महाभुजः ।
अवदत्सुप्रसन्नोऽस्मि त्वां ज्ञात्वाऽस्मत्प्रभोः प्रियम् ।।६३
ततो विहस्य सुप्रीतो वीरभद्रा गणागणीः ।
प्रश्रयावदतोऽवादीद्विष्णुं देवं हि तत्वतः ।।६४

विष्णु ने कहा—हे वीरभद्र ! मैं तुम्हारे प्रति तत्व कहता हूँ, तुम मुझ शिव सेवक को शिव के विरुद्ध मत समझो। इस दक्ष ने यज्ञ के लिए बहुत बार प्रार्थना की थी. अवश्य ही यह कर्मनिष्ठ है, परन्तु

मूर्खता कर बैठा है । ८ । मैं भक्तों के आधीन हूँ, शिवजी भी भक्तों के आधीन हैं । दक्ष मेरा भक्त है, इसीलिए उसके यज्ञ में मैं आया हूँ ।५९। तुम रुद्र कोप से उत्पन्न हुए हो, शिव प्रताप के निवाए तथा उन्हीं के तेज से प्रकट हो, मेरी प्रतिज्ञा को सुनो ।६०। मैं तुमको निवारण करूँ और तुम मुझे निवारण करो, फिर जो होना है वह तो होगा ही । मैं पराक्रम करूँगा ।६१। ब्रह्माजी ने कहा—नारायण के इस प्रकार कहने पर महाभुज वीरभद्र ने कहा कि आसको अपने प्रभु का प्रिय जान कर मैं प्रसन्न हूं । ६२ । फिर गणों में अग्रहणी वीरभद्र नम्रता पूर्वक भगवान विष्णु से कहने लगा । ६३-६४

तव भावपरीक्षार्थमित्युक्तं मे महाप्रभो ।
इदानीं तत्वतो वच्मि श्रृणु त्वं सावधानतः ।।६५
यथा शिवस्तथा त्वं हि यथा त्वं च तथा शिव ।
एति वेदा वर्णयति शिवशासानतो हरे ।।६६
शिवाज्ञया वयं सर्वेसेवकाः शंकरस्य वैः ।
तथापि च रमानाथ प्रवादोचितमादरान् ।।६७
तच्छुत्या वचनं तस्य वीरभद्रस्य सोऽच्युतः ।
प्रहस्य चेदं प्रोवाछ वीरभद्रहितं वचः ।।६८
युद्धं कुरु प्रहावीर माया सार्द्धमशंकितः ।
तवास्त्रैः पूर्णमाणोऽहं गमिष्यामि स्वमाश्रमम् ।।६९
इत्युक्त्वा विरम्यासौ सन्नद्धोऽभूद्रणाय च ।
स्वगणैर्वीरभद्रोऽपि सन्नद्धोऽभून्महाबलः ।।७०

उसने कहा—हे प्रभो ! आपकी भाव परीक्षा के लिए ही मैंने वह बात कही थी, अब मैं जो बात विचार पूर्वक कह रहा हूँ उसे ध्यान से सुनो । जैसे शिव हैं, वैसे ही आप हैं और जैसे आप वैसे ही शिव हैं क्षिवजी की आज्ञा से वेदों का ऐसा कथन है । ६५ । हे लक्ष्मीपते ! शिवाज्ञा से हम सभी उनके सेवक हैं, इसलिए आदर सहित यह बात कहना उचित है ।६६। ब्रह्माजी ने कहा - वीरभद्र की बात सुनकर भगवान विष्णु ने हँसते हुए वीरभद्र के प्रति कहा ।६७। विष्णु ने

कहा—हे महाबले ! शका रहित होकर मेरे साथ युद्ध करो मैं तुम्हारे अस्त्रों से परिपूर्ण होकर अपने स्थान को गमन करूँगा ।६८। ब्रह्माजी ने कहा यह कह कर विष्णु भगवान सग्राम के लिए तत्पर हुए तथा महाबली वीरभद्र भी अपने गणों के सहित युद्ध के लिए तत्पर हुआ। ।६९-७०।

॥ देवताओं की पराजय और दक्ष का शिर का काटा जाना ॥

वीरभद्रोऽथ युद्धे वै विणुना महाबल।।
स्मृत्य शङ्करं चित्ते सर्वापद्विनिवारणम् ।।१
आरुह्य स्यंदनं दिव्यं सर्ववैरिविसदंनः।
गृहीत्वा परमास्त्राणि सिंहनादं जगर्ज ह ।।२
विष्णुश्चापि महाघोषं पांचजन्याभिधं निजम्।
दध्मौ वली महाशंखं स्वकीयान् हर्षयन्निव ।।३
तच्छ्रुत्वा शंखनिर्ह्लादं देवा ये च पलायिताः।
रणं हित्वा गत पूर्वं ते द्रुतं पुनरायग्रु ।।४
वीरभद्रगणैस्तेषां लोकापालाः सवासवाः।
युद्धाञ्चक्रुस्तथा सिंहनादं कृत्वा बलान्विताः ।।५
गणानां लाकपालानां द्वंद्वयुद्धं भयावहम्।
अभवत्तत्र तुमुलं गर्जतां सिंहनादतः ।।६
नंदिना युयुधे शक्रोऽनलो वै चाश्मना तथा।
कुबेरोऽपि हिं कूष्मांडपतिना युयुधे वली ।।७

ब्रह्माजी ने कहा—उस समय वीरभद्र भगवान शंकर का स्मरण करता हुआ नारायण के साथ संग्राम करने को तत्पर हुआ । १ । सब शत्रुओं का संहारक वीरभद्र दिव्य रथ पर आरूढ़ होकर परम अस्त्र ग्रहण करता हुआ सिंहनाद करने लगा । २ । इधर महाबली नारायण ने अपने पक्ष के देवताओं को साथ ले पांचजन्य शंख का महानाद किया । ३ । जो देवता रण-भूमि से भाग गये थे, वे उस शंखनाद को सुनकर पुनः आगये । ४ । फिर इन्द्रादि सभी लोकपाल उच्च स्वर से सिंहनाद कर भद्र के साथ सग्राम करने लगे ।५। सिंहनाद करके

गरजते हुए गणों और लोकपालों का अत्यन्त भयानक संग्राम हुआ ।६। नन्दी के साथ इन्द्र, अनल के साथ वैष्णव और कूष्माण्डपति के साथ कुबेर आदि का संग्राम होने लगा ।७।

तदेन्द्रेण हतो नन्दी वज्रेण शतपर्वणा ॥८
नन्दिना च हतः शक्रस्त्रिशूलेन स्तनांतरे ।९
बलिनौ द्वावपि प्रीत्या युयुधाते परस्परम् ।
ताना घातानि कुर्वंतौ दन्दशक्रौ जिगीषया ॥१०
शक्त्या जघान चाश्मान परमकोपनः ।
सोऽपि शूलेन तं वेगाच्छितधारेण पावकम् ॥११
यमेन सह संग्रामं महालोको गणाग्रणीः ।
चकार तुमुलं वीरो महादेवं स्मरन्मुदा ॥१२
नैर्ऋतेन समागम्य चंडश्च बजवत्तरः ।
युयुधे पपमास्त्रैश्च नैर्ऋति निविडबयन् ॥१३
वरुणेन समं वीरो मुडश्चैव महावलः ।
युयुधे परया शक्त्यां त्रिलोकीं विस्मयन्निष ॥१४

इन्द्र ने अपने सौ पर्व वाले वज्र से नन्दी पर आघात किया ।८। नन्दी ने भी अपने त्रिशूल से इन्द्र की छाती पर प्रहार किया ।९। दोनों वीर अत्यन्त उत्साह पूर्वक परस्पर संग्राम करने लगे । नन्दी और इन्द्र दोनों ही एक दूसरे को हराने के विचार से अनेक कौशल कर रहे थे ।१०। अत्यन्त क्रोधी अग्नि ने अश्मा को शक्ति से मारा और उसने भी अत्यन्त वेग से अपने सौधार वाले त्रिशूल से अग्नि पर प्रहार किया ।११। यम के साथ महालोक नामक गण भगवान् शिव का स्मरण करता हुआ युद्ध कर रहा था ।१२। वीर चण्ड ने नैर्ऋत के साथ परमास्त्रों से युद्ध प्रारम्भ किया ।१३। वरुण से वीरमुण्ड भिड़ गया इनके युद्ध कौशल से तीनों लोक विस्मयपूर्ण थे ।१४।

वायुना च हतो भृङ्गी स्वास्त्रेण परमौजसा ।
भृङ्गिणा च हतो वायुस्त्रिशूलेन प्रतापिना ॥१५

कुवेरणैव संगम्य कूष्मांडपतिरादरात ।
युयुधे वलवान्वीरो ध्यात्वा हृदि महेश्वरम् ॥१६
योगिनीचक्रसंयुक्तो भैरवीनायको महान् ।
विदार्य्य देवनखिलान् पपौ शोणितमद्भुतम् ॥१७
क्षेत्रपालास्तथा तत्र बुभुक्षः सुरपुंगवान् ।
काली चापि विदार्यैव तान्पपौ रुधिरं गहु ॥१८
अथ विष्णुर्मसातेजा युयुधे तैश्च शत्रुहा ।
चक्रं चिक्षेप वेगेन दहन्विव दशो दिशा ॥१९
क्षेत्रपालः समायांतं चक्रमालोक्य वेगतः ।
तत्रागत्यागतो वीरश्चाग्रसत्सहसा बली ॥२०
चक्रं ग्रसितमालोक्य विष्णुः परपुञ्जयः ।
मुख तस्य परामृज्य तयुद्गालितवानरिम् ॥२१

भृंगी पर वायु ने अपने परमास्त्र का प्रयोग किया और वायु पर भृंगी ने अपने अत्यन्त प्रतापी त्रिशूल से प्रहार किया ।१५। कूष्माण्डपति ने अत्यन्त उत्साह से शिवजी का ध्यान कर कूवेर के साथ युद्ध किया। ।१६। योगिनी चक्र सहित भैरवी ने सब देवताओं को द्रवित कर उनका रक्त पीना आरम्भ कर दिया ।१७। इसी प्रकार क्षेत्रपाल ने भी देवताओं का भक्षण आरम्भ किया और काली भी उनका हृदय विदीर्ण कर रक्त-पान करने लगी ।१८। इधर भगवान नारायण भी युद्ध रत हुए दशों दिशाओं को भस्म करते हुए चक्र से प्रहार करने लगे ।१९। उस चक्र को वेगपूर्वक आता हुआ देखकर क्षेत्रपाल ने सम्मुख होकर उसका ग्रास कर लिया ।२०। शत्रु पुरों के विजेता नारायण ने जब अपने चक्र का ग्रास हुआ देखा, तब उसके मुख को पकड़ कर चक्र को उगलवाया ।२१।

स्वचक्रमादाय महानुभावश्चचुकोप चातीव भवैकभर्त्ता ।
महावली तैर्युयुधे प्रवीरैः संक्रुद्धनानायुधधारकोऽस्त्रैः ॥२२
चक्रे महारणं विष्णुस्तैः सार्द्धं युयुधे मुदा ।
नाना युधानि सक्षिप्य तुमुलं भीमविक्रमम् ॥२३

अथ ये भैरवाद्याश्च युयुधुस्तेन भूरिशः ।
नानास्त्राणि विमुंचतः संक्रुद्धाः परमौजसा ।।२४
इत्थं तस्या रण दृष्ट्वा हरिणाऽतुलतेजसा ।
विनिवृत्य समागम्य तान्स्वयं युयुधे बली ।।२५
अथा विष्णुर्महातेजाश्चक्रमुद्यम्य मूर्छितः ।
युयुधे भगवांस्तेन वीरभद्रेण माधव ।।२६
तयोः समभवद्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम्
महाविरब्धिपत्योस्तु नानास्त्रधरयोर्मुने ।।२७
विष्णोर्योगबलात्तस्य देहादेव सुदारुणाः ।
शखचक्रगदाहस्ता असंख्याताश्च जज्ञिरे ।।२८

फिर जगद्दीश्वर विष्णु अत्यन्त क्रोध में भरकर अनेक प्रकार के अस्त्र-शत्र धारण कर वेग से युद्ध करने लगे । २२ । उत्साहपूर्वक संग्राम करते हुए भगवान को बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्र चलाये । २३ । भैरव आदि अत्यन्त क्रोधपूर्वक उनके युद्ध करते हुए चलाने लगे । २४ । इस प्रकार उनका युद्ध देखकर भगवान विष्णु भी पुनः वेग से संग्राम करने लगे लगे ।२५। फिर उन्होंने सुदर्शन चक्र ग्रहण कर अत्यन्त वेगपूर्वक वीरभद्र के साथ युद्ध प्रारम्भ किया । २६ । उन दोनों में अत्यन्त घोर संग्राम हुआ उस समय नारायण ने अनेक प्रकार के अस्त्रों से प्रहार किया । २७ । विष्णुजी के देह से योगबल के कारण शंख, चक्र और गदाधारी असंख्य वीर उत्पन्न हो गए ।२८।

ते चापि युयुधुस्तेन वीरद्रेण भाषया ।
विष्णुवद्बलवतो हि तानायुधधरा गणाः ।।२९
तान्सर्वानपि वरोऽसौ नारायणसमप्रभान् ।
भस्मीचकार शूलेन हत्वा स्मृत्वा शिवं प्रभुम् ।।३०
ततश्चोरचि तं विष्णुं जीलयेव रणाजिरे ।
जघान वीरभद्रो हि त्रिशूलेन महाबलो ।।३१
तेन घातेन सहसा विहतः पुरषोत्तमः ।

पपात च तदा भूमौ विसंज्ञोऽभन्मुने हरिः ।।३२
ततो जज्ञेऽद्भुत तेजः प्रलयानलसन्निभम् ।
त्रैलोक्यदाहकं तीव्रं वीराणामपि भीकरम् ।।३३
क्रोधरक्तेक्षणः श्रीमान् पुनरुत्थाय स प्रभुः।
प्रहर्तुं चक्रमुद्यम्य ह्यतिष्ठत्पुरुषर्षभः ।।३४
तस्य चक्रं महारौद्रं कालादित्यसमप्रभम् ।
व्यष्टभयददीनात्मा वीरभद्रः शिवः प्रभुः ।।३५

वे सभी नारायण के समान महाबली और अनेक प्रकार के हथियार धारण किए हुए थे, वे सब वीरभद्र के साथ भिड़ गए।२६। वे सभी महाबली भगवान के समान ही प्रभावशाली थे परन्तु वीरभद्र ने रुद्र का स्मरण कर उन सभी को त्रिशूल से भस्म कर दिया। ३०। फिर उस महाबली वीरभद्र ने भगवान विष्णु पर अपने त्रिशूल से प्रहार किया।३१। उस आघात से ताडित हुए नारायण सहसा मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े। ३२। उस समय वीरों के लिए भयदायक प्रलयाग्नि के समान तीनों लोकों को भस्म करने वाला तेज प्रकट हुआ। ३३। क्रोध के कारण रक्त वर्ण हुए नेत्र वाले भगवान विष्णु पुनः उठकर चक्र ग्रहण कर वीरभद्र को मारने के लिए उद्यत हुए।३४। उस चक्र को वीरभद्र ने काल-रूपी सूर्य के समान कान्तिमान होकर स्तम्भित कर दिया।३५।

मुने शंभोः प्रभावात्तु यायेशस्य महाप्रभोः ।
न चचाल हरेश्चक्रं करस्थ स्तंभित ध्रुवम् ।।३६
अथ विष्णुगणेशेन वीरभद्रेण भाषता ।
अतिष्ठत्स्तंभिस्तेन शृंगवानिव निश्चलः ।।३७
ततो विष्णुः स्तंभित हि वीरभद्रेण नारद ।
यज्वोपमंणिमनो नीरस्तंभनकारकम् ।।३८
ततः स्तंभनमिमुक्तः शार्ङ्गधन्वा रमेश्वरः ।
शार्ङ्गं जग्राह स क्रुद्धः स्वधनुः सशरं मुने ।।३९
त्रिभिश्च धर्षितं बाणस्तेन शार्ङ्गधनुर्हरेः ।

वीरभद्रेण तत्तात विधाऽत्तभूत्क्षणान्मुने ॥४०
अथविष्णुर्महावाण्या बोधितस्तं महागणम् ।
असह्यवर्चस ज्ञात्वा ह्यंतर्धातुं मनो दधे ॥४१
ज्ञात्वा च तत्सर्वमिदं सनीकृतं दुष्प्रसहं परेषाम् ।
गतताः स्वलोकंस्वगणान्वितास्तुस्मृत्वाशिवंसर्वपतिस्वतंत्रम् ॥४२

भगवान माया के स्वामी शिवजी के प्रभाव से विष्णु के हाथ का सुदर्शन चक्र स्तम्भित हो गया ।३६। उस समय गणेश्वर वीरभद्र के द्वारा स्तम्भित हुए भगवान नारायण पर्वत के समान निश्चल हो गये ।३७। हे नारदजी ! जब वीरभद्र ने विष्णु को स्तम्भित कर दिया, तब वे यज्ञ-मन्त्र के द्वारा स्तम्भन से मुक्त हुए ।३८। जब शार्ंगधनुधारी भगवान स्तम्भन से मुक्त हो गये तब उन्होंने शार्ंगधनुष ग्रहण कर उस पर बाण चढ़ाया ।३९। उस धनुष से निकले हुए तीन बाणों से ताड़ित हुए वीरभद्र ने उनको तीन प्रकार से ही काट डाला ।४०। तब मैंने और सरस्वती ने उस गण के विषय में विष्णु को बताया और उसे असह्य तेज वाला बताकर अन्तर्धान होने का संकेत किया ।४१। तब सती मरण के दुःसह पाप को जानकर भगवान विष्णु अपने स्वामी शिवजी का स्मरण करते हुए अपने किंकरों सहित निज लोक को गये ।४२।

सत्यलोकगतश्चाहं पुत्रशोकेन पीडितः ।
अचिंतयं सुदुःखार्तो मया किं कार्यमद्य वै ॥४३
विष्णु मयि गये चैव देवाश्च मुनिभिः सह ।
विनिर्जिता गणैः सर्वे ये ते यज्ञोपजीविनः ॥४४
तमुपद्रवमालक्ष्य विध्वस्तं च महामखम् ।
मृगस्वरूपा यज्ञो हि महाभीतोऽपि दुद्रुवे ॥४५
त त्दा मृगरूपेण धावंतं गगनं प्रति ।
वीरभद्रः समादाय विशिरस्कमथाकरोत् ॥४६
ततः प्रजापति धर्मं कश्यपं च प्रगृह्य सः ।
अरिष्टनेमिन वीरो वहुपुत्रं मुनीश्चरम् ॥४७
मुनिमंगिरसं चैव कृशाश्व च महागणः ।

जघान मूर्ध्नि पादेन दत्त च मुनिपुंगवम् ॥४८
सरस्वत्याश्च नासाग्रं देवमातु तथैव च।
चिच्छेद करजाग्रेणव वीरभद्रः प्रतापवान् ॥४९

मैं भी पुत्र शोक में सन्तप्त हुआ सत्य-लोक को गया और दुखी चित्त से सोचने लगा कि अब क्या किया जाय? ।४३। जब मैं और विष्णुजी वहाँ से चले गये तब वीरभद्र ने यज्ञ के सब देवताओं और मुनियो पर विजय प्राप्त कर ली ।४४। इस घोर उत्पात और यज्ञ को ध्वस्त हुआ देखकर यज्ञ भी अत्यन्त भयभीत होकर मृग रूप धारण कर वहाँ से भाग गया ।४५। जब मृग रूप धारण कर वह आकाश मार्ग में दौड़ा तभी वीरभद ने पकड़कर उसका शीश काट डाला ।४६। फिर प्रजापति, धम, कश्यप, अरिष्टनेमि और बहुपुत्र मुनि ।४७। आंगिरस और कृशाश्वमुनि का पकड़ कर इनके शिरो पर पाँव की ठोकर मारी ।४८। सरस्वती, देवमाता की नाक का छेदन कर दिया, वीरभद्र ने यह काय अपने हस्तकोशल से किया ।४९।

ततोऽन्यानपि देवादीन् विदार्य पृथिवीतले।
पातयामास सोऽय व क्रोधाक्रांताातलोचनः ॥५०
वीरभद्रो विदार्य्यापि देवान्मुख्यान्मुनीनपि।
नाभूच्छातो द्रुतक्रोधः फणिराढिब मांडतः ॥५१
वीरभद्रोद्धधृताराातः कसरावव नद्विपान्।
दिशो विलोकयामास कः पुत्रास्तीत्यनुक्षणम् ॥५२
व्यपोथतद्भृगुं यावन्मणिभद्रः प्रतापवान्।
पदाक्रम्योरास यदाऽकाषीत्तच्छमश्रुलचनम् ॥५३
चडश्चोत्पाटयायास पूष्णो दंतान् प्रवेवतः।
शप्यमाने हरे पूर्वं योऽहसद्दर्शयन्दतः ॥५४
नन्दी भगस्य नेत्र हि पातितस्य रुषा भुवि।
उज्जहार दक्षमक्ष्णा यः शपंतमसूसुचत् ॥५५
विडंबिता स्वधा तत्रसा स्वहा दाक्षणा तथा।
मत्रास्तंत्रास्तथा च न्ये तत्रस्था गणनायकः ॥५६

फिर अन्य बहुत से देवताओं को विदीर्ण कर धराशायी कर डाया ।५२। इस प्रकार मुख्य देवताओं और मुनियों को विदीर्ण करके भी क्रोधित अहिराज के समान शान्त नहीं हुआ ।५१। जैसे सिंह जंगल के हथियारों को भगाकर चारों ओर देखता है, जैसे ही वीरभद्र देखने लगा ।५२। उस समय तक प्रतापी शिवगण मणिभद्र ने भृगु को पटक कर, उनकी छाती पर पैर रखा और दाढ़ी उखाड़ ली ।५२। चण्ड ने अत्यन्त वेग से पूषा के दाँत उखाड़ डाले, क्योंकि शिव का निरादर होने पर दाँत खोलकर प्रथम वही हँसा था ।५३। नन्दी ने क्रोधपूर्वक भग देवता के नेत्र निकाल लिये, क्योंकि उसने दक्ष के कारण शिव-निन्दा में भाग लिया था ।५५। जितने भी स्वधा, स्वहा, दक्षिणा, मन्त्र-तन्त्र आदि थे उन सभी पर प्रकार किये गये ।५६।

ववृषुस्ते पुरीषाथि वितानाग्नौ रुषा गणाः ।
अनिर्वाच्य तदा चक्रुर्गणा वीरास्तमध्वरम् ।।५७
अंतर्वेद्यतरगत निलीन तद्भयादबलात् ।
आनिनाय समाज्ञाय वरभद्रे स्वभूसुतम् ।।५८
कपोलेऽस्य गृहीत्वा त खड्गेनापहृत शिरः ।
अभेद्यमभक्तस्य तच्च योगप्रभावतः ।।५९
अभेद्यं तच्छिरो मत्वा शस्त्रास्त्रैश्श्च तु सर्वशः ।
करेण त्रोटयामास पद्भ्यामाक्रम्य चोरसि ।।६०
तच्छिरस्तस्य दुष्टस्य दक्षस्य हरवैरिणः ।
अग्निकुंडे प्राचिक्षप वीरभद्रो गणाग्रणीः ।।६१
रेजे तदा वीतभद्रस्त्रिशूलं भ्रामयन्करे ।
क्रुद्धा रणाक्षसवर्ताः प्रज्वाल्य पर्वतोपमाः ।।६२
अनायासेन हत्वैतान् वीरभद्रस्ततोऽग्निना ।
ज्वालयमास संक्रोधो दीप्ताग्निः शलभानिव ।।६३

फिर गणों ने क्रोधपूर्वक वितानाग्नि पर मल वृद्धि की और दक्ष यज्ञ को अनिर्वाच्य कर दिया ।५७। बलवान वीरभद्र के भय से दक्ष अन्तर्वेदी में छुप गया था, यह जानकर वीरभद्र उसे वहाँ से पकड़

लाया ।५८। और कपोल पकड़ कर उस पर खड्ग से वार किया, परन्तु योगबल के कारण उसका शीश अभेद्य हो गया । ५६ । जब वीरभद्र ने शस्त्रास्त्रों से उसके सिर का काटा जाना असम्भव देखा तब उसकी छाती पर पाँव रखकर हाथ से शिर नोंच डाला । ६० । और उस शिव द्रोही के शिर को उसने अग्नि कुण्ड में डाल दिया । ३१ । उस समय त्रिशूल घुमाता हुआ वीरभद्र युद्ध स्थल में अत्यन्त सुशोभित हुआ तथा युद्ध की सवर्ताग्नि क्रोध पूर्वक सब कुछ भस्म करने लगी । ६२ । इस प्रकार वीरभद्र ने उन सबको उस जलती हुई अग्नि में शलभ के समान भस्म कर डाला ।६३।

वीरभद्रस्ततो दग्धान्दृष्ट्वा दक्षपुरोगमान् ।
अट्टाट्टहासमकरोत्पूरयश्च जगत्त्रयम् ॥६४
वीरश्रिया वृतस्तत्र ततो नन्दनसंभवा ।
पुष्पवृष्टिरभूद्दिव्या वीरभद्रे गणान्विते ॥६५
ववुर्गन्धवहाः शीताः सुगन्धासुखदा शनैः ।
देवदुंदुभयो नेदुः सममेव ततः परम् ॥६६
कैलासं स ययौ वीरः कृतकार्य्यस्ततः परम् ।
विनाशितदृढध्वांतो भानुमानिव सत्वरम् ॥६७
कृतकार्य्यवीरभद्रं दृष्ट्वा संतुष्टमानसः ।
शभुर्वीरगणाध्यक्षं चकार परमेश्वरः ॥६८

दक्ष आदि सभी को भस्म करके उसने तीनों लोकों को परिपूर्ण करने के लिए घोर अट्टहास किया ।६४। उस समय वीरभद्र विजयश्री से आवृत्त हुआ और उसके ऊपर पुष्पवृष्टि होने लगी तथा सभी शिवगण प्रसन्न हो गये ।६५। फिर शीतल सुगन्धित, सुख की देने वाली मन्द वायु चल-पड़ी, देवताओं के द्वारा दुंदुभी बजने लगीं । ६६ । कृतकार्य अन्धकार उसने नष्ट कर दिया ।६७। वीरभद्र को कार्य में सफल हुआ देखकर परमेश्वर शिव अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और उन्होंने उसे गणेश्वर बना दिया ।।६८।।

रुद्र-संहिता-पार्वतीखण्ड

शिव-पार्वती सम्वाद

किमुक्तं गिरिराजाय त्वया योगिस्तपस्विना ।
तदुत्तरं श्रृणु विभो मत्तो ज्ञानविशारद ॥१
पार्वत्यास्तद्वचः श्रुत्वा महोतिकरणे रतः ।
सुविहस्य प्रसन्नात्मा महेशो वाक्यमब्रवीत् ॥२
तपसा परमेणैव प्रकृति नाशयाम्यहम् ।
प्रकृत्या रहितः शम्भुरहं तिष्ठामि तत्त्वतः ॥३
तस्माच्च प्रकृतेः सद्भिर्न कार्यः संग्रहः क्वचित् ।
स्थातव्य निर्विकारैश्च लोकाचारविवर्जितैः ॥४
इत्युक्ता शम्भुना तात लौकिकव्यवहारतः ।
सुविहस्य हृदा काली जगाद मधुरं वचः ॥५
युदुक्तं भवता योगिन्वचनं शंकर प्रभो ।
सा च किं प्रकृतिर्न स्यादतीतस्तां भवान्कथम् ॥६
एतद्विचार्य दक्तव्यं तत्वतो हि यथातथम् ।
प्रकृत्या सर्वमेतच्च वद्धमस्ति निरंतरम् ॥७

भवानी ने शिवजी से कहा — हे योगिराज ! हे ज्ञानयो में परम पण्डित ! हे व्यापक ! तपोनिष्ठ होते हुए आपने जो मेरे पिता से कहा था उसका उत्तर आप मुझ से सुनिये ।१। ब्रह्माजी ने कहा गौरी के इस वचन को सुनकर कठोर तपश्चर्या में निमग्न परम प्रसन्न चित्त वाले महेश्वर हँस कर कहने लगे ।२। महादेवजी ने कहा मैं अपनी उग्र तपस्या के द्वारा ही प्रकृति को नष्ट कर देता हूँ, मैं शंकर नाम धारी नित्य ही प्रकृति से रहित होकर स्थित रहा करता हूँ। और मेरी स्थिति तत्व से रहती है ।३। इसी कारण से जो सद्वृत्ति वाले पुरुष होते हैं उनको प्रकृति का संग्रह कभी भी न करके बिना विकार के लोक के

आधार से रहित होकर ही स्थित रहना चाहिये ।४। ब्रह्माजी ने कहा—हे तात ! शिवजी ने जिस समय लोक के व्यवहार के विषय में इस प्रकार कहा तो भगवती मनमें मुस्करा कर शिवजी से परम मधुर वचन कहने लगीं ।५। काली ने कहा—हे शङ्कर ! हे योगीवर्य ! प्रभो ! आपने इस समय जो भी कुछ कहा है क्या यह प्रकृति नहीं है ? फिर आप किस तरह प्रकृति से परे हो सकते हैं ।६। आप इसका भली भाँति विचार करके तत्व स्वरूप जो भी योग्य हो वही कहिये । यह सब तो सर्वदा प्रकृति से बंधा हुआ ही है ।७।

तस्मात्त्वया न वक्तव्यं न कार्यं किंचिदेव हि ।
वचनं रचन सर्व प्राकृतं विद्धि चेतसा ।।८
यच्छृणोषि यदश्नासि यत्पश्यसि करोषि यत् ।
तत्सर्वं प्रकृतेः कार्यं मिथ्यावादो निरर्थकः ।।९
प्रकृतेः परमश्केत्वं किमर्थं तप्यसे तपः ।
त्वया शम्भोऽधुना ह्यास्मिन्गिरौ हिमवति प्रभो ।।१०
प्रकृत्या गिलितोऽसि त्वं न जानासि निजं हर ।
निजं जानासि चेदीश किमथ तप्यते तपः ।।११
वाग्वादेन च किं कार्यं मम योगिस्त्वया सह ।
प्रत्यक्षे ह्यनुमानस्य न प्रमाणं विदुर्बुधाः ।।१२
इन्द्रियाणां गोचरत्वं यावद्भवति देहिनाम् ।
तावत्सर्वं विमतव्यं प्राकृतं ज्ञानिभिर्धिया ।।१३
किं बहूक्तेन योगीश शृणु मद्वचनं परम् ।
सा चाहं पुरुषोऽसि त्वं सत्यं न संशयः ।।१४

अतएव यह बात तो कभी भी आ को कहना ही नहीं चाहिये कि प्रकृति से कुछ मतलब ही नहीं है । संसार में समस्त रचना एवं वचन आदि प्रकृति से ही हैं, इसे आप अच्छी तरह जान लेवें ।८। आपका श्रवण-भोजन और दर्शन आदि जो कुछ भी होता है यह सभी कुछ इस प्रकृति का ही कार्य कलाप है, मिथ्यावाद करना निरर्थक है ।९। यदि आप अपने आपको प्रकृति से पर मानते या कहते हैं तो हे प्रभो मैं !

गह जिज्ञासा रखती हूँ कि आपको तप से क्या प्रयोजन है और इस निर्जन स्थान में रहकर तपस्या करने की क्या आवश्यकता में ? ॥१०॥ हे शम्भो ! प्रकृति से गलित हो जाने के कारण ही आप अपने स्वरूप को नहीं जानते हैं हे ईश ! यदि आपको निज का ही ज्ञान नहीं है तो फिर तपस्या किस लिये करते हैं ? ।११। हे योगिराज ! मेरा आप के साथ विवाद करने का कोई प्रयोजन नहीं है। जब किसी वस्तु का प्रत्यक्ष हो जाता है तो वहाँ विद्वान् लोग अनुमान को प्रणाम नहीं माना करते हैं। ।१२। शरीर धारण करने वालों को जब तक इन्द्रिय गोचर हुआ जाता है तब तक ज्ञानी लोगों को प्रज्ञा बल से सभी कुछ प्रकृति का कार्य जानना चाहिये । १३ । हे योगीश्वर ! ॥हाँ अधिक कथन की कोई आवश्यकता नहीं है, आप मेरे वचन सुनिये, मैं ही वह प्रकृति हूँ, यह सर्वथा सत्य है कि आप पुरुष हैं ॥ १४ ॥

मदनुग्रहतस्त्वं हि सुगणो रूपवान्मतः ।
मां विना त्वं निरीहोऽसि न किंचित्कर्तु महसि ॥१५
पराधीनः सदात्वं हि नानाकर्मकरो वशी ।
निर्विकारो कथं त्वं हि न लिप्तश्च मया कथम् ॥१६
प्रकृतेः परमोऽसि त्वं यदि सत्य वचस्तव ।
तर्हि त्वया न भेतव्यं समीपे मम शङ्कर ॥१७
इत्याकर्ण्यं वचस्तम्या सांख्यशास्त्रोदितंशिवः ।
वेदांतमतसंस्थो हि वाक्यमुचे चिवां प्रति ॥१८
इत्येवं त्वं यदि ब्रूषे गिरजे सांख्यधारिणि ।
प्रत्यह कुरु मे सेवामनिषिद्धां सुभाषिणि ॥१९
यद्यह ब्रह्म निर्लिप्यो मायया परमेश्वरः ।
वेदांतवेद्यो मायेशस्त्वं करिष्यसि किं तदा २०

यह मेरी ही कृपा का फल है कि आप सगुण ब्रह्म रूपधारी हुए है। मेरे अभाव में आप एक निरीह हैं आप में मेरे बिना कुछ भी करने की सामर्थ्य नहीं है । १५ । आप वशी हैं किन्तु ऐसा होते हुए भी आप अनेक प्रकार के कर्म किया करने हैं । आप विकार रहित किस प्रकार

है और मुझसे किस तरह नहीं रहते हैं ? ।१३। हे शंकर ! यदि प्रकृति से परे आप हैं और आपका प्रकृति से दूर रहने का कथन सर्वथा सत्य ही है तो फिर आपको मेरे सान्निध्य में रहने में कभी कोई भय नहीं होना चाहिए । १७ । ब्रह्माजी ने कहा—इस उक्त प्रकार से सांख्य शास्त्र से सम्मत भवानी की वचनावली सुनकर शिवजी देहान्त के सिद्धांत का आश्रय लेकर कहने लगे ।१८। शंकर ने कहा-हे गिरजे हे सुभाषिणी ! तुम इस तरह सांख्या-दर्शन के सिद्धान्त के अनुसार बोल रही हो तो तुम नित्यप्रति मेरी सेवा किया करो, मैं इसका निषेध तुम से कभी भी नहीं करता हूं । १९ । मैं माया से लिप्त न रहने वाला ब्रह्म परमेश्वर देहान्त दर्शन के द्वारा जानने के योग्य हूं । २०।

इत्येवमुक्त्वा गिरिजां वाक्यमुचे गिरिं प्रभुः ।
भक्तानुरजनकरो भक्तानुग्रहकारकः ॥२१
अत्रैव सोऽहं तपसः परेण गिरे तव प्रस्थवरेऽतिरम्ये ।
चरामि भूमौ परमार्थभावस्वरूपमानंदमयं सुलोचयन् ॥२२
तपस्ततुमनुज्ञा मे दातव्य पर्वताधिप ।
अनुज्ञया विना किंचित्तपः कर्तुं न शक्यते ॥२३
सांख्यवेदांतमतयः शिवयोः शिवदः सदा ।
संवादः सुखकृच्चोक्तोऽभिन्नयोः सुविचारतः ॥२४
गिरिराजस्य वचनात्तनयां तस्य शङ्करः ।
पार्श्वे समीपे जग्राह गौरवादपि गोपतिः।२५
उवाचेदं वचः कालीं सखीभ्यां सह गोपतिः ।
नित्य मां सेवतां यातु निर्भीता ह्यत्र तिष्ठतु ॥२६
ईवमुक्त्वा तु तां देवी सेवार्थं जगृहे हरः ।
निर्विकारो महायोगी नानालीलाकरः प्रभुः ॥२७
इदमेव सहद्धर्ष्यं धीराणां सुतपस्विनाम् ।
विघ्नवन्त्यपि संप्राप्य यद्विघ्नर्न विहन्यते ॥२८

ब्रह्माजी ने कहा—भगवान् शम्भु गौरी से इस प्रकार कहकर फिर गिरिराज से बोले—भगवान् सदा अपने भक्तों के ऊपर अनुग्रह किया

करते हैं और उन्हें प्रसन्न रखने वाले हैं ।२१। हे गिरिराज ! मैं तुम्हारे इस परम सुन्दर पर्वत-प्रदेश में तप करते हुये अपने स्वरूप का परमार्थ भगवान से चिन्तन करते हुये विचरण करूँगा ।२२। हे नगाधीश ! अब आपको मुझे तपश्चार्या करने की आज्ञा प्रदान कर देनी चाहिये। बिना आज्ञा के प्राप्त किये हुए किसी भी प्रकार की तपस्या नहीं की जा सकती है ।२३। साँख्य दर्शन और वेदान्त दर्शन के मत को स्वीकार करके शिव (गौरी) और शिव (शङ्कर) का यह पारस्परिक सम्वाद सुखप्रद बन गया है। वस्तुत: ये दोनों भिन्नता से रहित ही हैं ।२४। भगवान् शिव वे इन्द्रियजन्य विषय सुख से परे होते हुए भी नगाधीश के वचनों का गौरव रखते हुए भवानी को अपनी सेवा में रखना स्वीकार कर लिया था। ।२५। भगवान् शङ्कर ने अपनी सहेलियों के साथ रहने वाली भवानी से कहा कि तुम प्रतिदिन मेरी सेवा आकर किया करो और भय रहित होकर स्थित रहो ।२६। प्रभु शिव सर्वदा विकार रहित महा योगीश्वर और विविध प्रकार की लीलाएँ करने वाले हैं उन्होंने इसी रीति से पार्वती को अपनी सेवा में ग्रहण किया है ।२७। धीरतापूर्वक तपश्चर्या करने वालों का यही महान् धैर्य है जो अनेक विघ्न बाधाओं से विचलित नहीं हुआ करते हैं ।२८।

इन्द्र द्वारा कामदेव को शिव के पास भेजना

गतेषु तेषु देवेषु शक्रः सस्मार वै स्मरम् ।
पीडितस्तारकेनाति दैत्येन च दुरात्मना ॥१
आगतस्तत्क्षणात्काम सवसतो रतिप्रियः ।
सावलेपो युतो रत्या त्रैलोक्यविजयी प्रभुः ॥२
प्रणामं च ततः कृत्वा स्थित्वा तत्पुरतः स्मरः ।
महोन्नतमनास्तति सांजलिः शक्रमब्रवीत् ॥३
किं कार्यं ते समुत्पन्न स्मृतोऽहं केन हेतुना ।
तत्व कथय देवेश तत्कर्तुं समुपागतः ॥४
तच्छ्रुत्वा वचन तस्य कदर्पस्य सुरेश्वरः ।
उवाच वचनं प्रीत्या युक्त युक्तमिति स्तुवन् ॥५

तव साधु समारम्भो यन्मे कार्य्यमुपस्थितम् ।
तत्कर्तुं मुद्यतोऽसि त्वं धन्योऽसि मकरध्वज ॥६
न केवलं मदीयं च कार्य्यमस्ति सुखावहम् ।
किं तु सर्वसुरादीनां कार्य्यमेतन्न संशयः ॥७

ब्रह्माजी ने कहा—देवगण के चले जाने के पश्चात् दुरात्मा तारक नाम वाले असुर से परम पीड़ित होकर देवराज इन्द्र ने कामदेव का स्मरण किया ।१। उसी समय अपनी शक्ति से त्रिभुवन को वश में करने वाला रति-वल्लभ कामदेव रति और सखा-बसन्त के सहित अभिमान-पूर्वक उपस्थित होगया ।२। देवराज इन्द्र के सम्मुख उपस्थित होकर प्रणामपूर्वक कामदेव ने उन्नत मन से कहा ।३। हे महेन्द्र ! ऐसा कौनसा कार्य है जिसके लिए मुझे आज याद किया हैं ? आप मुझे अपनी आज्ञा देवें मैं शीघ्र ही उसका पालन करने के लिये सेवा में प्रस्तुत हूँ ।४। ब्रह्माजी ने कहा—रति-बल्लभ के इस प्रकार के वचन सुनकर इन्द्र को वहुत प्रसन्नता हुई और उसकी प्रशंसा करके उन्होंने यह कहा ।५। देव-राज ने कहा—हे मकरध्वज ! इस समय तुम्हारा यह आरम्भ अधिक उत्तम है और अब मेरे इस प्रस्तुत कार्य को पूर्ण करने के लिये जो तुम यहाँ सहर्ष उपस्थित हुए हो इसके लिये तुम परम धन्य हो ।६। यह केवल मुझे ही सुख देने वाला कार्य नहीं है अपितु यह समस्त देवगण का सुखप्रद कार्य है, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है ।७।

संकटे बहु यो ब्रूते स किं कार्य्यं वरिष्यति ।
तथापि च महाराज कथयामि शृणु प्रभो ॥८
पदं ते कर्षितुं यो वै तपस्तपति दारुणम् ।
पातयिष्याम्यहं तं च शत्रुं ते मित्र सर्वथा ॥९
क्षणेन भ्रंशयिष्यामि कटाक्षेण वरस्त्रियाः ।
देवर्षिदानवादींश्च नराणां गणना न मे ॥१०
वज्रं तिष्ठतु दूरे वः शस्त्राण्यन्यान्यनेकशः ।
किं ते कार्यं करिष्यन्ति मयि मित्र उपस्थिते ॥११
ब्रह्माणं वा हरिं वापि भ्रष्टं कुर्य्यां न संशयः ।

अन्येषां गणना नास्ति पातयेय हरं त्वपि ॥१२
पंचैव मृदवो बाणस्ते च पुष्पमया मम ।
चापस्त्रिधा पुष्पमय: शिंजिनीभ्रमरार्ज्जिता ॥१३
बलं सुदयिता मे वै वसन्त: सचिव: स्मृत: ।
अहं पंचबलो देवा मित्रं मम सुधानिधि: ॥१४

कामदेव ने कहा— हे महाराज ! सङ्कट के समय में अधिक बातें बोलने वाला व्यक्ति कुछ भी कार्य नहीं कर सकता है, तथापि मैं जो भीं कुछ निवेदन करता हूं इसे आप सुन लीजिए ।८। क्योंकि आप मेरे परम मित्र होते हैं,अतएव यदि कोई भी आपका पद प्राप्त करने के लिये तपस्या करता है तो मैं आपके उस शत्रु का निश्चय पतन कर दूगाँ ।९। चाहे कोई देवर्षि हो गया दानव भी क्यों न हो उसके तपोबल को ललनाओं के कटाक्षपात से क्षण भर में नष्ट-भ्रष्ट कर दूँगा, मनुष्य की तो बात ही क्या है इसका नष्ट कर देना बहुत ही साधारण काम है ।१०। आपके कठोर वज्र तथा अन्य शस्त्रास्त्र अलग ही रखें रहें मुझे जैसे शक्तिशाली मित्र के होने पर वे मेरा कुछ भी नहीं कर सकते हैं ।११। मैं अपनी अनाद्य शक्ति के द्वारा ब्रह्मा और विष्णु को भी तप से हिला सकता हूँ— शिव जैसे योगस्थ को भी कथिन समाधि से विचलित कर सकता हूँ अन्य विचारों की गिनती ही क्या है ।१२। मेरे कोमल पुष्पों के ये पाँच वाणु, तीन स्थानों में झुकी हुई कुसमों की धनुही, मधुकरों की गुंजार-रूपिणी प्रत्यञ्चा और सुन्दर रमणी ही मेरा बल हैं तथा ऋतुराज सहायक सखा है ॥ १३ ॥ मैं पाँच प्रकार के उपयुक्त बलों का देवता हूँ और राकापति चन्द्र मेरा घनिष्ट मित्र है ।१४।

सेनाधिपश्च श्रृङ्गारो हावभावश्च सैनिका: ।
सर्वे मे मृदव: शक्र अहं चापि तथाविध: ॥१५
यद्येन पूर्य्यते कार्य्यं धीमांस्तत्तेन योजयेत् ।
मम योग्यं तु यत्कार्य्यं सर्वं तन्मे नियोजय ॥१६
इत्येवं तु वचस्तस्य श्रुत्वा शक्र: सुहर्षित: ।
उवाच प्राणमन्वाचा कामं कांतासुखावहम् ॥१७

यत्कार्य्यं मनसोद्दिष्टं मया तात मनोभव ।
कर्त्तुं तत्त्वं समर्थोऽसि नान्यस्मात्तस्य सम्भवः ॥१८
तारकाख्यो महादैत्यो ब्रह्मणो वरमद्भुतम् ।
अभूदजेयः संप्राप्य सर्वेषामपि दुःखदः ॥१९
तेन संपीड्यते लोको नष्टा धर्मा ह्यनेकशः ।
दुःखिता निर्जराः सर्वे ऋषयश्च तथाखिलाः ॥२०
देवैश्च सकलैस्तेन कृत युद्धं यथाबलम् ।
सर्वेषां चायुधान्यत्र विफलान्यभवन्पुरा ॥२१

रसराज शृङ्गार मेरा सेनाध्यक्ष है और हाव-भाव की विविध चेष्टाएँ मेरे सैनिक हैं। हे देवराज ! ऊपर बताये हुए ये सभी मृदु स्वरूप वाले हैं और मैं स्वयं भी मृदल रूप वाला हूँ ।१५। मतिमान् का यही कर्त्तव्य होना चाहिये कि जो भी जिस कार्य के सम्पादन करने के योग्य हो उसे ही उस कार्य के पूर्ण करने में लगा देवे । मेरे करने के लायक जो भी कोई कार्य हो उसे पूर्ण करने के लिए आप मेरी नियुक्ति करे ।१६। ब्रह्माजी ने कहा—कामदेव की ऐसी वचनावली सुनकर इन्द्र को बहुत ही अधिक हर्ष हुआ और वह सर्षोद्गार वचन रूस में रमणियों को सुख देने वाले कामदेव से कहे ।१७। इन्द्र ने कामदेव से कहा—हे तात ! मैंने अपने मनमें जो सोचा है उसे एक मात्र तुम ही पूर्ण करने में समर्थ होते हो। अन्य किसी से भी उसका होना असम्भव है ॥१८॥ तारक नामधारी एक महान् दैत्य है जिसने ब्रह्माजी से अत्भुत वरदान प्राप्त कर लिया है और अब अजेय हो गया है ! उसे कोई भी युद्ध में जोत नहीं सका है। अब वह प्रबल बली होकर सबको दुःख देता रहता हैं ।१९। इस समय वह लोगों को बहुत पीड़ा दे रहा है। इसके कारण से बहुत से धर्म नष्ट हो गये हैं। समस्त देवता तथा ऋषि वृन्द इसके उत्पीडन से महा दुखी हो रहे हैं। २० । देवगण ने अपने बल से उसके साथ बहुत युद्ध किया किन्तु उसके सामने सब आयुध विफल होगये हैं ।२१।

भग्नः पाशो जलेशस्य हरिचक्रं सुदर्शनम् ।
तत्कुण्ठितमभूत्तस्य कण्ठे क्षिप्तं च विष्णुना ॥२२

एतस्य मरणं प्रोक्तं प्रजेशेन दुरात्मनः ।
शंभोर्वीर्योद्भवाद्बालान्महायोगीश्वरस्य हि ॥२३
एतत्कार्य्यं त्वया साधु कर्तव्यं सुप्रयत्नतः ।
ततः स्यान्मित्रवर्य्याति देवानां नः परं सुखम् ॥२४
ममापि विहितं तस्मात्सर्वलोकसुखावहम् ।
मित्रधर्मं हृदि स्मृत्वा कर्तुमर्हसि सांप्रतम् ॥२५
शंभुः स गिरिराजे हि तपः परममास्थितः ।
स प्रभुर्नापि कामेन स्वतन्त्रः परमेश्वरः ॥२६
तत्समीपे च देवार्थं पार्वती स्वसखीयुता ।
सेवमाना तिष्ठतीति पित्राज्ञया मया श्रुतम् ॥२७
यथा तस्यां रुचिस्तस्य शिवस्य नियतात्मनः ।
जायेत नितरां मार तथा कार्यं त्वया ध्रुवम् ॥२८

वरुण देव की प्रसिद्ध पाश उसके कण्ठ में आते ही टूट गई है और नारायण का अभेद्य सुदर्शन चक्र उसके कण्ठ को छूकर ही कुण्ठित हो गया है ।२२। इस दुष्ट महान् दैत्य की मृत्यु प्रजापति ने महा योगिराज शिवजी के वीर्य से समुत्पन्न पुत्र के द्वारा ही निर्धारित की है ।२३। हे मित्र ! इस कठिन कार्य का सम्पादन तुमको ही करना चाहिए तभी देवताओं को सर्वाधिक सुख का लाभ हो सकता है ।२४। समस्त लोकों को आनन्द देने वाला यह कर्म है ऐसा मैंने विचार किया है अतएव तुम अब अपने मनमें मित्र-धर्म का ध्यान करके इस कार्य को करो ।२५। शङ्करजी के हृदय में कोई भी कामना नहीं है और वे इस समय पर्वतों के राजा हिमालय पर घोर तपश्चर्या कर रहे हैं । भगवान् शिव परम स्वतन्त्र ईश्वर हैं ।२६। मैंने यह बात भी सुनी है कि पार्वती स्वयं उन्हें अपना पति बनाने की कामना से पिता की आज्ञा प्राप्त कर सखियों के सहित सर्वदा उनकी सन्निधि में सेवा के लिये प्रस्तुत रहा करती हैं ।२७। अतः हे रतिनाथ ! अब तुमको कोई ऐसा उपाय एवं कार्य अवश्य ही करना चाहिये जिससे शङ्कर भगवान् में पार्वती को पत्नी रूप से स्वीकार करने की रुचि उत्पन्न हो जावे ।२८।

इति कृत्वा कृती स्यास्त्वं सर्वं दुःखं विनंक्ष्यति ।
लोके स्थायी प्रतापस्ते भविष्यति न चान्यथा ।।२९
इत्युक्तः स कामो हि प्रफुल्लमुखपंकजः ।
प्रेम्णोवाचेति देवेशं करिष्यामि न संशय ।।३०
इत्युक्त्वा वचनं तस्मै तथेत्तोमिति तद्वचः ।
अग्रहोत्तरसा कामः शिवमायाविमोहितः ।।३१
यत्र योगीश्वरः साक्षात्तप्यते परमं तपः ।
जगाम तत्र सुप्रीतः सदारः सर्वसंतकः ।।३२

ऐसा कार्य करने से तुम समस्त दुःखों का नाश कर अपने जीवन में सफल हो जाओगे और निस्सन्देह संसार में तुम्हारा प्रताप फिर स्थायी हो जायगा ।२९। ब्रह्माजी ने कहा– इतनी सुनते ही कामदेव का मुख विकसित कमल की भाँति खिल उठा और बड़े ही प्रेम के साथ कहा कि यह आपका कार्य मैं निश्चय ही करूँगा ।३०। इसके पश्चात् 'ओ३म्' अर्थात् ऐसा ही होगा—ऐसा कहकर स्वीकृति दी । उस समय शिवजी की माया से मोहयुक्त होकर ही कामदेव ने इन्द्रदेव की इस बात को स्वीकार कर लिया था ।३१। जिस हिमालय के शिखर पर साक्षात् योगिराज शङ्कर घोर तपस्या में लीन समाधिस्थ थे वहाँ प्रसन्नचित काम-देव सुन्दरी पत्नी और सखा बसन्त को साथ लेकर गया ।३२।

काम द्वारा शिवजी में मोह उत्पन्न होना

तत्र गत्वा स्मरो गर्वी शिवमायः मोहितः ।
मोहकस्य मधोश्चदौ धर्म विस्तारयन्स्यित ।।१
वसंतस्य च यो धर्मः प्रससार स सर्वतः ।
तप स्थाने महेशस्यौषधिप्रस्थे मुनीश्वर ।।२
वनानि च प्रफुल्लानि पाद्रपानां महामुने ।
आसन्विशेषतस्तत्र तत्प्रभावान्मुनीश्वर ।
पुष्पाणि सहकाराणामशोकवनिकासु वै ।
विरेजुः सुस्मद्दीपकराणि सुरभीण्यपि ।।४

कैरवाणि च पुष्पाणि भ्रमराकलितानि च ।
वभूवुर्मदनावेशकरोणि च विशेषतः ॥५
सुकामोद्दीपनकरं कोकिलाकलकूजितम् ।
आसीदति सुरम्यं हि मनोहर मतिप्रियम् ॥६
भ्रमराणां तथा शब्दा विविधा अभवन्नूने ।
मनोहराश्च सर्वेषां कामोद्दीपकरा अपि ॥७

ब्रह्माजी ने कहा—शंकर की माया से मोहित होकर इस महाभिमानी मन्मथ ने मधु को साथ लेकर अपना मोहने वाला मायाजाल का प्रसार करना वहाँ पहुँच कर आरम्भ कर दिया ॥ १ ॥ मुनिवर ! जहाँ अनेक वनौशधियां उत्पन्न होती थी वहाँ ऋतुराज बसन्त का प्रभाव सर्वत्र फैलने लगा और उस महा महिम महेश्वर की तोपोभूमि पर बसन्त की पूर्ण महिमा दिखलाई देने लगी ।२। हे मुनिश्रेष्ठ ! कामदेव के सखा बसन्त के प्रभाव से उस भूमि के समस्त वृक्ष पुष्पित हो गये और एक विशेष प्रकार की छटा दिखाई दे रही थी । ३ । आम्र लतिकाओं से बौर निकल आये और अशोक-वाटिका विकसित हो गई तथा उनको मोहक सुगन्धित से काम-वासना का उद्दीपन होने लगा ।४। कैरव कुसुम मधुकरों की गूँज से शोभित हो गये और इन तभी कारणो से कामदेव का वेग बढ़ने लगा ।५। कोकिलों का कलरव काम-वासना को बढ़ाता हुआ परमप्रिय प्रतीत होने लगा । ६ । हे मुनिराज ! भ्रमरों की गुंजार उस समय अनेक प्रकार से हो रहीं थी जिसमें तापसों के हृदय ने भी काम-वाना जागृत होने लगी । ७ ।

चन्द्रस्य विशदा कांतिर्विकीर्णा हि सभततः ।
कामिनां कामिनीनां च दूतिका इव साऽभवत् ॥८
मानिनां प्रेरणाथासीत्तत्काले कालदीपिका ।
मारुतश्च सुखः साधौ ववौ विरहिणोऽप्रिय ॥९
एवं वसन्तविस्तारो मदनावेशकारकः ।
वनौकसां तदा तत्र मुनीनां दुःसहोऽत्यभूत् ॥१०
अचेतसामपि तदा कामसक्तिर भून्मुने ।

सुचेतसां हि जीवानां सति किं वर्ण्यते कथा ॥११
एवं चकार स मधुः स्वप्रभावं सुदुःसहम् ।
सर्वेषां चैव जीवानां कामोद्दीपनकारकः ॥१२
अकालनिर्मितं तात मधोर्वीक्ष्य हरस्तदा ।
आश्चर्यं परम मेने स्वलीलात्ततनुः प्रभुः ॥१३
अथ लीलाकरस्तत्र तपः परमदुष्करम् ।
तताप स वशीशो हि हरो दु खरहः प्रभुः ॥१४

सर्वत्र चन्द्रमा की चारुतम चाँदनी छिटक उठी जो कि कामी और कामिनियों के लिये दूतिकाओं के समान प्रतीत हो रही थी ।८। उस वक्त काम की उद्दीपक तथा मानी और माननीयों के मान का भजंन कर विहार करने को अग्रसर होने की प्रेरणा देने वाली, विरही जनों को अति अप्रिय वायु चलने लगी ।९। वहाँ उस समय बसन्त ऋतु का ऐसा विस्तार सर्वत्र छा गया कि तपोनिरत मुनियों के हृदय में भी काम की उद्दीप्त वासना जाग उठी और वनवासी मुनिजनों के लिये वह दुःसह्य हो गई ।१०। हे मुनिवर ! उस समय कुछ ऐसा प्रबल प्रभाव सर्वत्र फैल गया कि चेतना वाले प्रणियों की तो बात हो क्या है जो जड़ अचेतन थे उनमें भी काम की आसक्ति ने घर बना लिया ॥ ११ ॥ बसन्त ऋतु का ऐसा दुःसह्य प्रभाव सभी ओर फैल गया कि समस्त जीवों के हृदय में वहाँ पर अपह्य काम का उद्दीपन हो गया था ।१२। हे तात ! उस समय बिना प्राकृत काल के ऋतुराज का ऐसा चमत्कृत प्रभाव देकर भगवान शंकर अत्यन्त आश्चर्य करने लगे क्योंकि प्रभु ने तो लीला का विस्तार करने के लिये ही शरीर धारण किया है । १३ । उस समय सबका दुःख निवारण करने वाले शिवजी परम संयुत होकर लीलापूर्वक दुष्कर तपश्चर्या करने में निरत हो गए ॥ १४ ॥

वसंते प्रसृते तत्र कामो रतिसमन्वितः ।
चूतं बाणं समाकृष्य स्थितस्तद्वामपार्श्वतः ॥१५
स्वप्रभावं वितस्तार मोहयन्सकलाञ्जनान् ।
रत्या युक्तं तदा कामं दृष्ट्वा को वा न मोहितः ॥१६

एवं प्रवृत्तसुरतो शृङ्गारोऽपि गणैः सह।
हावभावयुतस्तत्र प्रविवेज हरांतिकम् ॥१७
मदनः प्रकटस्तत्र न्यवसच्चित्तगो बहिः।
न दृष्टवांस्तदा शंभोश्छिद्रं येन प्रविश्यते ॥१८
यदा चाप्राप्तविवरस्तस्मिन्योगिवरे स्मरः।
महादेवस्तदा सोऽभून्महा भयविमोहितः ॥१९
ज्वलज्ज्वालाग्निसंकाशभालनेत्रसमन्वितम्।
ध्यानस्थं शङ्करं को वा समासादयितुं क्षमः ॥२०
एतस्मिन्नंतरे तत्र सखीभ्यां संयुता शिवाः।
जगाम शिवपूजनार्थं नीत्वा पुष्पाण्यनेकशः ॥२१

इस तरह वसन्त ने अपना पूर्ण प्रभाव प्रसृत कर दिया तब कामदेव अपनी स्त्री रति को साथ लेकर आम्र की मृदुल मंजरी का बाण चढ़ा कर शिवजी के वाम-भाग में स्थित होगया ।१५। कामदेव के प्रभाव के विस्तार से सभी मोहित होगये । ऐसा कोई भी न बच सका जो रति के साथ काम को देखकर मोहित न हुआ हो ।१६। जब इस तरह रति की प्रवृत्ति हुई तो रस राज शृङ्गार भी अपने हाव-भाव आदि सैनिकगण को लेकर शङ्करजी के निकट प्रविष्ट होगया ।१७। अपने पूर्ण प्रभाव के साथ कामदेव प्रकट तो हो गया किन्तु शिवजी के मन में कोई छिद्र न पाकर, प्रवेश न कर सका और बाहिर ही स्थित बना रहा ।१८। जब कामदेव ने योगीश्वर शिव के हृदय में काम-विकार उत्पन्न करने का कोई भी अवसर नहीं प्राप्त किया तो स्वयं महान् होते हुए भी महादेवजी से भयभीत होकर मोहित होगया ।१९। शङ्कर के मस्तक में रहने वाला तीसरा नेत्र परम प्रज्वलित होकर अग्नि के समान प्रकाश युक्त हो रहा था । ध्यानावस्था में समाधिस्य भगवान् शिव कोअपने आधीन बनाने की शक्ति किसकी हो सकती है ।२०। उसी समय नित्य की भाँति भवानी अपनी सखी सहेलियों सहित बहुत से पुष्प हाथों में लेकर शिव की अर्चा करने को वहाँ आगई ।२१।

यदा शिवसमीपे तु गता सा पर्वतात्मजा।

तदैव शङ्करो ध्यानं त्यक्त्वा क्षणमवस्थितः ॥२२
तच्छिद्रं प्राप्य मदनः प्रथमः हर्षणेन तु।
बाणेन हर्षयामास पार्श्वस्थं चन्द्रशेखरम् ॥२३
शृङ्गारैश्च तदा भावैः सहिता पार्वती हरम् ।
जगाम कामसाहाय्ये मुने सुरभिणा सह ॥२४
तदैवाकृष्य तच्चापं रुच्यर्थं शूलधारिणः ।
द्रुतं पुष्पशरं तस्मै स्मरोऽमुंचत्सुसंयतः ॥२५
यथा निरन्तरं नित्यमागच्छति तथा शिवम् ।
त नमस्कृत्य तत्पूजां कृत्वा तत्पुरतः स्थिता ॥२६
सा दृष्टा पार्वती तत्र प्रभुणा गिरिशेन हि ।
विवृण्वती तदांगानि स्त्रीस्वभावात्सुलज्जया ॥२७
सुसस्मृत्य वरं तस्या विधिदत्तं पुरा प्रभुः ।
शिवोऽपि वर्णयामास तदंगानि मुदा मुने ॥२८

जब पार्वती शिवजी के बिल्कुल समीप में पहुँची तो भगवान् शङ्कर एक क्षण के लिये अपनी समाधि छोड़कर जागृत होगये ।२२। कामदेव ने इतना ही छिद्र प्राप्त कर लिया और प्रसन्न होकर पास में स्थित होते हुए अमोघ वाण द्वारा शिवको आह्लादित करने लगा ।२३। हे मुनिवर ! उस समय अपने पूर्ण श्रृङ्गार और हाव-भावों के साथ पार्वती का आगमन ऐसा हुआ मानो वह कामदेव की सहायता के लिये मन्द-सुगन्ध से पूर्ण वायु के साथ वहाँ आई हो ।२४। उस समय कामदेव को पूरा अवसर प्राप्त हो गया और शिवजी की मनोरुचि को भवानी के निरीक्षण आदि व्यापारों में बढ़ाने के लिए उसने अपना धनुष सँभाल का सावधानी से पुष्प बाण का प्रहार शिव पर किया ।२५। प्रतिदिन की भाँति शिव के समीप में उपस्थित होकर प्रणाम, अर्चना और वन्दना का कार्य कम के लिये उस समय पार्वती शिव के सम्मुख प्रस्तुत हो गई ।२६। शिव ने उस दिन कुछ विशेष रुचि के साथ पार्वती को जैसे ही देखा तो वह स्त्री सुलभ स्वभाव से लज्जित-सी होकर, अपने अङ्ग-प्रत्यङ्गों को सिकोड़ने लगी ।२७। उस समय विधाता के दिये हुए वरदान का स्मरण कर शिवजी

पार्वती के अङ्गों की सुन्दरता की प्रशंसा करने लगे ।२८।

कि मुखं किं शशांकश्च किं नेत्रे चोत्पले च किम् ।
भ्रुकुट्यौ धनुषी चैते कंदर्पस्य महात्मनः ॥२९
किं गतिर्वर्ण्यते ह्यस्याः किं रूपं वर्ण्यते मुहुः ।
पुष्पाणि किं च वर्ण्यंते वस्त्राणि च तथा पुनः ॥३०
लालित्यं चारु यत्सृष्टौ तदेवात्र विनिर्मितम् ।
सर्वथा रमणीयानि सर्वाङ्गाणि न संशयः ।३१
अहो धन्यतरा चेत्रं पार्वत्यद्भूतरूपणी ।
एतत्समा न त्रैलोक्ये नारी कोपि सुरूपिणी ॥३२
सुलावण्यनिधिश्येमद्भुतांगानि बिभ्रति ।
विमोहिनी मुनीनां च महासुखविवर्धिनी ॥३३
क्षथमात्रं विचार्य्येत्थं संपूज्य गिरजां ततः ।
प्रबुद्धः स महायोगी सुविरक्तो जगावित्रि ॥३४
किं जातं चरितं चित्रं किमहं मोहमागतः ।
कामेन विकृतश्चाद्य भूत्वाऽपि प्रभुरीश्वरः ॥३५
ईश्वरोऽहं यदीच्छेयं परांगस्पर्शन खलु ।
तर्हि कोऽन्योक्षमः क्षुद्रः किं किं नैव करिष्यति ॥३६
एवं वैराग्यमासाद्य पर्य्यंकासादनं च तत् ।
वारयामास सर्वात्मा परेशः किं पतेदिह ॥३७

शिव के मुख से ये वचन निकल पड़े पार्वती का यह मुख है या चन्द्रमा है – ये नेत्र हैं या पूर्ण विकसित कमलहैं – क्या ये भृकुटियाँ हैं अथवा मनोभव कामदेव का धनुष हैं ।२९। इसकी गति भी अनूठी हैं, रूप भी अनुपम है और पुष्पों के आभरण तथा वस्त्रादि भी सभी अनोखे दिखाई देते हैं । यहाँ किसका वर्णन किया जावे कुछ समय में नहीं आता है ।३०। इस संसार की रचना में जितना भी जो लालित्य है वह सभी बटोर कर विधाता ने इसी एक में भर दिया है । यह पूर्णतया निस्सन्देह है कि इस पार्वती के समस्त अङ्ग प्रत्यङ्ग सब प्रकार से सुन्दर एवं मन

पार्वती परम धन्य है। इसकी समता रखने वाली एवं सुन्दरी अन्य कोई भी स्त्री लोक में नहीं हो सकती हैं ।३२। पार्वती लावण्य की खान है और अनुपम सुन्दर अङ्गों को धारण करती हुई मननशील मुनियों के भी मन को मोहित करने वाली तथा अनिर्बचनीय सुख देने वाली हैं। ३३। शिवजी क्षण मात्र में ही भवानी के सौन्दर्य की प्रससा करते हुए कुछ विचार कर रहे थे कि उन योगीश्वर शम्भु को चेतनता आ गई और तुरन्त ही विरक्ति भावना में मग्न होकर कहने लगे। ३४। यह क्या विचित्र घटना हुई ? मुझे ऐसा महामोह किस प्रकार और क्यों हुआ ? समर्थ और ईश्वर होते हुए भी मुझे कामदेव ने विकार युक्त किस तरह कर दिया ? ।३५। मैं इतना समर्थ होते हुए भी किसी के अस्पृश्य अङ्ग का स्पर्श करने की लालसा रक्खू तो फिर साधारण सामर्थ्य विहीनक्षुद्र पुरुष संसार में क्या-क्या नहीं करेंगे ? ।३६। इस तरह पूर्ण परिपक्व वैराग्य में निमग्न होकर शिव ने अपने मन से पार्वती के पर्यङ्कप्राप्ति का सुखाया को एक दम हटा दिता। सर्वान्तियामी परमेश का क्या कभी भी पतन होना सम्भव हो सकता है ? । ३७ ।

शिव द्वारा कामदेव का भस्म किया जाना

धैर्यस्य व्यसनं दृष्ट्वा महायोगी महेश्वरः ।
विचिंचित मनस्येवे विस्मितोऽति ततः परम् ॥१
किम् विघ्नाः समुत्पन्नाः कुर्वतस्तप उत्तमम् ।
केन मे विकृतं चित्तं कृतमत्र कुकर्मिणा ॥२
कुवर्णनं मया प्रीत्या परस्त्र्युपरि व कृतम् ।
जातो धर्मविरोधोऽत्र श्रुतिसीमा विलंघिता ॥३
विचिंत्येत्थं महायोगी परमेशः सतां गतिः ।
दिशो विलोकयामास परितः शकितस्तदा ॥४
वाम भागे स्थितं कामं ददर्शाकृष्टबाणकम् ।
स्वशरं क्षेप्तुकाम हि गर्वितं मूढचेतसम् ॥५
तं दृष्ट्वा तादृशं गिरिशस्य पदात्मनः ।
सजातः क्रोधसंमर्दस्तत्क्षादपि नारद ॥६

कामः स्थितोऽन्तरिक्षोसः धृत्वा तत्सशरं धनुः ।
चिक्षेपास्त्रं दुर्निवारमभोघ शङ्करे मुने ॥७

महान् योगीश्वर महादेवजी ने अपने धैर्य में विघ्न होता देखकर विस्मय पूर्वक गहन विचार किया और इस घटना पर बहुत अधिक आश्चर्य किया ।१। शिवजी मनमें कहने लगे मुझे घोर तपश्चर्या करते हुए इस प्रकार के विघ्न क्यों उपस्थित हुए और किस दुरात्मा ने मेरे नितान्तशांत चित्त में ऐसा विकार उत्पन्न कर दिया ? ।२। मैंने अनुराग विभोर होकर अन्य स्त्री के रूप-लावण्य का बखान किया-यह धर्म के सर्वथा विरुद्ध ही हुआ । मुझसे आज शास्त्र की मर्यादा का प्रत्यक्षतः उल्लंघन हुआ हैं ।३। ब्रह्माजी ने कहा—सत्यपुरुषों का उद्धार करने वाले महायोगीश्वर परमेश ने ऐसा सोचते हुए अङ्कित होकर समस्त दिशाओं का अवलोकन किया ।४। उस समय शिवजी ने देखा कि उनके वाम भाग में कामदेव बाण छोड़ने की इच्छा रखकर खड़ा हुआ है और उससे अपनी विजय का लाभ पाने पर वह महामूढ़ बहुत गर्वित हो रहा है ।५। इस दूषित भावना से उपस्थित मदन को देखकर भगवान् गिरीश को महान् क्रोध उत्पन्न होगया ।६। हे मुनिवर ! उसी समय कामदेव भय-भीत होकर अपना धनुष-बाण वहीं छोड़ अन्तरिक्ष में स्थित होगया । उसने ऐसा समझ रक्खा था कि मैंने अपना दुर्निवार्य अमोघ बाण शङ्करजी पर चला दिया है ।७।

बभूवामोघमस्त्रं तु मोघं तत्परमात्मनि ।
समशाम्यत्ततस्तस्मिन्संक्रुद्धे परमेश्वर ॥८
मोंधीभूते शिवे स्वेऽस्त्रे भयमापाशु मन्मथः ।
चकंपे च पुरः स्थित्वा दृष्ट्वा मृत्युञ्जय प्रभुम् ॥९
सस्मार त्रिदशान्सर्वाञ्छक्रादीन्भयविह्वलः ।
स स्मरो मुनिशार्दूल स्वप्रयासे निरर्थके ॥१०
कामेन सुस्मृता देवाः शक्राद्य ते मुनीश्वर ।
आययुः सकलास्ते हि शंभुं नत्वा च तुष्टुवुः ॥११
स्तुतिं कुर्वत्सु देवेषु क्रुद्धस्थाति हरस्य हि ।
तृतीयात्तस्य नेत्राद्वै निःसंसार ततो महान् ॥१२

ललाटमध्यगात्तस्मात्स वह्निर्द्रुतसम्भवः ।
जज्वालोर्ध्वशिखो दीप्तः प्रलयाग्निसमप्रभः ।१३
उत्पत्य गगने तूर्णं निपत्य धरणीतले ।
भ्रामं भ्रामं स्वपरितः पपात मेदिनीं परि ।१४।

वह काम का अमोघ अस्त्र परमेश में निष्फल हो गया और शिव के क्रोध उत्पन्न होने पर उसकी अमोघता नष्ट हो गई ।८। शिवजी के ऊपर चलाये हुए अस्त्र के विफल हो जाने से कामदेव को बड़ा भय हो गया और प्रभु मृत्युञ्जय को कोपाविष्ठ देखकर वह काँप उठा ।६। उस भय से बहुत व्याकुल होकर कामदेव ने देवराज इन्द्र आदि देवों को याद किया क्योंकि मदन का किया हुआ सभी प्रयास व्यर्थ हो गया था ।१०। हे मुनीश्वर ! मन्मथ ने जब देवों का स्मरण किया तो समस्त देवताओं ने वहां आकर शिव को प्रमाण किया और वन्दना करने लगे ।११। जब ये समस्त देवगण शिवजी का स्तवन कर रहे थे, उसी क्षण अत्यन्त क्रुद्ध महेश्वर के तृतीय नेत्र से जो कि विशद ललाट के मध्य में था, अग्नि का पुञ्ज प्रकट होकर प्रलयकालीन अग्नि के समान ऊर्ध्व शिखा वाला प्रदीप्त होकर जल उठा ।१२-१३। तुरन्त ही उस प्रदीप्त अग्नि के तेज को आकाश, भूमि और अपने चारों तरफ दोड़ते हुए देखकर कामदेव पृथ्वी पर गिर पड़ा ।१४।

भस्मासात्कृत्यवान्साधा मदनं तावदेव हि ।
यावच्च मरुतां वाचः क्षम्यतां क्षम्यतामितिः ।१५
हते तस्मिन्स्मरे वीरे देवा दुःखमुपागताः ।
रुरुदुर्विह्वलाश्चातिक्रोशतः किमभूतिति ।१६
क्षणमात्रं रतिस्तत्र विसज्ञा साऽभवत्तदा ।
भर्तृ मृत्युजदुःखेन पतिता सा मृता ।१७
जाताया चैव सज्ञाया रतिरत्यतविह्वला ।
विललाप यदा तत्रोच्चरंती विविध वचः ।१८
किं करोमि क्व गच्छामि किं कृतं दैवतैरिह ।
मत्स्वामिनं समाहूय नाशयामासुरुद्धतम् ।१९

वहां प्रस्तुत देवताओं का समुदाय जब तक यही प्रार्थना कर रहे थे कि "अपराधी को क्षमा दीजिए" तब तक तो उस आग ने कामदेव को जलाकर भस्मभूत कर ही दिया ।१५। उस समय उस परम वीर मदनदेव के नाश हो जाने से देवगण को अत्यन्त दुःख हुआ और वे सब दुःखाकुल होकर रुदन करते हुए कहने लगे—यह क्या हो गया ? ।१६। थोड़े से समय के लिए कामदेव की स्त्री रति बेहोश होकर अपने स्वामी की मृत्यु की असह्य वेदना से गिर कर मूच्छित दशा में मृतक के समान हो गई थी ।१७। कुछ समय के पश्चात होश में आकर रति पति-वियोग के दुःख से बेचैन होकर करुणा विलाप करती हुई विविध भांति के वचन बोलने लगी ।१८। रति ने रोते हुए कहा—मैं क्या करूँ और कहां जाकर किसका आश्रय लूँ ! यह देवगण ने क्या कर दिया ! मेरे पति को अपने स्वार्थ सिद्ध करने के लिये यहां भेजकर मेरा सर्वनाश ही कर दिया ।१९।

॥ पार्वती को नारदजी का उपदेश ॥

विधे तात महाप्राज्ञ विष्णू शिष्य त्रिलोककृत् ।
अद्भुतेयं कथा प्रोक्ता शंकरस्य महात्मनः ।१
भस्मीभूते स्मरे शंभुतृतीयनयनाग्निना ।
तस्मिन्प्रविष्टे जलधौ वद त्वं किमभूत्ततः ।२
किं चकार ततो देवी पार्वती कुधरात्मजा ।
गता कुत्र सखीभ्यां सा तद्वदाद्य दयानिधे ।३
श्रवणु ताता महाप्राज्ञ चरितं शशिमौलिनः ।
महोतिकारकस्यैव स्वामिनी मम चादरात् ।४
महाऽदहच्छंभनेत्रोत्भबो हि मदनं शुचिः ।
महाशब्दोऽद्भूतोऽभूद्वै येनाकाशः प्रपूरितः ।५
तेन जब्देन महता कामं दग्धं समीक्ष्य च ।
सखीभ्यां सह भीता सा ययौ स्वगृहमाकुला ।।६
तेन शब्देन हिमवान्परिवारसमन्वितः ।
विस्मतोऽभूदति विलष्टः सुतां स्मृत्वा गतां ततः ।७

नारदजी ने कहा—हे तात ब्रह्माजी ! महामनीषी ! हे विष्णु भगवान के शिष्य ! त्रैलोक्य की रचना करने वाले भगवान शिव की परम अद्भुत यह कथा आपने मुझे सुनाई है ।१। शिवजी के तृतीय नेत्र की प्रदीप्त अग्नि की ज्वाला से जब कामदेव भस्म होगया और वह अग्नि समुद्र में प्रवेश कर गई इसके पश्चात क्या हुआ ! ।२। पर्वतराज की पुत्री पार्वती उस समय सखियों के साथ कहां चली गई और उसने फिर क्या किया ! हे दयासागर ! यह और मुझे बताइए ।३। ब्रह्माजी बोले—हे महान भाग्य वाले तात ! अब मेरे स्वामी, अद्भुत चरित्र करने वाले शिवजी का चरित्र मैं तुमको सुनाता हूँ, उसे तुम आदरपूर्वक सुनो ।४। जब शिव के नेत्र से समुत्पन्न अग्नि के द्वारा कामदेव भस्म हुआ था उस वक्त एक ऐसा भयंकर शब्द हुआ था कि समस्त गगन मण्डल उससे गूंज उठा था ।५। इस महाध्वनि से कामदेव को ताप-दग्ध सोचकर पार्वती बहुत व्याकुल हो गईं और सखियों के साथ अपने स्थान में चली गईं ।६। उस भयानक शब्द को सुनकर नगराज हिमालय को बड़ा विस्मय हुआ और तपोनिरता अपनी पुत्री पार्वती का स्मरण करते हुए वहां सपरिवार पहुंच गये ।७।

जगाम शोकं शैलेश सुता दृष्ट्वातिविह्वलाम् ।
रुदंतीं शंभुविरहादाससादाचलेश्वरः ।८
आसाद्य पारिणा तस्या मार्जयन्नयनद्वयम् ।
मा बिभीहि विधेऽरोदीरित्युक्त्वा तां तदाग्रहीत् ।९
क्रोड़े कृत्वा सुतां शीघ्रं हिमवानललेश्वरः ।
स्वामालयमथानिन्वे सांत्वयन्नतिह्वलाम ।१०
अन्तर्हिते स्मरं दग्ध्वा हरे तद्विरहाच्छिवा ।
विकलाऽभूद्भृशंसा त्रै लेभे शर्म न कुत्रचित् ।११
पितृगृंह तदा गत्वा मिलित्वा मातरं शिवा ।
पुनर्जातं तदा मेने स्वात्मानं सा धरात्मजा ।१२
ततस्त्वं पूजितस्तेन न भूधरेण महात्मना ।
कुशलं पृष्टवांस्तं वै तदाविष्ठो वरासने ।१३

ततः प्रोवाच शैलेशः कन्याचरितमा दिता।
हरसेवान्वितं कामदहन च हरेण ह।१४

हिमालय को अपनी आत्मजा पार्वती को शोक से व्याकुल देखकर बहुत अधिक कष्ट हुआ।८। शैलराज शिव के विरह की वेदना से व्याकुल पार्वती के पास पहुँचे और पार्वती के नेत्रों से अपने हाथों के द्वारा आंसुओं को पोंछकर कहने लगे—'हे शिवे ! तुम डरो मत, रुदन बन्द कर दो', ऐसा कहकर उन्होंने पार्वती को ग्रहण करते हुए ढाढ़स बधाया।६। नागधिराज ने इस तरह पार्वती को समझाते हुए अपनी गोद में बिठाया और फिर अपने भवन में लिवा ले गये।१०। कामदेव को भस्मीभूत करने के पश्चात शिव अन्तर्धान हो गये और भवानी उनके वियोग के दुःख से अधिक व्याकुल हो गईं, उन्हें किसी भी स्थान में शान्ति नहीं मिल सकी।११-१२। ब्रह्माजी ने कहा—हे नारद ! उस समय इन्द्र ने मतिमान हिमालय के स्थान पर तुमको नियुक्त किया और विचरण करते हुए तुम वहां पहुँच गये थे।१३। वहाँ शैलराज ने तुम्हारी अर्चना कर तुम्हें श्रेष्ठासन पर बिठलाया और तुमने उससे क्षेम कुशल का प्रश्न किया। हिमालय ने पुत्री पार्वती की सेवा एवं तपस्या और शिव के द्वारा काम दहन का सारा चरित्र आपको सुनाया।१४।

श्रुत्वावोचो त्वं तु तं शैलेशं शिवं भज।
तमामंत्र्योदतिष्ठस्त्वं संस्मृत्य मनसा शिवम्।।१५
तं समुत्सृज्य रहसि कालीं त मगमस्त्वरा।
लोकोपकारको ज्ञानी त्वं मुने शिवल्लभः।।१६
आसाद्य कालीं संबोध्य तद्धिते स्थित आदरात्।
अवोचस्त्वं वचस्तथ्य सर्वेषां ज्ञानिनां वरः।।१७
शृणु कालि वचो मे हि सत्य वच्मि दयारतः।
सर्वथा ते हितकरं निर्विकारं सुकामदम्।।१८
सेवितश्च महादेवस्त्वयेह तपसा विना।
गर्ववत्या यदध्वंसीद्दीनानुग्रहकारकः।।१९

वरक्तश्च स स्वामी महायोगी महेश्वः ।
विसृष्टवान्मरं दग्ध्वा त्वांशिव भक्तवत्सलः ॥२०
तस्मात्वं सुतपोयुक्ता चिरमाराधयेश्चरम् ।
तपसां सस्कृतां रुद्रः स द्वितीयां करिष्यति ॥२१

हे मुनिराज ! यह सुनकर तुमने शैलेश को उपदेश किया था कि तुम अब शिव की आराधना करो और इतना कहकर शङ्कर के परम प्रिय एवं ज्ञाननिधि तुम एकान्त में बैठीं हुई पार्वती के पास पहुंचकर कहने लगे ।१५-१६। भवानी के समीप जाकर बड़े आदर के साथ सम्बोधन करके उसके हित के लिए ज्ञानियों में श्रेष्ठ एवं परोपकारी आपने अति उत्तम वचन कहे थे ।१८। नारदजी ने कहा—हे काली ! मुझे आप पर इस समय बड़ी दया आ रही है, इसलिए मैं तुम से तुम्हारे हित करने वाले जो भी कुछ वचन कहता हूँ उन्हें तुम दत्तचित्त होकर सुनो । ये मेरे वचन तुम्हारे परम हितकारी और विकार रहित कामना के प्रदान करने वाले हैं ।१९। तुमने महेश्वर की सेवा तो की किन्तु वह तपस्या से रहित थी और तुमको उस सेवा का बहुत गर्व भी हो गया था । इसलिए दीन हितकारी शिव ने अनुग्रह करके ही तुम्हारी वह गर्व नष्ट किया है ।२०। हे शिवा ! तुम्हारे स्वामी महेश्वर महान योगी और परम विरक्त हैं । वे भक्तवत्सल हैं और इसीलिए उन्होंने दुरात्मा कामदेव को भस्म करके भी तुमको छोड़ दिया था । अतएव अब तुम कुछ अधिक समय तक तपस्या करके महेश्वर प्रभु की आराधना करो । तपश्चर्या से सुसंस्कृत हो जाने वाली तुमको भगवान शङ्कर अवश्य ही स्वीकार कर लेंगे ।२१।

त्वं चापि शंकरं शम्भ न त्यक्ष्यसि कदाचन ।
नान्यं पतिं हठाद्देवि ग्रहीष्यसि शिवादृते ॥२२
इत्याकर्ण्य वचस्ते हि मुने सा भूधरात्मजा ।
किंचिदुच्छ्वसिता काली प्राह त्वां सांजलिर्मुदा ॥२३
त्वं तु सर्वज्ञ जगतामुपकारकर प्रभो ।
रुद्रस्याराधनर्थ य मंत्रं देहि मुने हि मे ॥२४

न सिद्ध्यति क्रिया कापि सवषां सद्‌गुरु विना।
मया श्रुत्वा पुरा सत्यं श्रुतिरेषा सनातनी।२५
इति श्रुत्वा वचस्तस्याः पार्वत्या मुनिसत्तमः।
पंचाक्षरं शम्भुमंत्रं विधिपूर्व मुपादिशः।२६
अवोचश्च वचस्तां त्वं श्रुद्धामुत्पादयन्मुने।
प्रभावं मन्त्रराजस्य तस्य सर्वाधिकं मुने।२७
शृणु देवि मनोरस्य प्रभावं परमाद्‌भुतम्।
यस्य श्रवणमात्रेण शंकरः सुप्रसीदति।२८

हे देवि ! फिर तुम कभी भी महेश्वर का त्याग नहीं कर सकोगी और केवल शंकर को ही तुम हठपूर्वक अपना पति बनाओगी अन्य किसी भी देव को नहीं।२२-२३। ब्रह्माजी ने कहा— शैल तनया इस प्रकार के नारदजी के वचन सुनकर एक ऊँची श्वाँस भरकर करबद्ध होकर नारदजी से (तुम से) बोली।२४। पार्वती ने कहा—हे देवर्षि ! आप तो संसार में समस्त प्राणियों का उपकार एवं हित करने वाले हैं। अब आप भगवान रुद्र की सेवाराधना करने के लिये अपना गुरु-मन्त्र प्रदान कीजिये।२५। संसार में अच्छे गुरु की प्राप्ति के अभाव में कभी भी कोई क्रिया सिद्ध नहीं होती है—ऐसा मैंने सुन रक्खा है और यही सनातन श्रुति भी है। ब्रह्मा जी ने कहा—हे मुनिवर! आपने ऐसे पार्वती के विनयपूर्ण वचन सुनकर उसको सविधि शिव के 'नमः शिवाय' इस पञ्चाक्षरी मन्त्र का उपदेश दिया था।२६-२७। हे मुनिश्रेष्ठ ! परम श्रद्धा की भावना को उपजाते हुए आपने इस मन्त्रराज का अतुल प्रभाव सर्वश्रेष्ठ प्रतिपादन करते हुए कहा—हे देवि ? पञ्चाक्षरी मन्त्र-राज का बड़ा ही अद्‌भुत प्रभाव होता है। इसके केवल श्रवण करने से ही महेश्वर प्रभु प्रसन्न हो जाते हैं।२८।

मन्त्रोऽयं सर्वमन्त्राणामधिराजश्य कामदः।
भुक्तिमुक्तिप्रदोऽत्यंतं शंकरस्य महाप्रियः।२९
सुभगे येन जप्तेन विधिना सोऽचिराद्द्रुतम्।
आराधितस्ते प्रत्यक्षो भविष्यति शिवो ध्रुवम्।३०

चितयंतीं च तद्रूपं नियमस्था शराक्षरम् ।
जप मंत्रं शिवे त्वं हि संतुष्यति शिवो द्रुतम् ॥३१
एवं कुरु साध्वि तपःसाध्यो महेश्वरः ।
तपस्येव फल सर्वैः प्राप्यते नान्यथा क्वचित् ॥३२

मैं तुम्हें इसका प्रभाव बतलाता हूँ । उसे तुम सुनो । यह सभी मंत्रों का राजा है । हार्दिक कामना तथा भुक्ति और मुक्ति के प्रदान करने की इसमें सामर्थ्य है और यह मन्त्र शंकर भगवान को अत्यन्त प्रिय है ।२६। हे सुभगे ! जिस समय भक्ति के साथ तुम इस मन्त्र का जाप करोगी तो तुम्हारी आराधना से बहुत ही शीघ्र निस्सन्देह प्रत्यक्ष हो जांयगे ।३०। हे शिवे । नियमपूर्वक शिव स्वरूप का मन में ध्यान करती हुई इस मन्त्र के जप से निश्चय ही शिव शीघ्र ही तुम पर प्रसन्नहो जायेंगे । हे साध्वि । महेश तपस्या से ही प्राप्त हो सकते हैं और लोक में सब तप से ही अभीष्ट फल की प्राप्ति किया करते हैं । तप का प्रभाव ध्रुव सत्य है इसमें कुछ भी अन्यथा नहीं है ।३१-३२

॥ शिव के निमित्त पार्वती का तप करना ॥

त्वयि देवमुने याते पार्वती हृष्टमानसा ।
तपःसाध्यं हरं मेने तपोर्थं मन सादधे ॥१
ततः सख्यौ समादाय जयां च विजयां तथा ।
मातरं पितरं चैव सखीभ्यां पर्यपृच्छत ॥२
प्रथमं पितरं गत्वा हिमवंत नगेश्वरम् ।
पर्यपृच्छत्सुप्रणम्य विनयेन समन्विता ॥३
हिमवञ्छ्रूयतां पुत्रीवचनं कथ्यतेऽधुना ।
सा स्वयं चैव देहस्य रूपस्यापि तथा पुनः ॥४
भवतो हि कुलस्यास्या साफल्य कर्तुमिच्छति ।
तपसा साधनीयोऽसो नान्यथा दृश्यतां व्रजेत् ॥५
तस्माच्चा पर्वतश्रेष्ठ देयाऽऽज्ञा भवताऽधुना ।
तपः करोतु गिरिजा वनं गत्वेति सादरम् ॥६

इत्येवं च तदा पृष्ठः सखीभ्यां मुनिसत्तम ।
पार्वत्या सुविचार्याथ गिरिराजाऽब्रवीदिदम् ॥७

ब्रह्माजी ने कहा—हे मुनिराज ? वहां से आपने गमन करने के पश्चात पार्वती परम प्रसन्न हुई और मन में 'महेश्वर तप के द्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं' ऐसा दृढ़ निश्चय कर भवानी ने तपस्या में ही मन लगा दिया ।१।फिर अपनी जया-विजया नाम वाली दो सहेलियों के साथ पार्वती ने अपने माता-पिता तथा अन्य सखी जनों से जाकर पूछा ।२। सर्व प्रथम अपने पिता हिमालय से प्रणाम पूर्वक विनय और भक्ति के साथ पूछा ।३। पार्वती की दोनों सहेलियों ने हिमालय से प्रार्थना की 'हे राजन ! आपकी पुत्री पार्वती अपने देह और रूप को सफल करने के लिए आप से कुछ निवेदन करना चाहती हैं, आप कृपाकर उसे सुनें ।४। यह आपकी आत्मजा आपके कुल को सफल करने की इच्छा करती हैं । इसे अब निश्चय हो गया है कि भगवान शंकर तप से ही साध्य हो सकते हैं अन्य कोई भी उपाय उनके प्रत्यक्ष करने का नहीं है ।५। अतएव हे शैलाधीश ! आपको अब कृपा कर इसे आज्ञा प्रदान कर देनी चाहिए कि यह पार्वती वन में जाकर शिव की प्रसन्नता के लिए तपस्या करे" ।६। ब्रह्माजी ने कहा—जब पार्वती की सखियों ने ऐसा हिमालय से पूछा तो शैलराज कुछ विचार कर कहने लगे ।७।

मह्यं च रोचतेऽयर्थं मेनायै रुच्यतां पुनः ।
यथेदं भवितव्यं च किमतः परमुत्तमम् ॥८
साफल्यं तु मदीयस्य कुलस्य च न संशयः ।
मात्रे तु रुच्यते चेद्वै ततः शुभतरं नु किमु ॥९
इत्येवं वचनं प्रोक्तं श्रुत्वा तु ते तदा ।
जग्मतुर्मातरं सख्यौ तदाज्ञप्ते तथा सह ॥१०
गत्वा तु मातरं तस्याः पर्वत्यास्ते च नारद ।
सुप्रणम्य करौ बद्ध्वोचतुर्वचनमादरात् ॥११
मातस्त्वं वचनं पुत्र्याः शृणु देवि नमोऽस्तु ते ।
सुप्रसन्नतया तद्वै श्रुत्वा कर्तुमिहार्हसि ॥१२

तप्तुकामा तु ते पुत्री शिवार्थं परम तपः
प्राप्तानुज्ञा पितुश्चैव तुभ्यं च परिपृच्छति ।।१३
इयं स्वरूपसाफल्यं कर्तुं कामा पतिव्रते ।
त्वदाज्ञा यदि जायेत तप्यते च तथा तपः ।।१४

शैलराज ने कहा–मुझे पार्वती का ऐसा निश्चय बहुत पसन्द आया है किन्तु इस प्रकार तप करने की आज्ञा पार्वती की माता से लेनी चाहिए। यदि ऐसा हो जावे तो इस से श्रेष्ठतम अन्य क्या बात हो सकती है।९। ब्रह्माजी ने कहा शैलराज के ऐसे वचन सुनकर वे दोनों सखी पार्वती की माता से पार्वती की तपस्या के हेतु अनुमति प्राप्त करने के लिए वहां गईं।१०। हे नारद ! वे दोनों भवानी की माता के समक्ष प्रणाम पूर्वक सादर करबद्ध हो प्रार्थना करने लगीं।११। सखियों ने कहा – हे माता ! आपकी पुत्री आपसे कुछ निवेदन करना चाहती है और हम प्रणाम करती हैं। आप प्रसन्नतापूर्वक इनकी प्रार्थना को स्वीकार करने के योग्य हैं।१२। आपकी पुत्री अपने अभीष्ट देव शंकर को प्राप्त करने के लिए वन में जाकर तप करना चाहती है। इसने अपने पिताजी से तो आज्ञा प्राप्त करली है। अब आपसे अनुमति लेने के लिए यहाँ उपस्थित हुई हैं।१३। हे पतिव्रते। आपकी पार्वती अपने रूप को सफल बनाना चाहती है। यदि आपकी आज्ञा प्राप्त हो जावे तो वह वन में जाकर कठोर तपोव्रत धारण कर लेंगी।१४।

इत्युक्त्वा च ततः सख्यौ तूष्णीमास्तां मुनीश्वर ।
नागोचकार मेना सा तद्वाक्यं खिन्नमानसा ।।१५
ततः सा पार्वती प्राह स्वमेवाथ मातरम् ।
करौ बद्ध्वा विनीतात्मा स्मृत्वा शिवपदांबुजम् ।।१६
मातस्तप्तु गमिष्यामि प्रातः प्राप्तुं महेश्वरम् ।
अनुजानीहि मां गंतुं तपसेऽद्य तपोवनम् ।।१७
इत्याकर्ण्य वचः तुत्र्या मेना दुखमुपागता ।
सोपाहूय तदा पुत्रीमुवाच विकला सती ।।१८

दु:खितासि शिवे पुत्रि तपस्तप्तुं पुरा यदि।
तपश्चर गृहेऽक्त त्वं न बहिर्गच्छ पार्वती ॥१९
कुत्र यासि तपः कर्तुं देवाः संति गृहे मम।
तीर्थानि च समस्तानि क्षेत्राणि विविधानि च ॥२०
कर्तव्यो न हठः पुत्रि गंतव्यं न बहि क्वचित्।
साधितं किं त्वया पूर्वं पुनः किं साधियिष्यसि ॥२१

हे मुनीश्वर ! यह कहकर वे सखियां चुप हो गईं और पार्वती की माता मेना ने व्याकुलतावश उसको स्वीकार नहीं किया।१५। उस समय भवानी ने मन में शिव का ध्यान रखकर स्वयं ही विनयपूर्वक हाथ जोड़ कर माता से प्रार्थना की।१६। पार्वती ने कहा—हे माता ! मैं महेश की प्राप्ति के लिये कल प्रातःकाल में ही तपस्या करने के लिये तपोवन में प्रस्थान करूंगी, अतः आप प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा प्रदान करे।१७। ब्रह्मा जी ने कहा—प्रिय पुत्री के इस वचन के सुनने से मेना को अत्यन्त दुःख हुआ परम और विकल होकर बेटी को अपने पास बिठाकर कहने लगी।१८। मेना ने कहा—हे पुत्री शिवे ! यदि तुझे दुःख है और तेरी शिव के निमित्त तपस्या करनें की ही प्रबल इच्छा है तो तू यहां अपने घर में ही स्थित रहकर तपश्चर्या कर, बाहिर कहीं भी मत जा।१९। तू वन में घर छोड़कर कहाँ जायगी ? मेरे इस घर सभी देवता तीर्थ और अनेक उत्तम क्षेत्र विद्यमान रहते हैं।२०। हे पुत्री। इस विषय में विशेष हठ करना उचित नहीं है। तप के लिए बाहर मत जाओ। इसके पूर्व तुमने क्या साधना कर ली है और क्या करना चाहती हो !।२१।

शरीरं कोमलं वत्से तपस्तु कठिनं महत्।
एतस्मात्तु त्वया कार्य्यं तपोऽत्र न बहिर्व्रज ॥२२
स्त्रीणां तपोवनगतिर्न श्रुता कामनार्थिनी।
तस्मात्वं पुत्रि मा कार्षीस्तपोऽर्थं गमनं प्रति ॥२३
इत्येवं बहुधा पुत्री तन्मात्रा विनिवारिता।
संवेदे न सुखं किंचिद्विनाराध्य महेश्वरम् ॥२४

तपोनिषिद्धा तपसे वनं गंतुं च मेनया ।
हेतुना तेन सोमेति नाम प्राय शिवा तदा ।।२५
अथ तां दुःखितां ज्ञात्वा मेना शैलप्रिया शिवाम् ।
निदेशं सा ददौ तस्याः पार्वत्यास्तपसे मुने ।।२६
मातुराज्ञां च सं प्राप्य सुव्रता मुनिसत्तम ।
ततः स्वांते सुखं लेभे पार्वती स्मृतशंकरा ।।२७
मातरं पितरं साथ प्रणिपत्य मुदा शिवा ।
सखीभ्यां च शिवं स्मृत्वा तपस्तप्तु समुद्गता ।।२८

हे बेटी ! तेरा शरीर कुसुम से भी अधिक कोमल है और तपस्याका कार्य बहुत कठिन है । इसलिये तू यहीं अपनी साधना पूरी कर, कहीं बाहिर मत जाओ ।२२। हे मनोकामना रखने वाली पार्वती । तपोवन में स्त्रियों की गति नहीं सुनी गई है, अतएव तपस्या करने के लिए वनगमन नहीं करना चाहिए ।२३। ब्रह्माजी ने कहा—मेना ने अनेक प्रकार से पुत्री को तपोवन जाने के लिए निवारण किया किन्तु भवानी ने शंकर की आराधना के अतिरिक्त किसी भी तरह सुख नहीं समझा ।२४। मेना ने अनेक बार तपस्या करने के लिए वन में जाने का निषेध किया इसी कारण से भवानी का नाम 'उमा' पड़ गया ।२५। हे मुनीश्वर ! शैलराज की पुत्री शिव को अत्यन्त दुःखित जाककर मेना ने उसे तपश्चर्या करने के लिए आज्ञा प्रदान करदी ।२६। हे मुनिश्वर । उस समय माता की आज्ञा प्राप्त कर सुव्रत वाली भवानी ने शंकर जी का स्मरण करके हृदय में बहुत सुख का लाभ किया ।२७। गौरी अपने माता-पिता को प्रणाम करके शिवजी के चरणों का स्मरण करते हुए अपनी दो सहेलियों को साथ में लेकर वन में तपस्या करने के लिये चली गई ।२८।

हित्वा मतान्यनेकानि वस्त्राणि विविधानि च ।
वल्कलानि धृतान्याशु मौञ्जीं वद्ध्वा तु शोभनाम् ।।२६
हित्वा हारं तथा चर्म मृगस्य परमं घृतम् ।
जगाम तपसे तत्र गंगातवरणं प्रति ।।३०

शभुना कुर्वता ध्यानं यत्र दग्धो मनोभवः ।

गंगावतरणो नाम प्रस्थो हि वतः स च ।३१
हरशून्योऽथ ददृशे स प्रस्थो हिमभूभृत ।
काल्या तत्रेत्य भोस्ताप पार्वत्या जगदम्बया ।३२
यत्र स्थित्वा पुरा शंभुस्तप्तावन्दुस्तरं तपः ।
तत्र क्षणं तु सा स्थित्वा बभूव विरहार्दिता ।।३३
हा हरेति शिवा तत्र रुदन्ती सा गिरः सुता ।
विललापा तदुःखार्ता चिताशोकसमन्विता ।३४
ततश्चरेण सा मोहं धैर्य्यात्संस्तभ्य पार्वती ।
नियमायाभवत्तत्र दीक्षिता हिमवत्सुता ।३५

विविध भांति के मत तथा अनेक प्रकार वस्त्रादि का त्यागकर भवानी ने कटि में सुन्दर मौञ्जी बांधली और बल्कल के वस्त्र लज्जा निवारणार्थ धारण कर लिये ।६। कण्ठहार के स्थान में मृग चर्म धारण कर लिया और गङ्गोत्तरी के निकट तप करने को चल दी ।३०। जिस स्थान पर भगवान शङ्कर ने अपनी समाधि लगाई थी और जहाँ पर मन्मथ को भस्म किया था वही गङ्गा के अवतरण होने का एक हिमालय का प्रस्थ हैं ।१३। हे तात ! सबसे पहिले पार्वती उसी स्थल पर पहुंची किन्तु उस जगदम्बा के वहाँ पहुंचने के समय पर वह स्थान शिवजी से रहित पड़ा था ।३२। सर्वप्रथम शिवजी ने उस स्थान पर परम उत्कट तपस्या की थी । वहां एक क्षण के लिए पार्वती स्थित रहीं और फिर शिव के विरह में बहुत अधिक व्याकुल हो गई ।३३। अत्यन्त वियोग के दुःख में बेचैन होती हुई भवानी गहन शोकमग्न होकर 'हाँ शंकर यह कहकर रुदन करने लगी ।३४। बहुत समय के पश्चात रुद्राणी ने धैर्य धारण कर विरह के मोह को स्तम्भित किया और दीक्षित विधान से तपश्चर्या के लिये नियम धारण किये ।३५।

तपश्चकार सा तत्र शृंगितीर्थे महोत्तमे ।
गोरीशिखरनामासीत्तत्तपःकरणाद्धि तत् ।३६
सुन्दराश्चद्रुमास्तत्र पवित्राः शिवया मुने ।

आ पेपिताः परीक्षार्थं तपसः फलभागिनः ॥३७
भूमिशुद्धिं ततः कृत्वा वेदीं निर्माय सुन्दरी ।
तथा तप समारब्धं मुनीनामपि दुष्करम् ।३८
विगृह्य मनसा सर्वाणीन्द्रियाणि सहाशु सा ।
समुपस्थानिके तत्र चकार परमं तपः ।३९
ग्रीष्मे च परितो वह्निं प्रज्वलतं दिवानिशम् ।
कृत्वा तस्थो च तन्मध्ये सततं जपतो मनुम् ।४०
सतत चैव वर्षासु स्थंडिले सुस्थरासना ।
शिलापृष्ठे च स सिक्ता बभूव जलधारया ।४१
शीते जलांतरे शश्वत्तस्थौ सा भक्तितत्परा ।
अनाहाराऽतत्तत्र नीहारेषु निशासु च ।४२

इसके अनन्तर उस सर्वोत्तम शृङ्गि तीर्थ में पार्वती तप करने लगी। इसी से उस स्थान में तपस्या करने से उसका नाम तभी से गौरी शिखर पड़ गया है ।३६। हे मुने ! पार्वती ने अपने किए जाने वाले तप का फल किस तरह ज्ञात होगा—यह जानने के लिए वहाँ परीक्षार्थ बहुत से वृक्ष लगाये थे वे सब भवानी के यहां पदार्पण करते ही एकदम हरे-भरे हो गये ।३७। गौरी ने पहिले भूमि की शुद्धि की और फिर उस स्थान में वेदी की रचना की । इसके अनन्तर ऐसी घोर तपस्या का आरम्भ किया जो कि महामुनियों को भी दुष्कर थी ।३८। तन के साथ समस्त इन्द्रियों का निरोध करके ध्यानावस्थित होकर कठोर तपस्या करने लगीं ।३९। ग्रीष्म की ऋतु में अहर्निश अपने चारों ओर अग्नि जलाकर स्वयं मध्य में बैठकर पार्वती ने मन्त्र का जप किया ।४०। वर्षा काल में खुले मैदान में आसन जमाकर एक शिला पर बैठते हुए अपने ऊपर अविरल वर्षा की धारा लेकर जाप किया ।४१। शीतकाल को कठिन रात्रियों में शिव-भक्ति में निरत होकरे बिना आहार किए जल के मध्य में स्थित होकर ध्यान तथा मन्त्र-जाप भवानी ने किया ।४२।

एवं तपः प्रकुर्वाणा पंचाक्षरजपे रता ।
दध्यौ शिवं शिवा तत्र सर्वकामफलप्रदम् ॥४३

स्वारोपिताञ्च्छुभान्वृक्षान्सखीभिः सिंचती मुदा ।
प्रत्यहं सावकाशे सा तत्रातिथ्यमकल्पयत् ॥४४
वातश्चैव तथा शीतवृष्टिश्च विविधा तथा ।
दुःसहोऽपि तथा धर्म स्तया सेहे सुचित्तया ।४५
दुखं च विविधं तत्र गणितं न तया गतम् ।
केवलं मन आधाय शिवे सीसीत्स्थिता मुने ।४६
प्रथमं फलभोगेन द्वितीयं पर्ण भोजनैः ।
तपः प्रकुर्वती देवी क्रमात्रिन्येऽमिताः समाः ।४७
ततः पर्णान्यपि शिवा निरस्य हिमवत्सुता ।
निराहाराऽभवद्देवी तपश्चरणसंरता ।४८
आहारे त्यक्तपर्णाऽभूद्यस्माद्धिमवतः सुता ।
तेन देवैरपर्णेति कथितः नामतः शिवा ।४९।

इस तरह समस्त कर्मों के फल प्रदाता शंकर जी के ध्यान में निमग्न होकर पार्वती ने घोर तपस्या में पंचाक्षरी मन्त्र का जाप किया ।४३। वहां अपने समारोपित वृक्षावली का सञ्चन स्वयं अवकाश पाकर पार्वती करती थी तथा अपनी सहेलिओं से उन्हें सिञ्चित कराती थी ओर सर्वज्ञा समागन अतिथियों का सत्कार करती रहती थी ।४४। शीत-वात वर्षा और ग्रीष्म के विविध प्रकार के सन्तापों को सावधान चित्त से सहन करने लगी ।४५। इस तपश्चर्या के काल में भवानी को विघ्न स्वरूप अनेक दुःख उपस्थित हुए किन्तु उसने किसी की परवाह न की । हे मुनिवर ! पार्वती का ध्येय तो एक शिवाराधना थी, उसने उसी में पूर्ण रूप से मन लगाया था ।४६। प्रथम वर्ष में फलों का भोजन और दूसरे वर्ष में पत्तों का आहार करते हुए तपस्या में देवी को इसी क्रम से बहुत से वर्ष व्यतीत हो गये ।४७। इसके अनन्तर भवानी ने पर्णाहार का भी त्याग कर दिया था । उसी समय देवगण ने शिवा का नाम 'अपर्णा' रख दिया ।४८-४९।

एकापादस्थिता सासीच्छिवं संस्मृत्य पार्वती ।
पंचाक्षरं जंपती च मनु तेपे तपो महत् ॥५०

चीरवल्कसंवीता जटासंघातधारिणो ।
शिवचिंतनसंसक्ता जिगाय तपसा मुनीम् ।५१
एवं तस्यास्तपस्यन्त्याश्चिंतयंत्ता महेश्वरम् ।
त्रीणि वर्ष सहस्राणि जग्मुः काल्यास्तपोवने ।५२
षष्टिवर्षं सहस्राणि यत्र तेपे तपो हरः ।
तत्र क्षणमथोषित्वा चितयामास सा शिवा ।५३
नियमस्थां महादेव किं मां जानासि नाधुना ।
येनाहं सुचिरं तेन नानुयाता तपोरता ।५४
लोके वेदे च शिरिशो मुनिभिर्गीयते सदा ।
शंकरा स हि सर्वत्रः सर्वात्मा गर्वदर्शनः ।५५
सर्वभूतिप्रदो देवः सर्वभावानुभावनः ।
भक्ताभीष्टप्रदो नित्यं सर्वक्लेशनिवारणः ।५६

कुछ समय बाद गौरी ने एक चरण से खड़े होकर पंचाक्षरी मन्त्र के जाप द्वारा महातपश्चर्या का आरम्भ कर दिया। पार्वती की ऐसी घोर तपस्या थी कि उसने चीर बल्कधारी जटाजूट से युक्त शिवजी का ही चिन्तन करते हुए अपने तप द्वारा उसने महातापस मुनियों को भी जीत लिया था ।५०। इसी भांति तप करते हुए और महेश्वर का ध्यान करते हुए भवानी को उस तपोवन में तीन सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये ।५१। जिस स्थान पर शिव ने साठ हजार वर्ष पर्यन्य तपस्या की थी वहां एकक्षण के लिये स्थित होकर पार्वती अपने मन में विचार करने लगी क्या मेरे उपास्य महेश्वर यह नहीं जान पाये हैं कि मेरे पाने के लिये ही यह तपोनिरता हो रही है जिससे कि इतने लम्बे समय में भी तपस्या करने वाली मेरी सुधि नहीं ले सके ।५२-५४। लोक में और वेद में तथा मुनि समाज में यह प्रख्यात है कि महेश सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी और सर्वदर्शी हैं एवं वे सब प्रकार के प्रदाता, समस्त भावों से अनुभावित और सर्वदा अपने भक्तों की मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाले तथा सभी क्लेशों के निवारक हैं ।५५-५६।

सर्वकामान् परित्यज्य यदि चाह वृषध्वजे ।

अनुरक्ता तदा मोऽत्र स प्रसीदतु शंकरः ।५७
यदि नारदतं त्रत्रोक्तमत्रो तप्तः शराक्षरः ।
सुमवत्वा विधवा नित्थं संप्रीसीदतु शंकरः ।।५८
यदि भक्त्या शिवस्याहं निर्विकारा यथोदितम् ।
सर्वेश्वरस्या चात्यंतं संप्रसीदतु शंकरः ।।५९
एवं चिंतयती नित्यं तेपे सा सुचिरं तपः ।
अधोमुखी निर्विकारा जटावल्कलधारिणी ।।६०
तथा तया तपस्तप्नं मुनीनामपि दुष्करम् ।
स्मृत्वा च पुरुषास्तत्र परमं विस्मयं गतः ।।६१
तत्तोपोदर्शनार्थं हि समाजग्मुश्च तेऽखिलाः ।
धन्यान्निजान्मन्यमाना जगदुश्चेति सम्मताः ।।६२
महतां वृद्धिधर्मेषु गमनं श्रेय उच्यते ।
प्रमाणं तपसो नास्ति मान्यो धर्मः सदा बुधैः ।।६३

यदि वास्तव में मैंने समस्त अन्य कामनाओं का त्याग कर केवल शिव में ही अनुराग किया है तो वे महेश्वर मुझ अनुरागिणी पर अवश्य कृपा करेंगे ।५७। यदि नारदीय तन्त्रोक्त पंचाक्षरी मन्त्र की विधि एवं भक्ति के साथ मैंने प्रतिदिन जपा है तो गिरीश प्रभु मुझ पर प्रसन्न हों ।५८। यदि पूर्ण भक्ति की भावना से विकार रहित शिव की समुचित समाराधना की है तो वे सब के स्वामी प्रभु शंकर मुझ पर प्रसन्न होंगे ।५९। इस तरह महाचिन्ता मे डूबी हुई वह रुद्राणी जटा धारण किए हुए निर्विकार होकर नीचे की ओर मुख करके महातपस्या करने लगीं ।६०। पार्वती ने ऐसा कठोर तप किया कि मुनिगण भी उसे नहीं कर सकते थे, उन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हो रहा था ।६१। अनेक ऋषि मुनि तो पार्वती की कठोर तपस्या को सुनकर वहाँ देखने के लिए आये और अपने को परम धन्य समझ कर भवानी की प्रशंसा करते हुए अत्यधिक विस्मित हुए ।६२। जो धर्म वृद्ध होते हैं उनके समीप गमन करना महान्पुरुषों को परमकल्याणकारी होता है। तप का कोई प्रमाण नहीं होता एव पंडितों को सर्वदा धर्म को मान्यता देनी चाहिये ।६३।

श्रुत्वा दृष्ट्वा तपोऽस्यास्तु किमन्यैः क्रियतेतपः ।
अस्मात्तपोऽधिकं लोके न भूतं न भविष्यति ।।६४
जल्पत इति ते सर्वे सुप्रशस्य शिवापतः ।
जग्मुः स्वं धामं मुदिताः कठिनागश्च ये ह्यपि ।।६५
अन्यच्छृणु महर्षे त्वं प्रभावं तपसोऽधुना ।
पार्वत्या जगदंबायाः पराश्चर्यकरं महत् ।।६६
तदाश्रमगता ये च स्वभावेन विरोधिनः ।
तेऽप्यासंस्तत्प्रभावेण विरोधरहितास्तदा ।।६७
सिंहा गावश्च सततं रागादिदोषसंयुताः ।
तन्महिम्ना च ते तत्र नाबाधत परस्परम् ।।६८
अथान्ये च मुनिश्रेष्ठ मार्जारा मूषकादयः ।
निसर्गाद्वैरिणो यत्र विक्रियते स्म न कचित् ।।६९
वृक्षाश्च सफलास्तत्र तृणानि विविधानि च ।
पुष्पाणि च विचित्राणि तत्रासन्मुनिसत्तम ।।७०
तद्वनं च तदा सर्वं कैलासेनोपमान्वितम् ।
जातं च तपसः तस्याः सिद्धिरूपभूत्तदा ।।७१

पार्वती की तपश्चर्या देख व सुनकर दूसरों के तप को हेय बताते हुए मुनिजन कहने लगे—तप तो ऐसा ही होना चाहिए जैसा यह श्री शिव के लिए किया जा रहा है। इनसे विशेष बढ़कर लोक में अब तक न किसी ने किया और न भविष्य में भी हो सकेगा ।६४। इस प्रकार वे सब पार्वती के तप की प्रशंसा कहते-सुनते अपने-अपने स्थानों को चले गये यद्यपि वे कठिन अङ्ग वाले थे ।६५। हे महर्षे ! अब तुम जगदम्बा के परम अद्भुत चरित्र का तथा उनकी इस तपस्या के प्रबल प्रभाव को सुनो। परस्पर में स्वभाव के विरोधी भी कोई उस आश्रम में पहुँचते ही अपने स्वभाविक विरोध का त्याग कर देते थे। यह पार्वती के तप और स्वभाव का ही प्रभाव है ।६६-६७। सिंह और गौ परस्पर में रागादि दोष वाले हैं, किन्तु उस तपोवन में शिवा की महिमा से किसी ने किसी को कभी कोई बाधा नहीं पहुँचाई ।६८। मूषक और मार्जार आदि अन्य

भी स्वाभाविक शत्रुओं ने अपनी स्वभाव सिद्ध शत्रुता का वहाँ त्याग कर दिया था ॥६९॥ वहाँ के वृक्ष-लता आदि सब पुष्पित और फलित हो गये। हे मुनिवर! उस समय बड़े-बड़े विचित्र पुष्प विकसित हो गए और समस्त तपोवन कैलास के समान बन गया था। यह सभी कुछ पार्वती के कठोर तप का ही प्रभाव था। इस तरह वह देवी सिद्ध रूप हो गई थी ॥७०—७१॥

॥देवताओं का तप से व्याकुल हो ब्रह्मलोक जाना॥

एवं तपस्या पार्वत्यां शिवप्राप्ती मुनीश्वर।
चिरकालो व्यतीयाय प्रादुर्भूतो हरो न हि ॥१
हिमालयस्तदागत्य पार्वतीं कृतनिश्चयाम्।
सभार्यः ससुतामात्य उवाच परमेश्वरीम् ॥२
मा खिद्यतां महाभागे तपसाऽनेन पार्वति।
रुद्रो न दृश्यते बाले विरक्तो नात्र संशयः ॥३
त्वं तन्वी सुकुमारांगी तपसा च विमोहिता।
भविष्यसि न संदेहः सत्यं सत्यं वदामि ते ॥४
तस्मादुत्तिष्ठ चैहि त्वं वरवर्णिनि।
किं तेन तव रुद्रगण येन दग्धः पुरा स्मरः ॥५
अतो वि निर्विकारत्वात्त्वामादातुं वरां हरः।
नागमिष्यति देवेशि तं कथं प्रार्थयिष्यसि ॥६
गगनस्थो यथा चन्द्रो गृहीतुं नहि शक्यते।
तथैव दुर्गमं शम्भुं जानीहि त्वमिहानघे ॥७

ब्रह्माजी ने कहा—हे नारद! इस तरह तपस्या करते हुए पार्वती को जब बहुत समय हो गया और शिव दर्शन की उत्कट लालसा करते हुए भी शिव के दर्शन की प्राप्ति नहीं हुई। तब दृढ़ निश्चय वाली पार्वती के पास हिमालय स्त्री, पुत्र और मन्त्रियों के साथ उपस्थित हुए और भवानी से कहने लगे ॥ १-२ ॥ हे महाभागे! हे पार्वती! इस तपस्या से तू खिन्न मत होना। हे बाले! तुमको रुद्र दर्शन नहीं दे रहे हैं सो वे परम बिरक्त हैं इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। ३। तू परम

सुकुमार अंग-प्रत्यंगों वाली है अतः तपस्या मोहित हो गई है इसमें संदेह नहीं है। मैं तुम से जो कुछ भी कहता हूँ यह पूर्ण सत्य है ॥ ४ ॥ हे वरवर्णिनी ! इसलिये अब तुम तप को छोड़कर उठ जाओ और अपने घर को चलो। ऐसे गुरुदेव से तुम्हारा क्या मनोरथ पूरा होगा जिसने पहले ही रतिनाथ कामदेव को भस्म कर दिया है। ५। शिवजी तो विकार से रहित हैं अतः वे तुम को ग्रहण करने के लिए कभी नहीं आवेंगे। हे देवी ! तुम उनके पाने की क्यों प्रार्थना कर रही हो ?। ६। जिस तरह गगन-मण्डल में चन्द्र को कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता है, हे पाप-रहिते ? उसी भांति तुम शिव की प्राप्ति भी परम दुर्लभ एवं दुर्गम समझ लो ॥ ७ ॥

तथैव मेनया चोक्ता तथा सह्याद्रिणा सती।
मेरुणा मंदरेणैव मैनाकेन तथैव सा ॥८
एमवमन्यैः क्षितिध्रैश्च क्रौंचादिभिरनातुरा।
तथैव गिरिजा प्रोक्ता नानावादविधायिभिः ॥९
एवं प्रोक्ता यदा तन्वी सा स्व तपसि स्थिता।
उवाच प्रहसंत्येव हिमवंतं शुचिस्मिता ॥१०
पुरा प्रोक्तं मया तात मातः किं विस्मृतं त्वया।
अधुनापि प्रतिज्ञां च शृणुध्वं मम बांधवाः ॥११
विरक्तोऽसौ महादेवो येन दग्धो रुषा स्मरः।
तं तोषयामि तपसा शंकर भक्तवत्सलम् ॥१२
सर्वे भवंतोगच्छंतु स्वं स्वं धाम प्रदर्षिताः
भविष्यत्येव तुष्टोऽसौ नात्र कार्य्या विचारणा ॥१३
दग्धो हि मदनो येन येन दग्धं गिरेर्वनम्।
तमानयिष्ये चात्रैव तपसा केवलेन हि ॥१४

ब्रह्माजी ने कहा—सती मेना ने भी पार्वती को बहुत कुछ समझाया तथा सह्य, मेरु, मन्दर और मैनाक पर्वतों ने भी समझाया एवं अन्य कौञ्च गिरियों ने भी अनेक हेतु बनाकर भली-भाँति आतुरता रहित भवानी को समझाया था ॥८-९॥ इस प्रकार से जब सभी ने तपस्या

में निरता पार्वती को समझाने का प्रयास किया तो मुस्कराती हुई पवित्र हास्य वाली देवी पिता हिमवान् से कहने लगी ।१०। पार्वती ने कहा—हे तात ! हे माता ! मैंने पहिले ही आप लोगों से कह दिया था, क्या आपने अब उसे भुला दिया है ? अच्छा, इस समय समस्त बन्धुगण मेरी प्रतिज्ञा को सुन लेवें। यह सुनिश्चित है कि महेश्वर परम विरक्त हैं और उन्होंने क्रोध से कामदेव को भी भस्म कर दिया है। अब उन्हीं भक्तों पर कृपा दृष्टि करने वाले शिव को मैं अपनी इस उग्र तपश्चर्या से सन्तुष्ट एवं प्रसन्न अवश्य ही करूँगी ।११-१२। आप लोग प्रसन्नता पूर्वक इस समय अपने-अपने स्थानों को चले जावें। इसमें कुछ भी संदेह नहीं है कि शकर भगवान् मुझ पर प्रसन्न होंगे ।१३। जिस प्रभु ने कामदेव को जला-कर भस्म कर दिया और गिरि के वन को दग्ध कर दिया, मैं अब उन्हें अपने तपोबल के प्रभाव से यहाँ पर ही बुला लूँगी ।१४।

तपोबलेन महता सुसेव्यो हि सदाशिवः ।
जानीध्वं हि महाभागाः सत्यं सत्यं वदामि वः ।।१५
आभाष्य चैवं गिरिजा च मेनकां मैनाकबंधुं पितरं हिमालयम् ।
तुष्णीं बभूवाशु सुभाषिणी शिवा समंदरं पर्वतराजबालिका ।।
जग्मुस्तथोक्ताः शिवयाहि पर्वतायथागतेगनापि विचक्षणास्ते ।
प्रशसमाना गिरिजां मुहुर्मुहः सुविस्मिता हेमनगेश्वराद्याः ।।
गतेषु तेषु सर्वेषु सखीभिः परिवारिता ।
तपस्तेपे तदधिकं परमार्थं सुनिश्चया ।।१८
तपसा महता तेन सप्तमासीच्चराचरम् ।
त्रैलोक्यं हि मुनिश्रेष्ठ सदेवासुरमानुषम् ।।१९
तदा सुरसुराः सर्वे यक्षकिन्नरचारणाः ।
सिद्धाः साध्याश्च मुनयो विद्याधरमहोरगाः ।।२०
सप्रजापतयश्चैव गुह्यकाश्चतथापरे ।
कष्टात् कष्टतरं प्राप्ताः कारणं न विदुः स्म तत् ।।२१

हे महान् भाग्य वालो ! मैं आपसे परम सत्य सिद्धांत बताती हूँ कि महाभाग शिव केवल महान् तपोबल से ही सेवित हो सकते हैं। यह आप

खूब अच्छी तरह समझ लेवें।१५। ब्रह्माजी ने कहा-शैलराज की आत्मजा गिरिजा ने अपनी माता मेनका, भाई मैनाक और पिता हिमाचल से ऐसा कह कर तथा मन्दर को भी इसी तरह समझाकर सुभाषिनी ने मौन धारण कर लिया।१६। गिरिनन्दिनी के ऐसे वचन सुनकर पर्वतराज और सुमेरु गिरि आदि बार-बार पार्वती की दृढ़ता की प्रशंसा करते हुए परम आश्चर्यान्वित होकर वापिस चले गये ।१७। सब के जाने के पश्चात् भवानी अपनी सहेलियों के साथ परमार्थ के निश्चय से महान् तप में पुनः संलग्न हो गई।१८। उस समय उसके कठोर तपोव्रत से चराचर सभी सन्तप्त हो उठे। हे मुनीश्वर ! त्रिभुवन में देव और असुरों में कोई ऐसा नहीं रहा, जिसे सन्ताप न हुआ हो।१९। सुर असुर-यक्ष-किन्नर-चारण-सिद्ध, मुनि, महोरग विद्याधर प्रजापति, और गुह्यक् सब को महान् कष्ट होने लगा और इसका क्या कारण है - यह किसी को भी ज्ञात न हो सका।२०-२१।

सर्वे मिलित्वा शक्राद्या गुरुमामंत्र्य विह्वलाः ।
सुमेरौ तप्तसर्वाङ्गा विधि मा शरणं ययुः ॥२२
तत्र गत्वा प्रणम्याशु विह्वला नष्टसुत्विषः ।
ऊचुः सर्वे च सस्तूय ह्यौकपद्यैन मां हि ते ॥२३
त्वया सृष्टिमिदं सर्वं सगदेतच्चराचरम् ।
संतप्तमति कस्माद्धे न ज्ञातं कारण विभो ॥२४
तद्ब्रूहि कारणं ब्रह्मञ्ज्ञातुमर्हसि नः प्रभो ।
दग्धीभूततनून्देवान् त्वत्तो नान्योऽस्ति रक्षकः ॥२५
इत्याकर्ण्य वचस्तेषामहं स्मृत्वा शिव हृदा ।
विचार्य मनसा सर्वः गिरिजायास्तपः फलम् ॥२६
दग्धं विश्वमिति ज्ञात्वा तैः सर्वैरिह सादरात् ।
हरये तत्कथयितुं क्षीराब्धिमगमं द्रुतम् ॥२७
तत्र गत्वा हरिं दृष्ट्वा विलसंतं सुखासने ।
सुप्रणम्य सुसंस्तूय प्रावोचं सांजलिः सरैः ॥२८

इन्द्र आदि समस्त देव गुरु वृहस्पति से परामर्श कर सुमेरु पर्वत पर

सर्वांग सन्तापसे अत्यन्त व्याकुल होते हुए विधाताकी शरणमें पहुँचे । २२ । वहाँ आकर सबने मुझे प्रणाम किया । मैंने देखा उनकी कान्ति एकदम क्षीण हो चुकी थी । उन्होंने मेरी स्तुति कर कहना आरम्भ किया ।१३। देगवण ने कहा—हे विभो ! आपका निर्मित चराचर जगत् किस कारण से इस समय परम सन्तप हो रहा है ? हम लोग कोई भी इसका कारण नहीं समझ पा रहे हैं । २४ । हे ब्रह्मन् ! आप ही इसका कारण एवं उपाय बतलाइए । हमारा शरीर सन्ताप से जल-सा रहा है । आप के अतिरिक्त हमारा कोई अन्य रक्षा करने वाला नहीं हैं । २५ । ब्रह्माजी ने कहा-मैंने उनकी प्रार्थना सुनकर मन में शिव का स्मरण करके विचार किया कि यह पार्वती की उग्रतम तपस्या का ही परिणाम है । २६ । उस समय समस्त शिश्व को ताप दग्ध जानकर सब लोग क्षीर सागर पर पहुँचे और भगवान् नारायण से सब बात कही । २७ । वहाँ सुखासन पर स्थित नारायण की सेवा में प्रणाम पूर्वक सबने स्तुति करके निवेदन किया ।। २८ ।।

त्राहि त्राहि महाविष्णो तप्तान्नः शरणागतान् ।
तपसोग्रेण पार्वत्यास्तपंत्याः परमेण हि ।।२९
इत्याकर्ण्यं वचस्तेषामस्मदादिवौकसाम् ।
शेषासने समाविष्टोऽस्मानुवाच रमेश्वरः ।।३०
ज्ञातं सर्वनिदानं मे पार्वतीतपसोऽद्य वै ।
युष्माभिः सहितस्त्वद्य व्रजामि परमेश्वरम् ।।३१
महादेवं प्रार्थयामो गिरिजाप्रापणाय तम् ।
पाणिग्रहार्थमधुना लोकानां स्वस्तयेऽमराः ।।३२
वरं दातुं शिवायै हि देवदेवः पिनाकधृक् ।
यथा चैष्यति तत्रैव करिष्यामोऽधुना हि तत् ।।३३
तस्माद्वयं गमिष्यामो यत्र रुद्रो महाप्रभुः ।
तपसोग्रेण संयुक्तोऽद्यास्ते परममंगलम् ।।३४
विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा सर्वं ऊचुः सुरादयः ।
मपाभीता हठात् क्रुद्धाद्दग्धकामान्भयंकरात् ।।३५

हे नारायण ! हम पार्वती की कठोरतम तपश्चर्या के तेज से अति सन्तप्त होकर आपकी चरण में आये हैं । आप हमारी रक्षा कीजिए ।२६। इस प्रकार हम समस्त देवगण को प्रार्थना सुनकर भगवान् रमापति शेष-शय्या पर बैठे होकर हम से बोले ॥ ३० ॥ गिरिनन्दिनी की उग्र तपस्या का कारण हमको ज्ञात हो गया है । अब आप सब के साथ हम महेश्वर के स्थान पर चलते हैं ।३१। हे देववृन्द ! हम सभी महेश्वर से पार्वती के पाणिग्रहण को प्रार्थना करेंगे । इस परिग्रहण के कर लेने पर सभी लोकों का परम कल्याण होगा ।।३२।।परमदेव महेश्वर पार्वती को वरदान देने के लिये जिस तरह भी वहाँ जावें हम सभी उनसे यही प्रर्थना करेंगे और अब हमको वहीं चलना चाहिए, जहां वह महाप्रभु अपनी उग्र तपस्या से परम मंगल सम्पन्न होकर विराजमान हैं । ३३-३४ । ब्रह्माजी ने कहा—तब सब देवता कहने लगे—हम उन प्रलह करने वाले महादेव से अत्यन्त भयभीत हैं, क्योंकि उन्होंने भयंकर क्रोध से हठ त् कामदेव को भस्म कर दिया है । ३५ ।

महाभयंकरं क्रुद्धं कालानलसमप्रभम् ।
न यास्यामो वयं सर्वे विरूपाक्षं महाप्रभुम् ॥३६
यथा दग्धः पुरा तेन मदनो दुरतिक्रमः ।
तथैवः क्रोधयुक्तो नः स धक्ष्यति न सशयः ॥३७
तदाकर्ण्य वचस्तेषां शक्रादीनां रमेश्वरः ।
सांत्वयंस्तान्सुरान्सर्वान्प्रोवाच स हरिर्मुने ॥३८
हे सुरा मद्वचः प्रीत्या शृणुतादरतोऽखिलाः ।
न वो धक्ष्यति स स्वामी देवानां भयनाशनः ॥३९
तस्माद्भिर्गतव्यं मया सार्द्धं विचक्षणः ।
शंभुं शुभकरं मत्वा शरणं तस्य सुप्रभोः ॥४०
शिवं पुराणं पुरुषं ह्यधीशं वरेण्यरूपं हि परंपराम् ।
तपो जुषाणं परमात्मरूप परात्परं तं शरणं व्रजामः ॥४१
एवं युक्तास्तदा देवा विष्णुना । प्रभुविष्णुना ।

जग्मुः सर्वेतेन सह द्रष्टुकामाः पिनाकिर्नम् ॥४२

हम उन महाक्रोधाविष्ट कालानक के समान कान्ति वाले विरूपाक्ष से अत्यन्त डरे हुए हैं । अतः महायुक्त उनके समीप हम नहीं जायेंगे ।३६। वे क्रोध में भरे हुए हैं, जैसे परम दुस्सह कामदेव को भस्म कर दिया वैसे ही हम सबको भी वे निस्संदेह भस्मकर देंगे ।३७। ब्रह्माजी ने कहा—भगवान विष्णु देवगण के वे वचन सुनकर सबको सत्विना देकर कहने लगे ।३८। भगवान् हरि ने कहा—हे देववृन्द ! तुम सब मेरे वचन पर विश्वास करो और सुनो । वे तो सर्वदा देवोंके भयके नाश करने वाले परम रक्षक स्वामी हैं। तुमको कभी भी भस्म नहीं करेंगे ।३९। अतएव तुम सब हमारे साथ वहाँ उनके समीप में चलो । शिव सदा शुभकारी है । इसलिए उन शुभ करने वाले की ही शरण में चलना चाहिए ।४०। आप मन में यह धारण करो कि शिव परम कल्याणकारी सर्वाधीश्वर, परात्पर, वरेण्य स्वरूप, उग्र तपस्वी और परमात्मा-रूप हैं । हम उन्हीं की शरण में जा रहे हैं ।४१। ब्रह्माजी ने कहा—जब भगवान् नारायण ने इस प्रकार सबको समझा कर सान्त्वना दी तो सब देवता शंकर के दर्शन की इच्छा लेकर वहाँ गये ।४२।

प्रथमं शलपुत्र्यास्तत्तपो द्रष्टुं तदाश्रयम् ।
जग्मुर्मार्गवशात्सर्वे विष्णवाद्याः सकुतूहलाः ॥४३
पार्वत्याः सुतपो दृष्ट्वा तेजसा व्यापृतास्तदा ।
प्रणेमुस्तां जगद्धात्रीं तेजोरूपां तपः स्थिताम् ॥४४
प्रशंसंतस्तपस्तस्या साक्षात्सिद्धितनोः सुराः ।
जग्मुस्तत्र तदा ते च यत्रास्ते वृषभध्वजः ॥४५
तत्र गत्वा च ते देवास्त्वां मुने प्रैषयंस्तदा ।
पश्यंतो दूरतस्तस्थुः कामभस्मकृतो हरात् ॥४६
नारद त्वं शिवस्थानं तदा गत्वाऽभयः सदा ।
शिवभक्तो विशेषेण प्रसन्नं दृष्टवान् प्रभुम् ॥४७
पुनरागत्य यत्नेन देवानाहूय तांस्ततः ।
निनाय शंकरस्थानं तदा विष्णवादिकान्मुने ॥४८
अथ विष्णवादयः सर्वे तत्र गत्वा शिव प्रभुम् ।

ददृशः सुखमासीनं प्रसन्नं भक्तवत्सलम् ॥४६
योगपट्टस्थितं शंभुं गणैश्च परिवारितम् ।
तदोरूपं दधानं च परमेश्वररूपिणम् ॥५०
ततो विष्णुर्मयाऽन्ये च सुरसिद्धमुनीश्वराः ।
प्रणम्य तुष्टुवुः सूक्तैर्वेदोपषदन्वितैः ॥५१

मार्ग में सब से पहिले विष्णु आदि देवों ने भगवती शैलात्मज की तपोभूमि के दर्शन किये और पार्वती के कठोर तप को देखा तथा तपस्या के तेज से व्याप्त उस जगदम्बा को प्रणाम किया ।४३-४४। भवानी के तप की सभी देवता बड़ाई करते हुए बोले कि ऐसा प्रतीत होता है, यह साक्षात् सिद्धि का शरीर हैं। फिर सब भगवान् शंकर के समीप गये ।४५। हे मुनिवर ! वहाँ पहुँच कर समस्त देवों ने आपको ही पहले शिवजी के पास भेजा और मन्मथ का मथन करने वाले शंकर को देखकर दूर ही स्थित हो गये ।४६। हे मुने ! आप उस वक्त निर्भीक होकर शिवजी के समीप गये और आपने विशेष रूप से महेश्वर को प्रसन्न देखा ।४७। फिर आपने यत्न करके देवगण को बुलाया और विष्णु आदि सभी शंकर के सन्निकट में ले गये ।४८। तब वहाँ विष्णु प्रभृति सब देवों ने सुख पूर्वक विराजमान और प्रसन्नमुख एवं भक्तों पर कृपा करने वाले शंकर के दर्शन किये ।४६। उस वक्त शिवजी योगासन पर संस्थित थे और तपश्चर्या करने का रूप धारण किये हुए थे उनके चारों ओर गण घिरे हुए थे ।५०। उस समय मैं, भगवान् विष्णु, समस्त सुर-सिद्ध और मुनिगण सबने शिव को पहिले प्रणाम किया, फिर वेद तथा उपनिषदों के सूक्तों के द्वारा उनकी स्तुति की ।५१

विष्णु-ब्रह्मा के आग्रह से शिवजी का सम्मत होना

नमो रुद्राय देवाय मदनांतकराय च ।
स्तुत्याय भूरिभासाय त्रिनेत्राय नमो नमः ॥१
शिपिविष्टाय भीमाय भीमाक्षाय नमः ।
महादेवाय प्रभवे त्रिविष्टपतये नमः ॥२
त्वं नाथः सर्वलोकानां पिता माता त्वमीश्वरः ।

शंभुरीश: शंकरोऽसि दयालुस्त्वं विशेषतः ॥३
त्वं धाता सर्व जगतां ज्ञ तुमर्हसि नः प्रभो ।
त्वां विना कः समर्थोऽस्ति दु खनाशे महेश्वर ॥४
नत्याकर्ण्य वचस्तेषां सुराणां नन्दिकेश्वरः ।
कृपया परया युक्तो विज्ञप्तुं शंभुमारतभत् ॥५
विष्णवादय सुरगणा मुनिसिद्धसंघास्त्वांद्रष्टुमेवसुरवर्य्यविशेषयंति ।
कार्य्यार्थिनोऽसुरवरै परिभर्त्स्यमाना सम्यक्पराभवपदंपरमप्रपन्नः ।
तस्मात्वया हि सर्वेश त्रातव्या मुनयः सुराः ॥
दीनवन्धुर्विषेशेण त्वमुक्तो भक्तवत्सलः ॥७

देवताओं ने कहा काम को भस्म करने वाले उज्वल कान्ति से पूर्ण तीन नेत्रों को धारण करने वाले, परम, स्तुति के योग्य रुरु देव शंकर भगवान् को सब का प्रमाण स्वीकार हो। १। शिपिविष्ट, भीम और भीमाक्ष के लिए प्रणाम हैं। महेश्वर इस जगत् के उत्पन्न करने वाले और स्वर्ग के स्वामी हैं, उनके लिए सब का प्रमाण स्वीकार हो। २। आप सब लोकों के स्वामी, माता-पिता और ईश्वर हैं, आप शम्भु-ईश और शंकर तथा दया करने वाले हैं। ३। हे महेश्वर ! आप त्रिभुवन के विधाता और रक्षक हैं। अतः अब आप हमारी रक्षा करें। आपके अतिरिक्त दुःख का नाश करने को अन्य कोई समर्थ नहीं हैं।४। ब्रह्माजी ने कहा—देवगण के ऐसे दीनता भरे वचन सुनकर परम कृपालु नन्दिकेश्वर महेश से विज्ञप्ति करने लगे। ५। नन्दिकेश्वर ने कहा—हे भगवन् शंकर ! दैत्यों की दी हुई पीड़ा से अत्यन्त उत्पीड़ित होकर परम व्याकुल विष्णु आदि समस्त देवगण मुनि-वृन्द और सिद्ध लोग आपके पुण्यमय दर्शन के लिए यहाँ उपस्थित हुए हैं। हे सुरवर ! ये सब असुरों से ताड़ित एवं तिरस्कृत होकर अब आपकी शरण ग्रहण करना चाहते हैं। ६। हे सर्वेश्वर ! हे दीनबन्धो ! अब आपको इन सबकी रक्षा करनी चाहिए। आप तो विशेष रूप से भक्तों के वत्सल कहे जाते हैं।७।

एवं दयावता शंभुर्विज्ञप्तो नंदिना भृशम् ।
शनैःशनैरुपरमद्ध्यानादुन्मीलय चक्षिणो ॥८

ईशोऽथोपरतः शंभुस्तदा परमकोविदः ।
समाधेः परमात्मासौ सुरान्सर्वानुवाच ह ॥६
कस्माद्यूयं समायाता मत्समीपं सुरेश्वराः ।
हरिब्रह्मादयः सर्वे ब्रूत कारणमाशु तत् ॥१०
इति श्रुत्वा वचः शंभोः सर्वे देवा मुदाऽन्विताः ।
विष्णोर्विलोकयामासुर्मुखं विज्ञप्तहेतवे ॥११
अथ विष्णुर्महाभक्तो देवानां हितकारकः ।
मदीरितमुवाचदं सुरकार्यं महत्तमम् ॥१२
तारकेण कृतं शंशो देवानां परमाद्भुतम् ।
कष्टात्कष्टतरं देवा तिज्ञत्तु सर्व आगताः ॥१३
हे शंभो तव पुत्रेणौरसेन हि भवत्यति ।
निहतेस्तारकौ दैत्यो नान्यथा मम भाषितम् । १४

ब्रह्माजी ने कहा—जब नन्दिकेश्वर ने दयालु शिवजी से इस तरह प्रार्थना की तो ध्यानावस्था से जगकर शंकर ने शनैः शनैः अपने नेत्र खोले ।८। इसके अनन्तर परम पण्डित शंकर ध्यान से धीरे-धीरे उपरत होकर अपनी समाधि से जाग्रत हुए और देवताओं से बोले ।६। भगवान् शंकर ने कहा—हे देववृन्द ! तम हरि ब्रह्मा आदि सब हमारे पास किस कारण से उपस्थित हुए हो ? आप लोग यहाँ आने का कारण स्पष्ट रूप से हमको बतलाओ ।१०। ब्रह्माजी ने कहा—भगवान् शिव के ऐसे आशा भरे वचन सुनकर समस्त देवों को अन्यन्त हर्ष हुआ और विज्ञप्ति करने के लिए विष्णु के मुख की ओर ताकने लगे ।११। सब देवगण के हितैषी विष्णु ने देवताओं के महान् कार्य के पूर्ण करने के लिये शंकर भगवान् से निवेदन करना आरम्भ किया ।१२। विष्णु ने कहा—हे शंकर ! तारकासुर से देवताओं को बहुत भारी पीड़ा उत्पन्न हो गई है। इसलिये ये सब एकत्रित होकर अपनी सेवा में उसकी प्रार्थना करने को वहाँ आये हैं ।१३। हे भगवान् ! जिस समय आपके वीर्य से स्वपुत्र उत्पन्न होगा, उसी के द्वारा इस तारक दैत्य का संहार हो सकेगा । यह मेरा निवेदन पूर्णतया सत्य एवं ध्रुव है ।१४।

विचार्य्येत्थं महादेव कृपां कुरु नमोऽस्तु ते ।
देवान्समुद्धर स्वामिन् कष्टात्तारकनिर्मितात् ॥१५
तस्मात्वया गिरिजा देव शंभो ग्रहीतव्या पाणिना दक्षिरोन।
पाणिग्रहेणैव महानुभावां दत्तां गिरीद्रेण च तां कुरुष्व ॥१६
विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रसन्नो ह्यब्रवीच्छिवः ।
दर्शयन् सद्गति तेषां सर्वेषां योगतत्परः ॥१७
यदा मे स्वीकृता देवी गिरिजा सर्वसुन्दरी ।
तदा सर्वे सुरेन्द्राश्च ऋषयो मुनयस्तदा ॥१८
सकामाश्च भतिष्यन्ति न क्षमाश्च परे पथि ।
जीवयिष्यति दुर्गा सा पाणिग्रहणतः स्मरम् ॥१९
मदनो हि मया दग्धः सर्वेषां कार्यसिद्धये ।
ब्रह्मणो वचनाद्विष्णो नात्र कार्या विचारणा ॥२०
एवं विमृश्य मनसा कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
सुधीः सर्वैश्च देवेन्द्र हठं नो कर्तुमर्हसि ॥२१

हे महेश्वर ! मैं प्रणति पूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि आप इस तथ्य पर विचार कर मुझ पर कृपा कीजिये । हे स्वामिन् ! तारकासुर बड़ा भारी कष्ट दे रहा है । आप उससे सबका उद्धार कीजिये । हे शंकर ! गिरिराज हिमवान् अपनी महाभागा प्रिय पुत्री गिरिजा को आपकी सेवा में पत्नी रूप में देने को इच्छुक हो रहे हैं । आप उसका दक्षिण कर से पाणिग्रहण कर उसे स्वीकार करें ।१५-१६। भगवान् विष्णु के वचन श्रवण कर शिव ने योग में परायण समस्त देवगण को व्यावहारिक सुन्दर गति का प्रदर्शन करते हुए प्रसन्नचित्त से कहा—जब परम सुन्दरी गौरी मेरे द्वारा अंगीकृत की जायगी तब सभी सुरऋषि और मुनिवृन्द सकाम हो जायेंगे और परमार्थिक मार्ग की सामर्थ्य खो बैठेंगे, क्योंकि पाणि-ग्रहण हो जाने पर वही दुर्गा भस्मीभूत कामदेव को पुन जीवित करा देगी । १७-१९। मैंने तो ब्रह्माजी के वचन से सब के कार्यों की सिद्धि के लिये कामदेव को भस्म किया । हे विष्णुदेव ! इस बात में कुछ भी सन्देह नहीं है ।२०। हे देवेन्द्र ! आप ही स्वयं और अकार्य की व्यवस्था

क मन में विचार करें और परम बुद्धिशील आप इन देवताओं के साथ इस विषय में कोई हठ न करें ।२१।

दग्धे कामे मया विष्णो सुरकार्यं महत्‌ कृतम् ।
सर्वे तिष्ठतु निष्कामा मया सह सुनिश्चितम् ॥२२
यथाऽहं च सुराः सर्वे तथा यूयमयत्नतः ।
तपः परमसक्ताः करिष्यध्वं सुदुष्करम् ॥२३
यूयं समाधिना तेन मदनेन विना सुराः ।
परमानदसंयुक्ता निर्विकारा भवन्तु वै ॥२४
पुरावृत्तं स्मरकृतं विस्मृत यद्‌ विधे हरे ।
महेन्द्र मुनयो देवा यत्तत्सर्वं विमृश्यवांम् ॥२५
महाधनुधरेणैव मदनेन हठात्सुराः ।
सर्वेषां ध्यानविध्वंसः कृतस्तेन पुराऽमराः ॥२५
कामो हि नरकायैव तस्मात् क्रोधोऽभिजायते ।
क्रोधाद्भवति सम्मोहो मोहाच्च भ्रंशते तपः ॥२७
कामक्रोधौ परित्याज्यौ भवद्भिः सुरसत्तमैः ।
सर्वरेव च मंतव्य मद्वाक्यं नात्यथा क्वचित् ॥२८

हे विष्णो ! कामदेव को भस्म कर मैंने देवगण का एक परम महान्‌ कार्य किया है । जिस तरह मैं इस समय हूँ वैसे ही समस्त देवता भी कामवासना से मुक्त होकर स्थित रहें ।२१। जैसे मैं तपश्चर्या में मग्न हूं, हे देवगण ? वैसे ही आप सब भी दुष्कर तपस्या करो ।२३। हे देववृन्द ! उस काम के बिना समाधिस्थ हो परम आनन्द के साथ निर्विघ्न तपोव्रत का पालन करो ।२४। हे विधाता ! हे विष्णो ! हे हेमन्द्र ! हे मुनिवृन्द ! हे देवगण ! यदि कामदेव की पुरानी सब बात भुला दी हो तो पुनः उसी पुरातन बात का सस्मरण करके भली भाँति विचार करो ।२५। हे देवगण ! उस परम शक्तिशाली पुष्पधन्वा ने महेन्द्र, मुनि और देवों की जो दशा की है आपको उसका अच्छी तरह विचार अवश्य की करना चाहिए । उसने पहिले भी सबका ध्यान कष्ट किया था ।२६। नरक का द्वार काम ही होता है, इसके कारण ही क्रोध

की उत्पत्ति हुआ करती है, क्रोध से मोह, मोह से स्मृत-भ्रम और भ्रम से बुद्धि नाश होकर तप का नाश होता है। २७। हे देवगण ! आप सब को काम तथा कोध का त्याग कर देना चाहिए। मेरी यह उपदेशपूर्ण बात आप लोग अवश्य मान लें इसमें पूरा तथ्य भरा हुआ है।२८।

एवं विश्राव्य भगवान् महादेवो वृषध्वजः।
सुरान् प्रवाचयामास विधिविष्णु तथा मुनीन् ॥२९
तूष्णींभूतोऽभवच्छंभुर्ध्यानिमाश्रित्य वै पुनः।
आस्ते पुरा यथा स्थाणुर्गणैश्च परिवारितः ॥३०
स्वात्मानमात्मना शंभुरात्मन्येव व्यचिंतयन्।
निरंजनं निराभास निर्विकारं निरामयम् ॥३१
परात्परतरं नित्यं निर्मम निरवग्रहम्।
शब्दातीतं नित्यं निर्गुण च ज्ञानगम्य परात्परम् ॥३२
एवंस्वरूपं परमं चिंतयन् ध्यानमास्थितः।
परमानन्दसमग्नो बभूव बहुसूतिकृत् ॥३३
ध्यानस्थित च सर्वेश तृदष्ट्वा सर्वे दिवौकसः।
हरिशक्रादय सर्वे नन्दिन प्रोचुरानताः ॥३४
किं वयं करवामाद्य विरक्तो ध्यानमास्थितः।
शंभुस्त्वं शंकरसखः सर्वज्ञः शुचिसेवकः ॥३५
केनोपायेन गिरिक्त प्रसन्नः स्याद्गणाधिप।
तदुपायं समाचक्ष्व वयं त्वच्छरण गताः ॥३६

ब्रह्माजी ने कहा—वृषध्वज महेश ने ऐसा कह कर विष्णु विधाता देववृन्द और मुनिगण से उत्तर श्रवण करने की इच्छा प्रकट की।२९। इसके पश्चात् शिव ध्यान-मग्न होकर मौन हो गये। उस समय वे गणों से युक्त थे और एक स्थाणु के तुल्य अचल हो गये।३०। महेश्वर भगवान् निरन्जन, निराकार, निराभास, निर्विकार और निरामय आत्म-तत्त्व का अपनी ही आत्मा में चिंतन करने लग गये। ३१। वे यह चिन्तन कर रहे थे कि परमात्मा तत्व परात्पर, नित्य स्वरूप, निरवग्र ममता से रहित, निर्गुण, ज्ञान द्वारा जानने योग्य और शब्द से भी परे हैं। ३२।

इस तरह परमतत्व स्वरूप का ध्यान करते हुऐ समस्त जगत् के सृष्टा प्रभु शंकर परमानन्द में निमग्न हो गये । ३३ । तब समस्त देवता और विष्णु ने महादेव को ध्यानावस्थित देखकर नन्दिकेश्वर से कहा—हम लोग अब क्या कर सकते हैं ? शंकर भगवान् तो समाधि में लीन हो गये हैं आप ही इन परम विरक्त शिव के सच्चे सखा और परम पवित्र सेवक हैं ।३४-३५। हे गणाधिप ! जिस उपाय से शंकर प्रसन्न हों वही हमें कृपाकर बतलाइये । हम सब आपकी शरण में आये हैं । ३६ ।

इति विज्ञप्तिती देवैर्मुने हर्षादिभिस्तदा ।
प्रत्युवाच सुरांस्तान्स नन्दी शंभुप्रियो गणः ॥३७
हे हरे हे विधे शक्र निर्जरा मुनयस्तथा ।
शृणुध्ववचन मे हि शिवसंतोष कारकम् ॥३८
यदि वो हठ एवाद्य शिवदारपरिग्रहे ।
अतिदोनतया सर्वे सुनुतिं कुरुतादरात् ॥३९
भक्तेर्वश्यो महादेवो न साधारणतः सुराः ।
अकार्यमपि सद्भक्त्या करोति परमेश्वरः ॥४०
एवं कुरुत सर्वे हि विधिविष्णुमुखाः सुराः ।
यथागतेन मार्गेणान्यथा गच्छत मा चिरम् ॥४१
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य मुने विष्णवादयः सुराः ।
तथेति मत्वत सुप्रीत्या शंकरं तुष्टुवुर्हि ते ॥४२

हे मुने ! इस तरह प्रसन्नतापूर्वक देवताओं की स्तुति सुनकर शिव के परम प्रिय नन्दी ने देवताओं से कहा । ३७।। नन्दिकेश्वर ने कहा—हे ब्रह्मा-विष्णु प्रभृति देव-मुनियों ! अब मैं आप सबको शिव को सन्तुष्ट एवं प्रसन्न करने वाली बात बतलाता हूँ, उसे सुनिये । यदि शिव के द्वारा परिग्रह करने में ही आप अपना कल्याण समझ कर बड़ा हठ करते हैं तो आप सब परम दैत्य-भाव से इनका स्तवन करें ।३८-३९। हे देवगण ! महेश्वर सदा भक्ति द्वारा ही वशीभूत होते हैं । वह भक्ति भी उच्चकोटि की होनी चाहिए । साधारण से काम नहीं चलेगा । शिव-भक्ति द्वारा वश होकर जो कोई अकार्य भी होगा उसे भी कर दिया करते हैं ।।४०।।

ब्रह्माजी ने कहा—विष्णु आदि समस्त देवताओं ने नन्दी की यह बात सुनकर कि अगर आप ऐसा नहीं कर सकते हैं तो कुछ भी फल नहीं होगा अतः जहाँ से आप आये हैं वापिस चले जाइये, सब ने कहा हम सब यही करेंगे और फिर सभी दीनतापूर्ण भक्तिभाव से शिव की स्तुति करने में परायण हो गये ।४१-४२।

देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो ।
समुद्धर महाक्लेशात्त्राहि नः शरणागतान् ।।४३
इत्येव बहुदीनोक्त्या तुष्टुवुः शंकरं सुराः ।
रुरुदुः सुस्वरं सर्वे प्रेमव्याकुलमानसाः ।।४४
हरिर्मया सुनीतोक्त्या सुविज्ञप्तं चकार ह ।
संस्मरन्मनसा शंभुं भक्त्या परमयाऽन्वितः ।।४५
सुरैरेवं स्तुतः शंभुर्हरिणा च मया भृशम् ।
भक्तवात्सल्यतो ध्यानाद्विरतोऽभून्महेश्वरः ।।४६
उवाच सुप्रसन्नात्मा हर्यादीन्हर्षयन्हरः ।
विलोक्य करुणादृष्ट्या शंकरो भक्तवत्सलः ।।४७
हे हरे हे विधे देवाः शक्राद्या युगपत्समे ।
किमर्थमागता यूयं सत्यं ब्रूत ममाग्रतः ।।४८

उन्होंने कहा-हे करुणासागर ! हे देवदेव ! हम सब इस समय महान् क्लेश में डूबे हुए, आपकी शरण में आये हैं। आप हम सबका उद्धार कीजिए ।४३। ब्रह्माजी बोले—जब बार-बार अपनी रक्षा के लिए सबने दैत्य भाव से स्तवन किया और व्याकुल होकर रुदन करने लगे तो मैंने और हरि ने अत्यन्त भक्ति के साथ शंकर का स्मरण करते हुए दीनता से विज्ञप्ति की ।४४-४५। ब्रह्माजी ने कहा—मेरे, विष्णु के तथा सभी देवताओं के द्वारा मन से शिव का स्मरण करने पर भक्तवत्सलतावश शिव ने समाधि से उपराम ग्रहण किया ।४६। भक्तों पर दया करने वाले परम प्रसन्न शिव ने सबकी ओर करुणा दृष्टि से देखते हुए कहा—हे विधाता ! हे हरे ! हे इन्द्रादि देवगण ! आप सब मुझे सत्य बात बतलाओ कि यहाँ किस कारण से आये हो ? ।४७-४८।

सर्वज्ञस्त्व महेशान त्वंतर्यम्यखिलेश्वरः ।
किं न जानासि जित्तस्थं तथा वच्म्यपि शासनात् ॥४६
तारकासुरतो दुःखं सम्भूतं विवधं मृड ।
सर्वेषां नस्तदर्थं हि प्रसन्नोऽकारि वै सुरैः ॥५०
शि सा जनिता शैलात्त्वदर्थं हि हिमालयात् ।
तस्यां त्वदुद्भवात्पुत्रात्तस्य मृत्युर्न चान्यथा ॥५१
इति दत्तो ब्रह्मणा हि तस्मै दैत्याय यद्वरः ।
तदन्यस्मादमृत्युः स बाधते निखिलं जगत् ॥५२
नारदस्य निदेशात्सा करोति कठिनं तपः ।
तत्तेजसाऽखिलं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥५३
वरं दातुं शिवायै हि गच्छ त्वं परमेश्वर ।
देव दुःख जहि स्वामिन्नस्माकं सुखमावह ॥५४
देवानां मे महोत्साहो हृदय चास्ति शकर ।
विवाहं सद्रष्टुं त्तत्वं कुरु यथोचितम् ॥५५
रत्यै यद्भवता दत्तो वरस्तस्य परात्पर ।
प्राप्तोऽवसर एवाशु सफलं स्वपणं कुरु ॥५६

तब भगवान् विष्णु ने कहा—हे महेश्वर ! आप सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी और अखिलेश्वर हैं । आप हमारे मन की बात खूब अच्छी तरह जानते हैं तथापि आपकी आज्ञा का पालन करते हुए मैं सेवा में निवेदन करता हूँ ।४६। हे महेश ! तारक दैत्य ने हम सबको बहुत दुःख दिया है । इसी दुःख से छुटकारा पाने के लिए आपको सब देवता प्रसन्न करने के हेतु यहाँ उपस्थित हुए है ।५०। जगदम्बा गौरी ने आप ही के लिए हिमाचल के यहाँ जन्म धारण किया है । इस गिरिजा के उदर से उत्पन्न पुत्र द्वारा ही तारकासुर की मृत्यु निश्चित है इसमें तनिक भी अन्यथा बात नहीं है ।५१। ब्रह्माजी ने उस दैत्य को ऐसा ही वरदान दिया है । किसी भी अन्य के द्वारा अपनी मृत्यु न देखकर वह दुरात्मा समस्त जगत् को सता रहा है ।५२। देवर्षि नारद के उपदेश से भगवती गिरिजा अत्यन्त कठोर तपस्या कर रहीं है और उसका तेज समस्त चराचर में

व्याप्त हो गया है ।५३। हे परमेश्वर ! अब उस तपोमग्न पार्वती को वरदान देने के लिए वहाँ पधारें। हे स्वामिन ! अब आप देवों के दुख को दूर कर हम सबको प्रसन्न कीजिये ।५४। हे शङ्कर ! सब देवगण और हमारे मन में आपके विवाह देखने का उत्साह भरा हुआ है सो यदि समुचित हो तो आप इसे स्वीकार करने की कृपा करें ।५५। हे परात्पर ! आपने कामदेव की स्त्री रति को जो वरदान दिया है उसका भी अब अवसर आ गया है, सो आप उसे सत्य सफल करें ।५६।

इत्युक्त्व तं प्रणम्यैव विष्णुर्देवा महर्षयः ।
संस्तुयत्रिविधैः स्तोत्रैः संतस्थुस्तत्पुरोऽखिलाः ॥५७
भक्ताधीनः शंकरोऽपि श्रुत्वा देववचस्तदा ।
विहस्य प्रत्युयाचाशु वेदमर्यारक्षकः ॥५८
हे हरे हे विधे देवाः श्रणुत्तादरतोऽखिलाः ।
यथोचित महं सविशेषं विवेकृतः ॥५९
नोचित हि विधान वै विवाहरकणं नृणाम् ।
महानिगडसंज्ञो हि विवाहो दृढबन्धनः ॥५०
कुसङ्गा बहवो लोके स्त्रीसंगस्तत्र चाधिकः ।
उद्धरेत्सकलैर्बन्धैर्न स्त्रीसङ्गात्प्रमुच्यते ॥६१
लोहदारमयैः पाशैर्दृढ बद्धोऽपि मुच्यते ।
स्त्र्यादिपाशसुसंबद्धो मुच्यते न कदाचनः ॥६२
वर्द्धते विषयाः शश्वन्महाबन्धनकारिणः ।
विषयाक्रांतमनसः स्वप्न मोक्षोऽपि दुर्लभः ॥६३

ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार विष्णु, देवगण और महर्षियों ने कह कर प्रणाम किया और सब लोग अनेक स्तोत्रों के द्वारा शिव की स्तुति कर उनके समक्ष में स्थित हो गए ।५७। भक्त पराधीन महेश्वर ने देव गण के निवेदन को श्रवण कर वेद-मर्यादा पालन करते हुए हँसकर उसी समय कहा—।५८। हे हरे ! हे विधाता ! हे देववृन्द ! मैं जो ज्ञान की विशेषता से पूर्ण समुचित बात कहता हूँ उसे आप सब सुनिए ।५९। जहाँ तक भी बन सके मनुष्यों को भी विवाह का बन्धन उचित नहीं होता

है। क्योंकि यह वैवाहिक बन्धन ऐसा दृढ़ है जो कि महा निगड़ के समान होता है।६०। यों तो ससार में बहुत से बुरे सङ्ग हुआ करते हैं। उन सब में स्त्री का प्रसङ्ग महा हानिकारक होता है। अन्य कुसङ्ग के बन्धनों से मुक्ति हो सकती है किन्तु स्त्री के बन्धन से कभी उद्धार नहीं हो सकता।६१। लोहा तथा दारुमय पाशों से दृढतापूर्वक बद्ध पुरुष भी छुटकारा पा सकता है। परन्तु स्त्री के सङ्ग रूपी पाश से बँधा हुआ मनुष्य किसी तरह छुटकारा नहीं पा सकता है।६२। इस महा बन्धन मे पड़े हुए पुरुषों की विषय वासना बराबर बढ़ती चली जाती है और जब विषयों की वाढ़ निरन्तर चली जावे तो स्वप्न में भी मोक्ष की आशा रखना दुर्लभ है।६३।

सुखमिच्छति चेत्प्राज्ञो विधिवद्विषयांस्त्यजेत् ।
विषवद्विषयानाहुर्विषयैर्यै निहन्यते ।।६४
जनो विषयिणा साकं वार्तातः ततति क्षणात् ।
विषयं प्राहुराचार्याः सितालिप्तिद्रवारुणीम् ।।६५
यद्यत्येवं हि जानामि सर्व तान विशेषतः ।
तथाप्यहं करिष्यामि प्रार्थनां सफलां च वः ।।६६
भक्ताधीनोऽहमेवास्मि तद्वशात्सर्वकार्यकृत् ।
अयथोचितकार्त्ता हि प्रसिद्धो भुवनत्रये ।।६७
कामरूपाधिपस्यैव पणश्च सफलः कृतः ।
सुदक्षिणस्य भूपस्य भर्मबन्धगतस्य हि ।६८
गौतमक्लेशकर्ताहं त्र्यंबकात्मा सुखावहः ।
तत्ककष्टप्रददुष्टानां शापदायो विशेषतः ।।६९
विषं पीत सुरार्थं हि भक्तवत्सलभावधृक् ।
देवकष्टं हृन यत्नात्सर्वदेवं मयां सुराः ।।७०

यदि मतिमान् मनुष्य सच्चा सुख चाहता है तो उसे सविधि विषयों का त्याग कर देना चाहिये। ये विषय विष के तुल्य प्राणियों के मारने वाले हुआ करते हैं।६४। विषयी पुरुषों के साथ वार्तालाप करने मात्र से मनुष्य का एक क्षण में पतन हो जाता है। हे महेन्द्र ! महामनीषी

आचार्यों ने विषयों को मिश्री से मिश्रित साक्षात् सुरा बतलाया है।६५। मैं यद्यपि विषयों के बुरे प्रभाव एव कुपरिणाम को भली भाँति जानता हूँ और मुझे विशेष रूप से सब ज्ञान भी हैं, तो भी मैं अब तुम्हारी इस प्रार्थना को सफल करूँगा।६६। भक्तों के आधीन होकर उनकी प्रार्थनानुसार सभी कुछ करता हूँ। जो त्रिभुवन में बड़े शक्तिशालियों से भी आसाध्य कार्य हैं, उस महान् तथा अनुचित कार्य को करने वाला मैं जगत् में प्रख्यात् हूँ।६७। मैंने कामरूप नामक देश के राजा की प्रतिज्ञा को पूरा किया तथा कठिन वन्धन में प्राप्त सुदक्षिण नृप का प्रण भी पूर्ण किया था। गौतम को मैंने क्लेशित किया। मैं त्रयम्बकात्मा सुख को पाने वाला होने के कारण अपने भक्तों के सताने वाले दुरात्माओं को विशेष रूप से कष्ट एवं शाप दिया करता हूँ।६८-६९। भक्तवत्सलता के भाव के हेतु ही देवहित के लिए मैंने महाकालकूट विष का पान किया था। हे देवगण ! आप लोगों का कष्ट तो मैं सवदा यत्न से दूर करता रहा हूँ।७०।

भक्तार्थमसहं कष्टं बहुशी बहुयत्नतः।
विश्वानरमुनेर्दुःख हृत गृहपातिर्भवन्।७१
किं बहूक्तेन च हर विधे सत्य ब्रवीम्यहम्।
मत्पणोऽस्तीति यूयं सर्वे जानीथ तत्त्वतः॥७२
यदा यदा विपत्तिर्हि भक्तानां भवति क्वचित्।
तदा तदा हराम्याशु तत्क्षणात्सर्वशः सदा॥७३
जानेऽह तारकाद्दुःख सर्वेषां चः समुत्थितम्।
ससुरात्तशिष्यामि सत्य सत्य वदाम्यहम्॥७४
नास्ति यद्यपि मे काश्चाद्विहारकरणे रुचिः।
विवाहयिष्ये गिरिजां पुत्रोत्पादनहेतवे॥७५
गच्छत स्वगृहाण्येव निर्भयाः सकलाः सुराः।
कार्यं वः साधयिष्यामि नात्र कार्या विचारणा॥७६
इत्युक्त्वा मौनमास्थाय समाधिस्थोऽभवद्धर।
सर्वे विष्णवादयो देवाः स्वधामानि ययुर्मुने॥७७

भक्तजन के हितार्थ मैंने अनेक बार विविध कष्टों को सहन किया है। गृहपति होकर मैंने विश्वानर मुनि का दुःख निवारण किया था ।७१। हे हरे ! हे विधाता ! मेरे इस कथन को आप पूर्ण सत्य एवं तत्वपूर्ण समझें। अधिक कहना व्यर्थ है ।७२। मेरे भक्तों पर जिस समय भी कोई विपत्ति आ पड़ती है मैं उसी समय तत्काल उसे सर्व प्रकार से दूर भगा देता हूं ।७३। मुझे ज्ञान है कि आप सबको तारकापुर बड़ा कष्ट दे रहा है। अब मैं सत्य कहता कि तुम्हारी उस पीड़ा का हरण मैं अवश्य ही करूँगा। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।४७। यद्यपि मुझे विषय वासना में लिप्त होकर विहार करने की किंचितमात्र भी अभिरुचि नहीं है तो भी पुत्रोत्पादन के लिए ही में गिरिजा के साथ विवाह अवश्य करूँगा ।७५। हे देववृन्द ! आप लोग भयविहीन होकर अपने स्थान को चले जाओ। मैं प्रण करता हूँ कि आपका कार्य पूर्ण करूँगा। अब इसमें कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है ।७६। इतना कह कर शिव मौन ही समाधिस्थ हो गये ओर विष्णु आदि सब देवता अपने-अपने स्थानों को चले गये ।७७।

सप्तर्षियों का हिमाचल को विवाह के लिए सम्मत करना

वसिष्ठस्य वचः श्रुत्वा सगणोऽपि हिमालयः।
वस्मितो भार्य्यमा शैलानुवाच स गिरीश्वरः ॥१
हे मेरो गिरिराट् सह्य गन्धमादन मन्दर।
मनाक विन्ध्य शैलेन्द्राः सर्वे श्रृणुतमद्वचः ॥२
वसिष्ठो हि वदत्येवं किं मे कार्यं विचार्य्यते।
यथा तथा च शसध्वं निर्णीय मनसाऽखिलम् ॥३
तच्छ्रुत्वा वचन तस्य सुमेरू प्रमुखाश्च ते।
प्रोचुर्हिमालयं प्रीत्या सुनिर्णीय महीधराः ॥४
अधुना किं विमर्शो कृत्त कार्य्यं तथैव हि।
उत्पन्नेयं महाभागं देवकार्यार्थिमेव हि ॥५
प्रद्वातव्या शिवायेति शिवस्यार्थेऽवतारिणा।
अनयाऽऽराधितौ रुद्रा रुद्रेण यदि भाषिता ॥६

एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषाम्मेर्वादीनां हिमाचलः ।
सुप्रसन्नतरोऽभूद्वै जहास गिरिसा हृदि ॥७

ब्रह्माजी ने कहा—हिमालय ने वसिष्ठ मुनि के वचनों को श्रवण कर अपनी पत्नी और गणों के सहित अत्यधिक विस्मित होकर कहा ।१। गिरिराज हिमवान् ने कहा—हे मेरु ! हे गन्धमादन ! इसी प्रकार सह्य, गिरिराज मन्दर, मैनाक, विन्ध्य और शैलेन्द्र को सम्बोधित कर कहा—तुम सब मेरे वचन सुनो ।२। महामुनि वसिष्ठ जी इस तरह कह रहे हैं अब मेरा कर्तव्य है । इस बात का आप सभी भली-भांति विचार कर वर्णन करें वही मैं करूँ ।३। ब्रह्माजी ने कहा—हिमवान के इन वचनों को श्रवण कर मन्दिर, विन्ध्यादि पर्वतों ने आपस में परामर्श करके जो निर्णय किया उसे उन्होंने प्रेम से कहा ।४। हे महाभाग ! अब कार्य तो हो ही गया है । इसका विचार करना व्यर्थ है । यह तो देवों के कार्य पूर्ण करने के लिए ही समुत्पन्न हुई है ।५। इस गिरिजा का संसार में अवतीर्ण होना शिव के लिये ही है, अतः उसे शङ्कर को ही दे देना चाहिए । पार्वती ने भी इसके लिये ही शिवाराधान किया है और रुद्रदेव के द्वारा वह अङ्गीकृत भी हो चुकी है ।६। ब्रह्माजी ने कहा—सुमेरु प्रभृति पर्वतों के उत्तर को सुन कर हिमवान् को परम प्रसन्नता हुई और गिरि नन्दिनी अपने मन में हँसने लगीं ।७।

अरुन्धती च तां मेनां बोधयामास कारणात् ।
नानावाक्यसमूहेनेतिहासैर्विविधैरपि ॥८
अथ सा मेनका शैलपत्नी बुद्ध्वा प्रसन्नधीः ।
मुनीनरुन्धतों शैल भोजयित्वा बुभोज च ॥९
अथ शेलवरो ज्ञानी सुससेव्य सुनीश्च तान् ।
उवाचः सञ्जलि प्रीत्या प्रसन्नात्मा गतभ्रमः ॥१०
सप्तर्षयो महाभागा वचः शृणुतमामकम् ।
विस्मयो मे गतः सर्वः शिवयोश्चारितं श्रुतम् ॥११
मदीयं च शरीरं वै पत्नी मेना सुतासुताः ।
ऋद्धिसिद्धिश्च चान्यद्वै शिवस्येव न चान्यथा ॥१२

इत्युक्ता स तदा पुत्री दृष्ट्वा तत्सादरं च ताम् ।
भूषयित्वा तदङ्गानि ऋष्युत्संगे न्यवेशयत् ।।१३

उवाच च पुनः प्रीत्या शैलराज ऋषीस्तदा ।
अयं भागो मया तस्मै दातव्य इति निश्चितम् ।।१४

उधर अन्तःपुर में मुनिपत्नी अरुन्धवती ने अनेक प्रमाणिक वचन और इतिहास की बातें सुना कर मेना का पूर्ण प्रबोधन किया ८। शैलराज की पत्नी ने यथार्थता को समझ कर प्रसन्नता प्राप्त की और उससे अरुन्धती और शैलराज को भोजन कराकर स्वयं भी भोजन किया ।९। परम ज्ञानी हिमवान् ने समस्त श्रेष्ठतम मुनियों की सुचारु रूप से सेवा करते हुए करबद्ध होकर प्रसन्नता से भ्रम-रहित वचन कहे—।१०। हे महान भाग्य वाले ऋषिवृन्द ! आप सप्त ऋषियों की परम कृपा से मैंने शङ्कर और रुद्राणी का पुण्य-चरित्र सुना और अब मेरा विस्मय पूर्ण रूप से उन्मूलित हो गया है ।११। इसे मैं भली-भाँति समझ गया कि वह मेरा शरीर, पत्नी मेना, पुत्री पार्वती और समस्य ऋद्धि-सिद्धियाँ जो कुछ भी है वह सभी भगवान महेश्वर का ही है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।१२। ब्रह्माजी ने कहा—हिमवान ने यह कह कर अपनी पुत्री पार्वती को वस्त्राभूषणों से भली-भाँति समलंकृत कराकर आदरपूर्वक ऋषियों की गोद में बैठा दिया ।१३। फिर परम प्रहृष्ट होते हुए शैलाधिपति ने ऋषियों से कहा—अब मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है कि यह भाग में शिव की सेवा में ही समर्पित कर दूँगा ।१४।

शङ्करो भिक्षुकस्तेऽय स्वयं दाता भवान् गिरे ।
भैक्ष्यश्च पार्वती देवी किमतः परमुत्तमम् ।।१५

हिमवन् शिखराणान्ते यद्धेताः सदृशो गतिः ।
धन्यस्त्वं सर्वशैलानामधिपः सर्वतो वरः ।।१६

एवमुक्त्या तु कन्यायै मुनयो विमलाशयाः ।
आशिषं दत्तवन्तस्ते शिवाय सुखदा भव ।।१७

स्पृष्ट्वा करेण तां तत्र कल्याणं ते भविष्यति ।
शुक्लपक्षे यथा चन्द्रो वर्द्धन्तां त्वद्गुणास्तथा ।।१८

इत्युक्त्वा मुनयः सर्वे दत्वा गिरये मुदा।
पुष्पाणि फलयुक्तानि प्रत्यय चक्रिरे तदा ॥१६
अरन्धती तदा तत्र मेनां सा सुमुखी मुदा।
गुणैश्च लोभयामास शिवस्य परमा सती ॥२०
हरिद्राकु मैकुः शैलश्मश्रूणि प्रत्यवार्जयत्।
लौकिकाचारमाधाय मङ्गलायनमुत्तमम् ॥२१

ऋषि ने कहा—भगवान् शंकर ग्रहण करने वाले आप दानदाता ओर पार्वती भिक्षा स्वरूप हैं, इससे अधिक सर्वोत्तम कार्य क्या हो सकता है।१५। हे हिमाचल आप अपने सर्वोच्च शिखर समुदाय पति के कारण परम धन्य, समस्त शैलों के स्वामी तथा श्रेष्ठ हो।१६। यह कहते हुए पवित्रान्तःकरण वाले ऋषियों ने जगदम्बा को आशीर्वाद दिया कि हे गिरिनन्दिनी! तुम भगवान् शिव को सुखदायक होओ।१०। फिर ऋषि ने अपने कर कमल से उसका स्पर्श करते हुए कहा—तुम्हारा परम कल्याण होगा और शुक्ल पक्ष के चन्द्र के समान अपने गुणों की गरिमा से वृद्धि वाली होगी।१८। यह कहकर ऋषियों ने हिमवान् का फल पुष्प प्रदान कर पूर्ण विश्वास दिला दिया। उधर अन्तःपुर में सुन्दर मुख वाली अरुन्धती ने शिव के गुणों का बखान कर सेना के हृदय में शिव की भक्ति भावना उत्पन्न कर दी।१६-२०। हरिद्रा चूर्ण और कुंकम से शैलराज की दाढ़ी मूछों का परिमार्जन किया गया और सभी लौकिक आचारों के द्वारा मङ्गल कार्य किये गये।२१।

ततश्च ते चतुर्थेऽह्नि संधार्य लग्नमुत्तमम्।
परस्परं च सन्तुष्य संजग्मुः शिवसन्निधिम् ॥२२
तत्र गत्वा शिवं नत्वा स्नुत्वा विविधसूक्तिभिः।
उवचुः सर्वे वसिवाद्या मुनवः परमेश्वरम् ॥२३
देवदेव महादेव परमेश महाप्रभो।
श्रण्वस्मद्ववचतं प्रीत्या यत्कृत सेवकैस्तव ॥२४
बोधितो गिरिराजश्च मेना विविधसूक्तभिः।
सेतिहासं महेशान प्रबुद्धोऽसौ न संशयः ॥२५

वाक्यदत्ता गिरीन्द्रेण पार्वती ते हि नान्यथा।
उद्वाहाय प्रगच्छ त्वं गणैदेवैश्च संयुतः ॥२६
गच्छ शीघ्रं महादेव हिमाचल गृहं प्रभो।
विवाहाय यथारीति पार्वतीमात्मजन्मने ॥२७

फिर चतुर्थ दिन उत्तम लग्न में सभी परस्पर परम सन्तुष्ट होकर भगवान् शङ्कर के समीप में पहुँचे ।२२। वहाँ जाकर सबने उनको सादर प्रणाम किया तथा अनेक सूक्तों द्वारा उनका स्तवन करके वसिष्ठादि ऋषिगण ने महेश्वर से कहा—हे देवाधिदेव ! हे महाप्रभो ! आपके चरण सेवियों ने जो कुछ किया है उसे हम निवेदन करने आये हैं आप कृपाकर सुनिये ।२३-२४। हे महेश्वर ! हम ने शैलराज और उनकी पत्नी मेना को ऐतिहासिक तथ्य सुनाकर अच्छी तरह समझा दिया है और वे निस्सन्देह इसे भली भाँति समझ गये हैं ।२५। शैलराज ने वाग्दान द्वारा अपनी प्रिय पुत्री पार्वती को आपके लिये दे दिया है। जब आप सन्देह रहित होकर समस्त देववृन्द और गणों के सहित सविधि विवाह करने के लिए वहाँ पधारिये ।२६। हे महेश्वर ! अब आप अविलम्ब हिमवान् के स्थान पर चलिये और रीतिपूर्वक पार्वती को अपनी पत्नी बनाने के लिए विवाह कीजिये ।२७।

शिवजी की बारात का सजाया जाना

अथ शम्भूः समाहू नन्यद्यादीन् सकलान्गणान्।
आज्ञापयामास मुदा गन्तुं स्वेन च तत्र वै ॥१
अपि यूयं सह मया सगच्छध्वं गिरेः पुरम्।
कियद्गणानिहस्थाप्य महोत्सवपुरः सरम् ॥२
अथ ते समनुज्ञप्ता गणेशा निर्ययुर्मुदा।
स्वं स्वं बलमुपादाय तान् कथचिद्वदाम्यहम् ॥३
अभ्यगाच्छंखकर्णश्च गणकोटया गणेश्वरः।
शिवेन सार्द्धं संगन्तुं हिमाचलपुरं प्रतिः ॥४
दशकोट्या केकराक्षो गणानां स महोत्सवः।
अष्टकोट्या च विकृती गणानां गणनायकः ॥५

ब्रह्माजी ने कहा—भगवान महेश ने इसके अनन्तर नन्दी आदि अपने समस्त गुणों को बुलाकर अपने साथ वरयात्रा में चलने के लिए आज्ञा प्रदान की। शिव ने कहा—कुछ गण तो यहां रहे और शेष सभी महान उत्सव एवं उत्साह के साथ हिमाचल के नगर को चलें।१-२। ब्रह्माजी ने कहा—गण-वर्ग ने इस प्रसन्नता की बात को सुनकर जिस परम आह्लाद के साथ प्रस्थान किया मैं उसका पूरा विवरण बताता हूँ।३। गणराज शङ्खकर्ण अपने साथ एक करोड़ गण लेकर हिमालय की नगरी को चल दिया। देवगण गणाधिपति दश करोड़ गण साथ लेकर तथा गणेश्वर विकृत आठ करोड़ सेना लेकर बड़े ही उत्साह के साथ हिमाचल के नगर को चल दिये।४-५।

चतुष्कोट्यया विशाखश्च गणानां गणनायकः।
परिजातश्च नवभिः कोटिभिर्गणपुङ्गवः ॥६
षष्टिः सर्वांतकः श्रीमांस्तथैव विकृताननः।
गथानां दुन्दुभोऽष्टाभिः कोठिभिर्गणनायकः ॥७
पञ्चभिश्च कपालाख्यो गणेशः कोटिभिस्तथा।
षड्भिः सन्दारको वीरो गणानां कोटिभिर्मुने ॥८
कोटिकोटिभिरेवेह कन्दुकः कुण्डकस्तथा।
विष्टम्भो गणपोऽष्टाभिर्गणानां कोटिभिस्तथा ॥९
सहस्रकोटय्या गणपः पिप्पलो मुदितो ययौ।
तथा सनादको वीरो गणेशो मुनिसत्तम् ॥१०
आवेशनस्तथाऽष्टाभिः कोटिभिर्गणनायकः।
महाकेशः सहस्रेण कोगीनां गणपो ययौ ॥११
कुण्डो द्वादशकोट्या हि तथा पर्वतको मुने।
अष्टाभिः कोटिभिर्वीरः समगाच्चन्द्रतापनः ॥१२
कालश्च कालकश्चैव महाकालः शतेन वै।
कोटीनां गणनाथो हि तथैवाग्निकनामकः ॥१३

गणनायक विशाख ने चार करोड़ गण, परिजातगण नौ करोड़ गण, श्रीमान सर्वान्तक और निकृतानन साठ-साठ करोड़ गण, दुन्दुभगणनायक

आठ करोड़ गण कपाल नामधारी गणेश्वर पाँच करोड़ गण, सुन्दारक वीर गणाधिपति छै करोड़ गण विष्टम्भ गणराज अपने साथ आठ करोड़ गण, गणेश्वर पिप्पल एक सहस्र कोटि गण, सनादक गणाधीश अपने साथ एक सहस्र करोड़ गण, आवेदन आठ करोड़ गण और महाकेश नामक गण नायक अपने साथ सहस्र करोड़ गण लेकर हिमवान के यहाँ चल दिये ।६-११। हे मुनीश्वर ! इसी तरह कुण्ड और पर्वतक बारह करोड़ अपने सैनिक दल साथ लेकर चल दिये और वीर चन्द्रतापन आठ करोड़ दल साथ लेकर चल दिया ।१२। काल कालक, महाकाल और अग्निक नाम वाले गणाधीश्वर अपने साथ सौ-सौ करोड़ सैनिक दल करले चले ।१३।

कोट्याग्निमुख एवागाद् गणानां गणनायकः ।
आदित्यमूर्द्धा कोट्या च तथा चैव घनावहः ।।१४
सन्नाह्य शतकोट्या हि कुमुदो गणपस्तथा ।
अमोघः कोकिलश्चैव शतकोट्या गणाधिपः ।।१५
सुमन्त्रः कोटिकोट्या च गणानां गणनायकः ।
काकपादोदः कोटिषष्ट्या सन्तानकस्तथा ।।१६
महाबलश्च नवभिर्मधुपिंगश्च कोकिलः ।
नीलो नवत्या कोटीनां पूर्णभद्रस्तथैव च ।।१७
सप्तकोटया चतुर्वक्त्रः करणोविंशकोटिभिः ।
ययौ नवतिकोट्या तु गणेशानोऽहिरोमकः ।।१८
यज्वाक्षः शतमन्युश्च मेघमन्युश्च नारद ।
तावत्कोट्या ययुः सर्वे गणेशा हि पृथक् पृथक् ।।१९
काष्ठागूष्ठश्तुःषष्ट्या जोटीनां गणनायकः ।
त्रिरूपाक्षः सुकेशश्च वृषभश्च सनातनः ।।२०

अग्निमुख गणनायक आदित्य मुर्धा और धनावह नामक गणेश्वरों ने भी साथ में एक-एक करोड़ गण लेकर प्रस्थान किया ।१४। सन्नाह, कुमुद, अमोघ और कोकिल ने सौ-सौ करोड़ दल लेकर प्रस्थान

किया ।१५। गणनायक लुमन्त्र ने एक कोटि तथा काकपादोदर और सन्तानक ने साठ करोड़ गण लेकर प्रस्थान किया ।१६। महाबल ने नौ करोड़ कोकिल, नील, मधुपिंग और पूर्णभद्र ने नब्बे करोड़ दल के साथ गमन किया ।१७। चतुकक्र ने सात करोड़, करण ने बीस करोड़ और रोमक नाम वाले ने नब्बे करोड़ गणों का दल लेकर हिमवान् के यहाँ आगमन किया ।१८। हे नारद ! यज्वाक्ष-शतमन्यु मेघमन्यु ये सब नब्वे नब्वे करोड़ दल लेकर गये ।१९। काष्ठाङ्गुष्ठ गणनायक विरूपाक्ष और सुकेश, सनातन और वृषभ चौंसठ करोड़ दल के साथ गये ।२०।

तालकेतुः षडास्यश्च चच्वास्यश्च सनातनः ।
सवर्तकस्तथा चैत्रो लकुलीशः स्वयं प्रभुः ।।२१
लीकान्तकश्च दीप्तात्मा तथा दैत्यान्तको मुने ।
देवो भृंगिरिटः श्रीमान्देवनेवप्रियस्तथा ।।२२
अशनिर्भानुकश्चैवः चतुषट्या सहस्रशः ।
ययुः शिवविवाहार्थं शिवेन सह सोत्सवाः ।।२३
भूतकोटिसहस्रेण प्रथमाः कोटिभिस्त्रिभिः ।
वीरभद्रश्चतुः षट्या रोमजानां त्रिकोटिभिः ।।२४
कोटिकोटिशहस्राणां शतैर्विशतिभिर्वृताः ।
तत्रजग्मुश्च नन्द्याद्या गणपाः शकरोत्रोत्सवे ।।२५
क्षेत्रपालो भैरवश्च कोटिकोटिगणैर्युः ।
उद्वाहः शंकरस्येत्याययौ प्रीत्या महोत्सवः ।।२६
एते चान्य च गणपा असंख्याता महावलाः ।
तत्र जग्मुर्महात्प्रीया सोत्साहाः शकरोत्सवे ।।२७

हे मुने ! तालकेतु षडमुख-चञ्चुमुख सनातन-सम्वर्तक-चैत्र-लकुलीश स्वयंप्रभु-लोकान्तक-दीप्तात्मा-दैत्यान्तक-देव-गिरिटि-श्रीमान देवदेव प्रिय-अशनि और भानुक ये चौंसठ हजार गणेश्वर महान् उत्सवोल्लास से पूर्ण होकर भगवान शङ्कर के विवाह में चल दिये ।२१-२२-२३। एक हजार करोड़ भूत, तीन करोड़ प्रथम, चोंसट करोड़ वीरभद्र और तीन करोड़ रोमज विवाहोत्सव में सम्मिलित होने को चल दिये ।२४। ये सभी कोटि-

कोटि, सहस्र और बीस हजार करोड़ों से संयुक्त होकर विवाह में चले इस तरह नन्दी आदि गणराज भगवान् रुद्रदेव के विवाहोत्सव का आनन्द लेने को चले ।२५। क्षेत्रपाल और भैरव करोड़-करोड़ गणों के दल के साथ सुसज्जित होकर महोत्सव का सुख लेने को रवाना हुए और बहुत ही अधिक प्रेमपूर्ण होकर प्रस्थान किया ।२६। इसी रीति से अन्य भी असंख्य महाबलधारी गणराज अत्यन्त प्रेम से शङ्कर के विवाहोत्सव में सम्मिलित हुए ।२७।

सर्वे सहस्रहस्ताश्च जटामुकुटधारिणः ।
चन्द्ररेखावतंसाश्च नीलकण्ठास्त्रिलोचनाः ।।२८
रुद्राक्षाभरणाः सर्वे तथा सद्भस्मधारिणः ।
हारकुण्डलकेयूरमुकुटाद्यैरलङ्कृताः ।।२६
ब्रह्माविष्णिवन्द्रस काशा अणिमादिगुणयुताः ।
सूर्यकोटिप्रतीकाशास्तत्र रेजुर्गणेश्वराः ।।३०
पृथिवीचारिणः केचित् केचित्पातालचारिणः ।
केचद्व्योमचराः केचित्सप्तस्वर्गचरा मुने ।।३१
किं बहूक्त न देवर्षे सर्वयोकनिवासिनः ।
अययुः स्वगणाः शम्भो प्रीत्या वौ शङ्करोत्सवे ।।३२
इत्थ देवैगैश्चान्यैः सहितः शंकर प्रभु ।
ययौ हिमगिरिपुरं विवाहार्थं निजस्य वै ।।३३
यदा जगाम सर्वेशो विवाहार्थं सुरादिभिः ।
तदा तत्र ह्यभूद्वृत्तं तच्छ्रुणु त्वं मुनीश्वर ।।३४
रुद्रस्य भगिनी भूत्वा चण्डी सूत्सवसंयुता ।
तत्राजगाम सुप्रीत्या परेषां सुभयावहा ।।३५

इस विवाह के महोत्सव में बहुत से सहस्र कर वाले, जटाजूट तथा मुकुट धारण करने वाले, मस्तक पर चन्द्र रेखाधारी नीले कण्ठ वाले तीन नेत्र से युवत समस्त रुद्राक्ष मालाधारी, सद्भस्म से भूषित अङ्ग वाले, हारकेयूर-कुण्डल-मुकुट आदि से समलंकृत शरीर वाले, ब्रह्मा, विष्णु और महेन्द्र के तुल्य, अणिमादि सिद्धियों के गुणगण से भूषित

और सूर्य के समान तेज के प्रकाश वाले गणेश्वर शोभित हुये थे ।२८-३०। इन सब में कुछ भूमि विहारी तो कोई गमनचारी और कोई पाताल में विचरण करने वाले एवं कुछ सातों स्वर्ग में पर्यटन करने वाले थे ।३१। हे महर्षे ! अधिक कहां तक वर्णन किया जावे इस महेश्वर के विवाह के महोत्सव में आनन्द का लाभ पाने के लिये समस्त लोकों के निवासी बड़े प्रेम के साथ सम्मिलित हुए ।३२। इस तरह भगवान शम्भु समस्त देवगण के साथ अपने विवाह के लिये हिमवान् के नगर में गये ।३३। हे नारद ! जब भगवान महेश्वर देवगण के साथ अपना विवाह करने गये उस समय जो कुछ भी हुआ उसको मैं सुनाता हूँ उसे आप सुनिये ।३४। शत्रुओं को भय देने वाली रुद्र की भगिनी होकर चण्डी भी बड़े उत्साह के साथ प्रेमपूर्वक वहाँ आई ।३५।

प्रेतासनमारूढा सर्वाभरणभूषिता ।
पूर्ण कलशमादाय हैमं मूर्ध्नि महाप्रभम् ॥३६
स्वपरीवारसंयुक्ता दीप्तास्था दीप्तलोचना ।
कुतूहलं प्रकुर्वन्ती जातहर्षा महाबला ॥३७
तत्रभूतगणा दिव्या विरूपाः कोटिशो मुने ।
विराजन्ते स्म बहुशस्तथा नानाविधास्तदा ॥३८
तैः समेताऽग्रतश्चण्डी जगाम विकृतानना ।
कुतूहलान्विता प्रीता प्रीत्युत्प्रवकारिणी ॥३९
चण्डया सर्वे रुद्रगणाः पृष्ठतश्च कृतास्तदा ।
कोट्येकादशसंख्याका रौद्ररुद्रप्रियाश्च ते ॥४०
तदा डमरूनिर्घोषैर्व्याप्तमासीज्जगत्त्रयम् ।
भेरीझंकारशब्देन शंखानां निनदेन च ॥४१
तदा दुन्दुभिनिर्घोषैः शब्दः कोलाहलोऽभवत् ।
कुर्वञ्जगन्मंगलं च नाशयेन्मङ्गलेतरत् ।४२

हे मुने प्रेतासन पर स्थित सर्वों के आभरणों से विभूषितांग वाली, मस्तक पर महाकान्ति युक्त सुवर्ण कलश को धारण किये, अपने परिकर से

युक्त, दीप्त मुख वाली और दीप्तिपूर्ण नेत्र वाली प्रसन्नता से प्रफुल्ल विविध कुतूहल करती हुई, प्रसन्नमुखी, महाबल वाली भगवती वहाँ आई तथा करोड़ों दिव्य भूत और अनेकों नाना प्रकार वाले विरूपाक्ष भी वहाँ उत्सव में शोभित होने लगे ।३६-३८। इस सब के सहित विकट मुख वाली भगवती चण्डी बड़े प्रेम से प्रीतिमय उपद्रव करती वहाँ उपस्थित हो गई । उस समय चण्डी ग्यारह करोड़ रुद्र के गणों को पीछे कर स्वयं आगे हो गई । उस समारोह में डमरू की ध्वनि की तुमुलता से त्रिभूवन एकदम आकुल हो गये । साथ ही भेरी की झंकार और शङ्खों की घोर ध्वनि सर्वत्र फैल गई ।४०-४१। उस समय दुन्दुभियों के निर्घोष के द्वारा महान कोलाहल होने लगा जिससे जगत् के समस्त अमङ्गल भाग जावे और सर्वत्र जगत् मङ्गलमय हो जावे ।४२।

गणनां पृष्ठतो भूत्वा सर्वे देवाः समुत्सुकाः ।
अन्वयुः सर्वसिद्धांश्च लोकपालादिका मुने ।।४३
मध्ये व्रजन् रमेशोऽथ गरुढासनमाश्रितः ।
शुशुभे ध्रियमाणेन छत्रेण महता मुने ।।४४
चामरैर्वीज्जमानोऽसौ स्वगणै परिवारितः ।
पाषदैर्विलसद्भिश्च स्वभूषाविधिभूषितः ।।४५
तथाऽहमप्यशोभं वै व्रजन्मार्गे विराजितः ।
वेदैर्मूर्तिधरः शास्त्रैः पुराणैरागमैस्तथा ।।४६
सनकादिमहासिद्धैः सप्रजापतिभिः सुतैः ।
परिवारैः संयुतो हि शिवसेवनतत्परः ।।४७
स्वसैन्यमध्यगः शक्र ऐरावतगजस्थितः ।
नानाविभूषितोऽत्यन्त ब्रजन् रेजे सुरेश्वरः ।।४८
तदा तु व्रजमानास्ते ऋषयो बहवश्च ते ।
विरेजुरति सोत्कण्ठाः शिवस्योद्वाहनं प्रति ।।४९

ऐसे निर्घोषकारी गणों के पीछे पूर्ण उत्कण्ठा से युक्त देवों से प्रस्थान किया और उनके पीछे समस्त सिद्धियों तथा लोकपाल आदि ने प्रयाण

किया ।४३। इन सब के मध्य भाग में गरुड़ पर समासीन कान्तिमय महान् छत्र से युक्त वैकुण्ठनाथ ने प्रयाण किया । भगवान विष्णु पार्षदों द्वारा चमर से वीज्यमान अपने परिकर के सहित दिव्याभूषणों से भूषित थे ।४४-४५। हे नारद ! उस विवाह यात्रा में इसी तरह मार्ग में प्रयाण करने वाला मैं भी था । मेरे साथ मूर्तिवान वेद, समस्त शास्त्र और पुराण भी चल रहे थे ।४६। महासिद्धि सनकादि, प्रजापति पुत्र तथा परिवार के सहित मैं शिवजी की सेवा करने में परायण हो रहा था ।४७। इसी प्रकार अपने ऐरावत हाथी पर विराजमान देवराज महेन्द्र भी अपने समस्त परिवार से युक्त वहाँ शोशायमान हो रहे थे । वे अनेकानेक दिव्य आभूषणों से अलंकृत वरयात्रा के मार्ग की शोभा वृद्धि कर रहे थे ।४८। महर्षियों का समुदाय भी शिव विवाह की उत्कण्ठा लिये हुए वरयात्रा से अपूर्व शोभा बढ़ा रहे थे ।४९।

शाकिन्यो य तुधानाश्च वेताला ब्रह्मराक्षसा: ।
भूतप्रेतपिचाशाश्च तथाऽन्ये प्रमथादय: ।।५०
तम्बुरुर्नारदो हाहा हूहूश्चेत्यादयो वरा: ।
गन्धर्वा: किन्नरा जग्मुर्वाद्यानाध्याय हर्षिता: ।।५१
जगतो मातर: सर्वा देवकन्याश्च सर्वश: ।
गायत्री चैव सावित्री लक्ष्मीरन्या: सुरस्त्रिय: ।।५२
एताश्चान्याश्च देवानां पत्नयो भवमातर: ।
उद्वाह शङ्करस्येति जग्मु: सर्वा मुदान्विता: ।।५२
शुद्धस्फटिकसंकाशो वृषभ: सर्वसुन्दर: ।
यो धर्म उच्यते वेदै: सिद्धमहर्षिभि: ।।५४
तस्मारूणो महादेवो वृषभ धर्मवत्सल: ।
शुशुभेऽतीव देवर्षिसेवित: स कलैर्व्रजन् ।।५५
एभि: समेतै: सकलैर्महर्षिभिर्विभौ महेशो बहुशोऽत्यलंकृत: ।
हिमालयह्वास्यधरस्यसंव्रजन्पाणिग्रहार्थं सदनं शिवाया: ।।५६

शिवजी की बारात में यातुधानी—शाकिनी – वेताल-ब्रह्म राक्षस-भूत-प्रेत पिशाच-प्रमथ-तुम्बरु-नारद-हाहा-हूहू-किन्नरगणश्रेष्ठ गन्धर्व आदि

सभी परमाह्लाद प्रदर्शन करते हुए मुख और हाथ के वाद्य बजाते हुए प्रयाण कर रहे थे ।५०-५१। समस्त जगत् की मातायें, गायत्री, लक्ष्मी सावित्री, सब देवकन्यायें देवांगनायें आदि नारी वर्ग के समूह भगवान् शंकर के विवाहोत्सव में प्रसन्नता के साथ सम्मिलित हुए ।५२-५३। हे महर्षे ! विशुद्ध स्फटिक के तुल्य दीप्तिमान् परम सुन्दर वृषभ पर भगवान् महेश्वर विराजमान हुये । इस वृषभ को बड़े-बड़े सिद्ध महर्षियों ने शास्त्र में धर्म बतलाया है । धर्म वत्सल शिव सबके साथ वृषभ पर जाते हुए अत्यन्त शोभित हुये ।५४-५५। इस रीति से समस्त महर्षियों के साथ जाते हुये शंकर शोभायमान हुये । उस समय सबने देखा कि आज रुद्रदेव पार्वती के पाणि को ग्रहण करने के लिये हिमाचल के स्थान पर पदार्पण कर रहे हैं ।५६।

।। शिव-पार्वती का विवाहोत्सव ।।

एतस्मिन्नतरे तत्र गर्गाचार्य्यप्रणोदितः ।
हिमवान्मेनया सार्द्धं कन्यां दातुं प्रचक्रमे ।।१
हेमं कलशमादाय मेना चार्द्धांगमाश्रिता ।
हिमाद्रिश्च महाभागो वस्त्राभरणभूपितः ।।२
पाद्यादिभिस्ततः शैलः प्रहृष्टः सपुरोहितः ।
तं वरं वरयामास वस्त्रचन्दनभूषणैः ।।३
ततो हिमाद्रिणा प्रोक्ता द्विजास्तिथ्यादिकीर्तनैः ।
प्रयोगो भण्यतां तावदस्मिन्समय आगते ।।४
तथेति चोक्त्वा ते सर्वे कालज्ञा द्विजसत्तमाः ।
तिथ्यादिकीर्तनं चक्रुः प्रीत्या परमनिर्वृताः ।।५
अथ ते पर्वतश्रेष्ठा मेर्वाद्या जातसभ्रमाः ।
ऊचुस्ते चैकपद्येन हिमवंतं नगेश्वरम् ।।६
कन्यादाने स्थीयतां चाद्य शैलनाथोक्त्या किं कार्यनाशस्तवैव ।
सत्यंब्रू मोनात्रकार्योविमर्शस्तस्मात्कन्या दीयताभीश्वराय ।।७

ब्रह्माजी ने कहा—गर्गाचार्य की प्रेरणा से उसी अवसर पर प्रेरित होकर हिमालय ने अपनी पत्नी मेना के साथ कन्या के दान करने की

इच्छा की ।१। महाभाग्यशालिनी मेना दिव्य वस्त्राभूषणों से समलंकृत होकर सुवर्ण का एक कलश हाथ में लेकर पर्वत-राज हिमवान के वाम भाग में स्थित हो गई ।२। इसके पश्चात् हिमाचल ने परम प्रसन्नता के साथ अपने पुरोहित के साथ अर्घ्य-पाद्य और चन्दन वस्त्रादि देते हुए वर का वरण किया ।३। इसके अनन्तर हिमवान ने ब्राह्मण वृन्द को तिथ्यादि का कीर्त्तन करने के कार्य के लिए नियुक्त किया और जब समय उपस्थित हो गया तब यह कहा कि अब समय आ गया है कि तिथि आदि का प्रयोग करना चाहिये ।४। यह सुनकर समय का ज्ञान रखने वाले परम श्रेष्ठ ब्राह्मण अति शान्ति के साथ प्रेमपूर्वक तिथि आदि का संकीर्तन करने लगे ।५। उस समय गिरिश्रेष्ठ मेरु आदि सबने सम्भ्रमपूर्वक एक ही साथ पर्वत-राज हिमालय से कहा—हे शैलराज ! आप अब कन्या के दान करने के कार्य को सम्पन्न कीजिये, विलम्ब करने से लग्न निकल जायगी और कार्य का नाश होगा। अब अन्य कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है। आप भगवान् शङ्कर को अपनी कन्या देने का आयोजन करिये ।६-७।

तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां सुहृदां स हिमालयः ।
स्वकन्यादानमकरोच्छिवाय विधिनोदितः ।।८
इमां कन्यां तुभ्यमहं ददामि परमेश्वर ।
भार्यार्थं परिगृह्णीष्व प्रसीद सकलेश्वर ।।९
तस्मै रुद्राय महते मन्त्रेणानेन दत्तवान् ।
हिमाचलो निजां कन्यां पार्वती त्रिजगत्प्रसूम् ।।१०
इत्थं शिवाकरं शैलं शिवहस्ते निधाय च ।
मुमोदातीव मनसि तीर्णकाममहार्णवः ।।११
वेदमन्त्रेण गिरिशो गिरिजाकरपंकजम् ।
जग्राह स्वकरेणाशु प्रसन्नः परमेश्वरः ।।१२
क्षितिं संस्पृश्य कामस्य कोऽदादिति मनुं मुने ।
पपाठ शङ्करः प्रीत्यः दर्शयंल्लौकिकीं गतिम् ।।१३
महोत्सवो महानासीत्सर्वत्र प्रमुदावहः ।

बभव जयसंरावो दिवि भुव्यंतरिक्षके ॥१४

ब्रह्माजी ने कहा–हिमवान् ने ऐसे वचन श्रवण कर विधि-विधान के साथ अपनी कन्या का दान कर दिया ।८। हिमवान् ने कहा-हे परमेश्वर ! मैं आज अपनी इस कन्या का दान आपको कर रहा हूँ। हे सर्वेश्वर ! अब आप इसको अपनी प्रिय पत्नी के स्वरूप में स्वीकार कीजिए ।९। इस तरह उस समय त्रिभुवन की उत्पत्ति करने वाली जगम्बा पार्वती का मन्त्रोच्चारण के साथ शंकर को दान कर दिया ।१०। हिमालय अपनी आत्मजा पार्वती का हाथ भगवान् शंकर के हाथ में सौंपकर अथाह सागर से पार हो जाने के समान अपने हृदय में परम प्रसन्न हुए ।११। जब हिमवान् ने परमेश्वर को वेद-मन्त्रों के साथ अपनी कन्या का समर्पण कर दिया तो शिव ने परम प्रसन्नता के जगज्जननी गिरिजा का पाणि-ग्रहण कर लिया ।१२। हे मुनीश्वर ! फिर लौकिक गति का प्रदर्शन करते हुए भगवान् शङ्कर ने भूमि का स्पर्श करके "कोदात् कारतादात्" इत्यादि मन्त्र का प्रेम के सहित उच्चारण किया ।१३। उस समय सर्वत्र परमानन्द का प्रदान करने वाला महान् उत्सव मनाया गया और त्रिभुवन में जल-जयकार की ध्वनि छा गई ।१४।

साधुशब्दं नमः शब्द चक्रुः सर्वतिर्हर्षिताः ।
गन्धर्वा सुजागुः प्रीत्या ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥१५
हिमाचलस्य पौरा हि मुमुदुश्चाति चेतसि ।
मङ्गल महदासीद्वै महोत्सवपुर सरम् ॥१६
अह विष्णुश्च चक्रश्च थिर्जरा मुनयोऽखिलाः ।
हर्षिता ह्यभवश्चाति प्रफुल्लवदनाम्बुजाः ॥१७
अथ शैलवरः सोदात्सुप्रसन्नो हिमाचलः ।
शिवाय कन्यादानस्य सांगतां सुयथोचिताम् ॥१८
ततो यन्धुजनास्तस्य शिवां सम्पूज्य भक्तितः ।
ददुः शिवाय सद्द्रव्यं नानाविधिविधानतः ॥१९
हिमालयस्तुष्टमनाः पार्वतीशिवप्रीयये ।
नानाविविधानि द्रव्याणि ददौ तत्र मुनीश्वर ॥२०

यौतुकानि ददौ तस्मै रत्नानि विविधानि च ।
चारुरत्न विकाराणि पात्राणि विविधानि ।।२१

सभी लोग प्रसन्नता से "साधु-साधु" और नमः' इस शब्द का उच्चारण करने लगे । प्रेम सहित गन्धर्वगण गान करने लगे और अप्सरायें नृत्य करने में तत्पर हो गई ।१५। हिमालय के पुर के निवासी लोग भी अपने मन में अत्यन्त आह्लादित हुए तथा सब जगह मङ्गलमय महोत्सव मानने लगे ।१६। ब्रह्माजी ने कहा—मैं, भगवान् विष्णु और देवराज इन्द्र, मुनि एवं अन्य समस्त देवगण प्रफुल्लित मुख वाले होकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ।१७। पर्वतराज हिमालय अपनी कन्या के दान की साँग सम्पन्नता करने के लिये तत्पर हुये और शंकर को यथोचित सामग्री प्रदान की ।१८। अन्य समस्त बन्धु-बान्धव-जनों ने भी बड़े भक्ति-भाव से पार्वती का अर्चन कर शिव और शिवा को सविधि श्रेष्ठतम धन दिया ।१९। हिमालय ने शिव-पार्वती को प्रसन्न एवं सन्तुष्ट करने के लिये अनेक विभवयुक्त वस्तुयें प्रदान की । हे मुनीश्वर ! गिरिराज ने कन्या के दहेज में रत्नों से जटित पात्र एवं बहुमूल्य रत्न प्रदान किये ।२०-२१।

गवां लक्षं हयानां च सज्जितानां शतं तथा ।
दासीनामनुरक्तानां लक्षं सद्द्रव्यभूषितम् ।।२२
नागानां शतलक्षं हि रथानां च तथा मुने ।
सुवर्ण जटितानां च रत्नसारविनिर्मितम् ।।२३
इत्थं हिमालयो दत्त्वा स्वसुतां गिरिजां शिवाम् ।
शिवाय परमेशाय विधिनाऽऽप कृतार्थताम् ।।२४
अथ शैलवरो माध्यदिनोक्तस्तोत्रतो मुदा ।
तुष्टाव परमेशान सद्गिरा सुकृतांजलिः ।।२५
ततो वेदविदा तेनाज्ञप्ता मुनिगणास्तदा ।
शिरोऽभिषेकं चक्रुस्ते शिवाया परमोत्सवाः ।।२६
देवाभिमानयुच्चार्थ्य पर्य्युक्षणविधिं व्यधुः ।
महोत्सवस्तदा चासीन्महानन्दकरो मुने ।।२७

एक लाख दूध वाली गौ, सुसज्जित सौ अश्व और गिरिनन्दिनी में सौहार्द भाव वाली श्रेष्ठ रत्नों से विभूषित एक लाख परिचारिकायें दीं ।२२। एक करोड़ हाथी और रथ दिये जो कि रत्न एवं सुवर्ण से मण्डित एवं जटिल थे ।२३। हिमवान् ने उदारपूर्वक दिल खोलकर बहुत-सा समान दहेज में पार्वती और शिव को देकर सफलता का लाभ प्राप्त किया ।२४। इस सब कुछ करने के पश्चात् हिमालय ने यजुर्वेद की माध्यन्दिनी शाखा के स्तोत्र के द्वारा स्तवन कर हाथ जोड़ते हुए अपनी श्रेष्ठ वाणी से भगवान् शिव को प्रसन्न किया ।२५। वेद के ज्ञाताओं ने आज्ञा प्राप्त कर अत्यन्त उत्साह के साथ भवानी का अभिषेक करना आरम्भ किया ।२६। देव अभिधान का उच्चारण करते हुये उन्होंने पर्युक्षण विधि का विधान सम्पन्न किया। हे मुनिराज ! बड़े ही आनन्द का प्रदान करने वाला महान् उत्सव उस समय हुआ जोकि वाणी द्वारा वर्णित नहीं किया जा सकता है ।२७।

द्विज पत्नी द्वारा पार्वती को पतिव्रत धर्म का उपदेश

अथ सप्तर्षयस्ते च प्रोचुर्हिमगिरीश्वरम् ।
कारयस्वात्मजादेव्या यात्रानद्योचितां गिरे ॥१
इतिश्रुत्वा गिरीशो हि बुद्ध्वा तद्विरहं परम् ।
विषण्णोऽभून्महाप्रेम्ण कियत्कालं मुनीश्वर ॥२
कियत्कालेन सम्प्राप्य चेतनां शलराट् ततः ।
तथाऽस्त्विति गिरामुक्त्वा मेनां सन्देशमब्रवीत् ॥३
शैलसन्देशमाकर्ण्य हर्षशोकवशा मुने ।
मेना संयापयामास कत्तुधासीत्समुद्यता ॥४
श्रुतिस्वकुलजाचारं चचार विधिवन्मुने ।
उत्सवं विवधं तत्र सा मेना क्षितिभृत्प्रिया ॥५
गिरिजां भूषयामास नानारत्नांशुकैर्वरैः ।
द्वादशाभरणैश्चैव शृङ्गारैनृपसम्मितैः ॥६
मेना मनोगतिं बुद्ध्वा साध्व्येका द्विजकामिनी ।
गिरिजां शिक्षयामास पातिव्रत्यव्रतं परम् ॥७

ब्रह्माजी ने कहा--सप्त-ऋषियों ने हिमवान् के समीप उपस्थित होकर कहा--हे गिरिराज ! आज परम शुभ दिन है, अतएव अब आप पार्वती की विदा यात्रा करा दीजिए ।१। हे महामुने ! अपनी पुत्री की विदाई करने की बात सुनकर हिमवान् पार्वती भावी महान् वियोग से कुछ समय तक वहुत व्याकुल हो गये ।२। कुछ समय पश्चात् चेतना प्राप्त कर हिमालय ने कहा—ऐसा ही किया जायेगा और इसका सन्देश अन्तःपुर में मेना के पास भेज दिया ।३। हे मुनीश्वर ! पति के इस सन्देश से मेना को हर्ष और शोक दोनों ही हुए किन्तु उसने पुत्री की विदा करने का साज-सामान सब इकट्ठा कर लिया ।४। हे मुने ! हिमवान् की पत्नी ने वेद और कुल का सम्पूर्ण आचार, सविधि करके विदाई के उत्सव का सम्पादन किया ।५। अनेक प्रकार के रत्नाभरणों में तथा दिव्य वस्त्रादि से पार्वती को विभूषित कर द्वादस नृपोचित भूषणों द्वारा उसका शृङ्गार किया ।६। इसके अनन्तर महारानी मेना का हार्दिक विचार समझकर एक पतिव्रता ब्राह्मणी ने गिरिजा को परम पवित्र पतिव्रता धर्म की शिक्षा देना आरम्भ किया ।७।

गिरिजे शृणु सुप्रीत्या मद्वचो धर्मवर्द्धनम् ।
इहामुत्रानन्दकरं शृण्वतां च सुखप्रदम् ॥८
धन्या पतिव्रता नारी नान्या पूज्या विशेषतः ।
पावनी सर्वलोकानां सर्वपापौघनाशिनी ॥९
सेवते या पतिं प्रेम्णा परमेश्वरवच्छिवे ।
इह भुक्त्वाखिलान्भोगानन्ते पत्या शिवां गतिम् ॥१०
पतिव्रता च सावित्री लोपामुद्रा ह्यरुन्धती ।
शाण्डिल्या शतरूपानुसूया लक्ष्मीः स्वधा सती ॥११
सञ्ज्ञा च सुमतिः श्रद्धा मेना स्वाहा तथैव च ।
अन्या बह्वयोऽपि साध्व्यो हि नोक्ता विस्तारजाद्भयात् ॥१२
पतिव्रत्यवृषेणैव ता गताः सर्वपूज्यताम् ।
ब्रह्मविष्णुहरैश्चापि मान्या जाता मुनीश्वरैः ॥१३
सेव्यस्त्वया पतिस्तस्मात्सर्वदा शङ्करः प्रभुः ।

दीनानुग्रहकर्ता च सर्वसेव्यः सतां गतिः ।।१४

द्विज पत्नी ने कहा—हे पार्वती ! अब तुम धर्म की वृद्धि करने वाले मेरे कतिपय उपदेश श्रवण करो जोकि उभय लोक में आनन्दप्रद और सुनने वालों को परम सुख देने वाले हैं ।८। संसार में पतिव्रता नारी ही सबको पवित्र करने वाली और सब तरह के पापों का नाश करने वाली होती है । अन्य कोई भी नहीं हो सकती है ।९। हे शिवे ! जो नारी अपने स्वामी को ही परमेश्वर समझकर उसकी बड़े प्रेमोत्साह से सेवा किया करती है वह यहाँ समस्त सुखप्रद भोगों का उपभोग कर अन्त में पति-लोक का लाभ प्राप्त करती है ।१०। नारियों में उदाहरणीय पतिव्रता सावित्री, अरुन्धती, शाण्डिल्या, लोपामुद्रा, शतरूपा, लक्ष्मी, अनसूया, स्वधा और सती कही जाती है ।११। इनके अतिरिक्त सुमति, श्रद्धा, मेना स्वाहा आदि अन्य भी वहुत पतिव्रता है । विस्तार के भय से इन सबका वर्णन अब मैं नहीं करना चाहती हूँ ।१२। पतिव्रत धर्म के महामहिम प्रभाव के कारण ही ये सब संसार में वन्दनीय एवं मान्य होगई हैं और ब्रह्मा, विष्णु और महेश ने भी तथा अन्य बड़े महर्षियों ने इनका अत्यन्त सम्मान किया है ।१३। मेरे कथन का सार यही है कि इसी प्रकार अपने पतिदेव भगवान् शङ्कर की भक्ति भाव से सेवा करती रहना । ये सत्पुरुषों का उद्धार करने वाले, दोनों परम दयालु और समस्त चराचर के द्वारा सेवित हैं ।१४।

महान्पतिव्रताधर्मः श्रुतिस्मृतिषु नोदितः ।
यथेव वर्ण्यते श्रेष्ठो न तथान्योऽति निश्यतम् ।।१५
भुंज्याद्भुक्ते प्रिये पत्यौ पातिव्रत्यपरायणा ।
तिष्ठेत्तस्मिञ्छिवे नारी सर्वथा सति तिष्ठति ।।१६
स्वप्यात्स्वपति सा नित्यं बुध्येत्तु प्रथमं सुधीः ।
सर्वदा तद्धितं कुर्यादकैतवगतिः प्रिया ।।१७
अनलंकृतमात्मनं दर्शयेन्न क्वचिच्छिवे ।
कार्यार्थं प्रोषिते तस्मिन्भवेन्मण्डनवर्जिता ।।१९
पत्युर्नाम न गृह्णीयात् कदाचन पतिव्रता ।

आक्रुष्टापि न चाक्रोशेत्प्र सीदेत्ताडितापि च।
हन्यतामिति च ब्रूयात्स्वामिन्निति कृपां कुरु ॥१९
आहूता गृहकार्याणि त्यक्त्वा गृच्छेत्तदन्तिकम्।
सत्वरं साञ्जलि: प्रीत्या सुप्रणम्य वदेदिति ॥२०
किमर्थंव्याहृता नाथ स प्रसादो विधीयताम्।
तदादिष्टा चरेत्कर्म सुप्रसन्नेन चेतसा ॥२१

परम पावन पतिव्रत धर्म का महत्व श्रुति, स्मृतियों में विशद रूप से लिखा हुआ है। ऐसा अच्छा अन्यत्र कहीं भी नहीं है इसे निश्चित समझ लेना।१५। अपने स्वामी के भोजन कर लेने के पश्चात् पति की भक्ति में परायण नारी को स्वयं भोजन करना चाहिये।१६। पतिदेव के शयन करने के पीछे शयन करे और स्वामी के उठने के पूर्व शय्या त्याग कर देवे। सदा निश्चय भाव से परम प्रिय बनकर सेवा करे और पति का हित-चिन्तन करती रहे।१७। सदा अपने पति के समक्ष में समलंकृत होकर ही जाना चाहिये। जब स्वामी विदेश यात्रादि को गये हों तो श्रृंगार कभी नहीं करे।१८। पतिव्रता नारी को अपने पति का नाम कभी नहीं लेना चाहिए। स्वामी के बुरे एवं तिरस्कार के वचन सुनकर भी उत्तर में बुरे वचन कभी न कहे। ताड़ना और भत्सना पाकर भी स्वामी से कृपा करने की ही याचना करनी चाहिये।१९। पतिव्रता को स्वामी के बुलाने पर तुरन्त अन्य समस्त कार्यों को छोड़कर पति के समीप जाना चाहिए और प्रणाम पूर्वक हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना करे।२०। हे पतिदेव! आपने मुझ दासी को किस कार्य के लिए बुलाने की कृपा की है। पति जो भी उस समय आज्ञा देवें उसे प्रसन्नता से पूरा करे।२१।

चिरन्तिष्ठेन्न च द्वारे गच्छेन्न व परालये।
आदाम तत्त्वं यत्किंचित्कस्मैचिन्नार्पयेत्क्वचित् ॥२२
पूजोपकरणं सर्वंमनुक्त्वा साधयेत्स्वयम्।
प्रतीक्षमाणाऽवसरं यथाकालोचितं हितम् ॥२३
न गच्छेत्तीर्थयात्रां वै पत्याज्ञां न विना क्वचित्।

दूरतो वर्जयेत्सा हि समाजोत्सवदर्शनम् ॥२४
तीर्थार्थिनी तु या नारी पतिपादोदकं पिबेत् ।
तस्मिन्सर्वाणि तीर्थानि क्षेत्राणि च न संशयः ॥२५
भुंज्यात्मा भर्तुरुच्छिष्टमिष्टमन्नादिकं च यत् ।
महाप्रसाद इत्युक्त्वा पतिदत्तं पतिव्रता ॥२६
अविभज्य न चाश्नीयाद्देवपित्रतिथिष्वपि ।
परिचाहकवर्गेषु गोषु भिक्षुकुषुसेषु ॥२७
संयतोपस्करा दक्षा हृष्टा व्ययपराङ्मुखी ।
भवेत्सा सर्वदा देवी पतिव्रतपरायणा ॥२८

पविव्रता नारी घर के द्वार पर अधिक समय तक न रहे, अन्य प्रतिवासी आदि के घर में न जावे और जो कुछ भी श्रवण कर ले उसे दूसरों से कहे ।२२। बिना कहे ही पूजा की समस्त सामिग्री एकत्रित करने का कार्य सम्पन्न करे और सर्वदा अपने हित करने वाले अवसर को देखती रहना चाहिए ।२३। पति के आदेश के बिना कहीं भी तीर्थ यात्रा आदि के लिए पतिव्रता को कहीं नहीं जाना चाहिए तथा समाज एवं उत्सव आदि में भी कहीं न जावे ।२४। जिस स्त्री को तीर्थाटन आदि करने की उत्कृष्ट अभिलाषा होती हो उसे अपने स्वामी के चरणोदक को सादर ग्रहण करना चाहिये। पतिव्रता के लिए निस्संदेह उसमें ही समस्त धाम, क्षेत्र और महा तीर्थ निवास किया करते हैं ।२५। अपने स्वामी के भोजन करने के पश्चात् जो कुछ भी मिष्ठान्नादि शेष रहे उसे पतिदेव के द्वारा प्रदत्त महाप्रसाद समझ कर पतिव्रता को सप्रेम भोजन करना चाहिये ।२८। पतिव्रत धर्म की मर्यादानुसार सदा देव, पितरगण और अतिथियों को पहले समर्पित करके स्वयं खाना चाहियें । सेवक वर्ग, गौ और भिक्षक को भी यथासमय आदर पूर्वक देवे ।२७। नारी को घर की समस्त सामग्री का संग्रह करने का कौशल परम आवश्यक है । सदा प्रसन्नचित रहे और व्यय अधिक न करे और इन सब पतिव्रत धर्म के नियमों के पूर्ण पालन में परायण रहना चाहिए ।२८।

कुर्यात्पत्यननुज्ञाता नोपवासव्रतादिकम् ।

अन्यथा तत्फलं नास्ति परत्र नरकं व्रजेत् ।।२९
सुखपूर्वं सुखासीनं रममाणं यदृच्छया ।
आन्तरेष्वपि कार्येषु पतिं मोत्थापयेत्क्वचित् ।।३०
क्लीबं वा दुरवस्थं वा व्याधितं वृद्धमेव च ।
सुखितं दुःखितं वापि पतिमेकं न लघयेत ।।३१
स्त्रीधर्मिणी त्रिरात्रं च स्वमुखं नैव दर्शयेत् ।
स्ववाक्य श्रावयेन्नापि याषत्स्नानान्न शुध्यति ।।३२
सुस्नाता भर्तृवदनमीक्षेतान्यस्य न क्वचित् ।
अथवा मनसि ध्यात्वा पतिं भानुं विलोकयेत् ।।३३
हरिद्राकुकुम चैव सिन्दूरं कज्जलादिकम् ।
कूर्पासकञ्च ताम्बूलं मांगल्याभरणादिकम् ।।३४
केशसंस्कारकबरीकरकर्णादिभूषणम् ।
भर्तुरायुष्यमिच्छन्ती दूस्येन्न पतिव्रता ।।३५

पतिव्रता नारी को पति की आज्ञा के बिना व्रतोपवास आदि नहीं करना चाहिए । आज्ञा के बिना इसका करना निष्फल हो जाता है और परलोक में नरक गामिनी होना पड़ता है ।२९। सुख के साथ बैठे हुए और स्वेच्छया रमण करने वाले पति को कभी अन्य कार्यके लिए नहीं उठावे ।३०। पतिव्रता नारी का धर्म है कि वह दुरवस्थाग्रस्त, व्याधियुक्त, वृद्धता को प्राप्त और पुंस्त्वहीन सुखी, दुखी कैसा भी क्यों न हो, अपने पति का तिरस्कार न करे ।३१। जब मासिक धर्म में नारी रहे तो उसे तीन रात तक अपना मुख नहीं दिखाना चाहिए और शुद्धि-स्नान के पहले अपना शब्द भी नहीं सुनावे ।३२। चतुर्थ दिन शुद्ध स्नान कर सर्व प्रथम पतिव्रता नारी अपने स्वामी का मुख-दर्शन करे, अन्य किसी का नहीं । यदि पति कहीं अन्यत्र हों तो उनका ध्यान करके सूर्य का दर्शन करे ।३३। शुद्ध स्नान कर हल्दी, कुंकुम, सिन्दूर, कज्जल और कूर्पासक (चोली) तथा मंगलमय भूषण और दिव्य वस्त्र धारण करे एवं ताम्बूल आदि का सेवन करे ।३४। उस अवसर पर सुचारुता से अपने केशों का संस्कार कर केशपाश को भली भाँति सम्भाल लेवे । कर, कण्ठ

और कानों में भूषण पहने। अपने स्वामी की आयु की वृद्धि कामना करती हुई पतिव्रता स्वामी से तब दूर न रहे ।३५।

न रजक्या न बन्धक्या तथा श्रमणया न च।
न च दुर्भंद्रया क्वाऽपि सखित्वं कारयेत्क्वचित् ॥३६
पतिविद्वेषिणीं नारी न सा संभाषयेत्क्वचित्।
नैकाकिनी क्वचित्तिष्ठेन्नग्ना स्नायान्न च क्वचित् ॥३७
नोलुखने न मुसले न वर्द्धन्यां दृषद्यपि।
न यंत्रके न देहल्यां सती च प्रवसेत्क्वचित् ॥३८
विना व्यवायसमयं प्रगल्भ्यं नाचरेत्क्वचित्।
यत्र यत्र रुचिर्भर्तुस्तत्र प्रेमवती भवेत् ॥३९
हृष्टा हृष्टे विषण्ण स्याऽद्विषण्णास्ये प्रिये प्रिया।
पतिव्रता भवेद्देवी सदा पतिहितैषिणी ॥४०
एकरूपा भवेत्पुण्या सपत्सु च विपत्सु च।
विकृतिं स्वात्मनः क्वापि न कुर्याद्वैर्यधारिणी ॥४१
सर्पिलवणतैलादिक्षयेऽपि च पतिव्रता।
पतिं नास्तीति न ब्रूयादासेषु न योजयेत् ॥४२

धोबिन, व्यभिचारिणी, संयासिनी और दुर्भाग्य वाली स्त्री से पतिव्रता को कभी मित्रता तथा अधिक भाषण नहीं करना चाहिए ।३६। जो स्त्री अपने स्वामी से द्वेषभाव रखती हो ऐसी स्त्री से कभी वार्त्तालाप न करे। कभी एकान्त में अकेली न रहे और बिल्कुल नग्न होकर कभी स्नान न करे ।३७। ओखली, मूसल, बुहारी, पाषाण-यन्त्र और देहली के निकट सती स्त्री को कभी शयन नहीं करना चाहिये ।३८। किसी उचित एवं उपयुक्त समय के न होने पर सती नारी को प्रगल्भता नहीं करनी चाहिए। जिन वस्तुओं तथा कार्यों में अपने पति की विशेष रुचि हो उनमें पतिव्रत नारी को भी प्रेम करना चाहिए ।३९। अपना स्वामी विषादयुक्त हो तो स्वयं भी विषण्ण रहे, जो पति प्रसन्न हो तो आप भी प्रसन्नता से रहे। प्रिय के प्रति आचरण करे। हे देवी ? इस रीति से पतिव्रता नारी को सबकी हितकारिणी होना चाहिए ।४०।

सम्पत्ति और विपत्ति के दोनों समयों में समान भावना रखते हुए पुण्य रूप से धैर्य धारण करके सर्वदा अपने पति के सहित करने वाली बनकर सती नारी को रहना उचित है ।४१। पतिव्रत पालन करने वाली नारी घर घृत, तेल और लवण आदि अत्यावश्यक वस्तुओं के न रहने पर 'कुछ भी नहीं है' ऐसे वचन पति से कहे और किसी श्रम के कार्य में कभी स्वामी की नियुक्ति नहीं करें ।४२।

विधेर्विष्णोर्हराद्वापि पतिरेकाऽधिको मतः ।
पतिव्रताया देवेशि स्वपतिः शिव एव च ।।४३
व्रतोपवासनियमं पतिमुल्लंघ्य याऽऽचरेत् ।
आयुष्य हरते भर्तुर्मृता निरयमृच्छति ।।४४
उक्ता प्रत्युत्तरं दद्याद्या नारी क्रोधतत्परा ।
सरमा जायते ग्रामे शृगालो निर्जने वने ।।४५
उच्चासन न सेवेत न व्रजेद्दुष्टसन्निधौ ।
न च कातरवाक्यानि ददेन्नारी पति क्वचित् ।।४६
अपवादं न च ब्रूयात्कलहं दूरतस्त्यजेत् ।
गुरूणां सन्निधौ क्वापि नोच्चैर्ब्रूयान्न वै हसेत् ।।४७
बाह्यादायान्तमालोक्य त्वरितान्नजलाशनैः ।
ताम्बूलैर्वसनश्चापि पादसंवाहनादिभिः ।।४८
तथैव चाटुवचनैः खेदसन्नोदनैः परैः ।
या प्रियं प्रीणयेत्प्रीता त्रिलोकी प्रीणिता तया ।।४९

हे देवी ! स्त्री के लिए उसका स्वामी ब्रह्मा, विष्णु और शिव से भी कहीं विशेष बतलाया गया है। अतएव पतिव्रता नारी को अपना स्वामी सर्वदा शिव स्वरूप में ही मानना चाहिए ।४३। जो भी नारी पति के आदेश का उल्लंघन करके व्रत, उपवास आदि धर्म के कृत्य किया करती है या कुछ नियम लिया करती है वह अपने पति की आयु का अपहरण ही किया करती है और मृत्यु के पश्चात् घोर नरक की यातना सहती है ।४४। जो स्त्री क्रोधावेश में आकर अपने स्वामी को चाहे जो उत्तर-प्रत्युत्तर दिया करती है वह दूसरे जन्म में किसी गांव की कुतिया

या निर्जन वन की गीदड़ हुआ करती है ।४५। स्त्री को अपने पति से किसी भी उच्च स्थान पर नहीं बैठना चाहिए और किसी भी दुष्ट व्यक्ति के समीप में नहीं जावे तथा स्वामी से कभी कोई कातर वचन नहीं कहे ।४६। पतिव्रता नारी का कर्तव्य है कि वह कभी पति की निन्दा न करे क्लेश के करने वाले कार्य दूर से ही त्याग दे, अपने पूज्य जनों के सामने ऊँची आवाज में जोर से न बोले और उच्च स्वर में कभी न हँसे ।४७। जब भी कभी पति कही बाहिर से आवे तो उन्हें देखने के साथ ही तुरन्त सामने होकर पद-प्रक्षालन के पश्चात् भोजन, जल ताम्बूल और वस्त्रादि समर्पित कर पूर्ण सत्कार करना चाहिए ।४८। इस तरह मंजु और मधुर वचन कर एव व्यंजन द्वारा पति का पसीना सुखाती हुई जो नारी अपने पति को सुखी तथा प्रसन्न करती है उसने त्रैलोक्य जीत लिया है ।४९।

मित ददाति जनको मितं भ्राता मित सुतः ।
अभिनस्य हि दातारं भर्तारं पूज्येत्सदा ॥५०
भर्ता देवो गुरुभर्ता धर्मतीर्थव्रतानि च ।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य पतियेकं समर्चयेत् ॥५१
या भर्तारम्परित्यज्य रहश्चरति दुर्मतिः ।
उलूकी जायते क्रूरा वृक्षकोटरशायिनी ॥५२
ताडितुं चेच्खेत्सा व्याघ्री वृषदंशिका ।
कटाक्षयति यान्य वै केकराक्षी तु सा भवेत् ॥५३
या भर्तारम्परित्यज्य मिष्टमश्नाति केवलम् ।
ग्रामे वा सूकरा भूयाद्वल्गुर्वापि स्वविड्भुजा ॥५४
या तुं कृत्य प्रियम्ब्रूयान्मूका सा जायते खलु ।
या सपत्नीं सदेर्ष्येत दुभगा सा पुनः पुनः ॥५५
दृष्टि विलुप्य भर्त्तुर्या कश्चिदन्यं समीक्षते ।
काणां च विमुखी चापि मुरूपापि च जायते ॥५६

स्त्री के माता-पिता, भाई और पुत्रादि सब सीमित सुख ही देते हैं, पति ही उसे अपरिमित सुख देता हैं। अतः उसकी सर्वदा पूजा करे

।५०। हे देवी ! नारी के लिए पति ही देवता, गुरु, धर्म, तीर्थ और व्रत सब कुछ है । इसलिए अन्य सबको त्याग कर एक मात्र अपने स्वामी ही की अर्चनोपासना तन, मन से करे ।५१। जो दुष्ट बुद्धि वाली अपने वन्दनीय पति को छोड़कर एकान्त में अन्य पुरुष के समीप जाती है वृक्ष की खोंतर में निवास करने वाली उलूकी होती है ।५२। स्वामी से प्रताड़ित होकर जो स्त्री पति को मारने को दौड़ती है वह दूसरे जन्म में बाधिन और वृषदंशिका का शरीर धारण करती है। स्वामी को कुटिलतापूर्ण नेत्र से देखने वाली केकराक्षी होती है। स्वामी से बचाकर स्वयं मिष्ठान्न खाती है वह ग्राम शूकरी या छागी अपनी विष्टा खाने वाली होती है ।५४। जो अपने पति को "तू" कहती है वह अगले जन्म में गूंगी होती है और जो अपनी सपत्नी से ईर्ष्या रखती हैं वह बारम्बार भाग्यहीना होती है ।५५। जो अपने स्वामी से आँख चुरा कर किसी पर पुरुष को देखती है वह कानी, बुरे मुख वाली और रूपसौन्दर्य से हीन होती है ।५६।

जीवहीनो यथा देह क्षणादशुचितां व्रजेत् ।
भर्तृहीना तथा योषित्सुस्नाताप्यशुचिः सदा ।।५७
सा धन्या जननी लोके स धन्यो जनकः पिता ।
धन्यः स च पतिर्यस्य गृहे देवी पतिव्रता ।।५८
पितृवंश्याः मातृवंश्याः पतिवंश्यास्त्रयस्त्रया ।
पतिव्रतायाः पुण्येन स्वर्गे सख्यानि भुंजते ।।५९
शीलभङ्गेन दर्वृत्ताः पातयन्ति कुलत्रयम् ।
पितुर्मातुस्तथा पत्युरिहामुत्रापि दुःखिता ।।६०
पतिव्रतायश्चरणो यत्र यत्र स्पृशेद्भुवन् ।
तत्र तत्र भवेत्सा हि पापहन्त्री सुपावनी ।।६१
विभुः पतिव्रता स्पर्शं कुरुते भानुमानपि ।
सोमो गन्धर्वहश्चापि स्वपावित्र्याय नान्यथा ।।६२
आपः पतिव्रतास्पर्शमभिलष्यन्ति सर्वदा ।
शद्य जाड्यविनाशो नो जातस्त्वद्यान्यपावनाः ।।६३

हे देवी ! जैसे जीवात्मा के निकल जाने पर मानव देह एक क्षण में ही अपवित्र हो जाता है वैसे ही अपने स्वामी के बिना स्नान करने पर भी स्त्री अशुचि ही रहती है ।५७। पतिव्रता स्त्री के माता-पिता और पति भी स्वयं परम धन्य होते है ।५८। पतिव्रता नारी के पुण्य-प्रभाव से माता-पिता और पति के वंश में तीन-तीन पुरुष स्वर्ग के सुख का उपयोग करते हैं ।५९। स्त्री अपने शील का भंग करने पर लोक पर लोक दोनों जगह दुःख भोगती और माता-पिता और पति के तीनों कुलों को नरक में ले जाती है ।६०। हे देवी ! पतिव्रत धर्म का अनिर्वचनीय महत्त्व है । पतिव्रता नारी के चरण पृथ्वी पर जहाँ भी पड़ते है वहीं वह पापों का हरण कर पवित्र करती है ।६१। सर्वत्र व्यापक सूर्य, चन्द्र और पवन देव भी अपने आपको पवित्र बनाने के लिए पतिव्रता नारी के शरीर का स्पर्श करने के इच्छुक होते हैं ।६२। सब की शुद्धि करने वाला जल भी सर्वदा पतिव्रता के अङ्ग का स्पर्श करना चाहता है, जिससे वह अपनी जड़ता का नाश करें ।६३।

भार्या मूलं गृहस्थस्य भार्या मूलं सुखस्य च ।
भार्या धर्मफल वाप्त्यै भार्या सन्तानवृद्धये ।।६४

गृहे गृहे न किं नार्य्यो रूपलावन्यगर्विताः ।
परं विश्वेशभक्त्यैव यभ्यते स्त्री पतिव्रता ।।६५

परलोकस्त्वयं लोको जीयते भार्यया द्वयम् ।
देवपित्रतिथीज्यादि नाभार्यः कर्म चार्हति ।।६६

गृहस्थः स हि विज्ञयो यस्य गेहे पतिवता ।
ग्रस्यतेऽन्याप्रतिदिनं राक्षस्या जारया यथा ।।६७

यथा गंगावगाहेन शरीरं पावनं भवेत् ।
तथा पतिव्रतां दृष्ट्वा सकल पावनं भवेत् ।।६८

न गङ्गया तय भेदो या नारा पति देवता ।
उमाशिवसमौ साक्षात्तस्मात्तौ पूजयेद्बुधः ।।६९

तारः पतिः श्रुतिर्नारी क्षमा सा स स्वयं तपः ।
फलसम्पतिः सत्क्रिया सा धन्यौ तौ दम्पती शिवे ।।७०

जगत् में पतिव्रता पत्नी ही गार्हस्थ्य और सुख का मूल है। धर्म के फल की प्राप्ति और सुसन्तति के लिए भार्या ही साधन स्वरूप होती है।६४। यों तो रूप-लावण्य एवं सौन्दर्य से संयुत अनेक घरों में बहुत-सी स्त्रियाँ विद्यमान हैं किन्तु भगवान् शंकर की कृपा एवं भक्ति पतिव्रता नारी को ही सुलभ हुआ करती है।६५। जगत् में भार्या ही के द्वारा सच्चासुख एवं महान् विजय प्राप्त होते हैं। पत्नी के अभाव में देव, पितृगण, अतिथि आदि का अर्चन एवं सत्कार तथा यज्ञ-कर्म नहीं हो सकते हैं।६६। सही अर्थ में उसी व्यक्ति को गृहस्थाश्रमी मानना चाहिए जिसके घर पतिव्रता पत्नी है। वैसे तो स्त्रियाँ सबकी ही होती हैं जो अहर्निश जरा राक्षसी के तुल्य ग्रास करती रहती है।६७। जिस प्रकार पुण्य सलिला देव-नदी गङ्गा के अवगाहन करने से शरीर पवित्र हो जाता है वैसे ही पतिव्रता नारी के केवल दर्शन मात्र से ही सब पवित्र हो जाया करते हैं।६८। पतिव्रता स्त्री और भागीरथी में कुछ भी अन्तर नहीं है। शिव और भवानी के समान वे दोनों ही स्त्री पुरुष हैं। अतएव मनीषी मानव को उनका निरन्तर अर्चन करना चाहिए।६९। यदि पति ओंकार है तो स्त्री वेदश्रुति है। यदि स्त्री क्षमारूपिणी है तो पुरुष तपोरूप है। यदि पति फल है तो स्त्री सत्क्रिया है। हे पार्वती! जो ऐसे हैं वे दोनों ही स्त्री-पुरुष महाधान्य हैं।७०।

एवम्पतिव्रताधर्मो वर्णितस्ते गिरान्द्रजे।
तद्भेदान् शृणु सुप्रीत्या सावधानतयाऽद्य मे ।।७१
चतुर्विधास्ताः कथिता नार्यो देवि पतिव्रताः।
उत्तमादिविभेदे स्मरतां पापहापिकाः ।।७२
उत्तमा मध्यमा चव निकृष्टातिनिकृष्टिका।
ब्रुवे तासां लक्षणानि सावधानतया शृणु ।।७३
स्वप्नेऽपि यन्मनो नित्य स्वपति पश्यति ध्रुवम्।
नान्यं परपति भद्रे उत्तमा सा प्रकीर्तिता ।।७४
या पितृभ्रातृसुतवत परक्षश्यति सद्धिया।
माध्यमा सा हि कथिता शैलजे वै पतिव्रता ।।७५

बुद्धः स्वधर्मं मनसा व्यभिचारं करोति न ।
निकृष्टा कथिता साहि सुचरित्रा च पार्वती ॥७६
पत्युः कुलस्य च भयाद्व्यभिचारं करोति न ।
प्रतिव्रयाऽधमा सा हि कथिता पूर्वसूरभिः ॥७७

हे गिरिजे ! मैंने अब तक पतिव्रत धर्म का स्वरूप एवं परम महत्त्व का वर्णन किया, अब पतिव्रता के भेदों का वर्णन करती हूँ। उसे तुम दत्त चित्त होकर प्रेम से सुनो।७१। पतिव्रतायें भी उत्तम मध्य आदि के भेद से जगत् में चार तरह की होती हैं जिनका स्मरण मात्र ही पापों का क्षय करने वाला है।७२। ये चार भेद उत्तम, मध्यम, अधम और अति निकृष्ट होते हैं। इनके स्वरूप, लक्षण तुम सावधानी से सुनो।७३। जिसका मन स्वप्न में भी अपने पति को ही देखा करता में और किसी भी दशा में पर पुरुष की ओर नहीं आता वह उत्तम है।७४। हे पार्वती ! नारी दूसरी स्त्रियों के पतियों को अवस्थानुसार पिता, भ्राता और पुत्र के तुल्य देखती हैं वह मध्यम श्रेणी की हैं।७५। जो नारी हृदय में अपना धर्म समझकर व्यभिचार को बहुत बुरा कार्य मानते हुये उसे पूर्ण तया बचती हैं वह अच्छे चरित्र वाली अधम कोटि की पतिव्रता हैं।७६। जो मन में इच्छा रखते हुए भी अवसर न पाकर तथा पति और कुल के भय से एवं लोकापवाद के कारण व्यभिचार से बची रहतीं हैं उसको भी पण्डित समुदाय ने अति निकृष्ट श्रेणी की पतिव्रता मानी है।७७।

चतुर्विधा अपि शिवे पापहन्त्र्यः पतिवृत्ताः ।
पावनाः सर्वलोकानामिहामुत्रापि हर्षिता ॥७८
पतिव्रत्यप्रभावेणात्रिस्त्रिया त्रिसुरार्थदात् ।
जीवितो विप्र एको हि मृतो वःराहशापतः ॥७९
एवं ज्ञात्वा शिवे नित्य कर्तव्यस्पतिसेवन् ।
त्वया शैलात्मजे प्रीत्या सर्वकामप्रदं सदा ॥८०
जगदम्बा महेशी त्वं शिवः साक्षात्पतिस्तव ।
तेव स्मरणतो नार्यो भवन्ति हि पतिव्रताः ॥८१
त्वदग्रे कथनेनानेन किं देवि प्रजोजनम् ।

तथापि कथितं मेऽद्य जगदाचारातः शिवे ।८२।
इत्युक्त्वा विररामासौ द्विजस्त्री सुप्रणम्य ताम् ।
शिवाम्मुदमति प्राप पार्वती शङ्करप्रिया: ।८३।

हे गिरिनन्दिनी ! ये चारों तरह की पतिव्रतायें पापों का नाश करने वाली और दोनों लोकों को पवित्र बनाने वाली कहीं जाती हैं ।७८ पतिव्रत धर्म के प्रबल प्रभाव ने ही अत्रि ऋषि की स्त्री ने तीनों देवों की प्रार्थना पर बाराह के शाप से मृत एक ब्राह्मण को जीवित कर दिया ।।३६।। हे शैलपुत्री ! पतिव्रता धर्म के महत्व को समझकर तुम को पति की प्रेम-भक्ति के भाव से सेवा करनी चाहिए । इससे तुम्हारी समस्त मन कामनायें निश्चय पूरी हो जायेंगी ।८०। तुम जगदम्बा महेश्वरी साक्षात् भगवान् शंकर तुम्हारे पति हैं तुम्हारे पवित्र नाम का स्मरण करके ही जगत् में पतिव्रतायें होंगी और सौभाग्य सुख का उपभोग करेंगी ।८१। हे देवी ! हे कल्याणि ! यद्यपि समस्त जगत् की स्वामिनी आपके सामने ऐसे उपदेशों के कथन की आवश्यकता नहीं हैं, तो भी लोकाचार से ही मैंने यह सब कुछ तुम से कहा है ।८२। ब्रह्माजी ने कहा वह ब्रह्माजी इतना कहकर प्रणाम करती हुई मौन हो गई और शिवप्रिया पार्वती भी परमानन्द में मग्न हो गई ।।८३।।

—:×:—

रुद्र संहिता—कुमार खण्ड

।। कुमार द्वारा तारक वध और देवोत्सव ।।

निर्वाय वीरभद्र तं कुमारः पर वीरहाः ।
समैच्छत्तारकवधं स्मृत्वा शिवपदाम्बुजौ ।१।
जगर्जाय महातेजाः कार्त्तिकेयो महाबलः ।
सन्नद्धः सोऽभवत्क्रुद्धः सैन्येन महता वृतः ।२।
तदा जयजयेत्युक्तं सर्वेर्देवगणैस्तथा ।
संस्तुतो वाग्भिरिष्टाभिस्तदैव च सुरर्षिभिः ।३।

तारकस्य कुमारस्य संग्रामोऽतीव दुःसह ।
जातस्तदा महाघोरः सर्वभूभयकरः ।४।
शक्तिहस्तौ च तो वीरौ युयुधाते परस्परम् ।
सर्वेषां पश्यतां तत्र महाश्चर्यवतां मुने ।५।
शक्तिनिर्भिन्न देहौ तौ महासाधनसयुतौ ।
परस्परं वचतंतौ सिंहाविव महाबलो ।६।
वैतालिक समाश्रित्य तथा खेचरकं मतम् ।
प्राप त च समाश्रित्य शक्त्वा शक्ति विजघ्नतु ।७।

ब्रह्माजी ने कहा —कुमार कार्तिकेय वे वीर शत्रु का नाश करने वाले वीर भद्र का निवारण कर भगवान् शिव के चरण-कमल का स्मरण किया और मनमें तारकासुर का वध कर देने की इच्छा की ।१। इसके अनन्तर महाबलवान और परम तेजस्वी कुमार कार्तिकेय को बड़ा भारी क्रोधावेश हो गया और बड़ी भारी सेना साथ में लेकर युद्ध करने को चल दिये ।२। उस समय समस्त देवगण अपने गणों सहित जय-जयकार करने लगे और ऋषि मुनि श्रेष्ठ वाणी द्वारा स्तुति का गान करने में तत्पर हो गये ।.। उस समय तारकासुर और कुमार कार्तिकेय का अत्यन्त ही भयंकर महाघोर युद्ध होने लगा जोकि समस्त प्रणियों को भय उत्पन्न करने वाला था ।४। हे मुने ! संग्राम भूमि में वे दोनों वीर हाथों में शक्ति लेकर परस्पर ऐसा भीषण युद्ध करने लगे कि समस्त देवता लोग परमाश्चर्य से चकित हो गये ।५। उस महान् संग्राम में दोनों ही वीरों का शरीर शक्ति के प्रहारों से छिन्न-भिन्न हो गया था किंतु वे दोनों निरन्तर एक दूसरे पर प्रहार पर प्रहार कर रहे थे ।६। दोनों बली वीर वैत्तालिक एवं खेचर मत वाले युद्ध-शास्त्र का आश्रय ग्रहण कर तया प्राप्य का समाश्रय लेकर परस्पर युद्ध में परायण हो रहे थे ।७।

एभिमन्त्रैर्महावीरौ चक्रतुर्युद्धमद्भुतम् ।
अन्योन्यं साधकौ भत्वा महाबलपराक्रमौ ।८।

महाबलं प्रकुर्वतौ परस्परवधैषिणौ ।
जघ्नतुः शक्तिधरामी रणे रणविशारदौ ॥६
मूर्ध्नि कंठे तथा चोर्वोर्जावोश्चैव कटीतटे ।
वक्षस्युरसि पृष्ठे च चिच्छिदुश्च परस्परम् ॥१०
तदा तौ युध्यमानौ च हन्तुकामौ महाबलौ ।
बल्गंती वीरशब्दैश्च नानायुद्धविशारदौ ॥११
अभवन्प्रेक्षकाः सर्वे देवा गंधर्वकिन्नराः ।
ऊचुः परस्पर तत्र कोऽस्मिन्युद्धे विजेष्यते ॥१२
दा नभोगता वाणी जगौ देवांश्च सांत्वयन् ।
असुरं तारकं चात्र कुमारोऽयं हनिष्यति ॥१३
मा शोच्यतां सुरैः सर्वैः सुखेन स्थीयतामितिः
युष्मदर्थं शकरो हि पुत्ररूपेण संस्थित ॥१४

मन्त्रों के द्वारा दोनों का संग्राम चल रहा था और महाबल पराक्रम वाले दोनों एक दूसरे के बालक होकर अद्भुत युद्ध कर रहे थे। ।८। उस समय परस्पर में दोनों ही एक दूसरे का वध की इच्छा में बड़ा बल एवं पराक्रम दिखा रहे थे और युद्ध में विशारद शक्ति द्वारा पारस्परिक प्रहारों की बौछार करने लगे ।६। दोनों वीर ही एक दूसरे के शिर, कण्ठ, उरु, जानु कटि, वक्षस्थल और पृष्ट-भाग में सर्वत्र प्रहार कर रहे थे ।१०। दोनों के हृदय में एक दूसरे के बध की प्रबल इच्छा थी और उस इच्छा को पूर्ण करने के लिए कौशल में संग्राम कर रहे थे और महा वीर तर्जना पूर्ण ध्वनि भी करते जाते थे ।११। समस्त देव समुदाय और गन्धर्व आदि एकत्र होकर इस अभूतपूर्व भीषण संग्राम को देखते हुए आपस में किस की जय होगी, ऐसी चर्चा करते थे ।१२। सभी देवों के सन्देह से निवारणार्थ आकाशवाणी हुई कि कुमार कीर्तिकेय द्वारा ही तारक दैत्य का निश्चय ही वध होगा ।१३। आकाशवाणी में देव गण से कहा गया कि देवताओ ! आप चिन्ता मत करो और सुख-

पूर्वक रहो, तुम्हारे कल्याण के लिए भगवान शिव ही यहाँ पुत्र रूप में उपस्थित होकर युद्ध कर रहे हैं ।१५।

श्रुत्वा तदा तां गगने समीरितां वाचं शुभां स प्रमथं समावृत्तः
निहंतुकामः सुखितः कुमारको दैत्याधिपं तारकमाश्वभूत्तदा।
शक्त्या तया महाबाहुराजघान स्तनांतरे।
कुमारः स्म रुषाऽऽविष्टस्तारकासुरमोजसा ॥१६
त प्रहारमनादृत्य तारको दत्यपुंगव।
कुमारं चापि संक्रुद्धः स्वशक्त्या सजघान सः ॥१७
तेन शक्तिप्रहारेण शरिमूंच्छितोऽभवत्।
मुहूर्तांच्चेतनां द्राप स्तूयमानो महर्षिभिः ॥१८
यथा सिंहो मदोन्मद्यो हंतुकामस्तथासुरम्।
कुमारस्तारकं शक्त्या स जघान प्रतापवान् ॥१९
एवं परस्परं तौ हि कुमारश्चापि तारकः।
युयुधातेऽतिसंरब्धौ शक्तियुद्ध विशारदौ ॥२०
अभ्यामपरमात्रास्तातन्योन्य विजिगीषया।
पदातिनौ युध्यमानौ चित्ररूपौ तरस्विनौ ॥२१

आकाशवाणी के सुन्दर वचनों को श्रवण कर गणों के सहित कुमार को बहुत प्रसन्नता हुई और सुखपूर्वक तारक का वध का निश्चय किया ।१५। उस समय महाबाहु कुमार ने तारक की छाती में बड़े ही क्रोध और पराक्रम के साथ शक्ति का प्रबल प्रहार किया किन्तु महासुर ने उस प्रहार को तिरस्कार करते हुए कुमार पर अपनी शक्ति का प्रहार कर दिया ।१६-१७। उस भीषण प्रहार में कुमार मूर्छित हो गये थे । तब महर्षियों ने स्तवन किया और वे क्षण-भर के पश्चात् ही उठकर संभल गये ।१८। मदोन्मत्त सिंह के समान बड़ी गर्जना के साथ एकदम टूटकर प्रतापी कुमार कार्तिकेय ने तारक पर अपना प्रहार किया ।१९। शक्ति संग्राम में परम कुशल कुमार और तारक दोनों का महाघोर संग्राम चला । युद्ध के अभ्यास में चतुर दोनों ही पारस्परिक जय की इच्छा से पैदल युद्ध में विचित्र युक्त थे ।२०-२१।

विविधैर्घातपुंजैस्तावन्योन्यं विनिजघ्नतुः ।
नानामार्गान्मुकुर्वन्तो गर्जन्तौ सुपराक्रमौ ।२२।
शवलौकपराः सर्वे देवगन्धर्वकिन्नराः ।
विस्मयं परमं जग्मुर्नोचुः किंचन तत्र ते ।२३।
न ववौ पवमानश्च निष्प्रभोऽभूद्दिवाकरः ।
चचाल वसुधा सर्वा सशैलवमकानना ।२४।
एतस्मिन्नंतरे तत्र हिमालयमुखा धराः ।
स्नेहार्दितास्तदा जग्मुः कुमारं च परोप्सवः ।२५।
ततः स दृष्ट्वा तान्सर्वान्भयभीतांश्च शांकरिः ।
पर्वतान्गिरिजापुत्रौ बभाषे परिबोधयन् ।२६।
मा खिद्यतां महाभागा मा चिंता कुर्वतां नगाः ।
घातयाम्यद्य पापिष्टं सर्वेषां व प्रपश्यताम् ।२७।
एवं समाश्वास्त तदा पर्वतान् निर्जरान् गणान् ।
प्रणम्य गिरिजां शंभुमाददे शक्तिमत्प्रभान् ।२८।

अनेक प्रकार के वल का प्रयोग करते हुए दोनों वीर आपस में प्रहारों की बौछार कर रहे थे और विविध मार्गों से चलते हुए पराक्रम पूर्वक गर्जने लगे ।२२। देव गन्धर्वादि सब उस जुऐ को देखकर बहुत आश्चर्यान्वित हुए और कुछ भी न कह सके ।२३। उस समय संग्राम की भीषणता के कारण वायु का चलना बन्द हो गया, भास्कर कान्तिहीन हो गये और समस्त वन-कानन से सहित पर्वत एवं पृथिवी चलायमान हो गई ।२४। उस समय गिरिराज हिमवान् अन्य शैल समुदाय के साथ स्नेह से आकुल होकर कुमार के समीप गये ।२५। शिव पुत्र कुमार ने इन सबको देखकर समझाते हुए कहा – हे महाभागो ! आप लोग मनमें कुछ भी खेद तथा चिन्ता मत कोरिये । में अभी कुछ क्षण में इस महापापी दैत्य का बध कर दूँगा ।२६-२७। तब कुमार ने शैलराज देवगण, जगदम्बा और भगवान शंकर को प्रणाम करके एक परम प्रभावशाली शक्ति को ग्रहण किया ।।२८।।

तं तारकं हतुमनाः करशक्तिर्महाप्रभुः ।

विरराज महावीरः कुमारः शंभुवालकः ।२६।
शक्त्या तया वधानाथ कुमारस्तारकासुरम् ।
तेजसाऽऽढ्य शंकरस्य लोकक्लेशकरं च तम् ।३०।
पपात सद्यः सहसा विशीर्णांगोऽसुरः क्षितौ ।
तारकाख्यो महावीरः सर्वासुभगणाधिपः ।३१।
कुमारेश हतः सोनिवीरः स खलुः तारकः ।
लयं ययौ च तत्रैव सर्वेषां पश्यतां मुने ।३२।
तथा तं पतितं दृष्ट्वा तावकं बलवत्तरम् ।
न जघान पुनर्वीरः स गत्वा व्यसुमाहवे ।३३।
हते तस्मिन्हादैत्य तारकाख्ये महाबले ।
क्षयं प्रणीता बहवोऽसुरा देवगणैस्तदा ।३४।
केचिद्भीता प्रांजलयो बभूवुस्तत्र चाहवे ।
छिन्नभिन्नांमका केचिन्मृता दत्याः सहस्रशः ।३५।

शिव पुत्र महाबली महाप्रभु ने तारक के वध की इच्छा से शक्ति को हाथ में उठाया और एक अद्भुत शोभा हुई ।२६। फिर कुमार ने लोक को क्लेश देने वाले तारक पर बहुत ही तेजी से भरा हुआ प्रहार किया ।३०। उस प्रहार से तारक जो महा बलवान असुरों का अधिपति था, सर्वाङ्ग विशीर्ण होकर तुरन्त पृथ्वी पर गिर गया और मृत्यु शैया की गोद में सो गया ।३१। हे मुने ! वीर कर्तिकेय ने इस प्रकार तारकासुर को मारकर गिरा दिया तो सबके देखते ही नाशवान हो गया ।३२। जब कुमार ने वीर नियम के कारण कोई भी प्रहार नहीं किया ।३३। महाबली तारक जो कि दैत्य-वर्ग का नायक था, मन गया तो फिर देवगण ने अनेक असुरों का संहार यों ही बात की बात में कर डाला ।।३३।। असुरों में बहुत से भयभीत होकर युद्ध स्थल में दीनता प्रदर्शित करने लगे, कुछ छिन्न-भिन्न अङ्ग वाले होकर भाग गये और सहस्रों काल कवलित हो गये ।

केचिज्जाताः कुमारस्य शरणं शरणार्थिनः ।

वन्दतः पाहि पाहीति: दैत्याः सांजलयस्तदा ॥३६
कियंतश्च हतास्तत्र कियंतश्च पलायिताः ।
पलायमाना व्यथिताडिता निर्ज्जरैर्गणैः ॥३७
सपरूशः प्रविष्टास्ते पाताले च जिजीषवः ।
पलायमानःस्ते सर्वे भाग्नाशा दैन्यमागतः ॥३८
एवं सर्वं दैत्यसैन्यं भ्रष्टं मुनीश्वर ।
न केचित्तत्र संतस्थुर्गणदेवभयात्तदा ॥३९
आसीत्रिष्कंटकं सर्वं हते तस्मिन्दुरात्मनि ।
ते देवाः सुखमापन्नाः सर्वे शक्रादयस्तदा।४०
एवं विजयमापन्नं कुमारं निखलाः सुराः ।
बभूवुर्गपष्टास्त्रिलोकाश्च तहासुखाः ॥४१

कुछ अत्यन्त घबड़ाकर कर बद्ध होते हुए कुमार की शरण में जाकर 'रक्षा करो' ऐसी प्रार्थना करने लगगे ।३६। उस संग्राम में कुछ मारे गये, बहुत से भाग खड़े हुए और कुछ पलायन परायण होते हुए भी देवों द्वारा प्रताड़ित एवं व्यथित किये गये ।३७। युद्ध भूमि से भागने वाले असुरों की परिपूर्ण आशायें निष्फल हो गई और वे अपने प्राणों के त्राण के लिए भागकर पाताल लोक में चले गये ।३८। हे मुनिसत्तम ! उस समय इस प्रकार से दैत्य सेनायें नष्ट-भ्रष्ट हो गई कि वहाँ भीति विवश होकर कोई भी सामने नहीं ठहर सका ।३९। दुरात्मा तारकासुर से मर जाने पर सब निष्ककण्टक हो गये और इन्द्र आदि समस्त देवता परम प्रसन्न हो गये ।४०। उस समय देवताओं ने उस आशातीत विजय को देखकर अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त की और फिर त्रिभुवन में महान् आनन्दोल्लास छा गया ।४१।

तदा शिवोऽपितं ज्ञात्वा विजयं कार्तिकस्य च ।
तत्राजगाम स मुद्रा सगणः प्रियया सहः ।४२
स्वात्मजं स्वांकमारोप्य कुमारं सूर्यवर्चसम् ।
णालयामास सुप्रीत्या शिवा च स्नेहसंकुला ॥४३
हिमालयस्तदागत्यः स्वपुत्रैः परिवारितः ।

सबंधु: सानुग: शभुतुष्टाव व शिवां गुहम् ॥४४

ततो देवगणा: सर्वे मुनय: सिद्धचारण:।

तुष्टुवु: शङ्करं शंभु गिरिजां तुषिता भृषम् ॥४५

पुष्पवृष्टि मुमहतीं चक्रुश्चोपसुरास्तदा।

जगुर्गधर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणा: ॥४६

वादित्राणि तथा नेदुस्तानीं व विशेषत:।

जयशब्दो नम शब्दो वभूवोच्चैर्मुहुर्मुहु: ॥४७

ततो मयाऽच्युतश्चापि संतुष्टोऽभद्विमेषत:।

शिवं शिवां कुमारं च संतुष्टाव समादरात् ॥४८

कुमारमग्रत: कृत्वा हरिकेन्द्रमुखा: सुरा:।

चक्रुर्नीराजानं प्रीत्या मुनयश्चापरे तथा ॥४९

जब भगवान महेश्वर ने विजय का सम्वाद सुना तो स्वयं समस्त गण और प्रिया भवानी के साथ कुमार के समीप गये ।४२। भास्कर के तुल्य दिव्य कान्ति से कमनीय कुमार कीर्तिकेय को पार्वती माँ ने अपनी गोद में बैठा लिया और स्नेह से गद्‌गद् होकर लाड़ करने लगी ।४३। उसी अवसर पर हिमवान भी अपने समस्त परिवार के साथ यहाँ आ गये और पूज्य शंकर और अपनी पुत्री पार्वती और कुमार की प्रशंसा करके उन्हें हर्षित करने लगे ।४४। समस्त देवगण, मुनि, ऋषि, विद्याधर गन्धर्व और सिद्ध, चारण आदि ने भी प्रसन्न चित्त होकर शिव, शिवा और शिवकुमार की स्तुति की ।४५। उपदेव अन्तरिक्ष से पुष्प वृष्टि करने लगे, गन्धर्वगण गुणगान कर रहे थे और अप्सरायें नृत्य करने में तत्पर हो रहीं थीं ।४६। चारों और विशेष वाद्यों का वादन होने लगा 'जय-जयकार' और 'नमो नम:' की तुमुल ध्वनि से आकाश गूँज उठा ।४७। उस समय हे मुने ! मैं और भगवान् अच्युत भी वहाँ पर गये और शिव-भवानी और कीर्तिकेय कुमार की हम दोनों ने बहुत प्रशंसा की ।४८। इसके अनन्तर ब्रह्मा, विष्णु और महेन्द्र आदि समस्त देवों के मुनिगण के साथ कुमार को आगे बिठाकर उनकी आरती की। ॥४९॥

गीतवादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेत्र भूयसा ।
तदोत्सवो महानासीत्कीर्तन च विशेषतः ।५०।
गीतवाद्यैः सुप्रन्नैस्तथा साजलिभिर्मुने ।
स्यूयमानो जगन्नाथः सर्वोर्देवगणेरभूत ।५१।
ततः स भगवान्रुद्रौ भवान्या जगदम्बया ।
सर्वे स्तुतो जगामाथ स्वर्यिरिं स्वगणैर्वृतः ।५३।

वेदध्वनि, गायन वादन और यज्ञ कीर्तन आदि के द्वारा वह विजय का एक महान उत्सव मनाया गया ।५०। हे मुनिश्वर ! उस समय गान-वादन के साथ बद्धाञ्चलि देवों के द्वारा सस्तुत भगवान शिव अत्यन्त प्रसन्न हुये । इसके पश्चात् उस समय देवों से स्तुत होकर भगवान रुद्र, भवानी और अपने गणों के साथ कैलास पर चले गये ।५१-५२।

बाण और प्रलम्ब का वध

एतस्मिन्नंतरे तत्र क्रौञ्चनामाचलो मुने ।
आजगाम कुमारस्य शरणं बाडपीड़ितः ।१।
पलायमानो यो युद्धादसोढा तेज ऐश्वरम् ।
तुतोदादीव स क्रौञ्चं कोट्यातुबलान्वितः ।२।
प्राणीपत्य कुमारस्य स भक्त्या चरणाम्बुजम् ।
प्रेमनिर्भरया वाचा तुष्टाव गुहमादरात् ।३।
कुमार स्कन्द देवेश तारकासुरनाशकः ।
पाहि मां शरणापन्नं बाणासुरनिपीडितम् ।४।
सगरात्ते महासेन समुच्छिन्नः पत्तायितः ।
न्यपीडयच्च माऽऽगत्य हा नाथ करुणाकर ।५।
तत्पीडितस्ते शरणमागतोऽहं सुदुःखितः ।
पयामानो देवेश शरजन्मन्दयां कुरु ।६।
दैत्यं तं नाशय विभो बाणह्व मां सुखीकुरु ।
दैत्यध्नस्त्वं विशेषेण देवावनकरः स्वराट् ।७।

ब्रह्माजी ने कहा—हे नारद ! उसी समय बाणासुर से उत्पीड़ित

होकर क्रौञ्च नाम वाला पर्वत कुमार की शरण से उपस्थित हुआ ।१। बाणासुर कुमार का असह्य तेज न सहकर पहिले संग्राम छोड़कर भाग गया था उस दैत्य में दश सत्तह कोटि का महान बल था और वह क्रौंच की पीड़ा पहुँचा रहा था ।२। तब कुमार के दोनों चरणों में पड़कर बहुत ही आदर के साथ प्रेम से भरी हुई वाणी से क्रौंच ने प्रार्थना की ।३। क्रौंच ने कहा—हे कुमार ! हे स्कन्द ! हे देवेश ! हे तारक के नाशक ! मैं बाणसुर से इस समय बहुत ही पीड़ित हो रहा हूँ। आपकी शरण में आया हूँ । आप मुझ दयनीय हीन की रक्षा करो । हे महासेन ! हे नाथ ! वह आपके समक्ष घबड़ा कर युद्ध भूमि से भाग गया है और वहाँ जाकर मुझे सता रहा है ।५। मैं उसी दुष्ट दैत्य बाण से उत्पीड़ित होकर आपके चरणों की शरण में आया हूँ । देवेश ! उस भगोड़े से मेरे प्राणों की रक्षा कीजिये ।६। हे विभो ! आप तो दुष्ट दैत्यों का संहार करने वाले हैं और अपने ही अतुल तेज से प्रकाशित होकर देवों की सर्वदा रक्षा करने वाले हैं । अब उस दुरात्मा का वध कर मुझे सुख प्रदान करने की कृपा कीजिये ।७।

इति क्रौञ्चस्तुतः स्कन्द प्रसन्नौ भक्तपालकः ।
गृहीत्वा शक्तिमतुलां स्वां सस्मार शिवं धिया ।८।
चिक्षेप तां समुद्दिश्य स बाणं शंकरात्मजः ।
महाशब्दो बभूवात्त जज्लुश्च दिशो नभः ।९।
सबलं भस्मसात्कृत्वाऽसुरं तं क्षणमात्रतः ।
गुहोपकण्ठं शक्तिः सा जगाम परमामुने ।१०।
ततः कुमार प्रोवाचक्रोञ्चं गिरिवरं प्रभुः ।
निर्भयः स्वगुहं गच्छ नष्टः स सबलोऽसुरः ।११।
तद्छ्र,त्वा स्वामिदचनं मूदितो गिरिराट् तदा ।
स्तुत्वा गुहं तदाराति स्वधाम प्रत्यपद्यतः ।१२।
ततः स्कन्दो महेशस्य मुदास्थापितवान्मुने ।
त्रीणि लिगानि तत्रैव पापाघ्नानि विधानतः ।१३।
प्रीतिज्ञैश्वरनामादौ कपालेश्वरमादरात् ।

कुमारेश्वरमेवाथ सर्वसिद्धिप्रदं त्रयम् ।।१४

ब्रह्माजी ने कहा – इस तरह दीनता पूर्ण क्रौञ्च की स्तुति को सुन कर भक्त वत्सल कुमार बहुत प्रसन्न हो गए तथा शिव का स्मरण कर उन्होंने अपने हाथों में शक्ति धारण करली ।८। बाण को लक्ष्य बनाकर उसे मारने के उद्देश्य से शक्ति को छोड़ दिया । कुमार के उस शक्ति के प्रयोग से उस समय एक महान ध्वनि हुई और सब दिशायें तेज से प्रज्वलित हो उठी ।६। क्षणमात्र में कुमार की वह शक्ति बाणासुर को उसके ननुगामियों के साथ भस्मीभूत करके तुरन्त कुमार के पास वापिस आ गई ।१०। इसके अनन्तर कुमार ने क्रौञ्च से कहा – अब तुम भय रहित होकर अपने स्थान को चले जाओ । तुमको सताने वाला बाण मारा गया है ओर उसके अनुगामी भी सब विध्वस्त हो गये । ११ । स्वामी कीर्तिकेय के ऐसे सन्तोषप्रद वचन सुनकर क्रौञ्च को अत्यन्त प्रसन्नता हुई और फिर उसने कुमार का स्तवन किया तथा वह अपने निवास स्थान को चला गया ।१२। इसके पश्चात् परम प्रसन्न होकर कुमार ने समस्त पापों के समूह का क्षय करने वाले शिव के तीन लिंगों की स्थापना की ।१३। इन तीनों के नाम प्रतिज्ञेश्वर, कपालेश्वर और कुमारेश्वर हुए । वे तीनों ही समस्त सिद्धियों के प्रदान करने वाले हैं ।१४।

पुनः सर्वेश्वरस्तत्र जयस्तंभसमीपतः ।
स्तम्भेश्वराभिधं लिंगं गुहं स्थापितवान्मुदा ।।१५
ततः सर्वे सुरास्तत्र विष्णुप्रभृतयो मुदा ।
लिङ्गं स्थापित्तवंतस्ते देवदेवस्य शूलिनः ।।१६
सर्वेषां शिवलिंगानां महिमान्भूत्तदाऽद्भूतः ।
सर्वकाममुदश्चापि मुक्तिदो भक्तिकारिणाम् ।।१७
ततः सर्वसुरा विष्णुप्रमुखाः प्रीतमानसाः ।
ऐच्छग्निरिवरं गतुं पुरस्कृत्य गुरुं मुदा ।।१८
तस्मिन्नवसरे शेषपुत्रः कुमुदनामकः ।
आजगाम कुमारस्य शरण दैत्यपीड़ित ।।१९
प्रलंगाख्योऽसुरा यो हि रथादस्मात्पलायितः ।

स तत्रोपद्रवं चक्रे प्रवलस्तारकानुगः ।।२०
सोऽथ शेषस्य तनयः कुम ोऽहिपतेर्महान् ।
कुमारशरणां प्राप्तस्तुष्टाव गिरिजात्मजम् ।।२१

अपने जय-स्तम्भ के समीप में सर्वेश्वर लिंग को स्थापित किया और उसके समीप में ही एक अन्य लिंग संस्थापित किया जिसका नाम स्तम्भेश्वर है ।१५। इसके पश्चात् विष्णु आदि आदि समस्त देवाधिदेव शङ्कर का लिङ्ग वहाँ स्थापित किया ।।१६।। उस जगह पर इन सभी सुसंस्थापित शङ्कर के लिंगों की अद्‌भुत महिमा हुई । ये सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले तथा भक्ति-भाव रखने वालों को मुक्ति प्रदान करने वाले हैं ।१७। उस समय विष्णु आदि सब देवताओं ने सप्रेम पुत्र को आगे करके कैलाश गमन करने की इच्छा की ।१८। उसी समय वहाँ शेषजी का पुत्र कुसुद नाम वाला वहाँ आया और दैत्य से पीड़ित होकर कुमार की शरण ग्रहण की ।१९। प्रलम्ब्रासुर नामक दुष्ट दैत्य कुमार के सामने से युद्ध में भगाकर वहाँ पहुँच गया था और तारक के अनुगामी उसने पाताल में उपद्रव मचाना आरम्भ कर दिया था । २० । महान मतिमान शेष के आत्मज कुमुद ने गिरजानन्द की शरण में आकार स्तुति करना आरम्भ कर दिया ।।२१।।

देवदेव महादेववरतात महाप्रभो ।
पीहितोऽहं प्रवलेन त्वाऽहं शरणागतः ।।२२
पाहि मां शरणापन्नं प्रलबलासुरपीडिततम् ।
कुमतर स्कन्द देवेश ताड़कारे महाप्रभो ।।२३
त्वं दीनबन्धुः करुणासिन्धुरानतवत्सलः ।
खलनिग्रहकर्ता हि शरण्यश्च सतां गतिः ।।२४
कुमुदेन स्तुतश्चेत्थ विज्ञप्तस्तद्वधाय हि ।
स्वाञ्च शक्ति स जग्राह स्मृत्वा शिवपदांवुजौ ।।२५
चिक्षेप तां समुद्दिश्य प्रलंबं गिरजासुतः ।
महाशब्दो वभवाय जज्वबुश्च दिशो नभः ।।२६
तं संयुतबलं शक्तिद्रु तं कृत्वा च भस्मसात् ।

गुहोपकठं सहसा जगामाक्लिष्टकारिणी ।२७।
ततः कुमारप्रोवाच कुमुद नागबालकम् ।
निर्भयः स्वगृह गच्छ नष्टः सबलोऽसुर ।२८।

कुमुद ने प्रार्थना की—हे देवाधिदेव महादेव के आत्मज ! हे महा प्रभो ! मैं इस समय दुष्ट प्रलम्ब की पीड़ा से बताया हुआ आपके चारणों की शरण में प्राप्त हुआ हूँ ।२२। हे कुमार ! हे स्कन्ध ! हे तारक संहारक ! कृपा कर प्रलम्ब दैत्य से पीड़ित मुझ दीन की रक्षा कीजिए ।२३। आप दीनों के बन्धु दया के समुद्र, दुष्टों के निग्रह करने वाले, भक्तों के वत्सल, शरणागत के प्रतिपालन और सत् पुरुषो के उद्धारक हैं ।।२४।। जब कुमुद ने ऐसी दीनता के साथ दैत्य का वध करने की प्रार्थना की तों महाप्रभु ने अपने पिता भगवान शङ्कर के चरणों का स्मरण किया और तुरन्त अपनी शक्ति उठा ली ।२५। तब गिरिजानन्दन के प्रलम्ब वध के साथ ही आकाश और दिशायें प्रज्ज्वलित हो गये । २६ । दश हजार के बल वाले उस दैत्य को अनुचरो सहित वह शक्ति भस्म करके कुमार के पास आ गई ऐसा उस शक्ति का अद्भुत कर्म सम्पन्न हुआ ।२७। उस समय कुमार ने कुमुद को आज्ञा दी कि तुमको सताने वाला दुष्ट दैत्य सपरिवार ध्वस्त हो गया है । अब तुम निडर होकर अपने घर लौट जाओ ।२८।

तच्छ्रुत्वा गुहवाक्यं सकुमुरोऽहिंपितः सुतः ।
स्तुत्वा कुमारं नत्वा च पातालं मुदितो ययौ ।२९।
एवं कुमारविजयं वर्णितं मे मुनीश्वर ।
चरित तारकवधं परमाश्चर्मकारकम् ।३०।
सर्वपापहरं दिव्यं सर्वकामप्रदं नृणाम् ।
धन्यं यशस्यमायुष्य मुक्तिमुक्तिप्रदं सताम् ।३१।
ये कीर्तयति सुयशोऽमितभाग्ययुता नराः ।
कुमारचरितं दिव्यं शिवलोक प्रयांति ते ।३२।
श्रोष्यति ये च तत्कीर्ति भक्त्या श्रद्धान्विता जनाः ।
मुक्ति प्राप्स्यंति ते दिव्यामिह भुक्त्वा परं सुखम् ।३३।

कुमुद ने ऐसे कुमार के परमानन्द प्रदान करने वाले गचत सुनकर उनकी वहुत कुछ स्तुति की और सादर प्रणाम कर अपने निवास स्थान को चला गया ।२६। हे मुनिवर ! इस तरह मैंने आपको कुमार कार्त्तिकेय के इस परम अद्‌भुत युद्धों में विजय प्राप्त करने का सम्वाद सुनाया है । इसमें तारकासुर के वध का चरित्र तो अत्यन्त ही विस्मय उत्पन्न करने वाला हैं ।३०। यह तारका वध की कथा पापों का क्षय करने वाले हैं और संसार में मनुष्यों को समस्त कामनयें पूरी कर यश आयु के साथ मुत्ति एवं मुक्ति के भी प्रदान करने वाली हैं ।३१। जगत में मनुष्यों को इस चरित्र के कथन एवं श्रवण करने पर परम सुख-सौभाग्य का लाभ होगा और कुमार के इस अति उत्तम चरित्र के कीर्तन तथा सुनने से अन्त में शिव लोक की प्राप्ति निश्चय ही होगी ।।३२।। जो मनुष्य श्रद्धा और भक्ति की भावना से इस दिव्य कुमार की कीर्ति का श्रवण करेंगे । उन्हें यहाँ सर्व सुखी के उपयोग और अन्त में दिव्य मोक्ष का लाभ होगा ।२३।

गणेश को प्रथम पूज्यपद दिया जाना और विवाह

साधु पृष्टं मुनिश्रेष्ठ भवता करुणात्मना ।
श्रूयतां दत्तकर्ण हि वक्ष्येऽहमृषिसत्तम् ।।१
शिवा शिवश्च विप्रेन्द्र द्वयोश्च सुतयोः परम् ।
दर्शं दर्शं च तल्लीलां महत्प्रेम समावहत् ।२
पित्रोर्लालयतोस्तत्र सुखं चाति व्यवर्धतः ।
सदा प्रीत्या मुमा चातिलेलन चक्रतुः सुतौ ।३
तावेव तानयौ मातापित्रोर्मतीश्वर ।
महाभक्त्या यदा युक्तौ परिचर्या प्रचक्रतुः ।४
षण्मुखे च गणेशे च पित्रोस्तदधिकं सदा ।
स्नेहो व्यवर्द्धत महाँशुक्लपक्षे यथा शशी ।५
कदाचितौ स्थितौ तत्र रहसि प्रेमसंयुतौ ।
शिवा शिवश्च दुवर्षे सुविचारपरायणौ ।६

विवाहयोग्यौ संजातो सुताविति च तावुभौ ।
विवाहश्च कथं कार्यः पुत्रयोरुभयोः शुभम्: ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—परम कारुणिक ऋषि श्रेष्ठ ! आज तुमने बहुत ही सुन्दर प्रश्न मुझसे पूछा है। आप सावधान होकर श्रवण करो मैं उसका उत्तर तुन्हें भली-भाँति देता हूं । १ । हे विपेन्द्र देव ! परम तपस्वी महेश्वर और जगज्जननी पार्वती अपने उन दोनों पुत्रों की अद्‌भुत बाल-लीलाओं को देखते हुए परम प्रसन्नता प्राप्त करने लगे ।२। उन दोनों का माता-पिता के लालन से सुख दिन दूना समृद्ध हो रहा था और वे सर्वदा प्रेम के साथ बाल-क्रीड़ा आनन्द लाभ करनें लगे ।३। हे मुनिराज ! शिव के दोनों पुत्र परम पितृ-भक्ति से युक्त होकर अपने माता-पिता की सेवा सुश्रूषा करने में सलग्न हो गये ।४। इस तरह शिव और शिवा का षण्मुख और लम्बोदर में शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के तुल्य आये दिन प्रीति का भाव बढ़ने लगा ।५। हे देवर्षि ! एक दिन प्रेम के साथ एकान्त में स्थित शिव और गौरी परस्पर में विचार कर रहे थे । ।६। वे कहने लगे कि अब हमारे ये दोनों ही पुत्र विवाह सकार के योग्य हो गये हैं सो इनका विवाह किसी रीति से करना चाहिये ।७।

षण्मुखश्च प्रियतमो गणेश्चत तथैव च ।
इति चिंतासमुद्धग्नौ लीलानन्दौ बभुवतुः ॥८
स्वपित्रोर्मतमाज्ञाय तौ सुतावपि संस्पृहौ ।
तदिच्छया विवाहार्थं बभूगतुरथो मुने ॥९
अहं च परिणेष्यामि ह्यहं चव पुनः पुनः
परस्परं च नित्य व विवादे तत्परावुभौ ॥१०
श्रुत्वा तद्ववचनं तौ च दंपती जगतां प्रभुः ॥
लौकिकाचारमाश्रित्यं बिस्मय परमं गतौ ॥११
कि कर्त्तव्यं कथ कार्यो विवाहविधिरेतयोः ।
इति निश्चयं ताभ्यां वै युक्तिश्च रचिताद्‌भुता ॥१२
कदाचित्सगये स्थित्वा समाहूय स्वपुत्रकौ ।

कथयामासतुस्तत्र पुत्रयोः पितरो तदा ॥१३

अस्मा कं नियम पूर्व कृतश्च सुखदो हि वाम् ।

श्रूयतां सुसुतौ प्रीत्या कथयावो यथार्थकम् ॥१४

हमारे तो ये दोनों ही अतिशय प्रीति के पात्र परम प्रिय हैं। इस प्रकार कुमार और गणेश के विषय में विचार करते हुए आनन्दित हो रहे थे ।८। हे मुनिवर ! जब अपने माता-पिता की यह इच्छा जानते हुए दोनों कुमारों के मन में भी एक ही साथ अपने-अपने विवाह के सम्पादन की इच्छा उत्पन्न हो गई ।९। तब दोनों अपने माता--पिता के समक्ष में बैठकर प्रार्थना करने लगे कि मैं अपना विवाह पहिले करूँगा और इस प्रकार से उस समय विवाद बढ़ने का आरम्भ हो गया ।१०। जगत् के माता-पिता महेश्वर भवानी अपने दोनों बेटों के विवादपूर्ण वचन सुनकर लोकाचार के आश्रय से परम विस्मित ोकर सोचने लगे ।११। किस तरह से इन दोनों का विवाह एक साथ सम्पन्न होने के विषय में क्या उपाय किया जावे - ऐसा विचार करते हुए उस समय उन्होंने एक युक्ति खोज निकाली ।१२। इसके अनन्तर एक दिन भवानी और महेश ने अपने योनों पुत्रों को अपने पास बुलाकर कहा ।१३। हमने तुम दोनों को सुख हो—इसके लिये एक नियम बना दि ा है। उसे तुम दोनों प्रेम के साथ श्रवण करो। हम उसे ठीक ठीक बतलाते हैं ।१४।

समौ द्वावपि सत्पुत्रौ विशेषो नात्रलभ्यते ।

तस्मात्पणः कृतः शदःपुत्रयोरुभयोरपि ॥१५

यश्चैव पृथिवी सर्वां क्रांत्वा पूर्व मुपाव्रजेत् ।

तस्यैव प्रथम कार्यो विवाहः शुभलक्षणः ॥१६

तथोरेव वचः श्रुत्वा शरजन्मा महाबलः ।

जगाम मन्दिरात्तूर्ण पृथिवीक्रमणाय वै ॥१७

गणनाथश्च तत्रैव संस्थितो बुद्धिसत्तमः ।

सुबुद्धया सविचार्येति चित्त एवं पुनः पुनः ॥१८

किं कर्तव्यं क्व गन्तव्यं लघितुं नैव शक्यते ।

क्रोशमात्रं गतः स्याद्वैः गम्यते न मया पुनः ॥१९

किं पुनः पृथिवीमेतां क्रांत्वा चोपार्जितं सुखम् ।
विचार्येति गणेशस्तु यच्चकार शृणुष्व तत् ॥२०
स्नानं कृत्वा यथान्याय समागत्य स्वयं मृमम् ।
उवाच पितरं तत्र मातर पुनरेव सः ॥२१

तुम दोनों हमारे परम प्रिय आत्मज होने के कारण समान भाव से ही प्यार के पात्र होते हो । इसमें कुछ भी कोई विशेषता नहीं है । हमने अब तुम दोनों ही के लिये एक प्रतिज्ञा की है और वह यह है ।१५। तुम दोनों में इस समस्त भूमि मण्डल की पूर्ण परिक्रमा देकर जो भी यहाँ पहिले आ जायगा उस ही का शुभ विवाह पहिले किया जावेगा ।१६। ब्राह्माजी ने कहा—अपने माता-पिता के ऐसे प्रतिज्ञायुक्त वचनों को सुनते ही महा बलवान् कुमार कार्तिकेय तुरन्त ही पृथ्वी को प्रदक्षिणा पूरी करने के लिये घर से चल दिये ।१७। परम बुद्धिमान् गणेश वहीं स्थित होकर बार-बार अपने मन में बुद्धि से विचार करने में मग्न हो गए ।१८। अब क्या उपाय करना चाहिए ? मैं किसी भी तरह परिक्रमा नहीं कर सकता और मुझमें तो एक कोश तक भी चलने की शक्ति नहीं है । कहाँ जाऊँ और क्या करूँ ! ।१९। इस समस्त भूमण्डल की परिक्रमा को पूरा कर देना तो बहुत ही कठिन कार्य हैं—ऐसा विचार करते हुए मतिमान् गणेश जी ने जो कुछ अद्भुत उपाय किया मैं उसे तुमको सुनाता हूँ सो श्रवण करो ।२०। गणेश्वर ने भली-भांति स्नानादि से शुद्ध होकर अपने माता-पिता से विनयान्वित होकर प्रार्थना की ।२१।

आसने स्थापिते ह्यत्र पूजार्थं भवतोरिह ।
भवतौ संस्थितौ तातौ पूर्य्यतां मे मनोरथः ॥२२
इति श्रुत्वा वचस्तस्य पार्वतीपरमेश्वरौ ।
अस्थातामासने तत्र तत्पूजाग्रहणाय वै ॥२३
तेनाथ पूजितौ च प्रक्रान्तौ च पुनः पुनः ।
एवं च कृतवान् सप्त प्रणामांस्तु तथैव सः ॥२४
बद्धांजलिरथोवाच गणेशो बुद्धिसागरः ।
स्तुन्त्वा बहुतिथस्तात मितरौ प्रेमविह्वलौ ॥२५

भो मातर्भो पितस्त्वं च शृणु मे परमं वचः
शीघ्रं चैवात्र कर्तव्यो विवाहः शोभनो मम ।।२६
इत्येवं वचनं श्रुत्वा गणेशस्य महात्मनः ।
महाबुद्धिनिधिं तं तौ पितरावूचतुस्तदा ।।२७
प्रकामेत भवान्सम्यक् पृथिवीं च सकाननाम् ।
कुमारो गतवांस्तत्र त्वं गच्छ पुर आव्रज ।।२८

मैं पहिले आप दोनों को सिंहासन पर विराजमान कर आपकी आर्चना करना चाहता हूँ सो आप मेरे समीप विराज कर मेरा यह मनोरथ पूर्ण करने की कृपा करें ।२२। ब्रह्माजी ने कहा—ऐसी गणेश की पवित्र प्रार्थना सुनकर पार्वती और परमेश्वर दोनों उनकी अर्चा स्वीकार करने के लिये सिंहासन पर बैठ गये ।२३। गणपति ने भक्ति के साथ उन दोनों का अर्चन कर प्रणामपूर्वक साथ बार परिक्रमा की ।२४। बुद्धि के सागर गणेशजी ने प्रेम विभोर होकर हाथ जोड़ते हुए माता-पिता की बहुत स्तुति की ।२५। उसी समय गणेशजी ने कहा—हे माता ! हे पितृदेव ! आप दोनों अब मेरी प्रार्थना सुनकर शीघ्र ही मेरा विवाह करने की कृपा करें ।२६। यह प्रार्थना सुनकर दोनों शिव और पार्वती गणेश से कहने लगे ।२७। जिस तरह कुमार कार्तिकेय पृथ्वी परिक्रमा के लिए चले गए हैं वैसे ही तुम भी पर्वत कानन के सहित भूमण्डल की प्रदक्षिणा करके शीघ्रता से आ जाओ ।२८।

इत्येवं श्रुत्वा पित्रोर्गणपतिर्द्रुतम् ।
उवाच नियतस्तत्र वचनं क्रोधसंयुतः ।।२९
भो मातर्भो पितर्धर्मरूपौ प्राज्ञौ युवां मतौ ।
धर्मतः श्रूयतां सम्यग्वचनं मम सत्तमौ ।३०
मया तु पृथिवी क्रांता सप्तहारं पुनः पुनः ।
एवं कथं ब्रुवाते वै पुनश्च पितराविह ।३१
तद्वचस्तु तदा श्रुत्वा लौकिकीं गतिमाश्रितौ ।
महालीलाकरौ तत्र पितरावूचतुश्चतम् ।।३२
कदा क्रांता त्वया पुत्र पृथिवी सुमहत्तरा ।

सप्तद्वीपा समुद्रांता महद्भिर्गहनैयु ता ॥३३
तयोरेवं वचः श्रुत्वा शिवाशङ्करयोर्मु ने ।
महाबुद्धिनिधिः पुत्रो गणेशो वाक्यमब्रवीत् ॥३४
भवताः पूजनं कृत्वा शिवाशं करयोरहम् ।
स्वबद्ध या हि सकुद्रान्तपृथ्वावृतपरिक्रमः ॥३५

ब्रह्माजी ने कहा—अपने मात-पिता के ये वचन सुनकर गणेश क्रोध-पूर्वक कहने लगे ।२६। हे माता ! हे पिता ! आप दोनों ही धर्म स्वरूपी और महामनीषी हैं । मैं इस समय जो धर्म से युक्त प्रार्थना करता हूँ उसे आप श्रवण करने की कृपा करें ।६०। गणेशजी ने कहा—मैंने तो एक बार नहीं सात बार इस पृथ्वी के समस्त मण्डल को पूरी परिक्रमा करली है फिर आप मुझे क्यों पृथ्वी की परिक्रमा करने की आज्ञा दे रहे हैं ।३१। ब्रह्माजी ने कहा - गणेश के वे वचन सुनकर लौकिक गति-विधि का आश्रय ग्रहण करते हुए महा लीलाधारी दोनों ने कहा ।३२। हे पुत्र ! तुमने भूमण्डल की परिक्रमा किस समय पूरी कर डाली है ? प्रदक्षिणी न करके भी ऐसी बात क्यों कहते हो ! यह भूमि तो सात द्वीपों से सागरान्त पर्यन्त वड़े-बड़े विशाल पर्वतों से युक्त है ।३३। ब्रह्माजी कहा—अपने माता-पिता शिव पार्वती के ये वचन सुनकर महा मतिमान गणेश जी ने उत्तर दिया ।३४। गणेशजी ने कहा—मैंने आप दोनों माता पिताओं का पूजन कर सात बार परिक्रमा कर ली है । मैंने तो अपनी बुद्धि से समस्त भूमण्डल की भली भाँति पहले ही प्रदक्षिणा समाप्त करली है ।३५।

इत्येव वचन वेदे शास्त्रे वा धर्मसञ्चये ।
वर्त्त ते किं च तत्तथ्य न हि किं तथ्यमेव वा ॥३६
पित्रोश्च पूजनं कृत्वा प्रक्रांतिं च करोति यः ।
तस्य वै पृथिवीजन्यं फल भवति निश्चितम् ।३७
अपहाय गृहे वो वै पितरौ तीर्थमाव्रजेत् ।
तस्य पाप तथा प्रोक्तं हनने च तयोर्यथा ॥३८
पुत्रस्त्र च महात्तीर्थं पित्रोश्चरणपङ्कजम् ।
अन्यतीर्थं तु दुरे वै गत्वा सम्प्राप्यते पुनः ॥३६

इदं संनिहितं तार्थं सुलभं धर्मसाधनम् ।
पुत्रस्य च स्त्रियाश्चैव तीर्थं गेहे सुशोभनम् ॥४०
इतिशास्त्राणि वेदाश्चे भाषन्ते यन्निरन्तरम् ।
भवद्भयां तत्प्रकर्त्तव्यमसत्यं पुनरेव च ॥४१
भवदीय त्विद रूपमसत्यं च भवेदिह ।
तदा वेदोऽप्यसत्यो वै भवेदिति न सशयः ॥४२

यह बात तो वेदों और धर्म शास्त्रों में लिखी हुई है। यह शास्त्र के वचन सत्य हैं या असत्य हैं इसका निर्णय करके आप ही बताने की कृपा करें ।३६। शास्त्र कहता है कि जो अपने माता-पिता का अर्चन करके उनकी परिक्रमा कर लेता है उसे इस भूमण्डल की परिक्रमा पूर्ण करने के फल की सुनिश्चित प्राप्ति हो जाती है ।३७। जो कोई अपने माता-पिता को घर में यों ही छोड़कर तीर्थाटन करने को जाया करता है उस बुद्धिहीन को उनके मार देने का महा-पाप लगता है। अतएव उनकी आज्ञा प्राप्त करके ही कहीं जाना चाहिए ।३८। पुत्र के लिये माता-पिता की सेवा में संलग्न रहना ही सबसे बड़ा तीर्थ होता है। माता-पिता के चरणों की सेवा तो घर में ही रहकर सम्पन्न होती है और अन्य तीर्थों के लिए तो दूर जाना पड़ता है ।३९। यह परम पुण्यमय तीर्थ सर्वदा समीप में स्थित और परम सुलभ तथा समस्त धर्मों का साधन स्वरूप हैं। पुत्र की स्त्री के लिए भी घर में इसी को परम शोभन तीर्थ बतलाया गया है ।४०। वेद और समस्त धर्मशास्त्र इसी बात को निरन्तर बतलाते हैं, आपको भी इसे मानना चाहिए नहीं तो ये सब शास्त्र झूँठे हो जायेंगे ।४१। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो आपका यह सत्य स्वरूप भी असत्य हो जायगा और इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि इसी भाँति ये वेद भी असत्य हो जायेगे ।४२।

शीघ्रं चः भवितव्यो मे विवाहः क्रियतां शुभः ।
अथवा वेदशास्त्रञ्च व्यलीकं कथ्यतामिति ॥४३
द्वयोः श्रेष्ठतमं मध्ये यत्स्यात्सम्यग्विचार्य तत् ।
कर्तव्यं च प्रयत्नेन पितरौ धर्मरूपिणौ ॥४४

इत्युक्त्वा पार्वतीपुत्रः स गणेशः प्रकृष्टधीः ।
विरराम महाज्ञानी तदा बुद्धिमतां वरः ॥४५
तौ दंपती च विश्वेशौ पार्वतीशंकरौ तदा ।
इति श्रुत्वा वचस्तस्य विस्मयं परमं गतौ ॥४६
ततः शिवा शिवश्चैव पुत्रं बुद्धिविचक्षरणम् ।
संप्रशस्योचतुः प्रीत्या तौ यथार्थप्रभाषिणम् ॥४७
पुत्र ते विमला बुद्धिः समुत्पन्न महात्मनः ।
त्वयोक्तं यद्वचश्चैव च नान्यथा ॥४८
समुत्पन्ने च दुःखे च यस्य बुद्धिर्विशिष्यते ।
तस्य दुःखं विनेश्येत सूर्यं दृष्टे तथा तमः ॥४९

अब आपको मेरा शुभ विवाह यथा सम्भव शीघ्रातिशीघ्र कर देना चाहिए या फिर आप इस वेद-शास्त्र की मानवीय मर्यादा को व्यर्थ बना दीजियेगा ।४३। आप धर्म के स्वरूप वाले माता-पिता हैं अतः इन दोनों बातों के मध्य में जो भी श्रेष्ठ समझें उसे ही यत्न के साथ करने की कृपा करें ।४। ब्रह्माजी ने कहा—महाज्ञानी और महायतियों में परम श्रेष्ठ पार्वती के पुत्र गणेशजी ने प्रसन्नता के साथ इतना कहकर मौन का अवलम्बन ले लिया ।४५। उस समय गणेश के इन वचनों को सुन कर समस्त विश्व की माता पार्वती और जगत पिता परमेश्वर परम आश्चर्यान्वित हुए ।४६। उस समय भवानी महेश्वर ने अपने आत्मज गणेश की इस तरह विलक्षण बुद्धि से पूर्ण बातें सुनकर उसकी अत्यधिक बड़ाई की और प्रेम के साथ कहा, हे पुत्र ! तुम सर्वथा यथार्थ कह रहे हो ।४७। शिव और रुद्राणी दोनों ने कहा—हे पुत्र ! निश्चय ही तुम्हारी लोकोत्तर निर्मल बुद्धि महात्माओं जैसी है । तुमने जो कुछ भी इस समय कहा है वह बिल्कुल यथार्थ है । इसमें कुछ भी अन्यथा नहीं है ।४८। भुवन भास्कर के उदय हो जाने पर अन्धकार की भाँति सङ्कट का समय आ पड़ने पर भी जिसकी बुद्धि विशेष रूप से सुस्थिर बनी रहती है उसका दुःख नष्ट हो जाता है ।४९।

बुद्धिर्यस्य बल तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् ।

कूपे सिंहो मदोन्मत्त: शशकेन निपातित: ॥५०
वेदशास्त्रपुराणेषु बालकस्य यथोदितम् ।
त्वया कृतं तु तत्सर्वं धर्मस्य परिपालनम् ॥५१
सम्यक्कृतं त्वया यच्च तत्केनापि भवेदिह ।
आवाभ्यां मानित तच्च नान्यथा क्रियतेऽधुना ॥५२
एत्युक्त्या तौ समाश्वास्य गणेशं बुद्धिसागरम् ।
विवाहकरणो चास्य मति चक्रतुरुत्तमाम् ॥५३

वस्तुत: जिसमें विवेक बुद्धि होती है उसी में बल का भी निवास रहता है । जो बुद्धिहीन होता है उसमें बल कभी भी नहीं रह सकता है । बुद्धिमान् खरगोश ने तो बुद्धि के द्वारा महान् मदोन्मत्त सिंह को कुंए में डालकर नष्ट कर दिया था ।५०। वेद और शास्त्रों में एवं महा-पुराणों में जैसा भी बालकों का कर्त्तव्य बताया गया है तुमने उसका पूर्ण रूप से अक्षरश: पालन किया है ।५१। हे पुत्र ! इस समय तुमने जो कुछ किया उसे अन्य कोई भी नहीं कर सकता । तुम्हारी बात को अन्यथा कर देने की सामर्थ्य किसी में नहीं है । हम दोनों ने अब तुम्हारी बात मान ली है ५२। ब्रह्माजी ने कहा—इस तरह महादेव पार्वती दोनों ने बुद्धि के सागर गणेश को आश्वासन देते हुए उनके विवाह कर देने की इच्छा प्रकट की ।५३।

रुद्र संहिता–युद्ध खण्ड

शंखचूड और शिव का दूत प्रेषण ।

तत्र स्थित्वा दानवेन्द्रो महान्तं दानवेश्वरम् ।
दूत कृत्वा महाविज्ञं प्रेषयामास शंकरम् ॥१
स तत्र गत्वा दूतश्च चन्द्रभालं ददर्श ह ।
वटमूले समासीनं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥२
कृत्वा योगासन दृष्ट्वा मुद्रायुक्त च सस्मितम् ।
शुद्धिस्फटिकसंकाशं ज्वलंत ब्रह्मतेजसा ॥३

त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माबरावृतम् ।
भक्तमृत्युहरं शांतं गौरीकांतं त्रिलोचनम् ।।४
तपसां फलदातारं कर्त्तारं सर्वसम्पदाम् ।
आशुतोषं प्रसन्नस्यं भक्तानुग्रहकातरम् ।।५
विश्वनाथं विश्वबीजं विश्वरूपं च विश्वजम् ।
विश्वेवरं विश्वकरं विश्वसंहारकारणम् ।।६
कारणं कारणानां च नरकार्णवतारकम् ।
ज्ञानप्रदं ज्ञानबीजं ज्ञानानन्द सनातनम् ।।७

श्रीसनत्कुमार जी ने कहा—शङ्खचूड ने वहीं पर स्थित होकर महान दानवेश्वर को अपना दूत बनाकर भगवान् शंकर के समीप में भेजा ।१। दूत ने कोटि सूर्य के समान कान्ति वाले वट के मूल में विराजमान भगवान शङ्कर के दर्शन किये ।२। भगवान शिव योगासन की मुद्रा में बैठकर दृष्टि लगाये हुए हास्ययुक्त थे स्फटिक मणि के तुल्य ब्रह्म-तेज से पूर्ण प्रकाशित हो रहे थे ।३। दूत ने देखा कि शिव त्रिशूल और पट्टिश लेकर व्याघ्रचर्म धारण किये हुए हैं । गौरी के पति त्रिलोचन परम शान्ति की मुद्रा में स्थित अपने भक्तों की मृत्यु का हरण करने वाले हैं । शिव भक्तों की तपश्चर्या के फल प्रदान करने वाले, समस्त सम्पत्तियों के दाता, शीघ्रातिशीघ्र भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने के कारण कातर होकर प्रसन्न होने वाले हैं ।४–५। भगवान् शङ्कर विश्व के स्वामी—विश्व के बीज-रूप—स्वयं विश्व स्वरूप – विश्व के उत्पादक—विश्व के भरण-पोषण कर्त्ता और विश्व के संहार करने वाले देव हैं ।६। ये कारण के भी कारण, नरक रूपी समुद्र से पार करने वाले—ज्ञान के प्रदान-कर्त्ता ज्ञान के बीज रूप और सर्वदा स्वयं ज्ञानानन्द में निमग्न एवम् सनातन हैं । शङ्खचूड के दूत दानवेश्वर ने इस सुन्दर स्वरूप में समन्वित शिव को देखा ।७।

अवरुह्य रथाद्दूतस्य दृष्ट्वा दानवेश्वरः ।
शंकर सकुमारं च शिरसा प्राणनाम सः ।८

वामतो भद्रकाली च स्कन्दं तत्पुरतः स्थितम् ।
लोकाशिष ददौ तस्मै काली स्कन्दश्च शङ्करः ६
अथासौ शखचूडस्य दूतः परमशास्त्रवित् ।
उवाच शंकरं नत्वा करौ बद्ध्वा शुभं वचः ॥१०
शङ्खचूडस्य दूतोः हं त्वत्सकाशमिहागतः ।
वर्तते ते किमिच्छाऽद्य तत्वं ब्रूहि महेश्वरः ॥११
इति श्रुत्वा च वचनं शङ्खचूडस्य शङ्करः ।
प्रसन्नात्म महादेवो भगवांस्तमुवाच ह ॥१२
शृणु दूत महाज्ञ वचो मम सुखावहम् ।
कथनीयमिदं तस्मै निर्विवाद विचार्य च ॥१३
विधाता जनतां ब्रह्मा पिता धर्मस्य धर्मवित् ।
मरीचिस्तस्य पुत्रश्च कश्यपस्तत्सुतः स्मृतः ॥१४

दानवेश्वर ने अपने रथ से उतरकर परम सुकुमार स्वरूप वाले शंकर को सादर प्रणाम किया ।८। भगवान शिव के वाम भाग में भद्रकाली और आगे स्कन्द विराजमान थे । काली देवी, षण्मुख और शङ्कर ने लोक-रीति का निर्वाह करते हुए आशीर्वाद दिया ।६। उस समय शास्त्र के ज्ञाता शङ्खचूड के दूत दानवेश्वर ने दोनों अपने हाथ जोड़कर शिवजी से प्रार्थना की ।१०। दूत ने कहा—हे महेश्वर ! मैं शङ्खचुड का दूत होकर आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ । आपकी जो भी इच्छा हो वह मुझ से तात्विक रूप से कहिए ।११। सनत्कुमार ने कहा—शङ्खचूड के दूत दानवेश्वर के ये वचन श्रवण कर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक महादेव बोले ।१२। श्री शिव ने कहा—हे महापण्डित दूत ! मेरा सन्देश सावधानी से सुनकर तुम अपने स्वामी से विचारपूर्वक निर्विवाद कह देना ।१। ब्रह्मा इस समस्त जगत के पिता और धर्म को पूर्णरूप से जानने वाले। ब्रह्मा के पुत्र मरीचि और उनके पुत्र कश्यप हुए ।१४।

दक्षः प्रीत्या ददौ तस्मै निज कन्यास्त्रयोदश ।
तास्तेव च दनुः साध्वी तत्सौभाग्यविवर्द्धिनी ॥१५

चत्वारस्ते दनोः पुत्रा दानवास्तेजसोल्बणाः ।
तेष्वेको विप्रशित्तिस्तु महाबलपराक्रमः ॥ १६
तत्पुत्रो धार्मिको दम्भी दानवेन्द्रो महामतिः ।
तस्य त्वं तनयः श्रेष्ठो धर्मात्मा दानवेश्वरः ॥१७
पुरा स्व पार्षदो गोपेष्वेव च धार्मिकः ।
अधुनां राधिकाशापाज्जातस्त्व दानवेश्वरः ॥१८
दानवीं योनिमायातस्तत्वतो न हि दानवः ।
निजवृतं पुरा ज्ञात्वा देववैरं त्यजाधुना ॥१९
द्रोहं न कुरु तैः सार्द्धं स्वपदं भुंक्ष्व सादरम् ।
नाधिकं सविकारं च कुरु राज्यं विचार्य च ॥२०
देहि राज्यं च देवानां मत्प्रीतिं रक्ष दानव ।
निजराज्ये सुखं तिष्ठ तिष्ठंतु स्वपदे सुराः ॥२१

प्रजापति दक्ष ने अपनी तेरह कन्याऐं कश्यप को दीं । उनमें एक परम पतिव्रता दनु नाम वाली कन्या थी जो कि उनके सौभाग्य को बढ़ाने वाली थी ।१५। उससे महान् तेजस्वी चार दानव पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया । इनमें एक विप्रचित्ति नाम वाला अत्यन्त बलवान् तथा पराक्रमी था ।१६। विप्रचिति का पुत्र अति बुद्धि मानी एवं परम धार्मिक दानवराज दम्भ उत्पन्न हुआ उसके प्रिय पुत्र धर्मात्मा तुमने जन्म लिया ।१७। हे दानवेश्वर ? पहिले तुम भगवान् श्रीकृष्ण के प्रिय पार्षद गोपों में एक प्रमुख गोप थे : इस समय श्री राधिका के शाप के कारण दानवेश्वर हुए हो ।१८। तुम शापवश ही इस दासव योनि में आ गये हो वस्तुतः दानव नहीं हो, इसलिए तुत अपना प्राचीन हाल समझकर देव-वृन्द के साथ वैरभाव को त्याग दो ।१९। देवताओं के साथ किसी प्रकार का द्रोह न करते हुये अपने पद का सानन्द उपभोग करो । ऐसा करने में विचार पूर्वक देखो तुम्हारी कुछ भी हानि नहीं है ।२०। हे दानवेश्वर ! मेरी प्रीति के विषय में विचार कर देवताओं को उनका राज्य लौटा दो । तुमको सुखपूर्वक अपने ही राज्य में स्थित रहना चाहिये । देवगण अपने पद पर स्थित रहें, इसी में भलाई है ।२१।

अलं भूतविरोधेन देवद्रोहेण किं पुनः ।
कुलीनाः शुद्ध कर्माणः सर्वे कश्यपवंशजाः ॥२२
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।
ज्ञातिद्रोहजपापस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥२३
इत्यादिबहुवार्ता च श्रुतिस्मृतिपरां शुभाम् ।
प्रोवाच शंकरस्तस्मै बोधयन् ज्ञानमुत्तमम् ॥२४
शिक्षितः शङ्खचूडेन स दूतस्तर्कवित्तमः ।
उवाच वचनं नम्रो भवितव्यविमोहितः ॥२५
त्वया यत्कथितं देव नान्यथा तत्तथा वचः ।
तथ्यं किंचिद्यथार्थं च श्रूयतां मे निवेदनम् ॥२६
ज्ञातिद्रोहे महत्पापं त्वयोक्तमधुना च यत् ।
तत्किमीशासुराणां च न सुराणां वद प्रभो ॥२७
सर्वेषामिति चेत्तद्वै तदा वच्मि विचार्य च ।
निर्णयं ब्रूहि तत्राद्य कुरु संदेहभंजनम् ॥२८

साधारण प्राणियों के साथ भी विरोध भाव रखना अच्छा नहीं होता है फिर देवगण से विरोध रखने के बावत क्या कहा जावे ? ये सभी शुद्ध कर्मों के करने वाले परम कुलीन कश्यप ऋषि की सन्तान हैं ।२२। ब्रह्म-हत्या आदि जितने भी महाघोर पाप होते हैं वे सभी अपनी जाति से द्रोह करने के पाप की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं होते हैं ।२३। सनत्कुमार जी ने कहा—इस रीति से श्रुति एवं स्मृति के सिद्धान्त से अनुमत अनेक उपदेशमय बातें कहते हुये भगवान् शकर ने उसे भली-भाँति समझाकर अपना ज्ञान स्वरूप सन्देश कहा ।२४। इसके अनन्तर शङ्खचूड़ के द्वारा समझाये हुये तर्क के जानने वाले उस दूत ने भवितव्यता से मोहित होकर नम्रतापूर्वक शिव से कहा ।२५। शङ्खचूड़ के दूत ने कहा—हे देवि ! आपने जो कुछ भी मुझ से कहा वह सर्वथा सत्य है, किन्तु अब मैं जो भी निवेदन करना चाहता हूँ उसे भी आप सत्य-सत्य सुनने की कृपा करें ।२६। हे आदिदेव ! अभी आपने जाति के साथ द्रोह को एक महान् पाप बतलाया है । यह अक्षरशः सत्य

है किन्तु क्या यह बात केवल असुरों के लिये ही है देववृन्द के लिये नहीं है ? ।२७ यदि दोनों पक्षों के लिये यह जाति-द्रोह के महान् पाप की बात है तो फिर मैं विचार करके कुछ निवेदन करता हूँ आप मेरे सन्देह का निवारण करिये ।२८।

मधुकैटभयोर्दैत्यवरयो प्रलयार्णवे ।
शिरश्छेदं चकारासौ कस्माच्चक्री महेश्वर ॥२६
त्रिपुरैः सह संयुद्धं भस्मत्वकरणं कृतः ।
भवाश्चकार गिरिश सुरपक्षीति विश्रुतम् ॥३०
गृहीत्वा तस्य सर्वस्वं कुतः प्रस्थापितो वलिः ।
सुतलादि समुद्धतुं तद्द्वारे च गदाधरः ॥३१
सभ्रातृको हिरण्याक्ष कथं देवैश्च हिंसतः ।
शुंभादयोऽसुराश्चैव कथं दैवैर्निपातिताः ॥३२
पुरा समुद्रमथने पीयूषं भक्षितं सुरैः ।
क्लेशभाजो वयं तत्र ते सर्वे फलभोगिनः ॥३३
क्रीडाभांडमिदं विश्वं कालस्य परमात्मनः ।
स ददाति यदा यस्मै तस्यैश्वर्यं भवेत्तदा ॥३४
देवदानवयोर्वैरं शश्वनैमित्तिकं सदा ।
पराजयो जयस्तेषां कालाधीनः क्रमेण च ॥३५

हे महेश्वर ! यदि ऐसा सभी के लिये है तो फिर आपने मधुकैटभ श्रेष्ठ दैत्य का मस्तक चक्र से क्यों काटा था जब अन्य कोई कारण न था ।२६। हे गिरीश ! आपने त्रिपुरासुर के साथ किस कारण से महायुद्ध किया था और फिर क्यों उसे भस्मीभूत बना दिया ? आपने देववृन्द का पक्ष लेकर उनका ही कल्याण किस लिये किया था ? ।३०। राजा बलि का सब कुछ हरण करने के पश्चात् भी उसको पाताल लोक में भेजने का क्या कारण था जहाँ कि सर्वदा गदा धारण किये हुए उसके द्वार पर स्थित रहा करते हैं ! ।३१। अपने सहोदर भाई के सहित देवताओं ने हिरण्याक्ष को किस कारण मार गिराया और देवों के ही द्वारा शुम्भादि महाबली दैत्य कैसे मार दिये गये ! ३२। समुद्र मन्यन के महाप्रयास

में हम सभी ने अत्यन्त घोर श्रम के साथ क्लेश भोगा किन्तु अमृत का पान केवल देवों ने ही करके उस श्रम फल को प्राप्त किया ।३३। यह समस्त विश्व काल का एक खिलौना है। परमात्मा-स्वरूप यह काल जब भी जिसको देता है यह ऐश्वर्य उसे प्राप्त हो जाता है ।३४। देवता और दैत्यों के बीच में होने वाले युद्ध तथा वैर का कुछ न कुछ निमित्त रहा करता है। इन में जय और पराजय का होना काल के अधीन होता है ।६५।

तवानयोर्विरोधे च गमनं निष्फलं भवेत् ।
समसम्वन्धियां तद्वै रोचते नेश्वररस्य ते ।।३६
सुरासुराणां सर्वेषामीश्वरस्य महात्मनः ।
इयं ते रहिता लज्जा स्पर्द्धाऽस्माभिः सहाधुना ।।३७
यतोऽधिका चैव कीर्तिर्हानिश्चैव पराजये ।
तवैतद्विपरीतं च मनसा संविचार्यताम् ।।३८
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा सप्रहस्य त्रिलोचनः ।
यथोचितं च मधुरमुवाच दानवेश्वरम् ।।३९
वयं भक्तपराधीना न स्वतन्त्राः कदापि हि ।
तदिच्छया तत्कर्माण न कस्यापि च पक्षिणः ।।४०
पुरा विधिप्रार्थनया युद्धमादौ हरेरपि ।
मधुकैटभयोर्दैत्यवरयोः प्रलयार्णवे ।।४१
नेवप्रार्थनया तेन हिरण्यकशिपोः पुरा ।
प्रह्लादार्थं वधोऽकारि भक्तानां हितकारिणा ।।४२

आपस में इन दोनों के विरोध में व्यर्थ ही आपको नहीं पड़ना चाहिए। विरोध भाव समान बल की शक्ति वालों का ही उचित हुआ करता है। हे शिव ! आपको विरोध करना शोभा नहीं देता है ।३६। आप तो देव और दैत्य सभी के स्वामी हैं। यह एक बड़ी लज्जा की-सी बात है कि आप जैसे महान् आत्मा वाले का हमारे साथ वैर-भाव रहता है ।३७ जिस जयलाभ में बहुत बड़ी कीर्ति और हार हो जाने पर महती हानि हो, वह बात आपके स्वरूप से सर्वथा विपरीत है । आप

स्वयं इसका विचार मन में करें ।३८। सनत्कुमार जी ने कहा—दान, वेश्वर के ऐसे वचन श्रवण कर महेश्वर हँसते हुए समुचित एवं मधुर वचनों द्वारा उससे बोले ।३९। महेश ने कहा—हे दानवेश्वर ? मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ, सर्वदा अपने भक्तजन के अधीन रहा करता हूं। उनकी इच्छा के अनुसार ही मुझे कर्म करने को विवश होना पड़ता है। हम कभी किसी का भी पक्षपात नहीं किया करते हैं ।४०। सर्व प्रथम विधाता द्वारा प्रार्थना की जाने पर प्रलय-सागर में विष्णु भगवान् ने मधु कैटभ के साथ युद्ध किया था ।४१। देवगण की दीन प्रार्थना पर ही भक्त प्रहलाद की रक्षा के लिये और भक्तजन के हितार्थ हिरण्यकशिपु का वध विष्णु ने नृसिंह स्वरूप से किया था ।४२।

त्रिपुरैः सह सयुद्धं भस्मत्वकरण ततः ।
देवप्रार्थनयाऽकारि मयापि च पुरा श्रुतम् ।।४३
सर्वेश्वर्याः सर्वमातुर्देवप्रार्थनया पुरा ।
आसीच्छुंभादभिर्युद्धं वधस्तेषां तया कृतः ।।४४
अद्यापि त्रिदशः सर्वे ब्राह्मण शरण ययुः ।
स सदेव हरिर्मां च देव शरणामागतः ।।४५
हरिब्रह्मादिकानां च प्रार्थनावशतोऽप्यहम् ।
सुराणामीश्वरो दूत युद्धार्थमगमं खलु ।।४६
पार्षदप्रवरस्त्व हि कृष्णस्य च महात्मनः ।
ये ये हताश्च दैतेया न हि केऽपित्वया समाः ।।४७
का लज्जा महती राजन् मम युद्धे त्वया सह ।
देवकार्यार्थमीशोऽहं विनयेन च प्रेषितः ।।४८
गच्छ त्व शंखचूडं वै कथनीयं च मे वच; ।
उ च युक्तं करोत्वत्र सुरकार्यं करोम्यहम् ।।४९
इत्युक्त्वा शंकरस्तत्र विरराम महेश्वरः ।
उत्तस्थौ शङ्खचूडस्य दूतोऽगच्छत्तदतिकम् ।।५०

मैंने भी देवगण की प्रार्थना और अतिशय भक्ति की जाने पर त्रिपुरा-

सुर का संहार किया था—यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध ही है ।४३। सबका वैभव और पद बलात् छीनने वाले तथा देवगण को अत्यन्त कष्ट देने वाले शुम्भ आदि का वध भी जब देवों ने बहुत बार प्रार्थना की थी, किया गया था ।४४। इस समय भी समस्त देवगण पहिले ब्रह्माजी की शरण गये और फिर ब्रह्मा विष्णु मेरी शरण में आये हैं ।४५। हे दूत अब हरि तथा ब्रह्मा की प्रार्थना करने पर ही यहां देवगण की ओर से संग्राम करने के लिए उपस्थित हुआ हूं ।४६। मैं पुन, तुमको बतला देना चाहता हूँ कि तुम भगवान् कृष्ण के परमोत्तम पार्षद हो, अब तक जितने भी असुर मारे गए हैं तुम्हारे सदृश उनमें एक भी कोई नहीं था ।४६। राजन् ! तुम्हारे साथ में संग्राम करने के कार्य में मुझे क्या लज्जा हो सकती है ! यह तो देवों का कार्य ही है जिसे पूर्ण करने के लिये विजय प्रार्थना से प्रेरित होकर मुझ ईश्वर को यहाँ आना पड़ा है ।४८। अब यहाँ से जाकर तुम शङ्खचूड़ से स्पष्ट कह देना कि उसके मन में जो भी रुचे वह वही करे । मुझे तो यहाँ अब देव-कार्य करना ही है ।४९। इतना कहने के पश्चात् महेश्वर चुप हो गये और शङ्खचूड़ के द्वारा प्रेषित वह दूत भी वहाँ से उठकर अपने स्वामी के समीप चला गया ।५०।

।। देवता-दानवों का रोमहर्षण युद्ध ।।

स दूतस्तत्र गत्वां च शिववाक्यं जगाद ह ।
सविस्तरं यथार्थं च निश्चयं तस्य तत्वतः ।।1
तच्छुत्वा शङ्खचूडोऽसौ दानवेन्द्रः प्रतापवान् ।
अंगीचकार सुप्रीत्या रणमेव स दानवः ।।२
समारुरोह यानं च सहामोत्यैश्च सत्वरः ।
आदि देश स्वसैन्यं चयुद्धार्थं शकरेण च ।।३
शिवः स्वसैन्यं देवांश्च प्रेरयामास सत्वरः ।
स्वयमप्यखिलेशोऽपि संनद्धोऽभूच्च लीलया ।।४
युद्धारम्भो वभूवाशु नेदुर्वाद्यानि भूरिशः ।
कोलाहलश्च संजातो वीरशब्दस्तथवं च ।।५

देवदानवयोर्युद्धं परम्परमभून्मुने।
धर्मतो ययुधे तत्र देवदानवोर्गण: ।।६
स्वयं महेन्द्रो युयुधे सार्द्धं च वृषपर्वणा।
भास्करो युयुधे विप्रचित्तानां सह धर्मतः ।।७

श्री सनत्कुमारजी ने कहा—उस दूत ने वापिस जाकर अपने नृपेन्द्र को भगवान् शङ्कर से होने वाली पूरी बातें सुना दीं और उनके अन्तिम निश्चय को विस्तृत रूप से बतला दिया ।१। यह सब श्रवण करने के अनन्तर दानवों के राजा प्रतापी शङ्खचूड ने सप्रेम युद्ध करना स्वीकृत कर लिया ।२। शङ्खचूड अपने समस्त मन्त्रिगणों के सहित विमान पर चढ़कर तैयार हो गया और शिव के साथ संग्राम करने का आदेश सेना को शीघ्र ही दे दिया ।३। उधर शङ्कर भगवान् भी समस्त देवताओं तथा सेना को प्रेरित लीला के सहित युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गए ।४। उस समय तुरन्त ही युद्ध का आरम्भ हो गया। युद्ध क्षेत्र में बहुत प्रकार के वाद्यों का वादन तथा वीर योद्धाओं का महान कोलाहल सर्वत्र छा गया ।५। हे मुनिराज ! तब देव और दानवों का आपस में अत्यन्त घोर धर्म युद्ध होना शुरू हो गया ।६। इन्द्रदेव वृषपर्वा के साथ और भास्कर विप्रचिति के साथ धर्मयुद्ध में प्रवृत्त हो गए ।७।

दम्भेन सह विष्णुश्च चकार परम रणम्।
कालासुरेण कालश्च गोकर्ने हुताशनः ।८
कुवेरः कालकेयेन विश्वकर्मा मयेन च।
भयंकरेण मृत्युश्च संहारेण यमस्तथा ।।९
कालम्बिकेन वरुणश्चंचलेन समीरणः।
बुधश्च चटपृष्टेन रक्तक्षेण शनैश्वर ।।१०
जयन्तो रत्नसारेण वसवो वर्चसा गणैः।
अश्विनौ दीप्तिमद्भ्या च धूम्रेण नलकूबरः ।।११
धुरन्धरेण धर्मश्च गणकाक्षेण मङ्गलः।
शोभाकरेण वैश्वनः पिपिरेन च मन्मथः ।।१२

गोकामुखेन चूर्णेन खडगनाम्ना सुरेश च ।
धूम्रेण सहलेनापि विश्वेन च प्रतापिना ॥१३
पलाशेन द्वादशार्का युयुधुर्धर्मतः परे ।
असुरैरमराः सार्द्धं शिवसाहाय्यशालिनः ॥१४

विष्णु दम्भ दैत्य से, कामदेव कालासुर से और हुताशन गोकर्ण से घोर युद्ध करने लगे ।८। कुबेर ने कालकेय से, विश्वकर्मा ने मय नामक असुर से, मृत्यु ने भयंकर से, यमराज का संहारक से, वरुण का कालाम्बिक से, पवनदेव का चंचलासुर से, बुध का घटपृष्ठ से, शनिदेव का रक्ताक्ष नाम वाले असुर से वर्चसगण तथा रत्नसार के साथ जयन्त का, अश्विनीकुमार का दीप्ति मानों के साथ और नलकूबर का धूम्र के साथ महान युद्ध हुआ ।९-११। धर्म और धुरन्धर का, मङ्गल और गणकाक्ष का, वैश्वानर और शोभाकार का तथा मन्मथ और पिपिर का धर्म-युद्ध, विश्वप्रतापी और पलाश के साथ युद्ध करने में संलग्न हो गये और भगवान शंकर की सहायता प्राप्त कर देवताओं ने दैत्यगण से अत्यन्त भयानक युद्ध किया ।१२-१४।

एकादश महारुद्राश्चैकादश भयंकरैः ।
असुरैर्युयुधुर्वीरैर्महाबलपराक्रमैः ।।१५
महामणिश्च युयुधे चोग्रचण्डादिभिः सह ।
राहुणा सह चन्द्रश्च जीवः शुक्रेण धर्मतः ॥१६
नन्दीश्वरादयः सर्वे दानवप्रवरैः सह ।
युयुधश्च महायुद्धे नोक्ता विस्तरतः पृथक् ॥१७
वटमूले तदा शम्भुस्तस्थौ काल्या सुतेन च ।
सर्वे च युयुधुः सैन्यसमूहा सततं मुने ॥१८
रत्नसिंहासने रम्ये कोटिदानवसंयुतेः ।
उवास शंखचूडश्च रत्नभूषणभूषितः ।।१९
महायुद्धो बभूवाथ देवासुरविमर्दनः ।
नानायुधानि दिव्यानि चलतिस्म महामृधे ।।२०

गदर्ष्टिपट्टिशाश्चक्रभुशुंडिप्रासमुद्गराः ।
निस्त्रिंशभल्लपरिघाः शक्त्युन्मुखरपश्वघाः ॥२१
शरतोमरखड्गाश्च शतघ्न्यश्च सहस्रश ।
भिंदिपालादयश्चान्ये वीरहस्तेषु शोभिताः ।२२

एकादश महारुद्रों ने महाभयंकर, महाबली, महापराक्रमी ग्यारह असुरों से युद्ध किया । महामणि और उग्रचण्ड चन्द्र और राहु, देवगुरु वृहस्पति और शुक्र परस्पर में युद्ध करने लगे । १५-१६ । उस समय नन्दीश्वर प्रभृति समस्त शिव गण भी उन सभी दानवों के साथ महा-युद्ध में प्रवृत्त हो गए ।१७। भगवान् महेश्वर, महाकली तथा अपने पुत्र के साथ वट वृक्ष के मूल के निकट विराजमान हो रहे थे और उनकी समस्त सेना निरन्तर युद्ध कर रही थी ।१८। इसी तरह रत्नजटित रमणीय सिंहासन पर करोड़ों दैत्यों के साथ बहुमूल्य मणि एवं रत्नों के अनेक आभरणों से समलंकृत दानवेन्द्र शंखचूड विराजमान हो रहा था ।१९। इस युद्ध भूमि में देवासुरों का प्राणों का संहारक महायुद्ध हो रहा था और उसमें विविध प्रकार के अनेक दिव्य आयुधों का प्रहार किया जा रहा था ।२०। गदा पट्टिश ऋष्टि, भुशुण्डी, चक्र, मुद्गर, पाश, भल्ल निस्त्रिंश, परिध, शक्ति, परशु, सन्मुख, शर, तोमर, खड्ग, भिन्दिपाल और सहस्रों शतघ्नी (तोपें) आदि महावीरो के हाथो में शोभित होकर प्रयोग में लाये जा रहे थे ॥ १--२२॥

शिरांसि चिच्छिदुश्चैभिर्वीरास्तत्र महोत्सवाः ।
वीराणन्मुभयोश्चैव सैन्ययोर्गर्जतो रण ॥२३
गजास्तुरंगा बहवः स्यन्दनाश्च पदातयः ।
सारोहवाहा विविधास्तत्रासन् सुविखडिता ॥२४
निकृत्तबाहूरुकरकटिकर्णयुगांघ्रयः ।
संछिन्नवजबाणासितनुत्रवरभूषणाः ॥२५
समुद्धतकिरीटैश्च शिरोभिः सह कुंडलैः ।
संरंभनष्टै रास्तीर्णा बभौ भूः करभोरुभिः ॥२६

महाभुजैः साभरणैः संछिन्नैः सायुधैस्तथा ।
अंगरन्यैश्च सहसा पटलैर्वा ससारघैः ॥२७
मृधे भटाः प्रधावंतः कबंधान्स्वशिरोक्षिभिः ।
पश्यतस्तत्र चोत्पेतुरुद्यतायुधसद्भुजैः ॥२८

दोनों दलों के वीर योधागण महा गर्जना तथा तर्जन के साथ अपने अतुल पराक्रम से शत्रुओं के शिरों का छेदन कर रहे थे ॥२३॥ उस समय हाथी अश्व, रथ पैदल और रथादि अनेक सवारियाँ नष्ट भ्रष्ट होकर गिरने लगीं ।२४। वीरों के भुज, उरु, कर, कटि, कर्ण और पैर आदि शरीर के अङ्ग-अङ्ग छिन्न-भिन्न हो-होकर गिर रहे थे ॥ २५ ॥ किरीट, कुण्डल आदि से भूषित मस्तकों, ध्वज, बाण, तलवार, बख्तर, टूटे हुए भूषण और हथियारों से युक्त वीरों की भुजाये योंही कट-कट कर वहाँ के सूँड आदि से सम्पूर्ण युद्ध भूमि ढक गई ॥२६॥ गिर रही थीं और वह भूमि शिरों से मधुमक्खियों के छत्तों के समान व्याप्त हो गई थी ।२७। उस देवासुरों के महान् भीषण युद्ध में योधागण कटकर गिरे हुए मस्तकों को आँखों से देखकर आयुध उठाते हुए भाग्यमान हो रहे थे।२८।

वल्गंतोऽतितरां वीरा युयुधुश्च परस्परम् ।
शस्त्रास्त्रैर्वधैस्तत्र महाबलपराक्रमाः ॥२९
केचित्स्वर्णमुखैर्बाणैर्विनिहत्य भटान्मृधे ।
व्यनदन् वीरसंन्नादं सतोया इव तोयदाः ॥३०
सवतः शरकूटेन वीरः सरथसारथिम् ।
वीरं संछादयामास प्रावृट्सूर्यमिवांबुद ॥३१
अन्योन्यमभिसंसृत्य युयुधुर्द्वन्द्वयोधिनः ।
आह्वयंतो विशताऽग्रे क्षिपतो मर्मभिर्मिथः ॥३२
सर्वतो वीरसंघाश्च नानाबाहुध्वजायुधाः ।
व्यदृश्यत महासंख्य कुर्वंतः सिंहसरवम् ॥३३
महारवान्स्वशंखांश्च विदुध्मुर्वै पृथक् पृथक् ।
वल्गन चक्रिरे तत्र महावीराः प्रहर्षिताः ॥३४

एवं चिरतरं कालं देवदानवयोर्महत् ।
बभूव युद्धं विकटं करालं वीरहर्षदम् ॥३५
महाप्रभोश्च लीलेयं शंकरस्य परात्मनः ।
यया संमोहितं सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥३६

महा पराक्रम वाले वीर अनेक तरह के अस्त्र-शस्त्र उठाकर सिंहनाद करते हुए घोर युद्ध करने लगे ।२६। उनमें कुछ वीर सुवर्ण पंख वाले बाणों से योधाओं का संहार करते हुए महामेघ के तुल्य गम्भीर गर्जनकर रहे थे ।३०। सब तरह से आने वाले बाणों के समूह से वीर, रथ और सारथी इस प्रकार ढक गये मानो मेघों की घटा ने आकर सूर्य को ढक लिया हो ।३१। द्वन्द्व-युद्ध करने वाले भी एक दूसरे के मर्म स्थलों का भेदन करते हुए प्रहार पर प्रहार कर रहे थे ॥३२॥ सभी ओर से वीरों के समूह नाना भाँति के आयुध हाथों में लेकर सिंह के समान घोर नाद करते हुए युद्ध स्थल में दिखलाई दे रहे थे ॥३३॥ वे बड़े बड़े शंखों को बजा रहे थे, जिनकी महाध्वनि से आकाश व्याप्त हो रहा था। ऐसे अनेक शंख पृथक्-पृथक् बजाते हुए वीर प्रसन्नता के साथ ताड़न और वेधन करने में तत्पर थे ।३४। इस रीति से बहुत समय पर्यन्त देव दानवों का वह भीषण वीरों को प्रसन्नता देने वाला महाघोर युद्ध हुआ ॥३५॥ यह सब परमेश शंकर की ललित लीला है जिसने देव, दानव, मनुष्य सभी को मोहित कर दिया है ॥३६॥

॥ शंखचूड का कार्तिकेय आदि से युद्ध ॥

तदा देवगणाः सर्वे दानवैश्च पराजिताः ।
दुद्रुवुर्भयभीताश्च शस्त्रास्त्रक्षतविग्रहाः ॥१
ते परावृत्य विश्वेशं शंकरं शरणं ययुः ।
त्राहि त्राहीति सर्वेशेत्यूचुर्विह्वलया गिरा ॥२
दृष्ट्वा पराजयं तेषां देवादीनां स शंकरः ।
सभयं वचनं श्रुत्वा कोपमुच्चैश्चकार ह ॥३
निरीक्ष्य स कृपादृष्ट्या देवेभ्यश्चाभयं ददौ ।

बलं च स्वगणानां वै वर्द्धयामास तेजसा ।।४
शिवाज्ञप्तस्तदा स्कन्दो दानवानां गणै सह ।
युयुधे निर्भयः संख्ये महावीरो हरात्मजः ।।५
कृत्वा क्रोध वीरशब्द देवो यस्तारकांतक ।
अक्षौहिणीनां शतकं समरे स जघान ह ।।६
रुधिर पातयामास काली कमललोचना ।
तेषां शिरांसि सछिद्य बभक्ष सहसा च सा ।।७

सनत्कुमार जी ने कहा—उस समय सभी देवगण दानवों से पराजय प्राप्त कर उनके शास्त्रास्त्रों से क्षत विक्षत होते हुये भागने लगे ।१। देवगण युद्ध स्थल से पलायित होकर भगवान शकर की शरण में पहुँचे और विह्वल वाणी के द्वारा "भगवान् ! हमारी रक्षा कीकिए"—इस तरह पुकार कर कहने लगे ।।२।। उस समथ महेश्वर को देव वृन्द की हार देखकर और उनके भय से परिपूर्ण वचन सुनकर महान् क्रोध उत्पन्न हुआ ।३। शंकर ने कृपा की दृष्टि से देवों को देखकर उनका भय दूर कर लिया और अपनी तेजोमयी भक्ति के द्वारा अपने गणों से विशेष बल-पराक्रम की वृद्धि कर दी ।४। इसके पश्चात् स्कन्द शिव की आज्ञा प्राप्त कर महावीरता का प्रकाश भरते हुए निर्भय होकर दानवों के साथ युद्ध करने के लिये चल दिये ।५। उस समय तारक के संहार करने वाले महान् वीर स्कन्द महा गर्जन का घोर शब्द सुनाते हुए दानवों की सैकड़ों अक्षौहिणी सेना का संहार करने लगे ।६। इधर महाकाली देवी समर भूमि में दानवों का नाश करती हुई उनके गर्म रुधिर का पान करने में तत्पर हो गई और शत्रु के शिरों को काट कर उनका भक्षण करने लगी ।।७

पपौ रक्तानि तेषां च दानवानां समंततः ।
युद्धं चाकार विविधं सुरदानवभीषणम् ।।८
शतलक्षं गजेन्द्राणा शतलक्षं नृणां तथा ।
समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप लीलया ।।९
कबंधानां सहस्रं च संननर्त रणे बहु ।

महान् कोलाहलो जातः क्लीवानां च भयंकर ॥१०
पुनः स्कन्दः प्रकुप्योच्चैः शरवर्षां चकार ह।
पातयःमास क्षयतः कोटिशोऽसुरनायकान् ॥११
दानवाः शरजालेन स्कन्दस्य क्षतविग्रहाः।
भीताः प्रदुद्रुवः सर्वे शेषा मरणतस्तदा ॥१२
वृषपर्वा विप्रचित्तिर्दंडश्चापि विकंपनः।
स्कन्देन युयुधुः सार्द्धं तेन सर्वे क्रमेण च ॥१३
महामारी च युयुधे न बभुव पराङ्मुखी।
बभूवुस्ते क्षतांगाश्च स्कन्दशक्तिप्रपीडिताः ॥१४

उस समय देव दानवों का ऐसा महा भयंकर युद्ध हुआ कि सभी तरफ से असुर दल के रुधिर का पान किया जाने लगा । ८ । सौ लाख महान् गजों और एक शत लक्ष वीर दानवों को हाथ से उठाकर महा काली लीला से ही अपने मुख में डालने लगी ।९। सैकड़ों धड जिनके मस्तकों का छेदन हो गया था उस रण-भूमि में नाच रहे थे । उस समय भीरु मनुष्यों के हृदय में महा भय की उत्पत्ति करने वाला महान् कोला-हल सब ओर हो रहा था ॥१०॥ ऐसा होते हुए भी कुमार स्कन्द ने क्रोध के साथ बाणों की महा-वृष्टि के द्वारा करोड़ों की संख्या में दानवों का संहार कर दिया ।११। जो स्कन्द की बाण वर्षा से बच गये थे वे क्षत विक्षत शरीर वाले होकर समर भूमि से भागने लगे ।१२। स्कन्द के साथ क्रम से विप्रचित्ति, वृषपर्वा, दण्ड और विकम्पन ने युद्ध करना आरम्भ किया । १३ । उधर महामारी संग्राम में पराङ् मुख न होते हुए युद्ध कर रही थी। स्कन्द की शक्ति से दैत्य क्षत-विक्षत हो रहे थे।१४।

महामारीस्कन्दयोश्च विजयोऽभूत्तदा मुने।
देदुर्दुदुभयः स्वर्गे पुष्पवृष्टिः पपात ह ॥१५
स्कन्दस्य समरं दृष्ट्वा महारौद्रं तमद्भुतम्।
दानवानां क्षयकरं यथा प्रकृतिकल्पकम् ।१६
महामारीकृतं तच्चोपद्रवं क्षयहेतुकम्।
चुकोपातीव सहसा सनद्धोऽमुत्स्वयं तदा ॥१७

वरं विमानमारुह्य नानाशस्त्रास्त्रसंयुतम् ।
अभयं सर्ववीराणां नानारत्नपरिच्छदम् ॥१८
महावीरैः शंखचूडो जगाम रथमध्यतः ।
धनुर्विकृष्य कर्णान्तं चकार शरवर्षणम् ॥१६
तस्य सा शरवृष्टिश्च दुर्निवार्य्या भयकरी ।
महाघोरांधकारश्च वधस्थाने बभूव ह ॥२०
देवः प्रदुद्रुवुः सर्वे येऽन्ये नन्दीश्वरादयः ।
एक एव कार्तिकेयस्तस्थौ समरमूर्द्धनि ॥२१

हे मुनि श्रेष्ठ ! इस युद्ध में स्कन्द और भगवती की जीत हुई । इस विजय को देखकर स्वर्ग में दुन्दुभि बजने लगीं और आकाश से पुष्प-वृष्टि हुई ।१५। कुमार स्कन्द ने बहुत ही भीषण प्रकृति कल्प के समान असुरों का नाश करने वाला युद्ध किया था और उस क्षय का हेतु महामारी ने प्रस्तुत किया था यह देखकर दानवों के राजा को बड़ा भारी क्रोध हुआ और फिर यह स्वयं ही युद्ध करने के लिए तैयार हो गया ॥१६-१७॥ दानवेन्द्र उस समय एक ऐसे विमान पर आरूढ़ हुआ जो सबको अभय देने वाला था और जिसमें नाना प्रकार के शस्त्रास्त्र रक्खे हुए थे ।१८। दानवराज शंखचूँड बड़े-बड़े योधाओं को साथ में लेकर रथ में बैठकर युद्ध क्षेत्र में आ गया और कान तक धनुष की प्रत्यञ्चा को तान कर बाणों की वृष्टि करने लगा ।१६। उस असुरेन्द्र की घोर बाण वृष्टि निवारण करने के अयोग्य हो रही थी और इससे युद्ध भूमि में महान् अन्धकार छा गया । २० । नन्दीश्वर आदि को साथ लेकर सभी देवगण घबराते हुए वहाँ से भाग खड़े हुए और उस समय वहाँ अकेले कुमार कात्तिकेय ही रह गये थे ॥२१॥

पर्वतानां च सर्पाणां नागानां शाखिनां तथा ।
राजा चकार वृष्टिं च दुर्निवार्यां भयंकरीम् ॥२२
तद्वृष्टया प्रहतः स्कन्दो बभूव शिवनन्दनः ।
नीहारेण च सांद्रेण संवृतो भास्करो यथा ॥२३
नानाविधां स्वमायां च चकार मयदर्शिताम् ।

तां नाविदन् सुराः केऽपि गणाश्च मुनिसत्तम ।।२४
तदैव शंखचूडश्च महामायी महाबलः
शरेणैकेन दिव्येन धनुश्चिच्छेद तस्य वै ।।२५
बभंज तद्रथं दियं चिच्छेद रथपीडकान् ।
मयूरं जर्जरीभूतं दिव्यास्त्रेन चकार सा ।।२६
शक्ति चिक्षेप सूर्याभां तस्य वक्षसि घातिनीम् ।
मूर्च्छामवाप सहसा तत्प्रहारेण स क्षणम् ।।७
पुनश्चा चेतनां प्राप्त कार्तिक परवीरहा ।
रत्नेन्द्रसारनिर्माणमारुरोह स्ववाहनम् ।।२८
स्मृत्वा पादौ महेशस्य साम्बिकस्य च षण्मुखः ।
शस्त्रास्त्राणि गृहीत्वोव चकार रणमुल्वणम् ।।२९

शंखचूड ने पर्वत, सर्प, नाग, और वृक्षों की भी दुनिवारणीय भयानक वृष्टि देव सेना पर की ।२२। ऐसी भयंकर वर्षा से शिव पुत्र कार्त्तिकेय परम व्यथित एवं प्रताड़ित हुये। कुहरे के समय में भास्कर देव की भाँति उस समय दोनों महावीर दिखाई दे रहे थे ।२३। इस युद्ध में दानवेन्द्र ने मय दानव की बहुत सी माया प्रकट की जिसको देवता और शिव के गण कोई भी नहीं जान सके ।।२४।। उस समय महान् बलवान् अत्यन्त मायाधारी शंखचूड ने अपने एक बाण से स्कन्द के धनुष का छेदन कर दिया ।५। दानवेन्द्र ने कुमार के रथ को छिन्न--भिन्न करके वाहन मयूर को भी अपने दिव्य बाण से जर्जरित कर दिया ।।२६।। असुरराज ने सूर्य तुल्य एक घातक शक्ति के द्वारा स्कन्द के वक्षस्थल में ऐसा भयानक प्रहार किया कि क्षण मात्र के लिये वे मूर्छित हो गये ।२७। थोड़े ही समय के पश्चात् चेतना प्राप्त कर स्कन्द अपने महारत्न निर्मित वाहर पर अरूढ़ हो गये और उस समय कुमार ने अपने माता के सहित पिता श्रीशिव का ध्यान करते हुये शस्त्रास्त्र ग्रहण कर महाघोर संग्राम किया ।२८—२९।

सर्पाश्च पर्वताश्चैव वृक्षाश्च प्रस्तरास्तथा ।
सर्वांश्चिच्छेद कोपेन दिव्यास्त्रेण शिवात्मजः ।।३०

वह्नि निवारयामास पार्जन्येन शरेण ह।
रथं धनुश्च चिच्छेद शंखचूडस्य लीलया ॥३१
सन्नाहं सर्ववाहांश्च किरीटं मुकुटोज्वलम्।
वीरशब्दं चकारासौ जगर्ज च पुनः पुनः ॥३२
चिक्षेप शक्ति सूर्पाभा दानवेन्द्रस्य वक्षसि।
तत्प्रहारेण संप्राप मूर्च्छा दीर्घतमेन च ॥३३
महूर्तमात्रं तत्क्लेश विनीय स महाबलः।
चेतना प्राप्य चोत्तस्थौ जगर्ज हरिवर्चसः ॥३४
शक्त्या जघान तं चापि कार्तिकेयं महाबलम्।
स पपात महीपृष्ठेऽमोघां कुर्वन् विधिप्रदाम् ॥३५

दानवेन्द्र के चलाये हुए सर्प वृक्ष, पर्वत और प्रस्तर आदि को अपने दिव्य अस्त्र-शस्त्रों के द्वारा छेदन कर दिया ।३०। कुमार ने मेघास्त्र का प्रयोग कर असुरेन्द्र द्वारा प्रसारित अग्नि को शान्त शीतल कर दिया तथा लीला ही में शंखचूड के रथ और धनुष का छेदन कर दिया ।३१। कार्तिकेय ने असुरराज के कवच वाहन और निर्मल किरीट कुण्डल सबको काट कर गर्जना के साथ बार-बार वीरता भरी ध्वनि की ।३२। कुमार ने सूर्य के समान जाज्वल्यमान एक शक्ति के द्वारा शंखचूड की छाती में ऐसा प्रबल प्रहार किया कि वह बहुत समय तक बेहोश हो गया ।३३। महा बलवान् वह दैत्यराज थोड़ी देर में ही क्लेश का निवारण कर सचेत हो गया और तुरन्त फिर उठकर जोर से गर्जने लगा ॥३४॥ उसने स्वामी कार्तिकेय पर पुनः शक्ति का प्रहार किया तो कुमार ब्रह्माजी के वचन को सफल करने के लिए भूमि पर गिर गये ॥३५॥

काली गृहीत्वा तं क्रोडे निनाय शिवसान्निधौ।
ज्ञानेन तं शिवश्चापि जीवयामास लीलय ॥३६
ददौ बलमनंतं च समुत्तस्थो प्रतापवान्।
गमनाय मतिं चक्रे पुनस्तत्र शिवात्मजः ॥३७
एतस्मिन्नंतरे वीरो वीरभद्रो महाबल।
शंखचूडेन युयुधे समरे बलशालिना ॥३८

बवर्ष समरेऽस्त्राणि यानि यनि च दानवः ।
चिच्छेद लीलया वीरस्तानि तानि निजैः शरैः ॥३९
दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचे दानवेश्वरः ।
तानि चिच्छेद तं बाणैर्वीरभद्रः प्रतापवान् ॥४०
अथातीव च कोपोच्चै शंखचूडः प्रतापवान् ।
शक्त्या जघान रसि त चक पे पपात की ।४१
क्षणेन चेतनां प्राप्य समुत्तस्थौ गणेश्वरः ।
जग्राह च धनुर्भूयो वीरभद्रो गणाग्रणीः ॥४२
एतस्मिन्नतरे काली जगाम समरं पुनः ।
भक्षितं दानवान् स्वांश्च रक्षितुं कार्तिकेच्छयः ॥४३
वीरास्तामनुजग्श्च ते च नन्दीश्वरादयः ।
सर्वे देवाश्च गधर्वा यक्षा रक्षांसि पन्नगाः ॥४४
वाद्यभांडाश्च बहुशः शतशो मधुवाहकाः ।
पुनः समुद्यताश्चासन् वीरा उभयतोऽखिलाः ॥४५

उस समय महाकली ने उन्हें गोद में उठाकर शिव के समीप में पहुंचा दिया और भगवान् शंकर ने अपने ज्ञान के बल से उनको लीला से ही जीवित कर दिया ।३६। शिव ने कार्त्तिकेय को असीम बल का भी प्रदान किया इससे वे उठकर पुनः युद्ध-भूमि में जाने की इच्छा करने लगे ।३७। इस बीच में गणेश्वर वीरभद्र ने दैत्यराज से घोर युद्ध किया ।३८। उस समय युद्ध करते हुये दानवेश्वर ने जिन अस्त्रों की वर्षा की वीरभद्र ने उन सबको आसानी से ही काट गिराया ॥३९॥ तब शंखचूड को महान् क्रोध आया और उसने एक ऐसी शक्ति का प्रयोग किया कि वीरभद्र भी पृथिवी पर गिर गये । गणेश्वर ने चेतनायुक्त होकर हाथ में धनुष उठा लिया ।४०-४१। महाकाली पुनः आकर कार्तिकेय की रक्षा और दानवों के भक्षण की इच्छा प्रगट करने लगी ।४३।उसके साथ नन्दीश्वर आदि महावीर योधा,देव,गन्धर्व,यक्ष,राक्षस,और पन्नग थे,जोकि विविध वाद्य तथा मधु के सैकड़ों पात्र लिये हुये थे। फिर क्या था दोनों ही ओर के बलवान् योद्धा युद्ध करने के लिए प्रस्तुत हो गये ।४४-४५।

काली और शंखचूड़ में दिव्य अस्त्रों से युद्ध ॥

सा चा गत्वा हि संग्राम सिंहनाद चकार ह ।
देव्याश्चा तेन नादेन मूर्च्छामायुश्च दानवाः ।।१
अट्ट ट्टहासमशिव चकार च पुनः पुनः ।
तता पपौ च माध्वीकं ननर्त रणमूर्द्ध नि ।।२
उग्रदंट्रा चोग्रदंडा कोटवी च पपौ मधु ।
अन्याश्च देव्यस्तत्राजौ ननृतुर्मधु संपपुः ।।३
महान् कोलाहलो जातो गणदेवदले तदा ।
जहृषुर्बहुः गर्जंतः सर्वे सुरगणादयः ।।४
दृष्ट्वा कालीं शखचूडः शीघ्रमाजौ समापयौ ।
दानवाश्च भयं प्राप्ता गजा तेभ्योऽभय ददौ ।।५
काली चिक्षेपर्वाह्नि च प्रलयाग्निशिखोपमम् ।
राजा जघात त शीघ्रं वैष्णवांकितलीलया ।।६
नारायणास्त्रं सा देवी चिक्षेप तदुपर्यरम् ।
वृद्धि जगाम तच्छस्त्रं दृष्ट्वा वाम च दानवम् ।।७

सनत्कुमार जी ने कहा—उस समय भगवती काली ने युद्ध भूमि में पहुंचते ही बड़े जोर का सिंहनाद किया जिसे सुनते ही समस्त दानवों को मूर्च्छा हो गई ।१। देवी ने इस तरह कितनी ही बार भयंकर सिंहनाद किया और वह बार-बार मधु का पान करती हुई समर स्थल में नृत्य करने लगीं ।२। काली की भयोत्पादक बड़ी दाढ़ें थीं, उनसे सबको डराती हुई दण्ड हाथ में ग्रहण करके मदिरा पान कर रही थी और उसके साथ वाली अन्य अनेक देवियाँ भी पान तथा नर्तन करती थीं ।३। काली के वहाँ आजाने पर दोनों दलों में महान् कोलाहल मच गया तथा देवगण उस ध्वनि को सुनकर हर्षोल्लास से भर गये ।४। महाकाली को युद्ध के मैदान आई देखकर शीघ्र शंखचूड वहाँ आ गया और जो दानव भयभीत हो गये थे उन्हें अभय देने लगा ।५। काली देवी ने प्रलयकालीन उद्दीप्त अग्नि के तुल्य अग्नि शक्ति के द्वारा प्रहार किया किन्तु दानवेश्वर ने उसे वैष्णवास्त्र से तुरन्त ही शान्त कर दिया ।।६।।

इसके पश्चात् भगवती ने असुर पर नारायणास्त्र का प्रयोग किया जो कि दानव को देखकर बढ़ने लगा ।७।

तं दृष्ट्वा शंखचूडश्च प्रलयाग्निशिखोपमम् ।
पपात दडवद्भूमौ प्रणनाम पुनः पुनः ।।८
निवृत्तिं प्राप तच्छस्त्रं दृष्ट्वा नम्रं च दानवम् ।
ब्रह्मास्त्रमथ सा देवी चिक्षेप मंत्रपूर्वकम् ।।९
तं दृष्ट्वा प्रज्वलतं च प्रणम्य भुवि संस्थितः ।
ब्रह्मास्त्रेण दानवेन्द्रो विनिवारि चकार ह ।।१०
अथ क्रुद्धो दानवेन्द्रो धनुराकृष्य रहसा ।
चिक्षेप दिव्यान्यत्राणि देव्यै वै मंत्रपूर्वकम् ।।११
आहारं समरे चक्रे प्रसार्यं मुखमायतम् ।
जगर्ज साट्टहासं च दानवा भयमाययुः ।।१२
काल्यै चिक्षेप शक्तिं स शतयोजनमायतम् ।
देवी दिव्यास्त्रजालेन शतखंड चकार सा ।।१३
स च वैष्णवमस्त्रं च निक्षेप चंडिकोपरि ।
माहेश्वरेण काली च विनिबारं चकार सा ।।१४

शंखचूड इस अस्त्र को प्रलयकाल की अग्नि के समान देखकर भूमि पर गिर गया और उसे प्रणाम करने लगा ।८। वह अस्त्रराज दानव की ऐसी विनम्रता देखते ही निवृत्त हो गया । फिर देवी ने मन्त्रपूर्वक सविधि ब्रह्मास्त्र को छोड़ा ।९। इस अस्त्र को परम प्रज्वलित रूप में देखकर भूमि गत हो दानवेन्द्र ने उसे भी प्रणाम किया और उसके प्रहार से बच गया ।१२। इसके पश्चात् दानवेन्द्र क्रोधपूर्वक बहुत ही वेग के साथ धनुष लेकर मन्त्रों के साथ देवी पर बाणों की घोर वृष्टि करने लगा ।११। उस समय देवी ने अपना मुख फैला दिया और उसने प्रयोग में लाये गये सभी अस्त्रों का भक्षण कर लिया और अट्टहास करती गर्जना करने लगी । इसके दानव अत्यन्त भय कातर हो उठे ।।१२।। इसके अनन्तर दानवराज ने सौ योजन तक प्रभाव दिखाने वाली शक्ति

का प्रयोग काली पर किया तो देवी ने अपने परम दिव्य अस्त्रों से उस शक्ति को काटकर खण्ड-खण्ड कर दिया ।१३। इसके बाद शंखचूड ने वष्णवास्त्र छोडा जिसे देवी ने माहेश्वरास्त्र से हटा दिया ।।१४।।

एव चिरतरं युद्धमन्योन्यं सबभूत ह ।
प्रेक्षका अभवन् सर्वे देवाश्च दानवा अपि ।।१५
अथ क्रुद्धा महादेवी कालसमा रणे ।
जाग्राह मन्त्रपूतं च शरं पाशुपतं रुषा ।।१६
क्षेपात्पूर्वं तन्निषेद्धुं वाग्बभूवाशरीरिणी ।
न क्षिपास्त्रमिम देवि शंखचूडाय वै रुषा ।।१७
मृत्युः पाशुपतान्नास्त्यमोघादपि चंडिके ।
शखचूड़स्य वीरस्योपायमन्य विचारय ।।१८
इत्याकर्ण्य भद्रकाली न चिक्षेप तदस्त्रकम् ।
शतलक्षं दानवानां जघास लीलया क्षुधा ।१९
अत्तुं जगाम वेगेन शंखचूड भयंकरी ।
दिव्यास्त्रेण च रौद्रेण वारयामास दानवः ।।२०
अथ क्रुद्धो दानवेन्द्रः खड्गं चिक्षेप सत्वरम् ।
ग्रीष्मसूर्योपमं तीक्ष्णधारमत्य तभीकरम् ।।२१
सा काली तं समालोक्यायांतं प्रज्वलितं रुषां ।
प्रसार्य मुखमाहारं चक्रे तस्य च पश्यतः ।।२२

इस तरह इन दोनों का अधिक ाल तक युद्ध चलता रहा, सब देव और दानव पारस्परिक युद्ध देखने में तत्पर हो गये ।।१५।। उस समय भगवती को काल के समान महान् क्रोद्ध हुआ और उसने पाशुपतास्त्र को लेकर मन्त्रों द्वारा पवित्र किया ।१६। वह अस्त्र का जैसे ही प्रयोग करना चाहती थी कि वहाँ आकाशवाणी हुई—हे देवि ! शंखचूड़ पर इसका निक्षेप मत करो । यद्यपि यह महास्त्र निक्षेप ही अमोघ है किन्तु हे चण्डिके ! इसके द्वारा इसकी मृत्यु नहीं होगी । इसलिए इसके वध के लिये कोई दूसरा ही उपाय करो ।।१७-१८।। इस आकाशवाणी को सुन कर उस अस्त्र का प्रयोग नहीं किया और लीलाके साथ वैसे ही सौ लाख

दानवों का भक्षण कर डाला ।।१६।। इसके बाद में जब काली शंखचूड़ को भक्षण करने को भागी तो उसने इसके इस भयंकर वेग को दिव्य रौद्रास्त्र के द्वारा रोका । २० । तब दानवेश्वर ने ग्रीष्मकाल के सूर्य के सदृश्य परम तीक्ष्ण धार वाले खग का देवी पर क्रोध के साथ प्रहार किया ।२१। काली ने उस प्रज्वलित खग को अपना मुख फैलाकर भक्षण कर डाला ।२२।

दिव्यान्यस्त्राणि चान्यानि चिच्छेद दानवेश्वरः ।
प्राप्तानि पूर्वतश्चक्रे शतखंडानि तानि च ।२३
पुनरत्त महादेवी वेगतस्तं जगाह ह ।
सर्वसिद्धेश्वरः श्रीमानंतर्धानं चकार सः ।२४
वेगेन मुष्टिना काली तमदृष्ट्वा च दानवम् ।
बभंज चरथं तस्य जघान किल सारथिम् ।।२५
अथागत्य द्रुत मायी चक्रं चिक्षेप वेगतः ।
भद्रकाल्यै शंखचूडः प्रलयाग्निशिखोपमम् ।।२६
सा देवी तं तदा चक्रं वामहस्तेन लीलया ।
जग्राह स्वमुखेनैवाहार चक्रे रुषाद्रुतम् ।।२७
मुष्ट्या जघानं तं देवी महा कोपेन वेगतः ।
बभ्राम दानवेन्द्रोऽपि क्षणं मूर्च्छामवाप सः ।।२८
क्षणेन चेतनां प्राप्त स चोत्तस्थौ प्रतापवान् ।
न चक्रे बाहुयुद्धं च मातृबुद्ध्या तया सह ।२९

इस तरह दानवराज ने अनेक उत्तम से उत्तम अस्त्रों का काली पर प्रयोग किया किन्तु उसने सबको काटकर खण्ड-खण्ड कर दिया ।।२३।। जिस समय भगवती शंखचूड़ को हीं भक्षण कर डालने के लिये वेग से दौड़ी तो सर्व सिद्धों का स्वामी दानवेश्वर अन्तर्धान हो गया ।२४। जब काली ने शंखचूड़ को वहाँ कहीं नहीं देखा तो उसने बड़े जोर के साथ मुष्टि मारकर उसका रथ और सारथी का नाश कर दिया ।२५। इसके बाद फिर उस माया से भरे हुए दानवेश्वर ने वहाँ शीघ्र ही आकर देवी पर चक्र का आघात किया जो कि प्रलय की अग्नि के तुल्य भयंकर था

।२६। भगवती ने उस भी बड़ी आसानी से बाँये हाथ से पकड़कर क्रोध पूर्वक खा लिया । २७ । इसके अनन्तर वहुत कोप और अत्यन्त वेग से काली ने उप शंखचूड़ पर मुष्टि का प्रहार किया जिससे वह घूम गया और क्षणभर को उसे मूर्च्छा हो गई ।२८। थोड़ी ही देर के बाद मूर्च्छा से उठ बैठा किन्तु चण्डिका को मातृ-भाव से देखकर उससे उसने बाहु युद्ध करना उचित नहीं समझा ॥ ६-॥

गृहीत्वा दानवं देवी भ्रामयित्वा पुनः पुनः ।
उर्ध्वं च प्रापयामास महाकोपेन वेगतः ॥३०
उत्पपात च वेगेन शंखचूडः प्रतापवान् ।
निपत्य च समुत्तस्थौ प्रणम्य भद्रकालिकाम् ॥३१
रत्नेन्द्रपारनिर्माणविमानं सुमनोहरम् ।
आरुरोह स हृष्टात्मा न भ्रान्तोऽपि महारणे ॥३२
दानवानां हि क्षतजं सा पपौ कालिका क्षुधा ।
एतस्मिन्नतरे तत्र वाग्बभूवाशरीरिणि ॥३३
लक्षं च दानवेन्द्राणमशिष्टं रणेऽधुना ।
उद्धत गुञ्जतां सार्द्धं ततस्त्व भुंक्ष्व चेश्वरि ।३४
संग्रामे दानवेन्द्रं च हतुं न कुरु मानसम् ।
अवध्योऽयं शंखचूडस्तव देवीति निश्चयम् ॥३५
तच्छ्रुत्वा वचनं देवो निःसृत व्योमंमडलाद् ।
दानवानां बहूनां च मांसं च रुधिरं तथा ॥३६
भुक्त्वा पीत्वा भद्रकाली शंकरांतिकमाययौ ।
उवाच रणवृतांत प्रौर्वापर्येण सकनम् ॥३७

इसके पश्चात् भगवती ने उसे पकड़कर अनेक बार चारों ओर घुमाते हुए क्रोध पूर्वक बड़े वेग से ऊपर की ओर फेंक दिया ॥ ३० ॥ प्रताप वाला शंखचड वेगपूर्वक ऊपर की ओर कूद गया और पुनः नीचे आकर भद्रकाली को प्रणाम करते हुए युद्ध के लिये प्रस्तुत हो गया ॥ ३१ ॥ उत्तम रत्न रचित विमान पर आरूढ़ होकर बिना किसी भ्रान्ति के परम प्रसन्नता से संग्राम के लिए तैयार हो गया ॥ ३२॥ इस ओर काली देवी

दानवों के रक्त का पान कर रही थी उस समय पुनः आकाश से वाणी सुनाई दी हे चण्डिके ! अभी समर भूमि में एक लाख दानवों का रक्त शेष रह गया है। ये ही बड़े उद्दत भी हैं। अतः हे ईश्वरि ! इनको तुम शीघ्रातिशीघ्र भक्षण कर डालो।३३-३४। हे देवि ! इस संग्राम में शंखचूड़ के वध करने का विचार ही त्याग दो। यह तुम्हारे द्वारा वध नहीं किये जाने वाला है इसे निश्चय रूप से समझ लेना चाहिए ॥३५॥ ऐसा वचन सुनकर देवी ने अन्तरिक्ष के मण्डल से बहुत से असुरों का रक्त तथा मांस निकल कर आते हुए देखा ॥३६॥ भगवती ने सानन्द उसका भक्षण एवं पान किया और भगवान् शंकर के पास उपस्थित होकर समस्त साद्यन्त युद्ध का समाचार उन्हें सुना दिया ॥३७

॥ शिव और शंखचूड़ का तुमुल संग्राम ॥

श्रुत्वा काल्युक्तमीशानो किं चकार किमुक्तवान् ।
तत्त्व वद महाप्राज्ञ परं कौतूहलं मम ॥१
काल्युक्तं वचन श्रुत्वा शंकरः परमेश्वरः ।
महालीलाकारः शंभुर्जहासाश्वासयंश्च ताम् ॥२
व्योमवाणी समाकर्ण्य तत्त्वज्ञानविशारदः ।
ययौ स्वयं च समरे स्वगणैः सह शंकरः ॥३
महावृषभमारूढो वीरभद्रादिसंयुतः ।
भैरवैः क्षेत्रपालैश्च स्वसमानैः समन्वित ।
रणं प्राप्तो महेशश्च वीररूपं विधाय च ।
विरराजाधिकं तत्र रुद्रो मूर्त इवांतकः ॥५
शखचूडः शिव दृष्ट्वा विमानादवरुह्य सः ।
ननाम परया भक्त्या शिरसा दण्डवद्भुवि ॥६
तं प्रणम्य तु योगेन विमानमारुरोह सः ।
तूर्णं चकार तन्नाहं धनुजग्राह सेषुकम् ॥७

व्यासजी ने कहा हे महाप्राज्ञ ! हे सनत्कुमार ! भद्रकाली के द्वारा संग्राम का वृत्तान्त सुनकर फिर भगवान शंकर ने क्या कहा तथा क्या

किया यह बताइये। मुझे मन में इसके जानने का माहन् कौतूहल हो रहा है।१। सनत्कुमार ने कहा—शंकरजी काली की कही हुई सारी कथा सुनकर हँसने लगे और उसे भली-भाँति लीलापूर्वक समझाया।२। शिव, तत्वों के ज्ञान के महापण्डित हैं। उन्होंने आकाशवाणी की बातें सुनते ही अपने गणों के सहित स्वय युद्ध भूमि में जाने की प्रवृत्ति प्रकट की।३। शिव ने वृषभ पर सवारी की और वीरभद्र आदि गणों से संयुक्त हुए तथा अपने ही तुल्य भैरव और क्षेत्रपाल को साथ में लेलिया। अपना महान वीर के समान स्वरूप बना कर युद्धस्थल में पहुंच गये। उस समय भवगान परम शान्त स्वरूप वाले शिव काल के सदृश भङ्कर प्रतीत होकर विराजमान थे।४-५। शिवजी को वहां आये हुए देखते ही शंखचूड़ विमान से नीचे उतर पड़ा और उससे परम श्रद्धा भक्ति की भावना से चरणों में मस्तक रखकर शिव को दण्डवत्प्रणाम किया।६। शंकर को प्रणाम करने के अनन्तर वह योग-मार्ग से विमान पर चढ़ गया और कवच धारण कर उसने धनुष-बाण हाथ में ले लिया।७।

शिवदानवयोर्युद्धं शतमब्दं बभूव ह।
बाणवर्षमिवाग्रं तद्वर्षतोर्मोघयोस्तदा ॥८
शंखचूड़ो महावीरा शरांश्चिक्षेप दारुणान्।
चिच्छेद शंकरस्तान्वै लीलया स्वशरोत्करैः ॥६
ऽदंगेषु च शस्त्रौघैस्ताडयामास कोपतः।
महारुद्रो विरूपाक्षो दुष्टदण्डः सतां गति ॥१०
दानवो निशितं खड्ग चर्म चादाय वेगवान्।
वृष जघान शिरसि शिवस्य वरवाहनम् ॥११
ताडिते वाहने रुद्रस्तं क्षुरप्रेण लीलया।
खड्गं विच्छेद तस्याशु चर्म चापि महोज्ज्वलम् ॥१२
छिन्नेऽसौ चर्माणि तदा शक्ति चिक्षेप सोऽसुरः।
द्विधा चक्रे स्वबाणेन हरस्तां समुखागताम् ॥१३
कोपाध्मातः शंखचूडः चक्रं चिक्षेप दानवः।
मुष्टिपातेन तच्चाप्यकूर्णयत्सहसा हरः ॥१४

सौ वर्ष तक निरन्तर शिव और शंखचूड़ का संग्राम चलता रहा और बराबर मेघों की अविरल धारा के सदृश बाणों की वृष्टि होती रही।८। यद्यपि यज्ञदानव एवं श्रेष्ठ वीर शंखचूड़ ने बहुत दारुण बाणों की वर्षा शिव पर की किन्तु शंकर ने लीला ही में अपने बाणों द्वारा सभी का खण्डन कर दिया।६। दुष्टों की दण्ड तथा सज्जनों को उद्धार देने वाले विरूपाक्ष शंकर ने बड़े ही कोप से दानव के अङ्गों पर शस्त्रों का प्रहार किया।१०। उसी समय दानवेन्द्र ने बड़ी तेजी से एक तेज धार वाले खड्ग से शंकर के वाहन के शिर पर आघात किया।११। दानव के प्रहार करते ही शिव ने तीक्ष्ण नौंक वाले बाण से उसकी ढाल तथा तलवार का छेदन कर दिया।१२। तलवार के छिन्न होने के बाद उसने शक्ति से प्रहार करना आरम्भ किया तो महादेव ने बाँण से उसके भी खण्ड-खण्ड कर दिये।१३। दानव के चक्र को मुष्टि के प्रहार से नष्ट भ्रष्ट कर उससे प्रहार के होने को निरर्थक कर दिया।१४।

गदामाविध्य तरसा सचिक्षेप हरं प्रति।
शंभुना साऽपिसहसा भिन्ना भस्मत्वमागता ॥१५
तता परशुमादाय हस्तेन दानवेश्वरः।
धावति स्म हरं वेगाच्छंखचुडः क्रुधाकुलः ॥१६
समाहृत्य स्वबाणैरपतयत शंङ्करः।
द्रुतं परशुहस्तं तं भूतले लीलयाऽसुरम् ॥१७
ततः क्षणेन संप्राप्य संज्ञामारुह्य सद्रथम्।
धृतदिव्यायुधशरो बभौ व्याप्याखिलं नभः ॥१८
आयातं त निरीक्ष्यैव डमरूध्वनिमादरात्।
चकार ज्यारवं चापि धनुषो दुःसहं हरः ॥१६
पूरयामास ककुभः श्रृङ्गनादेन च प्रभुः।
स्वयं जगर्ज गिरिशस्त्रासयन्नसुरांस्तदा ॥२०
त्याजितेभमहागवैर्महानादैर्वृषेश्वरः।
पूरयामास सहसा खं गां वसुदिशस्तथा ॥२१

शंखचूड़ ने प्रहार करने को अपनी गदा जब उठाई तो उसको चलाते

ही शम्भु ने बाण द्वारा तोड़ फोड़कर चूर्ण कर दिया ।१५। इन सब आयुधों के नष्ट हो जाने पर वह परशु लेकर शिव पर प्रहार करने को भागा तो महेश्वर ने उसके हाथ सहित काट कर भूमि में निपतित कर दिया ।१६-१६। थोड़े ही समय के पश्चात् वह दैत्य सचेतन होकर रथारूढ़ हुआ और दिव्यास्त्र-शस्त्र से सुसज्जित हो आकाश में व्यापक रूप से संस्थित हो गया ।१८। इस रीति से पुनः आते हुए दानव को देखकर भगवान शम्भु ने अपने धनुष की प्रत्यञ्चा और डमरू का भीषण शब्द किया ।१६। शंकर के डमरू की ध्वनि से उस समय समस्त दिशा-विदिशायें भर गईं और दैत्यों को भयपूर्ण कर शिव गर्जना करने लगे ।२०। शिव के गर्वपूर्ण इस महानाद से तथा वृषेन्द्र की उच्च ध्वनि से समस्त भूमण्डल और आकाश गूंज उठा ।२१।

महाकालः समुत्पत्य ताडयग्दां तथा नभः ।
कराभ्यां तन्निादेन क्षिप्ता आसन्पुरा रवाः ॥२२
अट्टाट्टहासमशिवं क्षेत्रपालश्चकार ह ।
भैरवोऽपि महानादं स चकार महारवे ॥२३
महाकोलाहलो जातो रणमध्ये भयङ्करः ।
वीरशब्दो बभूवाथ गणमध्ये सम ततः ॥२४
सत्रेसुर्दानवाः सर्वेः तैः शब्दैर्भयदैः खरैः ।
चुकोपातीव तच्छ्रुत्वा दानवेन्द्रो महाबलः ॥२५
तिष्ठ तिष्ठेति दुष्टात्मन्व्याजहार यदा हरः ।
देवैर्गणैश्च तैः शीघ्रमुक्तं जय जयेति च ॥२६
अथागत्य स दंभस्य तनयः सुप्रतापवान् ।
शक्ति चिक्षेप रुद्राय ज्वालाभालातिभीषणाम् ॥२७
वह्निकूटप्रभाऽऽयांता क्षेत्रपालेन सत्वरम् ।
निरस्तागत्य साजौ वै मुखोत्पन्नमहोल्कया ॥२८

उस समय महा कालेश्वर ने भूमि एवं अन्तरिक्ष को अपने दोनों हाथों द्वारा प्रताड़ित किया । उससे भयंकर शब्द हुआ जिसे सुनकर सब असुर एकदम बेचैन हो गये ।२२। इसी रीति से क्षेत्रपाल तथा भैरव

ने भी उस युद्धस्थल में महाशब्द किया था।२३। तब तो समस्त युद्ध के मैदान में चारों ओर महान कोलाहल हो उठा और गणों के परिकर में सर्वत्र वीर-शब्दों की ध्वनि सुनाई देने लगी।२४। उस समय भय देने वाले परम तीक्ष्ण शब्दों को सुनकर समस्त दैत्यवृन्द व्याकुल हो गये और महा बलवान दानेश्वर उन शब्दों को सुनकर अत्यन्त क्रोधित हो गया।२५। तब शिवजी ने उससे कहा—'अरे दुरात्मा ! यहीं खड़ा रह, भाग कर मत जावे' इतना शिव के कहने पर देवगण और असुरों के समुदाय ने जय-जयकार का उच्चारण किया।२६। उसके अनन्तर प्रतापी दम्भ के पुत्र ने वहां आकर ज्वाला की माला से युक्त एक भीषण शक्ति का प्रहार रुद्रदेव के ऊपर किया।२७। अग्नि की पूर्ण प्रभा के तुल्य उस छोड़ी हुई शक्ति को आते हुए देखकर प्रतापी क्षेत्रपाल ने आगे की ओर बढ़ते हुए अपने मुख की ज्वाला से नष्ट कर दिया।२८।

पुनः प्रवृते युद्धं शिवदानवयोर्महत् ।
चपके धरणी द्यौश्च सनगाब्धिजलाशया ॥२९
दांभिमुक्ताञ्छरान्शंभुः शरांस्तत्प्रहितान्स च ।
सहस्रशः शरैरुग्रैश्चिच्छेद शतशस्तदा ॥३०
ततः शंभुः त्रिशुलेन संक्रुद्धस्तं जघान ह ।
तत्प्रहारमसह्याशु कौ पपात स मूर्छितः ॥३१
ततः क्षणेन संप्राप संज्ञां स च तदाऽसुरः ।
आजघान शरैः रुद्रं तान्सर्वानात्ताकार्मुकः ॥३२
बाहूनामयुत कृत्वा छादयामास शंकरम् ।
चक्रायुतेन सहसा शंखचूडः प्रतापवान् ॥३३
ततो दुर्गामतिः क्रुद्धो रुद्रो दुर्गतिनाशनः ।
तानि चक्राणि चिच्छद स्वशरैस्तमैद्रुतम् ॥३४
ततो वेगेन सहसा गदामादाय दानवः ।
अभ्यधावत वै हतु वहू सेनावृतो हरम् ॥३५
प्रदां चिच्छेद तस्याश्वपाततः सोऽसिना हरः ।
शिताधारेण संक्रुद्धो दुष्टगर्वापहारकः ॥३६

इसके पश्चात् भी दानवेश्वर और भगवान शम्भु का महान घोर संग्राम हुआ। उस समय स्वर्ग-भूमि-पर्वत और समुद्र सब कम्पित हो उठे।२६। दम्भ के पुत्र द्वारा छोड़े गये बाणों को शम्भु ने अपनी परमोग्र बाण वृष्टि से छिन्न-भिन्न कर दिया।३०। इसके अनन्तर शिव ने अत्यन्त क्रोधावेश में आकर असुरेन्द्र पर अपने त्रिशूल का प्रहार किया जिससेवह असह्य वेदना होने के कारण मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा।३१। मूर्च्छा से जगकर एक क्षण के बाद ही वह असुर धनुष पर चढ़ा-चढ़ाकर बहुत ही तीक्ष्ण बाणों की वर्षा शिव पर करने लगा।२। शंखचूड़ ने अपनी दश सहस्र भुजाओं से शिव को आच्छादि कर एक ही बार में एक सहस्र चक्र छोड़ दिए थे।३३। कठिन से कठिन दुर्गति के नाशक दुर्गा के पति भगवान शंकर ने उस पर महान क्रोधित होते हुए अपने बाणों से उन समस्त चक्रों का छेदन कर दिया।३४। इसके अनन्तर दानवेश्वर अपनी बहुत बड़ी सेना के साथ गदा लेकर बहुत ही वेग से शम्भु को मारने के लिए दौड़ा तो शिव ने अपने तीक्ष्णतम खंग से उसकी गदा को काट कर फेंक दिया और उस दुरात्मा दैत्य के बढ़े हुए गर्व को चूर-चूर कर दिया।३५-३६।

छिन्नायां स्वर्गदायां च चुकोपातीवदानवः।
शूलं जग्राह तेजस्वी परेषां दुःसहं ज्वलत्॥३७
सुदर्शनं शूलहस्तमायांतं दानवेश्वरम्।
स्वत्रिशूलेन विव्याध हृदि तं वेगतो हरः॥३८
त्रिशूलभिन्नहृदयानिष्क्रांतः पुरुषः परः।
तिष्ठ तिष्ठेत्ति चोवाच शंखचूडस्य वीर्यवान्॥३९
निष्क्रामतो हि तस्याशु प्रहस्य स्वनवत्ततः।
चिच्छेद च शिरो भीममसिना सोऽपतद्भुवि॥४०
ततः काली चखादोग्रं दंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान्।
असुरांस्तान् क्रोधात् प्रसार्य स्वमुखं तदा॥४१
क्षेत्रपालश्चखादान्यान्बहून्दैत्याक्रुधाकुलः।
केचिन्नेशुर्भैरवास्त्रच्छिन्ना भिन्नास्तथाऽपरे॥४२

वीरभद्रोऽपरान्वीरान्बहूम् क्रोधादनाशयत् ।
नंदीश्वरो जघानान्यन्बहूनमर्दकान् ।।४३
एवं वहुगणा वीरस्तदा संनह्य कोपतः ।
व्यनाशन्बहून्दैत्यानसुरान् देवमर्दकान् ।।४४
इत्थं बहुतरं तत्र यस्य सैन्यं ननाश ततः ।
विद्रुताश्चापरे वीरा बहवो भयकातराः ।।४५

गदा के कट जाने से दानवेश्वर को बहुत भारी क्रोध और शत्रुओं को भय देने वाला प्रज्ज्वलित शूल प्रहार करने के लिए उसने उठाया ।३७। सुदर्शन शूल को हाथ में ग्रहण कर आते हुए दानवेन्द्र को देखकर शिव ने वेगपूर्वक अपने शूल का आघात उसके हृदय में कर दिया ।३८। जिस समय त्रिशूल से उसका हृदय विदीर्ण हुआ तो उसमें से एक अन्य पुरुष निकल पड़ा । पराक्रमी शंखचूड़ ने उससे कहा-तुम यहां ही स्थित रहो, किन्तु जब वीर्यशाली शंखचूड़ का निष्क्रमण हो गया तो शब्द करने के साथ ही उसके मस्तक का भयावह खंगके द्वारा छेदन कर दिया गया और फिर वह भूमि पर गिर गया ।३९-४०। उसी समय महाकली ने अपना मुख खोलकर भीषण दाढ़ों से उसको चबा डाला और साथ ही अन्य अनेक असुरों का भी भक्षण कर लिया ।४१। इधर क्षेत्रपाल ने क्रोधपूर्वक बहुतों का भक्षण किया तो बहुत से भैरव के अस्त्र से छिन्न भिन्न होकर नाशवान हो गये ।४२। इसी तरह गणराज वीरभद्र तथा नन्दीश्वर ने क्रोधित होकर अनेक वीर असुरों का नाश कर दिया ।४३। उस समय उस सेना के महान् वीर अत्यन्त क्रोध कर देवों से द्रोह करने वाले असुरों के नाश करने में संलग्न हो गए ।४४। ऐसे संहार से उस दैत्यराज की सेना के बहुत से सैनिक नष्ट भ्रष्ट हो गए और बचे खुचे भयभीत होकर वहां से भाग गये ।४५।

।। शंखचूड़ का वध ।।

स्वबलं निहतं दृष्ट्वा मुख्यं बहुतरं ततः ।
तथा वीरान् प्राणसमान् चुकोपातीव दानवः ।।१
उवाच वचनं शंभु तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव ।

किमेतैर्निहतैर्मेऽद्य संमुखे समरं कुरु ॥२
इत्युक्त्वा दानवेन्द्रोऽसौ सन्नद्धः समरे मुने ।
अगच्चन्निश्चयं कृत्वाऽभिमुखं शंकरस्य च ॥३
दिव्यान्यस्त्राणि चिक्षेप महारुद्राय दानवः ।
चकार शरवृष्टिंश्च तोयवर्षि यथा घनः ॥४
मायाश्चकार विविधा अदृश्या भयदर्शिताः ।
अप्रतर्क्या सरगणैर्निखिलैरपि सत्तमैः ॥५
तां दृष्ट्वा शङ्करस्तत्र चिक्षेपास्त्रं च लीलया ।
माहेश्वरं महादिव्यं सर्वमायाविनाशनम् ॥६
तेजजा तस्य तन्माया नष्टाश्चासन् द्रुतं तदा ।
दिव्यान्यस्त्राणि तत्रैव निस्तेजांस्य भवन्नपि ॥७

सनत्कुमारजी ने कहा—इस भाँति दानवेन्द्र ने अपनी प्रमुख सेना को नष्ट-भ्रष्ट होते हुए देखकर तथा प्राणों के तुल्य प्रिय वीरों के संहार का ध्यान करके बहुत भारी क्रोध किया ।१। उस समय उसने भगवान शंकर के समक्ष में आकर उनसे कहा—मैं यहां बिल्कुल तैयार होकर आया हूँ, आप अच्छी तरह सम्हल जावें । इन बिचारे सैनिकों को मार गिराने से क्या लाभ होगा, अब मुझ से युद्ध करें ।२। हे मुनीन्द्र ! इतना कहकर वह दैत्यराज युद्ध करने का पूरा निश्चय करके शकर के सामने उपस्थित हो गया ।३। दानवेन्द्र ने अपने बहुत से उत्तम अस्त्र शस्त्रों का उस समय महारुद्र पर प्रहार किया । जैसे मेघ जल धारा की वृष्टि किया करता है उसी के समान दानवेश्वर ने बाणों की वृष्टि रुद्रदेव पर की ।४। उस समय वह अदृश्य होकर अपनी दानवी माया फैलाते हुए अनेक प्रकार का भय दिखाने लगा जिसे देव-वृन्द में यथार्थ रूप से कोई भी न समझ पाया ।५। प्रभु शंकर उसके इस माया जाल को देखकर लीलापूर्वक अपने अस्त्रों से उस पर प्रहार करने लगे और उसकी माया का नाश करने के लिए महान दिव्य माहेश्वर अस्त्र का प्रयोग किया ।६। माहेश्वरास्त्र के दिव्य तेज प्रभाव से उसकी सारी माया नष्ट हो गई और समस्त अस्त्र तुरन्त तेजहीन हो गये ।७।

अथ युद्धे महेशानस्तद्बधाय महाबल: ।
शूलं जग्राह सहसा दुर्निवार्य सुतेजसाम् ।।८
तच्छूलं विजयं नाम शङ्करस्य परात्मन: ।
संचकाशे दिश: सर्वा रोदसीं संप्रकाशयत ।।९
कोटिमध्याह्नमार्तण्डप्रलयाग्निशिखोपमम् ।
दुर्निवार्यं च दुर्द्धर्षमव्यर्थं वैरिघातकम् ।।१०
तेजसां चक्रमत्युग्रं सर्वशस्त्रास्त्रनायकम् ।
सुरसुराणां सर्वेषां दु:सहं च भयंकरम् ।।११
संहर्तुं सर्वब्रह्माण्डमवलंब्य च लीलया ।
संस्थितं परम तत्र एकत्रीभूय विज्ज्वलत् ।।१२
धनु: सहस्रं दीर्घेण प्रस्थेन शतहस्वकम् ।
जीवब्रह्मस्वरूपं च नित्यरूपमनिर्तिम ।।१३
विभ्रमद् व्योम्नि तच्छूल शंचचूडोपरि क्षणात् ।
चकार भस्म तच्छीघ्रं निपत्य शिवशांसनात् ।।१४
अथ शूलं महेशस्य द्रुतमावृतमावृत्य शंकरम् ।
ययौ विहायसा विद्र मनोयायि स्वकार्यकृत् ।।१५

उसी समय महाबलशाली महेश्वर भगवान ने दानवेश्वर के वध करने के लिए बहुत से तेजस्वियों के द्वारा भी दुर्निवार्य शूल को ग्रहण किया ।८। वह परमेश्वर शंकर का विजय नाम वाला शूल समस्त दिशाओं में और द्युलोक में अपना अतुल प्रकाश प्रसारित करता हुआ मध्याह्न समय के करोड़ों सूर्य तथा प्रलय काल की अग्नि-शिखा के सदृश निवारण न करने के योग्य, असह्य एवं अमोघ रूप वाला, शत्रुओं के नाश करने वाला था ।९-१०। वह समस्त शस्त्रास्त्रों का साधक, तेज समूह के चक्र के स्वरूप वाला तथा सुरासुर सभी के लिये अति असह्य एव अत्यन्त भयंकर था ।११। वह तेजयुक्त अस्त्र लीला से ही इस संपूर्ण ब्रह्माण्ड को नष्ट कर देने की शक्ति वाला एवं समस्त प्रचण्डता का एक प्रज्ज्वलित स्वरूप था ।१२। वह शूल एक हजार धनुष के बराबर लम्बा और सौ हाथ चौड़ा नित्य रूप वाले जीव-ब्रह्मके स्वरूप जैसा था जिसका

निर्माण किसी के द्वारा नहीं किया गया है।१३। ऐसा दिव्य अस्त्र एक क्षण में ही शिव के हाथ से छूटकर आकाश भ्रमण करते हुए शिवाज्ञा को पाकर अविलम्ब ही शंखचूड़ के मस्तक पर गिर गया और तुरन्त ही उसने दानवराज शंखचूड़ को भस्मीभूत बना दिया।१४। हे मुने! वह दिव्यास्त्र त्रिशूल शीघ्र ही दैत्य को मार आकाश मार्ग से मनोवेग की तरह शिव के समीप में आ गया।१५।

नेदुर्दुदुभय स्वर्गे जगर्गंदर्वकिन्नराः।
तुष्टुवमुंनयो देवा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥१६
बभूव पुष्वृष्ठिश्च शिवस्योपरि संततम्।
प्रशशंस हरिर्ब्रह्मा शक्र्या मुनयस्तथा ॥१६
शंखचूड़ो दानवेन्द्रः शिवस्य कृपया तदा।
शापमुक्तो बभवार्थ पूर्वरूपमवाप ह ॥१८
अस्थिभिः शंखचूढस्य शंखजातिर्बभुव ह।
प्रशस्तं शंखतोयं च सर्वेषां शंकरं विना ॥१९
विशेषेण हरेर्लक्ष्म्याः शंखतोयं महत्प्रियम्।
संबंधिनां च तस्यापि न हरस्य महामुने ॥२०
तमित्थं शङ्करो हत्वा शिवलोकं जगाम सः।
सुप्रहृष्टो वृषारूढ़ः सोमः स्कन्दगणैर्वृमः ॥२१

उस समय प्रसन्नता से स्वर्ग में दुन्दुभियां बजने लगीं, किन्नर और गन्धर्व गायन करने लगे, अप्सरायें आनन्द से नर्तन करने लगीं और समस्त देवगण तथा मुनिवृन्द को अत्यन्त हर्षोंल्लास हुआ।१६। भगवान शिव पर पुष्प वर्षा हुई और ब्रह्मा, इन्द्रादि देव तथा सभी मुनिगण शंकर की प्रशंसा करने लगे।१७। दानवराज शंखचूड़ भगवान शंकर की कृपा से शाप विमुक्त होकर अपने पहिले स्वरूप में स्थित हो गया।१८। उस शंखचूड़ की अस्थियों से शंख जातियों का उद्भव हुआ। यह शंख का जल अन्यत्र सभी जगह तो प्रशस्त माना जाता है किन्तु शंकर पर नहीं चढ़ाया जाता है।१९। महालक्ष्मी और विष्णु को इस शंख का जल विशेष रूप से प्रिय होता है। इनसे संबन्धित देवादि को भी प्यारा

लगता है, किन्तु केवल एक शंकर ही ऐसे हैं जिन्हें यह प्रिय नहीं है ।२०। इस तरह शिव उस दैत्यराज का वध कर वृष वाहन पर आरूढ़ हो उमादेवी, कुमार स्कन्द और गणों के सहित परम प्रसन्न होते हुए शिवलोक को चले गये ।२१।

हरिर्जगाम बैकुंठं कृष्णः स्वस्थो बभूव ह ।
सुराः स्वविषयं प्रापुः परमानन्दसंयुताः ॥२२
जगत्स्वास्थ्यमतीवाप सर्वं निर्विघ्नमाप कम् ।
निर्मलं चाभवद्व्योम क्षितिः सर्वा सुमंगला ॥२३
इति प्रोक्तं महेशस्य चरितं प्रमुदावहम् ।
सर्वदुःखहरं श्रीदं सर्वकामप्रपूरकम् ॥२४
धन्य यशस्यमायुष्यं सर्वविघ्ननिवारणम् ।
भुक्तिदं मुक्तिदं चैव सर्वकामफलप्रदम् ॥२५
य इदं श्रणुयान्नित्य चरितं शशिमौलिनः ।
श्रावयेद्वा पठेद्वापि पाठयेद्वा सुधीर्नरः ॥२६
धन धान्यं सुतं सौख्यं लभेतात्र न शंशयः ।
सर्वान्कामानवाप्नोति शिवक्ति विशेषतः ॥२७
इदमाख्यानमतुल सर्वोपद्रवनाशनम् ।
पपमज्ञानजनन शिवभक्तिविवर्द्धनम् ॥२८
ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी क्षत्रियो विजयी भवेत् ।
धनाढ्यो वैश्यजः शूद्रः श्रृण्वन् सत्तमतामियात् ॥२९

भगवान अपने बैकुण्ठ में चले गये, कृष्ण भी स्वस्थ हो गये और सभी देवता अपने अपने स्थानों को चले गये ।२२। इसके संहार होने जगत् में पूर्ण स्वस्थता हो गई और सर्वतोभाव से विघ्नों का निवारण होगया, आकाश स्वच्छ हो गया और पृथ्वी मंगलमयी बन गई ।३। मैंने यह परम पावन भगवान शंकर के चरित्र का वर्णन किया है । यह समस्त दुःखों का हर्ता और परम सुख-सौभाग्य का देने वाला है । इसके सुनने तथा पढ़ने से लक्ष्मी की प्राप्ति और सभी कामनाओं की पूर्ति होती है ।२४। इससे धन और यश का लाभ होता है और यह समस्त विघ्न

बाधाओं को हटाने वाला है। भुक्ति और मुक्ति दोनों ही को यह देता है तथा मन की सब इच्छाओं को पूर्ण कर देता है।२५। जो भी कोई व्यक्ति इसको नित्य सुनता है या सुनाता है तथा कोई बुद्धिमान् स्वयं पढ़ता-पढ़ाता है यह धन धान्य, सुख-समृद्धि और सन्तान को अवश्य ही प्राप्त कर लेता है। वह निस्सन्देह समस्त मनोरथों के साथ शिवकी भक्ति को भी विशेष रूप से प्राप्ति कर लेता है।२६-२७। यह एक अनुपम आख्यान है। इससे सभी उपद्रवों का नाश होकर परम ज्ञान का तथा शिव भक्ति की अति वृद्धि का लाभ होता है।२८। विप्र ब्रह्मतेज वाला, क्षत्रिय विजय लाभ से युक्त, वैश्य सम्पत्तिशाली और शूद्र इसके सुनने मात्र से श्रेष्ठ हो जाता है।२९।



शतरुद्र–संहिता

॥ शिवजी की आठ मूर्तियों का वर्णन ॥

शृणु तात महेशस्यावतारान्परमान्प्रभो।
सर्वकार्यकरांल्लोके सर्वस्य सुखदान्मुने ॥१
तस्य शंभोः परेशस्म मूर्त्यष्टकमय जगत्।
तास्मन्व्याप्य स्थितं विश्वं सूत्रे मणिगणा इव ॥२
शर्वो भवस्तथा रुद्र उग्रोभीमः पशोः पति।
ईशानश्च महादेवो मूर्तयश्चाष्टविश्रुताः ॥३
भूम्यंभोऽग्निमरुद्व्योमक्षेत्रज्ञार्कनिशाकराः।
अधिष्टिताष्टश्च शर्वाद्यैरष्टरुपै शिवस्य हि ॥४
धत्ते चपाचरं विश्वं रूपं विश्वंभरात्मकम्।
शंकरस्य महेशस्य शास्रस्यैवेति निश्चयः ॥५
संजीवनं समस्तस्य जगतः सलिलात्मकम्।
भव इत्युच्यते रूपं भवस्य परमात्मनः ॥६
बहिरंतर्जगद्विश्वं बिभर्ति स्पन्दते स्वयम्।
उग्र इत्युच्यते सद्भी रूहमुग्रस्य सत्प्रभो ॥७

नन्दीश्वर ने कहा—हे मुने ! तात ! हे प्रभो ! जब शिवजी के जो बड़े अवतार हुए हैं उनकी कथा सुनिये। ये इस लोक में समस्त कार्यों के पूर्ण करने वाले तथा प्राणिमात्र को सुख प्रदान करने वाले हैं।१। यह समस्त संसार भगवान शिवजी की आठ मूर्तियों से युक्त है। जिस प्रकार धागे में पिरोई हुई मणियों का एक समुदाय होता है उसी भांति यह समस्य विश्व उसी में व्याप्त होकर स्थित हो रहा है।२। भगवान शिव की शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान ओर महादेव ये आठ मूर्तियों सर्वत्र प्रसिद्ध हैं।३। शिव के उक्त शर्व प्रभृति आठ रूपों से अधिष्ठित होने वाले भूमि, जल, अग्नि, पवन, अन्तरिक्ष क्षेत्रज, सूर्य

और चन्द्रमा है ।४। शास्त्र का यह निश्चय है कि शिव महेश का विश्वम्भर स्वरूप वाला रूप इस सम्पूर्ण चर-अचर संसार को धारण किया करता है ।५। इस समस्त संसार की जो वरदान देकर जीवित रखने वाला शिव का जल के स्वरूप वाला बताया गया है ।६। हे प्रभो ! सत्पुरुष ऐसा कहा करते हैं कि जो स्वयं बाहर भीतर सर्वत्र स्थित होकर इस संसार का पालन किया करता है तथा इसे चलाता रहता है वह शिव का उग्र नाम वाला रूप होता है ।७।

सर्वावकाशद सर्वव्यापकं गगनात्मकम् ।
रूपं भीमस्य भीमाख्यं भूपवृन्दस्य भेदकम् ॥८
सर्वात्मनामधिष्टान सर्वक्षेत्रनिवासकम् ।
रूप पशुपतेर्ज्ञेयं पशुपाशनिकृन्तनम् ॥९
सं दीपयज्जगत्सर्वं दिवाकरसमाह्वयम् ।
ईशानाख्यं महेशस्य रूपं दिवि विसर्पति ॥१०
आप्याययति यो विश्वममृतांशुर्निशाकरः ।
महादेवस्य तद्रूपं महादेवस्य श्चाह्वयम् ॥११
आत्मा तस्याष्टमं रूपं शिवस्य परमात्मनः ।
व्यापिकेतरमूर्तीनां विश्वं तस्माच्छिवात्मकम् ॥१२
शाखाः पुष्यन्ति वृक्षस्य वृक्षमूलस्य सेचनात् ।
तद्वदस्य विपुर्विश्वं पुष्यत च शिवार्चनात् ॥१३
यथेह पुत्रपौत्रादेः प्रीत्या प्रीतो भवेत्पिता ।
तथा विश्वस्य सम्प्रीत्या प्रीतो भवति शंकरः ॥१४

समुदाय का भेदन करने वाला सर्वव्यापक और सबको अवकाश प्रदान करने वाला अवकाशात्मक भीम नाम वाला शिव का भीम रूप होता है।८।पशुरूप जीवों के पाश बन्धन का छेदन करने वाला जो समस्त आत्माओं का अधिष्ठाता देव है तथा सम्पूर्ण क्षेत्रों का निवास भूमि है वह पशुपति नाम वाला शिव का स्वरूप है ।९। सूर्य के स्वरूप में रह कर जो सम्पूर्ण संसार को प्रकाश प्रदान करता है वह ईशाव नाम वाला शिव का स्वरूप आकाश में फैला हुआ है ।१०। अमृतमयी किरणों के

द्वारा समस्त जगत को तृप्त एवं शीतल किया करता है अर्थात् चन्द्र स्वरूप में स्थित है वह शिव का महादेव नाम वाला रूप होता है ।११। आठवाँ परमात्मा शिव का आत्मा नाम वाला रूप होता है, जिसके मूर्त-अमूर्त सब में व्याप्त होने के कारण यह सम्पूर्ण संसार शिवरूपमय है ।१२। वृक्ष की जड़ के सेचन से उसकी समस्त शाखा प्रशाखाओं की पुष्टि की भांति शिव के शरीर स्वरूप यह सारा संसार है और उसका मूलस्वरूप साक्षात् शिव है। इसके अर्चनसे सम्पूर्ण विश्व पुष्ट हो जात है ।१३। संसार में पुत्र-पौत्रादि के प्रसन्न रखने से पिता को परमा प्रसन्नता होने के तुल्य ही समस्त संसार के साथ प्रीति भाव रखने से जगत् के पिता शिव स्वयं प्रसन्न हो जाया करते हैं ।१४।

क्रियते यस्य कस्यापि देहिनो यदि निग्रहः ।
अष्टमूर्त्तेरत्मना विश्वमे॰ न संशयः ॥१५
अष्टत्यात्मना विश्वमधिष्ठायास्थितं शिवम् ।
भजस्व सर्वभावेन रुद्रं परमकारणम् ॥१६
इति प्रोक्ताः स्वरूपास्ते विधिपुत्राष्टहिश्रुताः ।
सर्वोपकारनिरताः सेव्याः श्रेयोऽर्थिभिर्नरैः ॥१७

देहधारी किसी भी प्राणी के बन्धन से शिव की अष्टमूर्ति स्वरूप अपने ही को बन्धन समझकर अपना अनिष्ट मान लेते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।१५। शिव अपनी अष्टमूर्ति स्वरूप आत्मा से इस सारे विश्व में अधिष्ठित होकर व्याप्त हैं। अतएव परमकारण रूप रुद्रात्मक शिव का सर्वभाव से भजनोपासन करना चाहिए ।१६। हे सनत्कुमारजी ! मैंने परम प्रसिद्ध शिव के आठ स्वरूप, जो सबके उपकार करने के कार्य में सर्वदा तत्पर रहा करते हैं, उनका वर्णन कर दिया। अपने कल्याण की कामना वाले पुरुष इन सबकी सेवा करे ।१७।

॥ अर्द्धनारीश्वर शिव का प्रादुर्भाव ॥

शृणु तात महाप्राज्ञ विधिकामप्रपूरकम् ।
अर्द्धनारीनराख्यं हि शिवरूपमनुत्तमम् ॥१
यदा सृष्टाः प्रजाः सर्वा न व्यवर्द्धंत वेधसा ।

तदा चिंताकुलोऽभूत्स तेव दुःखेन दुःखितः ॥२
नभोवाणी तदाऽभूद्वै सृष्टिं मिथुनजां कुरु ।
तच्छ्रुत्वा मैथुनीं सृष्टि ब्रह्मा कर्तुममन्यत ॥३
नारीणां कुलमीशानन्निर्गतं न पुरा यतः ।
ततो मैथुनजां सृष्टिं कर्तुं शोके न मद्‌भभूः ॥४
प्रभावेण विना शंभोर्नन जायेरन्निमाः प्रजाः ।
एवं संचिन्तयन्ब्रह्मा तपः कर्त्तुं प्रचक्रमे ॥५
शिवाय परया शक्त्या संयुक्तं परमेश्वरम् ।
संचित्य हृदये प्रीत्या तपेशं परमं तपः ॥६
तीव्रेण तपसा तस्य संयुक्तस्य स्वयंभुवः ।
अचिरेणैव कालेन तुतोष स शिवो द्रुतम् ॥७

नन्दीश्वर ने कहा—हे महाप्राज्ञ ! हे तात ! अब मैं विधाता के मनोरथों के सफल करने वाले और अर्द्धनारीश्वर नाम वाले भगवान शिव के परम श्रेष्ठ स्वरूप का वर्णन करता हूँ उसे आप सुनिये ।१। जिस समय ब्रह्माजी ने अपने द्वारा सृजन की हुई प्रजा की वृद्धि नहीं देखी तो वे दुःख से अत्यन्त व्याकुल होकर परम चिन्तित हुए ।२। उस समय एक आकाशवाणी हुई कि "अब मैथुनी सृष्टि की रचना करो।" यह सुनकर ब्रह्माजी ने अपनी मैथुनी सृष्टि के निर्माण करने का मन में निश्चय कर लिया ।३। इसके पहिले शिव से स्त्रियों के कुल का प्राकट्य नहीं हुआ था, इसी कारण विधाता मैथुनी सृष्टि करने के कार्य में समर्थ न हो सके ।४। शिवजी के प्रभाव के बिना यह प्रजा किसी भी प्रकार से उत्पन्न नहीं हो सकेगी—ऐसा विचार कर ब्रह्मा शिव के प्रसन्न करने के लिए तपश्चर्या करने को तत्पर हुए ।५। पार्वती स्वरूपिणी परम प्रधान शक्ति से समन्वित परमेश्वर का हृदय में ध्यान करते हुए प्रीतिपूर्वक तप करने में ब्रह्माजी लीन हो गये ।६। कठोरतम तपस्या में तत्पर ब्रह्माजी से शिव थोड़े ही समय मे शीघ्र सन्तुष्ट हो गये ।७।

ततः पूर्ण चिदीशस्य मूर्तिमाविश्व कामदाम् ।
अर्द्ध नारीनरो भूत्वा ततो ब्रह्मान्तिकं हरः ॥८

तं दृष्ट्वा शंकरं देवं शक्त्या परमयान्वितम् ।
प्रणम्य दण्डवद्ब्रह्मा स तुष्ट कृताञ्जलिः ॥६
अथ देवो महादेवो वाचा मेघगंभीरया ।
स भवाय सुसंप्रीतो विश्वकर्त्ता महेश्वरः ॥१०
वत्स वत्स महाभाग मम पुत्र पिमामह ।
ज्ञातवानस्मि सर्वं तत्तत्वतस्ते मनोरथम् ॥११
प्रजानामेव वृद्ध्यर्थं तपस्तप्तं त्वयाऽधुना ।
तपसा तेन दुष्टोऽस्मिन ददाति च तवेप्सिसम् ॥१२
इत्युक्त्वा परमोदारं स्वभावतधुरं वचः ।
पृथक्चकार वपुषो भागाद्देवीं शिवां शिवः ॥१३
तां दृष्ट्वा परमां शक्ति पृथग्भूतां शिवागताम् ।
प्रणिपत्य विनीतात्मा प्रार्थयामास तां विधिः ॥१४

इसके अनन्तर पूर्ण चिद्रूप ईश्वर ने अपनी काम प्रदायिनी मूर्ति में प्रवेश करते हुए आधी नारी और आधा पुरुष का स्वरूप होकर ब्रह्माजी के समीप में पदार्पण किया ।८। तब ब्रह्माजी ने भगवान शिव को अपनी परम शक्ति से संयुक्त देखकर दण्डवत्प्रणाम करते हुए करबद्ध होकर उनके स्तुति करने का आरम्भ किया ।६। उस समय समस्त देवों में परम श्रेष्ठ इस विश्व के रचने वाले महेश्वर शिव अत्यन्त प्रसन्न होकर मेघ के समान गम्भीर वाणी से कहने ।१०। शिव ने ब्रह्माजी से कहा—हे वत्स ! हे मेरे पुत्र ब्रह्मा ! हे महाभाग ! मैंने तुम्हारे मनोरथ को तत्व रूप से समझ लिया है ।६१। तुमने इस समय अपनी प्रजा की वृद्धि की इच्छा से ही यह उग्र तप किया है । मैं तुम्हारी तपस्या से अति सन्तुष्ट एवं प्रसन्न होकर तुमको तुम्हारा अभीष्ठित वरदान देता हूँ ।१२। शिवजी ने इस तरह परम उदारभाव से मधुर वाणी में ब्रह्माजी से ये वचन कहकर अपने शरीर के अर्द्ध भाग से शिवा शक्तिमयी देवी को प्रकट कर दिया, तब उनका शिव से पृथक् स्पष्ट स्वरूप दिखाई देने लगा ।१३। उस शिव भगवान की परम शक्ति को महेश से अलग स्थित देखकर विनीत ब्रह्माजी प्रणामपूर्वक प्रार्थना करने लगे ।१४।

देवदेवेन सृष्टोऽहमादौ त्वत्पतिना शिवे।
प्रजाः सर्वा नियुक्ताश्च शम्भुना परमात्मना ॥१५
मनसा निर्मिताः सर्वे शिवे देवादयो मया।
न वृद्धिमुपगच्छति सृज्यमानाः पुनः पुनः ॥१६
मिथुनप्रभवामेव कृत्वा सृष्टिमतः परम्।
संवर्द्धयितुमिच्छामि सर्वा एव मम प्रजाः ।१७
न निर्गतं पुरो त्वत्तो नारीणां कुलमव्ययम्।
तेन नारी कुलश्रेष्ठं मम शक्तिर्न विद्यते ॥१८
सर्वासामेव शक्तीनां त्वत्तः खलु समुद्भवः।
तस्मात्वां परमां शक्तिं प्रार्थयाम्यखिलेश्वरीम् ॥१९
शिवे नारीकुलं स्त्रष्टुं शक्तिं देहि नमोस्तु ते।
चराचरं जगद्वृद्धि हेतोर्मातः शिवं प्रिये ॥२०

विधाता ने कहा—हे अम्बिके ! देवाधिदेव आपके पतिदेव महादेव ने मेरा सृजन किया और इस सम्पूर्ण प्रजा की भी सृष्टि उन्हीं ने की ।१५। हे शिवे ! मैंने इन समस्त देवों की रचना मन से की है। इनके पुनः पुनः निर्माण करने पर भी कुछ वृद्धि नहीं होती दिखाई दे रही है ।१६। अब इसके आगे मैथुन द्वारा उत्पन्न होकर जन्म ग्रहण करने वाली प्रजा की रचना करने की और प्रजा बढ़ाने की मुझे इच्छा हुई है। यह सब मेरी ही प्रजा है ।१७। अब तक आपसे यह श्रेष्ठ नारी-कुल, जिसका विनाश नहीं है उत्पन्न नहीं हुआ था। अतः यह नारीकुल परम श्रेष्ठ है इसके सृजन की शक्ति मेरे अन्दर नहीं है ।१८। ब्रह्माजी ने कहा—हे जगज्जननी ! समस्त शक्तियों का उद्भव आपकी शक्ति के द्वारा ही होता है अतएव सबकी ईश्वरी आपकी सेवा में मेरा निवेदन है कि परमशक्ति स्वरूपिणी आप मुझे इस नारीकुल के सृजन करने की महाशक्ति प्रदान करने की कृपा कीजिये। मेरा आपको प्रणाम है। सम्पूर्ण चराचर जगत् का कारण एकमात्र भगवान शिव ही हैं ।१९-२०।

अन्यः त्वत्तः प्रार्थयामि वरं च वरदेश्वरि।
देहि मे तं कृत्वा जगन्मातर्नमोऽस्तु ते ॥२१

चराचरविवृद्ध्यर्थमीशेनकेन सवगे ।
दक्षस्य मम पुत्रस्य पुत्री भव भवाम्बिके ।।२२
एवं संचायिता देवी ब्रह्मणा परमेश्वरी ।
तथास्त्विति वचः प्रोच्यः तच्छक्ति विधये ददौ ।।२३
तस्माद्धि सा शिवा देवी शिवशक्तिर्जगन्मयी ।
शक्तिमेकां भ्रुवोर्मध्यात्ससर्जात्मसमप्रभाम् ।।२४
तमाह प्रहसन्प्रेक्ष्य शक्ति देववरो हरा ।
कृपासिन्धुर्महेशानो लीलाकारी भवाम्बिकाम् ।।२५
तपसाराधिता देवि ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।
प्रसन्ना भव सुप्रीत्या कुरु तस्याखिलेप्सितम् ।।२६
तमाज्ञां परमेशस्य शिरसा प्रतिगृह्य सा ।
ब्राह्मणो वचनाद्देवी दक्षस्य दुहिताऽभवत् ।।२७
दत्त्वैवतुलां शक्ति ब्रह्मणे सा शिवे मुने ।
विवेश देहं शंभोर्हि शंभुश्चान्तर्दधे प्रभुः ।।२८

ब्रह्माजी ने कहा—हे वरदेश्वरी ! मैं आपसे एक अन्य वरदान के प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ उसे भी आप मुझ पर कृपा करती हुई देने की उदारता करें । हे जगत् की माँ ! मेरा आपको बार-बार प्रणाम है ।२१। एक उत्तम शक्ति के द्वारा ही इस समस्त चराचर जगत् की बढ़ोत्तरी के लिए आप मेरे पुत्र दक्ष प्रजापति की पुत्री के रूप में प्रकट हो जावेंगी ।२२। इस प्रकार ब्रह्मा ने जब याचना की तो परमेश्वरी भगवती ने कहा—ऐसा ही हो जाएगा—यह कहते हुए उस परम शक्ति को विधाता को दे दिया ।२३। जगदीश्वर जगन्मयी भवानी ने उसी शक्ति के द्वारा अपने भृकुटि के मध्य भाग से अपने ही सदृश कमनीय कान्ति वाली एक अन्य शक्ति का निर्माण कर दिया ।२४। देवों में परम कृपा के सागर लीलाधारी भगवान् शिव ने उस शक्ति को देखकर मुस्कराते हुए जगत् की माता से कहा ।२५। शिव ने कहा—हे देवि ! अब आप पितामह परमेष्ठी की घोर तपस्या से अत्यन्त प्रसन्न हो गई ! अतः इनकी आराधना से सन्तुष्ट होती हुई आप इनके सभी मनोरथों को

पूर्ण कर दो ।२६। उसी समय देवी ने शंकर की आज्ञा को मानकर ब्रह्मा के द्वारा याचना की गई दक्ष की पुत्री होना अंगीकार कर लिया । ७। हे मुनीश्वर ! उस जगदीश्वर शिवा ने उसी समय ब्रह्माजी को अपनी असीम एवं अनुपम शक्ति प्रदान कर दी और पुनः शिव के अङ्ग में प्रविष्ट हो गई और महाशक्ति के सिन्धु भगवान् शिव भी तब अन्तर्धान हो गये ।२८।

तदाप्रभृति लोकेऽस्मिस्त्रिया भागः प्रकल्पितः ।
आनन्दं प्राप स विधिः सृष्टिर्जाता च मैथुनी ॥२६
एतत्ते कथितं तात शिवरूप मसोत्तमम् ।
अर्द्धनारीनरार्द्धं हि महामङ्गलदं सदाम् ॥३०
एतदाख्यानमनघं तः पठेच्छ्रणुयादपि ।
स भुक्त्वा सकलान्भोगान्प्रयाति परमां गतिम् ॥३१

उसी समय से इस जगत् में स्त्री का भाग देना कल्पित हुआ। ब्रह्माजी को महान् आनन्द हुआ और फिर इस संसार में मैथुन द्वारा होने वाली सृष्टि का आरम्भ हो गया ।२६। हे तात ! शिव का यह अत्यन्त श्रेष्ठ स्वरूप तुमको बतला दिया है । यह अर्द्धनारी ओर नरार्द्ध स्वरूप सज्जन पुरुषों को परम मङ्गल का प्रदाता है ।३०। जो इस कथा का पाठ या श्रवण करता है वह सब भोग भोगकर मोक्ष पाता है ।३१।

श्वेतमुनि और ऋषभदेव के रूप में अवतार

सनत्कुमार सर्वज्ञ चरितं शांकरं मुदा ।
रुद्रेण कथितं प्रीत्या ब्रह्मणे सुखदं सदा ॥१
सप्तमे चैव वाराहे कल्पे मन्वन्तराभिधे ।
कल्पेश्वरोऽथ भगवान्सर्वलोकप्रकाशनः ॥२
मनोर्वैवस्वतस्यैव ते प्रपुत्रो भविष्यति ।
तदा चतुर्युगाश्चैव तस्मिन्मन्वन्तरे विधे ॥३
अनुग्रहार्थं लोकानां ब्राह्मणानां हिताय च ।
उत्पश्यामिविधे ब्रह्मन्द्वापराख्ययुगान्तिके ॥४

युगप्रवृत्त्या च तदा तस्मिश्च प्रथमे युगे ।
द्वापरे प्रथमे ब्रह्मन्यदा व्यासः स्वयंप्रभु ।।५
तदाहं ब्राह्मणार्थाय कलौ तस्मिन्युगान्तिके ।
भविष्यामि शिवायुक्तः श्वेतो नाम महामुनिः ।।६
हिमवच्छिखरे रम्ये छागले पर्वतोत्तमे ।
तदा शिष्याः शिलायुक्त भविष्यन्ति विधे मम ।।७

नन्दीश्वर ने कहा—हे सब के ज्ञाता सनत्कुमार ! रुद्र द्वारा कथित यह भगवान शङ्कर का चरित्र ब्रह्मा को सर्वथा सुख प्रदान करने वाला होता है ।१। शिव ने कहा —सप्तम मन्वन्तर के वाराह नामक कल्प में समस्त लोकों में प्रकाश प्रसारित करने वाले कल्पेश्वर भगवान अवतीर्ण होंगे ।२। वे वैवस्वत मनु तेरे, प्रपौत्र रूप में होंगे: हे ब्रह्मा ! उस समय उस मन्वन्तर में चार युग होंगे ।३। हे ब्रह्मन् ! हे विधे ! ब्राह्मणों का हित सम्पादन करने के लिये और समस्त लोकों पर कृपा करने के वास्ते द्वापर युग के अन्त समय में मैं अवतीर्ण होऊँगा ।४। हे विधाता ! जब युगों की प्रवृत्ति होने का कार्य आरम्भ हो जायगा तो जिस समय प्रथम बार द्वापर आयेगा उस वक्त व्यासजी स्वयं उसके प्रभु होंगे ।५। उस समय विप्रवृन्द की भलाई करने के लिए जब कलियुग का अन्त होगा तो मैं शिव के साथ श्वेत नामधारी मुनिश्रेष्ठ होकर जन्म लूँगा ।६। उस समय ब्रह्मा स्वयं हिमाचल के रमणीक चोटी पर पर्वतोत्तम छागल में मेरे शिखा से युक्त शिष्य बनेंगे ।७।

श्वेतः श्वेतशिखश्चचैव श्वेताश्चः श्वेतलोहितः ।
चत्वारौ ध्यानयोगात्ते गमिष्यन्ति पुरं मम ।।८
ततो भक्ता भविष्यन्ति ज्ञात्वा मां तत्त्वतोऽव्ययम् ।
जन्ममृत्युजराहीनाः परब्रह्मसमाधयः ।।९
द्रष्टुं शक्यो नरैर्नहि ऋते ध्यानत्तिामह ।
दानधर्मादिभिर्वत्स साधनै कर्महेतुभिः ।।१०
द्वितीये द्वापरे व्यासः सत्यो नामतः कलौ ।।११

तत्रापि मे भविष्यन्ति शिष्या येदविदो द्विजाः ।
दुन्दुभिः शतरूपश्च हृषीकः केतुमांस्तथा ॥१२
चत्वारो ध्यानयोगात्ते गमिष्यन्ति पुरं मम ।
ततो मुक्ता भविष्यन्ति ज्ञात्वा मां तत्त्वतोऽव्ययम् ॥१३
तृतीये द्वापरे चैव यदा व्यासस्तु भार्गवः ।
तदाप्यहं भविष्यामि दमनस्तु पुरान्तिके ॥१४

तब श्वेत, श्वेताश्व, श्वेत लौहित और श्वेतशिख ये चारों ध्यान योग से मेरे पुत्र होंगे ।८। उस समय तत्व दृष्टि से मेरे अव्यय स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर मेरे अन्य अनेक भक्त बन जायेंगे और परब्रह्म के ध्यान में समाधि लगाकर आवागमन तथा वार्धक्य केशादि रहित होकर सुखी होंगे ।९। हे पितामह ! मैं ध्यान योग के बिना मनुष्यों को कभी भी दिखाई नहीं दे सकता हूं । केवल दान-धर्म आदि सत्कर्म युक्त साधनों द्वारा मुझे प्राणी देखने में समर्थ हो सकते हैं ।१०। द्वितीय द्वापर युग में सत्य नाम वाले प्रजापति व्यास होंगे उस समय कलियुग में मैं 'सुतार' इस नाम से प्रसिद्ध होऊँगा ।११। उस वक्त भी दुन्दुभि, शतरूप हृषीक और केतु इन नामों वाले वेद के ज्ञाता ब्राह्मण मेरे शिष्य बनेंगे ।१२। ये चारों शिष्य मेरे अध्यक्ष अविनाशी स्वरूप को तात्विक रूप से जानकर मेरे लोक में पहुँच जायेंगे और मुक्त हो जायेंगे ।१३। तीसरे द्वापर में भार्गव मुनि व्यास बनेंगे उस समय मैं पुर के निकट ही दमन—इस नाम से प्रसिद्धि प्राप्त करूँगा ।१४।

तत्रापि च भविष्यान्ति चत्वरो मम पुत्रकाः ।
विशोकश्च विशेषश्च विपापः पापनाशनः ॥१५
शिष्यैः साहात्यं व्यासस्य करिष्ये चतुरानन ।
निधृत्तिमार्गं सुदृढं वर्त्तयिष्ये कलाविह ॥१६
चतुर्थे द्वापरे चैव यदा व्यासोऽगिराः स्मृतः ।
तदाप्यहं भविष्यामि सुहोत्रो नाम नाम नामतः ॥१७
तत्रापि मम ते पुत्राश्चत्वारो योगसाधकाः ।
भविष्यन्ति महात्मानस्तन्नाणि ब्रवे विधे ॥१८

सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्मुर्भो दुरतिक्रमः ।
शिष्यै साहाय्यं स्यासस्य करिष्येऽहं तदा विधे ।।१६
पंचमे द्वापरे चैव व्यासस्तु सविता स्मृतः ।
तदा योगी भविष्यामि कङ्को नाम महातपाः ।।२०

उस वक्त वहाँ मेरे विशोक, विशेष विपाप और पापनाशन इन नामों वाले चार पुत्र उत्पन्न होंगे ।१५। हे चतुरानन ! सब मैं व्यासजी के शिष्यों की पूर्ण सहायता करूँगा और कलियुग में भी मोक्ष प्राप्ति के सन्मार्ग को बताऊँगा ।१६। चौथे द्वापर युग में अङ्गिरा ऋषि व्यासजी के स्वरूप में आकर अवतीर्ण होगे । उस वक्त मैं सुहोत्र नामधारी होकर प्रकट होऊँगा ।१७। हे विधे ! उस समय भी मेरे निम्न नामों वाले चार पुत्र योग के साधन करने वाले परम महान् आत्मा वाले जन्म लेंगे और उनके नाम ये होंगे ।१८। सुमुख, दुर्मुख, दुरतिक्रम और दुदर्भ ये नाम हैं । हे ब्रह्मा ! उस वक्त भी मैं हर तरह से व्यास के होने वाले शिष्य समुदाय का सहायक रहूँगा ।१६। पांचवें द्वापर में सविता देव व्यास बनेंगे तब भी मैं कंक नाम धारण कर अति महान् योगी तथा तपस्वी के स्वरूप में प्रकट होऊँगा ।२०।

तत्रापि मम ते युत्राश्चत्वारो योगसाधकाः ।
भविष्यन्ति महात्मानस्तन्नामानिश्रृणुश्व मे ।।२१
सनकः सनातनश्चैव प्रभुर्यश्च सनन्दनः ।
विभुः सनत्कुमारश्च निर्मलो निरहंकृति ।।२२
तत्रापि कङ्कनामाऽहं साहाय्य सवितुर्विधे ।
व्यासस्य हि करिष्यामि निवृत्तिपथवर्द्धकः ।।२३
परिवृत्ते पुनः षष्ठे द्वापरे लोककारकः ।
कर्त्ता वेदविभागस्य मृत्युर्व्यासो भविष्यति ।।२४
तदाप्यहं भविष्यामि लोकाक्षिर्नाम नामतः ।
व्यासस्य सुसाहाय्यार्थं निवृत्तिपथवर्द्धनः ।।२५
तत्रापि शिष्याश्चत्वारो भविष्यन्ति दृढव्रताः ।
सुधामा विरजाश्चैव संजयो विजयस्तथा ।।२६

सप्तमे परिवर्त्ते तु यदा व्यासः शतक्रतुः।
तदाप्यहं भविष्यामि जैगीषव्यो विभुर्विधे ॥२७
योगं सहृढयिष्यामि महायोगविचक्षणः।
काश्यां गुहान्तरे संस्थो दिव्यदेशे कुशास्तरिः ॥२८

उस समय भी योग की साधना करने वाले चार ही पुत्र महान आत्मा वाले उत्पन्न होंगे जिनके नाम अधोलिखित हैं ।२१। सनक और सनातन के अतिरिक्त परम सामर्थ्य वाले सनन्दन तथा अहंकार से रहित विभु और निर्मल हृदय वाले चौथे सनत्कुमार नामक होगे ।२२। हे विधाता उस युग में मेरा नाम ककं होगा और मैं तब निवृत्ति के उत्तम मार्ग की वृद्धि करते हुए व्यास जी का सहायक बनूँगा ।२३। इसके पश्चात् जिस समय छठवां द्वापर युग का समय उपस्थित होगा तब मृत्यु नामक व्यास के रूप में जन्म ग्रहण करेंगे जिन्होंने लौकी रचना तथा वेदों का यथाक्रम विभाजन किया है ।२४। उस वक्त भी मेरा आविर्भाव लोकाक्षि के नाम से होगा और व्यास की सहायता करते हुए निवृत्ति के मार्ग को ही बढ़ाने वाला रहूँगा ।२५। उस वक्त भी सुधामा, संजय, विरता और विजय नाम वाले चार शिष्य बहुत ही दृढ़ व्रत के धारण करने वाले होंगे ।२६। हे विधिदेव ! जब सप्तम द्वापर युग आयेगा तब इन्द्र व्यास होंगे और मैं सर्वज्ञाता जैगोषव्य होकर प्रकट होऊँगा ।२६। उस समय मैं महान् योग में अत्यन्त निपुण होकर योग को सुदृढ़ बनाऊँगा और काशी में एक गुफा के अन्दर परम उत्तम स्थान की रचना कर कुशासन पर संस्थित रहूँगा ।२८।

साहाय्यं च करिष्यामि व्यासस्य हि शतक्रतोः।
उद्धरिष्यामि भक्तांश्च संसारभयतो विधे ॥२९
तत्रापि मम चत्वारो भविष्यन्ति सुता युगे।
सारस्वतश्च योगीशो मेघवाहः सुवाहनः ॥३०
अष्टमे परिवर्त्ते हि वसिष्ठो मुनिसत्तमः।
कर्त्ता वेदविभागस्य वेदव्यासो भविष्यति ॥३१
तत्राप्यहं भविष्यामि नामतो दधिवाहनः।

व्यासस्य हि करिष्यामि साहय्य योगवित्तम ।।३२
कपिलाश्चासुरिः पञ्चशिखः शाल्वलपूर्वकः ।
चत्वारो योगिनः पुत्रा भविष्यन्ति समा मम ।।३३
नवमे परिवर्ते तु तस्मिन्नेव युगे विधे ।
भविष्यति मुनिश्रेष्ठो व्यासः सारस्वताह्वयः ।।३४
व्यासस्य व्यायतस्य निवृत्तिपथवृद्धये ।
तदाप्यहं भविष्यामि ऋषभो नामतः स्मृतः ।।३५

व्यास स्वरूप में जो उस वक्त शतक्रतु होंगे उनकी सहायता करते हुए भक्तों का उद्धार करूँगा ।२६। उस समय भी मेरे सारस्वत-योगीश मेघवाहन और सुवाहन नाम वाले चार पुत्र उत्पन्न होंगे ।३०। जब इसी क्रम से अष्टम द्वापर आयेगा तब वसिष्ठ मुनि व्यास होंगे और ये ही मुनि श्रेष्ठ उस वक्त वेदों के विभाग करने वाले बनेंगे ।३१। हे ज्ञान रखने वालों में परम श्रेष्ठ ! उस समय मेरा नाम दधिवाहन होगा और व्यास का सहायक रहूँगा ।३२। उस वक्त भी परम योगी कपिल-आसुरी-पञ्च-शिख और शाल्वल नाम वाले चार पुत्र होंगे जो सभी समान रूप से योग्यता रखने वाले होंगे ।३३। हे ब्रह्मा ! नवम द्वापर युग में मुनियों में अति श्रेष्ठ सारस्वत नामधारी व्यास होंगे ।३४। उस वक्त में होने वाले व्यास का ध्यान रखकर निवृत्ति मार्ग की वृद्धि के लिये ही मैं ऋषभ नाम से आविर्भूत होउँगा ।३५।

पराशरच गर्गश्च भार्गवो गिरिशस्तथा ।
चत्वारस्तत्र शिष्या मे भविष्यन्ति सयोगिनः ।।३६
तैः साकं दृढयिष्यामि योगमार्गं प्रजापते ।
करिष्यामि साहाय्यं वै वेदव्यासस्य सन्मुने ।।३७
तेन रूपेण भक्तानां बहूनां दुःखिनां विधे ।
उद्धारं भवतोऽहं वै करिष्यामि दयाकरः ।।३८
सोऽवतारो विधे मे हि ऋषभाख्यः सुयोगकृत् ।
सारस्वतव्यासमनः पूर्त्तो नानोतिकारकः ।।३९

अवतारेण मे येन भद्रायुर्नृपबालकः ।
जीवितो हि मृतः क्ष्वेडदोषतो जनकोज्झितः ॥४०
प्राप्तेऽथ षोडशे वर्षे तस्य राजशिशोः पुनः ।
ययौ तद्वेश्म सहसा ऋषभः स मदात्मकः ॥४१
पूजिस्तेन स मुनिः सद्रूपश्च कृपानिधेः ।
उपादिदेश तद्धर्मान्राज्योगान्प्रजापते ॥४२

उस समय मेरे पराशर-गर्ग-भार्गव और गिरीश नाम वाले चार परम श्रेष्ठ योगी शिष्य रूप में प्रकट होंगे ।३६। हे प्रजापते ! इनको साथ में लेकर मैं संसार योग के मार्ग को अति सुदृढ़ बनाते हुए व्यास का सहायक बनूँगा ।३७। मैं उस वक्त अत्यन्त दुःखित भक्तजनों का और तुम्हारा भी उद्धार करूँगा । मेरा यह अवतार ऋषभ के नाम वाला सुयोग करने के लिए सारस्वत व्यास मुनि का सहायक और बहुविध कल्याण का करने वाला होगा ।३८। उस समय मैंने अवतार लेकर भद्रायु नाम वाले एक नृप के बालक को जो छींक के दोष के कारण मृत्युगत हो गया था और पिता ने त्याग दिया था उसे पुनः जीवित कर दिया था ।४०। जब वह बालक सोलह वर्ष का हो गया उस समय उस राजा के घर में मेरी आत्मा ऋषभ के स्वरूप में हो गई थी ।४१। हे प्रजापते ! उस वक्त परम शोभित स्वरूप वाले कृपा के निधि उन मुनि का बहुत बड़ा आदर-सत्कार किया गया था । मुनिश्वर ने राजा को राजयोग से युक्त धर्म का उपदेश दिया था ।४२।

ततः स कवचं दिव्यं शंखं खड्गं च भास्वरम् ।
ददौ तस्मै प्रसन्नात्मा सर्वशत्रुविनाशनम् ॥४३
तदङ्गभस्मनामृश्य कृपया दीनवत्सलः ।
स द्वादशसहस्रस्य गजानां च बलं ददौ ॥४४
इति भद्रायुषं सम्यगनुश्वास्य समातृतम् ।
ययौ स्वैरगस्ताभ्यां पूजितो ऋषभः प्रभुः ॥४५
भद्रायुरपि राजर्षिजित्वा रिपुगणान्विधे ।
राज्यं चकार धर्मेण विवाह्य कीर्तिमालिनीम् ॥४६

इत्थंप्रभाव ऋषभोवतारः शंकरस्य मे।
सतां गतिर्दीनबन्धुर्नवमः कथितस्तव ॥४७
ऋषभस्य चरित्रं हि परमं पावनं महत्।
स्वर्ग्यं यणस्यमायुष्यं श्रोतव्यं च प्रयत्नतः ॥४८

ऋषभ देव ने परम प्रसन्न होकर राजा को एक दिव्य कवचशङ्ख और समस्त शत्रु समुदाय का नाश करने वाला एक खड्ग प्रदान किया था।४३। दीनजन पर दया की वृष्टि करने वाले ऋषभ मुनिराज ने उस राजा के समस्त अंगों में भस्म लगाकर उसे बारह हजार हाथियों के समान बल प्रदान किया।४४। उस समय माता के साथ भद्रायु को भली-भाँति समझा कर धीरज दिया और फिर माता एवं पुत्र द्वारा वंदित होकर ऋषभ मुनि अपने अभीष्ट स्थान को चले गये थे।४५। हे विधे! इसके अनन्तर राजर्षि भद्रायु समस्त शत्रुओं पर विजय पाकर कीर्त्ति-मालिनी नाम वाली एक सुन्दर कन्या के साथ विवाह धर्म के साथ राज-काज करने में तत्पर हो गये।४६। मेरे इस नवम ऋषभ अवतार का ऐसा प्रभाव होता है जो सदा सत्पुरुषों का उद्धारक-दीन का बन्धुरूप हुआ है। मैंने तुमको इसे सुना दिया है। यह ऋषभ चरित्र मानवों को पवित्र बना देने वाला, स्वर्ग सुख प्रदाता और यश तथा आयु की वृद्धि करने वाला है। इसे सबको यत्न के साथ अवश्य ही श्रवण करना चाहिए।४७-४८।

ग्यारह रुद्रावतारों का वर्णन

एकादशावतारान्वै शृण्वथो शङ्करान्वरान्।
यान्छ्रुत्वा न हि बाध्येत बाधाऽसत्यादिसम्भवा ॥१
पुरा सर्वे सुराः शक्रमुखा दैत्यपराजिताः।
त्यक्त्वामरावतीम्भीत्याऽपलायन्त निजाम्पुरीम् ॥२
दैत्यप्रपीडिता देवा जग्मुस्तं कश्यपान्तिकम्।
बद्ध्वा करान्नतस्कन्धाः प्रणुमुस्तं सविह्वलम् ॥३
सुनुत्वा तं सुराः सर्वे कृत्वाविज्ञप्तिमादरात्।
सर्वं किवेयामासुः स्वदुःख तत्पराजयम् ॥४

ततः स कश्यपस्तात तत्पिता शिवशक्तधीः ।
तदाकर्ण्यामराक वै दुःखिमोऽभूत्तदाऽधिकम् ॥५
तानाश्वास्य मुनिः सोऽथ धैर्यमाधाय शान्तधीः ।
काशीं जगाम सुप्रीत्या विश्वेश्वरपुरीम्मुने ॥६
गङ्गांभसि ततः स्नात्वा कृत्वा तविधिमादरात् ।
विश्वेश्वरं समानर्च साम्बं सर्वेश्वरं प्रभुम् ॥७

नन्दीश्वर ने कहा—अब भगवान शिव के ग्यारह परम श्रेष्ठ अवतारों की कथा सुनो जिससे असत्य आदि के दोषों से उत्पन्न होने वाली बाधा मनुष्यों को कभी भी पीड़ित नहीं किया करती है ।१। पूर्व समय में इन्द्रादि देवगण दैत्यों से पराजित होकर सब भयभीत होते हुए अपनी अमरावती को छोड़कर इधर-उधर भाग गये ।२। असुरों से उत्पीड़ित होकर समस्त देवता कश्यप ऋषि के पास पहुँचे और भयाकुल होकर दोनों हाथ जोड़कर कन्धा झुकाते हुए उन्हें प्रणाम किया ।३। इसके अनन्तर अपने दैत्यों से होने वाले पराजय के दुःख के विषय में ऋषि से आदर पूर्वक प्रार्थना की ।४। हे तात ! देवगण के पिता भगवान शिव में आसक्त होने के कारण उनकी उस प्रार्थना को सुनकर विशेष दुःखित हुए ।५। हे मुने ! तब परम शान्त बुद्धि वाले कश्यप ऋषि ने देवताओं को आश्वासन देते हुए धैर्य बंधाया और प्रसन्नता के साथ विश्वनाथ की पुरी काशी को चले गये ।६। वाराणसी में गंगा स्नान कर विधिपूर्वक अपना नित्य नैमित्तिक कर्म सादर समाप्त कर उमा के सहित जगदीश्वर विश्व नाथ का अर्चन किया ।७।

शिवलिंगं सुसंस्थाप्त चकार विपुलं तपः ।
शम्भुमुदिश्य सुप्रीत्या देवानां हितकाम्यमा ॥८
महान्कालो व्यतीताय तपस्तस्य वै मुने ।
शिवपादाम्बुजासक्तमनसो धैर्य्यशालिनः ॥९
अथ प्रादुरभूच्छम्भुर्वर दातुं तदर्षये ।
स्वपदासक्तमनसे दीनबन्धुः सतां गतिः ॥१०
परं ब्रूहीति चोवाच सुप्रसन्नोमहेश्वरः ।

कश्यपं मुनिशार्दूल स्वभक्त भक्तवत्सलः ॥११
दृष्ट्वाऽथ त महेशानं स प्रणम्य कृताञ्जलिः ।
तुष्टाव कश्यपो हृष्टो देवतातः प्रसन्नधीः ॥१२
देवदेव महेशान शरणागतवत्सल ।
सर्वेशः परमात्मा त्वं ध्यानगम्योऽद्वयोऽव्ययः ॥१३
बलनिग्रहकर्त्ता त्वं महेश्वरं सतां गतिः ।
दीनबन्धुर्दयासिन्धुर्भक्तरक्षणदक्षधीः ॥१४

काशीपुरी में कश्यप ऋषि ने शिव के लिङ्ग की स्थापना करके देव-गण की भलाई करने की इच्छा से शिव को प्रसन्न करने के लिए प्रेम भाव के साथ अत्यन्त कठिन तपस्या की ।८। हे मुनिश्वर ! इस तरह विश्वनाथ के चरणों में धीरज के साथ मन लगाकर तपश्चर्या करते हुए कश्यप मुनि का बहुत सा समय व्यतीत हो गया ।९। इसके पश्चात् ऐसे मनोयोग से कठिन तपस्या करने वाले ऋषि को परम सन्तुष्ट होकर प्रसन्नता से वरदान देने के लिए सत्पुरुषों का उद्धार करने वाले दीन-बन्धु शिव प्रकट होगए ।१०। उस समय शिव ने भक्तवत्सलता के कारण द्रवीभूत होकर परम भक्त कश्यप ऋषि से कहा—लो, मेरा यह वरदान ग्रहण करो ।११। भगवान् महेश्वर के साक्षात् दर्शन कर कश्यप ऋषि अत्यन्त हर्षित हुए और उत्तम बुद्धि वाले कश्यप ने साञ्जलि उनको प्रणाम कर स्तुति करना आरम्भ किया ।१२। कश्यप ऋषि ने निवेदन किया—हे देवदेव ! हे शरणागत वत्सल ! आप सब के स्वामी, परमेश और ध्यान-योग से प्राप्त करने के योग्य हैं । आप सर्वदा अविनाशी एव अद्वैत रूप हैं ।१३। हे महेश्वर ! आप बल के अवरोधक, सज्जनों को सद्गति देने वाले, दीन-हीन के बन्धु, दया के अगाध सागर और अपने भक्तजनों की रक्षा करने में कुशल हैं ।१४।

एते सुरास्त्वदीया हि त्वद्भक्ताश्च विशेषतः ।
दैत्यैः पराजिताश्चाद्य पाहि तान्दुःखितान् प्रभो ॥१५
असमर्थो रमेशोऽपि दुःखमस्ते मुहुर्मुहु ।
अतः सुरामच्छरणा देवयन्तोऽसुख च तत् ॥१६

तदर्थं देवदेवेश देवदुःखविनाशक ।
त्वत्पूरितां तपोनिष्ठां प्रसन्नार्थं तवासदम् ॥१७
शरनं ते प्रपन्नोऽस्मि सर्वथाऽहं महेश्वर ।
कामं मे पूरय स्वामिन्देवदुःख विशाशयः ॥१८
पुत्रदुःखैश्च देवेशः दुःखितोऽहं विशेषतः ।
सुखिनं कुरु मन्मीश सहायस्त्वं दिवौकसाम् ॥१९
भूत्वा मम सुता नाश देवायक्षाः पराजिताः ।
दैत्यैर्महाबलैः शम्भो सुरानन्दप्रदो भव ॥२०
सदैवास्तु महेशान सर्वलेखसहायकृत् ।
यथा दैत्यकृता बाधा न बाधेत सुरान्प्रभो ॥२१

हे प्रभो ! ये समस्त देवगण आपके हैं और विशेष रूप से ये आपकी भक्ति करने वाले हैं। इस समय ये विचारे असुरों से पराजित होकर महादुःखित हो रहे हैं। आप कृपा कर इनकी रक्षा कीजिये ।१५। भगवान् विष्णु भी स्वयं असमर्थ होकर आपको ही आकर कष्ट देते हैं। अतएव देवगण दुःखित होते हुए बार-बार मेरी शरण में आते हैं और अपने उत्पीड़न की बात कहा करते हैं ।१६। हे देवेश्वर ! देवों के दुःख विनाशक ! अपने इसी मनोरथ की पूर्णता के लिए आपको प्रसन्न करने को मैंने इस घोर तपस्या का अनुष्ठान किया है ।१७। हे स्वामिन् ! हे महामहेश्वर ! मैं सब प्रकार से अब आपकी शरण में आ गया हूँ। आप कृपा कर मेरी कामना सफल करते हुए देवगण की पीड़ा का निवारण करें ।१८। हे ईश ! मैं अपने आत्मजों के दुःख से विशेष दुःखित हो रहा हूँ। आप स्वयं सर्वदा देवों के सहायक रहे हैं अब इनका दुःख दूर कर मुझे सुख प्रदान करे ।१९। हे शम्भो ! हे नाथ ! देवगण मेरे पुत्र होते हुए इन दुष्ट दैत्यों से पराजित हुए हैं। आप सदा यक्ष और देवों को आनन्द देने वाले हैं ।२०। हे महेशान ! आप समस्त देवगण की सहायता करने वाले हैं। अतः अब ऐसा अपना अनुग्रह करें जिससे दैत्यों द्वारा देवताओं को कोई पीड़ा की बाधा उपस्थित न हो ।२१।

इत्युक्तस्य तु सर्वशस्तथेति प्रोच्य शंकरः ।

पश्यत तस्य भगवांस्तत्रैवान्तर्दधे हरः ॥२२
कश्यपोऽपि महाहृष्टः स्वस्थानमगमनद्रुतम् ।
देवेभ्यः कथयामास सर्ववृत्तान्तमादरात् ॥२३
तत स शङ्करः सर्वं सत्यं कर्तुं स्वकं वच ।
सुरभ्यां कश्यपाज्जज्ञे एकादशस्वरूपवान ॥२४
महोत्सवस्तदाऽऽसीद्धै सर्वं शिवमवं त्वभूत् ।
आसन्हृष्टाः सुराश्चाथ मुनिना काश्यपेन च ॥२५
कपाली १ पिंगलो २ भीमो ३ विरूपाक्षो ४ विलोहितः ५ ।
शास्ताऽ६ जपाद७ हिर्बुध्न्यः शंभु८ श्चण्डो १० भवस्तथा ११।२६
एकामशैते रुद्रास्तु सुरभीतनयाः स्मृताः ।
देवकार्यार्थमुत्पन्नाः शिवरूपाः सुखास्पदाः ॥२७
ते रुद्राः काश्यपा वीरा महाबलपराक्रमाः ।
दैत्याञ्जघ्नुश्च संग्रामे देवसाहाय्यपराकारिणः ॥२८

नन्दीश्वर ने कहा – जब कश्यप ऋषि ने ऐसी दीन प्रार्थना की तो 'ऐसा ही होगा' इतना कहकर उनके देखते हुए ही भगवान शंकर वहाँ ही अन्तर्हित हो गये ।२२। इसके अनन्तर कश्यप मुनि अत्यन्त प्रसन्नता के साथ शीघ्र ही अपने स्थान पर लौट आये और यह समस्त वृतान्त प्रेम पूर्वक देवगण को सुना दिया ।२३। उसके पश्चात् भगवान शिव अपना वचन सत्य करने के लिए एकादश स्वरूप धारण कर कश्यप ऋषि से सुरभि में प्रकट हुए ।२४। उस समय विश्व में सर्वत्र आनन्दोल्लास छा गया । ऐसा प्रतीत होता था मानो यह जगत् सब शिव स्वरूप ही हो गया है । समस्त देवगण कश्यप जी से बहुत अधिक प्रसन्न और उत्सव मनाने लगे ।२५। सुरभि के एकादश पुत्रों के नाम कपाली-पिंगल भीम विरूपाक्ष-विलोहिता-शास्त्रा-अहिर्बुध्न्य-शम्भु चण्ड और भव हुए थे ।२६। ये एकादश रुद्र सुरभि के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए हैं और इन सबका उद्-भव केवल देवगण के कार्य सम्पादन करने ही के लिए हुआ था । ये सब सुख के आलय साक्षात् शिव के स्वरूप हैं ।२७। ये महान बली एवं परम-

पराक्रमी वीर थे। कश्यप के पुत्र रूप में उत्पन्न होकर सुरों की सहायता इन ग्यारह रुद्रों का प्रादुर्भाव हुआ। इन्होंने युद्ध में दैत्यों का संहार किया।२८।

तद्रुद्रकृपया देवा दैत्याञ्जित्वा च निर्भयाः।
चक्रुः स्वराज्यं सर्वे ते शक्राद्याः स्वस्थमानसाः ॥२९
अद्यापि ते महारुद्राः सर्वे शिवस्वरूपकाः।
देवानां रक्षणार्थाय विराजन्ते सदा दिवि ॥३०
ऐशान्याम्पुरि ते वासं चक्रिरे भक्तवत्सलाः।
विरमन्ते सदा तत्र नानालीलाविशारदाः ॥३१
तेषामनुचरा रुद्राः कोटिशः परिकीर्तिताः।
सर्वत्र संस्थितास्तत्र त्रिलोकेष्वभिभागशः ॥३२
इति ते वर्णितास्तातावतारां शङ्करस्य वै।
एकादशमिता रुद्राः सर्वलोकसुखावहाः ॥३३
इदमाख्यानममलं सर्वपापप्रणाशकम्।
धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वकामप्रदायकम् ॥३४
य इदं शृणुयात्तात श्रावणेद्वा समाहितः।
इह सर्वसुखं भुक्त्वा ततो मुक्ति लभेत सः ॥३५

इसके उपरान्त एकादश रुद्रों के अनुग्रह से दैत्यों पर विजय प्राप्त कर देवगण ने निर्भय होकर इन्द्रादि के सहित सुखपूर्वक अपने राज्य के आनन्द का अनुभव किया।२९। आज तक भी शिव के स्वरूप वाले ये महारुद्र देवगण की रक्षा करने के लिए निरन्तर देवलोक में विराजमान रहते हैं।३०। परम भक्तवत्सल विविध लीला-कुशल ये ईशान दिशा में सदा निवास करते हुए वहाँ रमण किया करते हैं।३१। उसके अनुगामी सेवक करोड़ों की संख्या में हैं जो कि त्रिभुवन में सब जगह चारों ओर स्थित रहा करते हैं।३३। हे तात ! हमने तुम्हारे समक्ष से भगवान शिव के इन एकादश अवतारों का वर्णन कर दिया। यह चरित्र सबको अत्यन्त सुख देने वाला होता है ।३३। जो कोई भी इस परम पावन चरित्र को सुनता या सुनाता है वह इस लोक में समस्त लौकिक सुखों का उपभोग कर अन्त समय में मोक्ष की प्राप्ति किया करता है।३४-३५।

दत्तात्रेय, दुर्वासा और चन्द्रमा का जन्म

अथान्यच्चरितं शम्भोः शृणु प्रीत्यामुने ।
यथाबभूव दुर्वासाः शंकरो धर्महेतवे ।।१
ब्रह्मपुत्रा बभूवात्रितपस्वी ब्रह्मद्वित्प्रभुः ।
अनसूयापतिर्धीमान्ब्रह्म.ज्ञातिपालकः ।।२
सुनिर्देशाद्ब्रह्मणो हि सस्त्रीकः पुत्रकाम्यमा ।
स त्र्यक्षकुलनामानं ययौ च तपसे गिरिम् ।।३
प्राणनायम्य विधिवन्निविन्ध्यातटिनीतटे ।
तपश्चचार सुमहद्दन्दोऽब्दशतं मुनिः ।।४
य एक ईश्वरः कश्चिदविकारो महाप्रभुः ।
स ए पुत्रवरं दद्यादिति निश्चितमानसः ।।५
बहुकालो व्यतीयात तस्मिन्स्तपति सत्तपः ।
आविर्वभूव तत्मात्तु शुचिज्ज्वाला महीयसी ।।६
तयासन्निखिलाः लोका दग्धप्रीया मुनीश्वराः ।
तथा सुरर्षयः सर्वे पीडिता वासवादयः ।।७

नन्दीश्वर ने कहा—हे महामुने ! अब आप भगवान शिव का वह चरित्र प्रेमपूर्वक सुनो जिसमें शिव ने धर्म के निमित्त से दुर्वासा का स्वरूप ग्रहण किया था ।१। परम तपस्वी, पूर्ण ब्रह्म के ज्ञाता, महामनीषी, विधाता के अत्यन्त आदेश-पालक और अनसूया के पति अत्रि मुनि ब्रह्मा जी के पुत्र थे ।२। अपने पिता की आज्ञा मानकर पुत्र प्राप्ति की इच्छा से अत्रि अपनी पत्नी के साथ त्र्यक्ष नामक गिरि पर तपश्चर्या करने के लिए चले गये ।३। विन्ध्य गिरि के निकट नदी तट पर अत्रि मुनि ने सविधि अपने प्राणों को रोक कर निश्चिन्त रूप से सौ वर्ष तक महाघोर तपस्या की ।४ उस समय अत्रि ने अपने हृदय में ऐसा ठान लिया था कि जो भी कोई अधिकारी एकमात्र परमेश्वर महाप्रभु हैं वे मुझे अवश्य ही श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त करने का वरदान देंगे ।५। इस तरह अत्यन्त कठिन तपस्या करते हुए जब अधिक समय व्यतीत हो गया तो उनके मस्तक से बहुत ही यीक्ष्ण पवित्र अग्नि की ज्वाला प्रकट हुई ।६। उस अग्नि-

ज्वाला का ऐसा तीव्रतम तेज था कि समस्त इन्द्रादि देवगण, मुनिमण्डल, ऋषि समूह और लोक भस्म होकर पीड़ित होने लगे ।७।

अथ सर्वे वासवाद्या सुराश्च मुनयो मुने ।
ब्रह्मस्थान ययुः शीघ्रं तज्ज्वालातिप्रपीडिताः ॥८
नुत्वा नुत्वा विधिन्देवास्तत्स्वदुःखन्न्यवेदयन् ।
ब्रह्मा सह सुरैस्तात विष्णुलोक यथावरम् ॥९
तत्र गत्वा रमानाथं नुत्वा नुत्वा विधिः सुरैः ।
स्वदु खं तत्समाचख्यौ विष्णवेऽनन्तकं मुने ॥१०
विष्णुश्च विधिना देवैं रुद्रस्थानं ययौ द्रुतम् ।
हरं प्रणम्य तत्रैत्यंतुष्टाव परमेश्वरम् ॥११
स्तुत्वा बहुतया विष्णुं स्वदु खं च न्यवेदयत् ।
शर्वं ज्ज्वालासमुद्भूतमत्रेश्च तपसः परम् ॥१२
अथ तत्र समेतास्तु ब्रह्माविष्णुमहेश्वरा ।
मुने समंत्रयाञ्चक्रु रन्योन्यं जगतां हितम् ॥१३
तदा ब्रह्मादयो देवास्त्रयस्ते वरदर्षभाः ।
जग्मुस्तदाश्रमं शीघ्रं वरं दातुं तदर्षये ॥१४
स्वचिह्नचिह्नतांस्तान्स दृष्ट्वाऽत्रिमुंनिसत्तमः ।
प्रणनाम च तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिरादरात् ॥१५

हे मुनिवर ! उस समय इन्द्रादि देववृन्द और मुनि आदि सभी उस अग्नि से संतप्त होकर शीघ्र ही ब्रह्माजी के निवास स्थान पर गये ।८। हे तात ! वहाँ पहुँच कर सबने प्रणाम पूर्वक स्तवन कर ब्रह्माजी से अपने दुःख का वृत्तान्त बताया । तब ब्रह्मा भी उन सबको साथ लेकर विष्णु-लोक को गये ।९। हे मुनिराज ! वहाँ पहुँचकर सब देवों के सहित विष्णु को बार-बार प्रणाम करते हुए उनसे अपने दुःख की प्रार्थना की ।१०। इसके अनन्तर इन सबको अपने साथ लेकर भगवान् विष्णु शिव के समीप गये । वहाँ महेश्वर को प्रणाम करके सभी लोग भगवान् शङ्कर की स्तुति करने लगे ।११। अधिक समय तक स्तुति करने के पश्चात् व्यापक शिव से अत्रि के तप द्वारा उत्पन्न अग्नि के तेज से होने वाला

अपने दुःख का निवेदन किया ।१२। हे मुने ! उस समय वहाँ ब्रह्मा.विष्णु और महेश इन तीनों ने परस्पर में मिलकर समस्त लोकों के कल्याण के लिये परामर्श करना आरम्भ कर दिया १३। हे देव ! खूब सोच विचार कर ब्रह्मादि तीनों देवता अत्रि ऋषि को वरदान देने के लिए शीघ्रता से ऋषि के आश्रम में गये ।१४। वह उस समय अत्रि ने इन तीनों को अपने-अपने विशेष चिह्नों से अंकित देखकर सादर सबको परम प्रिय वाणी द्वारा प्रणाम किया और स्तुति करने लगे ।१५।

ततः स विस्मितो विप्रस्तानुवाच कृताञ्जलिः ।
ब्रह्मपुत्रो विनीतात्मा ब्रह्मविष्णुहराभिधान् ॥१६
हे ब्रह्मन् हे हरे रुद्र पूज्यास्त्रिजगताम्मताः ।
प्रभवश्चेश्वराः सृष्टिरक्ष संहारकारकाः ॥१७
एक एव मया ध्यात ईश्वरः पुत्रहेतवे ।
यः कश्चिदीश्वरः ख्यातो जगतां स्वस्त्रिया सह ॥१८
यूयं त्रयः सुराः कस्मादगता वरदर्षभाः ।
एतन्मे संशय छित्त्वा ततो दत्तेप्सितं वरम् ॥१९
इति श्रुत्वा ववस्तस्य प्रत्यूचुस्ते सुरास्त्रयः ।
यादृक्कृतस्ते संकल्पस्तथैवाभून्मुनीश्वर ॥२०
वयं त्रयो भवेशानाः समाना वरदर्षभाः ।
अस्मदंशभवास्तमाद्भविष्यन्ति सुतास्त्रयः ॥२१

इसके अनन्तर परम विनीत ब्रह्मा के आत्मज अत्रि विस्मित होकर ब्रह्मा विष्णु और महेश इन देवों से हाथ जोड़ कर कहने लगे ।१६। अत्रि मुनि ने कहा—हे ब्रह्मन ! हे विष्णो ! हे महेश्वर ! आप लोग इस समस्त विश्व के परम पूज्य माने जाते हैं और इस जगत् के आप प्रभु ईश्वर तथा सृजन, पोषण और विनाश के करने वाले हैं ।१७। मैंने तो अपने पुत्र की प्राप्ति के लिए केवल शिव का ही स्त्री के सहित तप में ध्यान स्मरण किया था क्योंकि शंकर संसार में ईश्वर विख्यात हैं ।१८। हे वरदाताओं में श्रेष्ठ ! अब आप तीनों ही देवता यहाँ किस कारण से आये हैं ? पहिले मेरे संशय को मिटाकर फिर वरदान देने की कृपा

करें ।१९। हे मुने ! अत्रि के इन वचनों को सुनकर इसका उत्तर उन तीनों देवों ने यह दिया कि हे अत्रि मुने ! तुमने जो भी हृदय में संकल्प किया है वह उसी तरह से पूर्ण होगा ।२०। तीनों देवों ने कहा—हम तीनों ब्रह्मा, विष्णु और महेश समान वर देने वाले हैं। इसलिए हमारे अंशों से जन्म ग्रहण करने वाले तुम्हारे एक नहीं तीन पुत्र होंगे ।२१।

विदिता भुवने सर्वे पित्रोः कीर्तिविवर्द्धनाः ।
इत्युक्त्वा ते त्रयो देवाः स्वधामानि ययुर्मुदा ।२२
वरं लब्ध्वा मुनिः सोऽथ जगाम स्वाश्रमं मुदा ।
युतोऽनुसूयया प्रीतो ब्रह्मानन्दप्रदो मुने ॥२३
अथ ब्रह्मा हरिः शम्भुरवतेरुः स्त्रियां ततः ।
पुत्ररूपैः प्रसन्नास्ते नानालीलाप्रकाशकाः ॥२४
विधेरंशाद्विधुजज्ञेऽनसूयायां मुनीश्वरात् ।
आविर्बभूवोदधितः क्षिप्तो देवैः स एव हि ॥२५
विष्णोरंशास्त्रियां तस्यामत्रेर्दत्तो व्यजायत ।
सन्यासपद्धतियेन वर्द्धिता परमा मुने ॥२६
दुर्वासा मुनिशार्दूलः शिवांशान्मुनिसत्तमः ।
जज्ञे तस्यां स्त्रियामत्रर्वरधर्मप्रवर्तक ॥२७
भूत्वा रुद्रश्च दुर्वासा ब्रह्मतेजोविवर्द्धनः ।
चक्रे धर्मपरोक्षाञ्च बहूनां स दयापरः ॥२८

वे तीनों पुत्र ऐसे होंगे जो अपने माता-पिता की कीर्त्ति की वृद्धि करेंगे इतना कहकर वे तीनों देव प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने निवास स्थानों को चले गये ।२२। हे मुनिवर ! इसके उपरान्त अत्रि मुनिजी इच्छित वर पाकर आनन्द अनसूया के सहित प्रसन्नचित्त से अपने स्थान को चले गये और ब्रह्मानन्द को पाने लगे ।२३। इसके पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु महेश अत्रि की पत्नी अनसूया के उदर से पुत्र रूपमें परम प्रसन्न तथा विविध लीलाओं के रचने वाले उत्पन्न हुए ।२४। अनसूया के गर्भ से अत्रि के द्वारा ब्रह्माजी के अंश से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ जो कि देवों के द्वारा फैंके जाने पर फिर समुद्र से प्रकट हुआ था ।२५। भगवान् विष्णु के अंग से अनसूया

में अत्रि के द्वारा दत्तात्रेय भगवान् उद्भूत हुए जिनने जगत् से संन्यास की विशाल पद्धति का प्रचार किया था ।२६। हे मुनिवर ! भगवान् शङ्कर के अंश से अनसूया की कुक्षि से धर्म के श्रेष्ठ प्रवर्तक दुर्वासा उत्पन्न हुए ।२७। भगवान् महेश्वर ने ब्रह्मतेज की वृद्धि करने वाले दुर्वासा के स्वरूप से समुत्पन्न होकर दयालुता के साथ बहुतों की धर्म-निष्ठा की जाँच की थी ।२८।

सूर्य्यवंशे समुत्पन्नो योऽम्बरीषो नृपोऽभवत् ।
तत्परीक्षामकार्षीत्स तां शृणु त्वं मुनीश्वर ।।२९
सोऽम्बरीषो नृपवरः सप्तद्वीपरमापतिः ।
नियमं हि चकारासावेकादश्यां व्रते दृढम् ।।३०
एकादश्या व्रतं कृत्वा द्वादश्यां चैव पारणाम ।
करिष्यामीति सुदृढ़सकलल्पस्तु नराधिप ।।३१
ज्ञात्वा तन्नियमं तस्य दुर्वासा मुनिसत्तमः ।
तदन्तिकं गतिः शिष्यैर्बहुभिः शकरांशजः ।।३२
पारणे द्वादशीं स्वल्पां ज्ञात्वा यावत्स भोजनम् ।
कर्त्तुं व्यवसितस्तावदागतं स न्यमन्त्रयत् ।।३३
ततः स्नानार्थमगमद्दुर्वासाः शिष्यसंयुतः ।
विलम्बं कृतवांस्तत्र परीक्षार्थं मुनिबहु ।।३४
धर्मविघ्नं तदा ज्ञात्वा स नृपः शास्त्रशासनात् ।
जलं प्राश्य स्थितस्तत्र तदागमनकाँक्षया ।।३५

हे मुनीश्वर ! सूर्यवंश में समुत्पन्न परम धार्मिक राजा अम्बरीष की धर्म परीक्षा इन्हीं दुर्वासा मुनि ने की थी, उस चरित्र को मैं सुनाता हूँ। तुम उसे श्रवण करो ।२९। राजा अम्बरीष विशाल सातद्वीप की भूमि का अधीश्वर था। एकादशी के दिन सविधि उपवास करने का उसका बहुत ही दृढ़ नियम था ।३०। राजा अम्बरीष का ऐसा प्रण था कि मैं सदा एकादशी में उपवास करके द्वादशी में ही पारण किया करूँगा ।३१। भगवान् शंकर के अंश से समुत्पन्न हुए दुर्वासा मुनि ने

राजा के इस दृढ़ संकल्प को जानकर अपने शिष्य-वर्ग के साथ राजा अम्बरीष के यहाँ पदार्पण किया ।३२। अम्बरीष द्वादशी तिथि का थोड़ा सा ही शेष समय जानकर अपने एकादशी व्रत का पारण करने ही वाले थे कि वहाँ दुर्वासा पहुंच गये । राजा ने उसको निमन्त्रण दे दिया था ।३३। राजा का निमन्त्रण स्वीकार कर दुर्वासा शिष्यों के सहित स्नानादि करने को चले गये । दुर्वासा मुनि ने राजा की दृढ़ता की परीक्षा करने के हेतु से वहाँ जान बूझकर अधिक विलम्ब कर दिया ।३४। राजा ने अपने धर्म में विघ्न समझकर शास्त्र की आज्ञा के अनुसार जल ग्रहण कर पारण कर लिया और दुर्वासा की प्रतीक्षा में भोजन नहीं किया ।३५।

एतस्मिन्नंतरे तत्र दुर्वासा मुनिरागतः ।
कृताशनं नृप ज्ञात्वा परीक्षार्थं धृताकृतिः ॥३६
चु क्रोधति नृपे तस्मन्परीक्षार्थं वृषस्य सः ।
प्रोवाच वचनं तूग्रं स मुनिः शंकरांशजः ॥३७
मां निमन्त्र्य नृपाभोज्य जलं पीतं त्वयाधम ।
दर्शयामि फलं तस्य दुष्टदण्डधरो ह्यहम् ॥३८
इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्षो नृपं दग्धुं समद्यतः ।
समुत्तस्थौ द्रुतं चक्रं तत्स्थं रक्षार्थमैश्चरम् ॥३९
प्रजज्वालाति तं चक्रं मुनिं दग्धुं सुदर्शनम् ।
शिवरूपं तमज्ञात्वा शिवमायाविमोहितम् ॥४०
एतस्मिन्नंतरे व्योमवाण्युवाचाशरीरिणी ।
अम्बरीषं महात्मानं ब्रह्मभक्तं च वैष्णवम् ॥४१
सुदर्शनमिदं चक्रं हरये शम्भुनाऽर्पितम् ।
शांत कुरु प्रज्वलितमद्य दुर्वाससे नृप ॥४२

उसी समय मुनिराज दुर्वासा वहाँ आ गये और राजा को भोजन किया हुआ समझकर उस पर परीक्षा के लिए अत्यधिक क्रोधित हुए ।३६। शिव के अंशावतार दुर्वासा मुनि धर्म की जाँच करते हुए राजा से रोषावेश में आकर कठोर वचन कहने लगे ।३७। दुर्वासा ने राजा

अम्बरीष से कहा—अरे अधम नृप तूने ! मुझे तो भोजन का निमन्त्रण दे दिया और मुझे भोजन कराने के पूर्व ही जलपान कर लिया। मैं तुझे इसका फल दिखाता हूँ क्योंकि मैं तुझ जैसे दुष्टों को दण्ड देने वाला हूँ।३८। क्रोध से अरुण नेत्र वाले ऋषि इतना कहकर राजा को भस्मीभूत करने को उद्यत हुए थे कि नृप के समीप स्थित सुदर्शन चक्र ने प्रकट होकर उनकी रक्षा की ।३९। शिव की माया से मोहित होकर दुर्वासा को शिव का ही रूप समझ कर मुनि को दग्ध करने के लिए सुदर्शन चक्र प्रज्ज्वलित रूप वाला हो गया।४०। उसी समय वैष्णव और ब्राह्मणों के भक्त महात्मा अम्बरीष से बिना शरीर वाली व्योम वाणी ने कहा—हे नृप ! इस समय दुर्वासा को भस्म करने के लिए परम प्रज्ज्वलित शिव से ही प्राप्त भगवान विष्णु के इस सुदर्शन चक्र को प्रार्थना द्वारा शान्त कर दो।४१-४२।

दुर्वासाध्यं शिवः साक्षाद्यच्चक्रं हरयेऽर्पितम् ।
एवं साधारणमुनिं न जानीहि नृपोत्तम ॥४३
तत्र धर्मपरीक्षार्थमागतोऽयं मुनीश्वरः ।
शरणं याहि तस्याशु भविष्यत्यन्यथा लयः ॥४४
इत्युक्त्वा च नभोवाणी विरराम मुनीश्वर ।
अस्तावीत्स हरांशं तमम्बरीषोऽपि चादरात् ॥४५
तद्यस्ति दत्तमिष्टं च स्वधर्मो वा स्वनुष्ठितः ।
कुलं नो विप्रदैवं चेद्धरेरस्त्रं प्रशाम्यतु ॥४६
यदि नो भगवान्प्रीतो मद्भक्तो भक्तवत्सलः ।
सुदर्शनमिदं चास्त्रं प्रशाम्यपु विशेषतः ॥४७
इति स्तुवति रुद्राग्रे शैव चक्रं सुदर्शनम् ।
अशाम्यत्सर्वथा ज्ञात्वा तं शिवांशं सुलब्धीः ॥४८

हे नृपश्रेष्ठ ! यह दुर्वासा मुनि साक्षात् महेश्वर ही हैं। इन्हीं ने इस सुदर्शन चक्र को विष्णु के लिए दिया था। इन दुर्वासा को कोई सामान्य मुनि मत समझो ।४३। इस समय यह ऋषि तुम्हारी धर्म परीक्षा करने के लिए ही उपस्थित हुए हैं। अब तुम इनकी शरण में जाओ अन्यथा

प्रलय हो जायगा ।४४। नन्दीश्वर ने कहा—हे मुनीश्वर ! इतना कहकर आकाशवाणी शान्त हो गई और राजा अम्बरीष ने शिव के अंश स्वरूप दुर्वासा की स्तुति करना आरम्भ कर दिया ।४५। राजा अम्बरीष ने प्रार्थना की—यदि आपने मुझे वरदान प्रदान किया है किम्बा मैंने अपना धर्मोचित अनुष्ठान किया है, यदि मेरा कुल देवगण और ब्राह्मण वर्ग का भक्त है तो मेरा विनयपूर्ण निवेदन है कि भगवान् विष्णु का अस्त्र सुदर्शन चक्र अब शान्त हो जावे ।४६। यदि मेरे ऊपर भक्त वत्सल भगवान् परम प्रसन्न हैं मेरी प्रार्थना है कि यह सुदर्शन देव विशेष रूप से अब शान्त हो जाय ।४७। नन्दीश्वर ने कहा—हे बुद्धिशालिन् ! इस तरह शिव के समक्ष में अम्बरीष के द्वारा स्तुति किये जाने पर शिव के द्वारा प्रदान किया हुआ सुदर्शन चक्र दुर्वासा को शिव का अंश समझ कर उसी समय शान्त हो गया ।४८।

अथाम्बरीषः स नृपः प्रणनाम च तं मुनिम् ।
शिवावतारं संज्ञाय स्वपरीक्षार्थमागतम् ॥४६
सुप्रसन्नो बभूवाथ स मुनिः शंकरांशजा ।
भुक्त्वा तस्मै वरं दत्त्वा स्वाभीष्टं स्वालयं ययौ ॥५०
अम्बरीषपरीक्षायां दुर्वासश्चरितं मुने ।
प्रोक्तमन्यच्चरित्रं त्वं शृणु तस्य मुनीश्वर ॥५१
पुनर्दाशथेश्चक्रे परीक्षां नियमेन वै ।
मुनिरूपेण कालेन यः कृतो नियमो मुने ॥५२
तदैव मुनिना तेन सौमित्रिः प्रेषितो हठात् ।
तं तत्याज द्रुतं रामो बन्धुंप्रणवशान्मुने ॥५३
सा कथा विहिता लोके मुनिभिर्बहुधोदितः ।
नातो मे विस्तरात्प्रोक्ता ज्ञाता यत्सर्वथा बुधैः ॥५४
नियमं सुदृढ़ दृष्ट्वा सुप्रसन्नोऽभवन्मुनिः ।
दुर्वासाः सुप्रसन्नात्मा वरं तस्मै प्रदत्तवान् ॥५५
श्रीकृष्णनियमस्थापि परीक्षां स चकार ह ।
तां शृणुत्वं मुनिश्रेष्ठ कथयामि कथां च ताम ॥५६

राजा ने इसके अनन्तर अपनी परीक्षा करने के लिए ही समागत दुर्वासा मुनि को भगवान् शिव का अंश समझ कर उन्हें सादर प्रणाम किया ।४९। उस समय शिव के अंश से उत्पन्न होने वाले दुर्वासा अम्बरीष पर बहुत अधिक प्रसन्न हुए और उसके भोजन को स्वीकार कर अभीष्ट स्थान को वापिस चले गये ।५०। हे मुनीश्वर ! मैंने अभी तो यह अम्बरीष की परिक्षा करने से सम्बन्वित दुर्वासा के चरित्र का वर्णन किया है। अब इनके अन्य चरित्र को मैं सुनाता हूँ। उसे श्रवण करो ।५१। हे मुने ! इसके अनन्तर मुनिरूप को धारण करने वाले दुर्वासा ने भगवान् श्री राम की परीक्षा करने का निश्चय किया। श्रीराम ने कालरूप मुनि से यह नियम निश्चित किया था कि हमारे आपके सम्वाद के समय में कोई भी न आवेगा ।५२। दुर्वासा मुनि ने यह जानकर श्रीराम का नियम भंग करने के लिए हठ करके उनके समीप में लक्ष्मण को भेज दिया था और श्रीराम ने अपने किये प्रण के वशीभूत होने के कारण शीघ्र ही अपने भाई लक्ष्मण का परित्याग कर दिया ।५३। यह कथा बहुधा मुनिगण के द्वारा कही हुए है और परम प्रसिद्ध भी है। इसे प्रायः सभी विद्वान भली भाँति जानते हैं। अतः एवं विस्तार से मैं इसका वर्णन नहीं कर रहा हूं ।५४। श्रीरामचन्द्रजी के अत्यन्त दृढ़ नियम को देखकर महर्षि दुर्वासा को बहुत ही प्रसन्नता हुई और इसके लिए श्रीराघवेन्द्र को वरदान भी दिया ।५५। हे मुनिवर ! इसी प्रकार दुर्वासा मुनि ने एकवार श्रीकृष्ण के नियम की परीक्षा की थी। मैं उस कथा को आपको सुनाता हूँ। तुम श्रवण करो ।५६।

ब्रह्मप्रार्थनया विष्णुर्वसुदेवसुतोऽभवत् ।
धराभारावतारार्थं साधूनां रक्षणाय च ॥५७

हत्वा दुष्टान्महापापान्ब्रह्मद्रोहकरान्खलान् ।
ररक्ष निखिलान्साधून्ब्राह्मणान्कृष्णनामभाक् ॥५८

ब्रह्मभक्ति चकाराति स कृष्णो वसुदेवजः ।
नित्यं हि भोजयातास सुरसान्ब्राह्मणान्बहून् ॥५९

ब्रह्मभक्तो विशेषेण कृष्णश्चेति प्रथामगति ।

संद्रष्टुकामः स मनिः कृष्णान्तिकमगान्मुने ॥६०
रुक्मिणीसहितं कृष्णं मग्न कृत्वा रथे स्वयम् ।
संयोज्य संस्थितो वाहं सुप्रसन्न उवाह तम् ॥६१॥
मुनी रथात्समुत्तोर्य्यं दृष्ट्वा तां दृढतां पराम् ।
तस्मै भूत्वा सुप्रसन्नो वज्राङ्गत्ववरं ददौ ॥६२

ब्रह्माजी की प्रार्थना पर भगवान् विष्णु ने पृथ्वी का भार हल्का करने और साधु पुरुषों की रक्षा करने के लिए वसुदेव के पुत्र होकर अवतार लिया था ।५७। श्रीकृष्ण वासुदेव ने महान् पापी दुरात्माओं तथा ब्राह्मणों से द्रोह करने वाले खलों का सहार कर समस्त साधु ब्राह्मणों का त्राण किया ।५८। वासुदेव श्रीकृष्ण ब्राह्मणों के अत्यन्त भक्त थे और अनेकों ब्राह्मणों को प्रतिदिन सुन्दर स्वादिष्ट सर वाले भोजन कराया करते थे ।५९। हे मुनिश्रेष्ठ ! श्रीकृष्ण ब्राह्मणों की विशेष भक्ति करने वाले हैं ऐसी उनकी ख्याति सुन उनकी भी परिक्षा करने के उद्देश्य से दुर्वासा मुनि उनके पास पहुँचे ।६०। रुक्मिणी के सहित श्रीकृष्ण को अपने रथ में छोड़कर उसमें बैठ परम प्रसन्न होकर कहने लगे ।६१। दुर्वासा रथ से उतर आये और श्रीकृष्ण की इस अत्यन्त दृढ़ता से बहुत प्रसन्न होकर उनको वज्र तुल्य अङ्ग हो जाने का वरदान मुनि ने दिया था ।६२।

द्युनद्यामोकदा स्नानं कुर्वन्नग्नो व भूव ह ।
लज्जितोऽभून्मुनिश्रेष्ठो दुर्वासाः कौतुकी मुने ॥६३
तज्ज्ञात्वा द्रौपदो स्नानं कुर्वती तत्र चादरात् ।
तलज्जां छादयामास भिन्नस्वांचलदानतः ॥६४
तदादाय प्रवाहेनागतं स्वनिकटं मुनिः ।
तेनाच्छाद्य स्वगुह्यं च तस्यै तुष्टो बभूव सः ॥६५
द्रौपद्यै च वरं प्रादात्तश्चलविवर्द्धनम् ।
पाण्डवान्सुखिनश्चक्रे द्रौपदी तद्वरात्पुनः ॥६६
सडिम्भौ नृपौ कौचित्स्वावमानकरौ खलौ ।
दत्त्वा निदेशं च हरेर्नाशयामास स प्रभुः ॥६७

ब्रह्मतेजोविशेषेण स्थापयामास भूतले ।
संन्यासपद्धतिञ्चैव यथाशास्त्रविधिक्रमम् ।।६८
बहूनुद्धारयामास सूपदेशं विबोध्य च ।
ज्ञानं दत्वा विशेषेण बहून्मुक्तांश्चकार सः ।।६९
इत्थं जक्रे स दुर्वासा विचित्रं चरितं बहु ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं शृण्वतः सर्वकामदम् ।।७०
य इदं शृणुयाद्भक्त्या दुर्वासश्चरितं मुदा ।
श्रावयेद्वा परान्यश्च स सुखीह परत्र च ।।७१

हे मुने ! एक बार अत्यन्त कौतुक करने वाले मुनियों में श्रेष्ठ दुर्वासा बिल्कुल नग्न होकर भागीरथी में स्नान करने के कारण बहुत लज्जित हुए ।६३। उस समय द्रौपदी भी वहाँ स्नान कर रही थी । इससे मुनि को लज्जायुक्त देखकर उन्हें अपना वस्त्र फाड़कर सादर समर्पित किया और उनकी लज्जा दूर की ।६४। उस समय जल के बहाव में बहकर आते हुए वस्त्र को प्राप्त कर मुनि ने अपने योग्य अंग का आच्छादान किया और इस उपकार के लिए द्रौपदी पर बहुत प्रसन्न हुए ।६५। दुर्वासा ने द्रौपदी को उसके वस्त्र की वृद्धि हो जाने का वरदान दिया । इस वरदान के प्रभाव से द्रौपदी ने पांडवों को सुखी बनाया था ।६६। हंस-डिम्भ नामक एक राजा था । वह वह बहुत दुष्ट और परम स्वाभिमानी था । इसको भगवान् विष्णु का सन्देश देकर महर्षि दुर्वासा ने नष्ट कर दिया ।६७। दुर्वासा ने ब्रह्म तेज का विस्तार भूमि पर विशेष रूप से किया गया था और शास्त्रों के विधान के अनुकूल सांसारिक पद्धति का पूर्णतया प्रसार किया ।६८। मुनि ने अपने सुन्दर उपदेशों द्वारा ज्ञान देकर अनेकों का उद्धार एवं विशेष रूप से मुक्त कर दिया ।६९। दुर्वासा मुनि के इस प्रकार से अनेक अत्यन्त अद्भुत चरित्र हैं और सुनने पर समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाले हैं ।७०। जो पुरुष दुर्वासा मुनि के इस चरित्र को भक्ति के साथ आनन्दपूर्वक सुनता या सुनाता है वह इस लोक और परलोक में दोनों जगह सुख प्राप्त किया करता है ।७१।

।। दधीचि का अस्थिदान ।।

एकदा निर्जराः सर्वे वासवाद्या मुनीश्वर ।
वृत्रासुरसहायैश्च दैत्यैरासन्पराजिताः ।।१
स्वानि स्वानि वरास्त्राणि दधीचस्याश्रमेऽखिलाः ।
निः क्षिप्य सहसा सद्योऽभवन् देवाः पराजिताः ।।२
तदा सर्वे सुराः सेन्द्रा वध्यमानास्तथर्षयः ।
ब्रह्मलोकं गताः शीघ्रं प्रोचुः स्वं व्यसनं च तत् ।।३
तच्छ्रुत्वा देववचनं ब्रह्मा लोकपितामहः ।
सर्वं शशंस तत्त्वेन त्वष्ट श्चैव चिकीर्षितम् ।।४
भवद्वधार्थं जनितस्त्वष्ट्राऽयं तपसाऽसुरः ।
वृत्रो नाम महातेजाः सर्वदैत्याधिपो महान् ।।५
अथ प्रयत्नः क्रियतां भवेदस्य वधो यथा ।
तत्रोपायं श्रृणु प्राज्ञ धर्महेतोर्वदामि ते ।।६
महामुनिर्दधीचिर्यः स तपस्वी जितेन्द्रियः ।
लेभे शिवं समाराध्य वज्रास्थित्वयरम्पुरा ।।७

नन्दीश्वर ने कहा हे मुनिराज ! एक बार-इन्द्र आदि समस्त देवगण वृत्रासुर की सहायता करने वाले दैत्यों से युद्ध में पराजित हो गये और सबने अपने अस्त्रों को दधीचि मुनि के आश्रम में फेंक दिया था।१-२। उस समय समस्त देववृन्द इन्द्र को साथ लेकर और अत्यन्त पीड़ित ऋषि लोग एकत्रित होकर शीघ्र ही ब्रह्माजी के पास गये और सब ने ही अपने दुःख की ब्रह्माजी से प्रार्थना की।३। समस्त जगत् के पितामह ब्रह्माजी देवगण के वचनों को श्रवण कर त्वष्टा द्वारा करने वाली इच्छा को तात्विक रूप से देवों को कहने लगे।४। ब्रह्माजी ने कहा—वृत्रासुर महान् तेजस्वी और समस्त दैत्यों का स्वामी है। इसको त्वष्टा दैत्य ने तुम सबको मारने के लिए ही तपस्या करके पैदा किया है।५। हे प्राज्ञ ! अब जिस रीति से इसका वध हो सकता है वही उपाय धर्म के हित के विचार से मैं तुमको बतलाता हूँ। तुम सब सुन

लो ।६। पहिले किसी समय में परम तपस्वी-जितेन्द्रिय महामुनि दधीचि ऋषि ने भगवान् महेश्वर की आराधना से वज्र के समान हड्डी वाला हो जाने का वरदान प्राप्त किया है ।७।

तस्यास्थीन्येव याचध्वं स दास्यति न संशयः ।
निर्माय तैर्दण्डवज्रं वृत्रं जहि न संशयः ॥८
तच्छ्रुत्वा ब्रह्मवचनं शक्रो गुरुसमन्वितः ।
अगच्छत्सामरः सद्यो दधीच्याश्रममुत्तमम् ॥९
दृष्ट्वा तत्र मुनिं शक्रः सुवर्चान्वितमादरात् ।
ननाम साञ्जलिर्नम्रः सगुरुः सामरश्चतम् ॥१०॥
तदभिप्रायमाज्ञाय स मुनिर्बुधसत्तमः ।
स्वपत्नीं प्रेषयामास सुवर्चा स्वाश्रमान्तरम् ॥११
ततः सदेवराजश्चसामरः स्वार्थसाधकः ।
अर्थशास्त्रो भूत्वा मुनीश वाक्यमब्रवीत् ॥१२
त्वष्ट्रा विप्रकृताः सर्वे वयं देवास्तथर्षयः ।
शरण्यं त्वां महाशैवं दातारं शरणं गताः ॥१३
स्वास्थीनि देहि नो विप्र महावज्रमयानि हि ।
अस्थ्ना ते स्वपविं कृत्वा हनिष्यामि सुरद्रुहम् ॥१४

सो अब तुम किसी प्रकार से उनकी अस्थियों की याचना करो । वे निस्सन्देह अस्थियाँ दे देंगे । उन से दण्ड वज्र की रचना कर वृत्रासुर का बिना किसी सन्देह के वध करो ।८। नन्दीश्वर ने कहा—ब्रह्मा जी के इन वचनों को सुनकर गुरु के सहित तथा समस्त देवों के सहित इन्द्र ने मुनि के आश्रम के लिये प्रस्थान कर दिया ।९। वहाँ अपनी सुवर्चा के साथ विराजमान दधीचि मुनि को देखकर सब ने आदर पूर्वक हाथ जोड़ कर प्रणाम किया ।१०। उस वक्त विद्वद्वर दधीचि ने उनके हार्दिक अभिप्राय को जान लिया और सुवर्चा को आश्रम के अन्दर भेज दिया ।११। उस समय परम स्वार्थी देव स्वामी इन्द्र अर्थशास्त्र में परायण होकर मुनि से प्रार्थना करने लगा ।१२। देवराज इन्द्र ने कहा—हम सब देवगण तथा ऋषि वृन्द त्वष्टा के द्वारा सताये हुए परम

दु:खित होकर अति दानशील महाशिवभक्त और शरण में आये हुओं पर दया करने वाले आपकी शरण में प्राप्त हुए हैं ।१३ हे विप्रवर ! आप अपनी वज्र तुल्य अस्थियाँ हमको प्रदान करें जिनसे हम वज्र दण्ड निर्माण कर देवशत्रु इस वृत्रासुर का वध कर सकें ।१४।

इत्युक्तस्तेन स मुनि: परोपकारणे रत: ।
ध्यात्वा शिवं स्वनाथं हि विससर्जकलेवरम् ।।१५
ब्रह्मलोक गत: सद्य: स मुनिर्ध्वस्तबन्धन: ।
पुष्पवृष्टिरभूत्तत्र सर्वे विस्मनमागता ।।१६
अथ गां सुरभिं शक्र आहूयाशु ह्यलेहयत् ।
अस्त्रनिर्मितये त्वाष्ट्र निर्दिदेश तदस्थिभि: ।।१७
विश्वकर्मा तदाज्ञप्तश्चक्लृपेऽस्त्राणि कृत्स्नश: ।
तदस्थिभिर्वज्रामयै: सुदृढै: शिववर्चसा ।।१८
तस्य वंशोद्भवं वज्रं शरो ब्रह्मशिरोस्तथा ।
अन्यास्थिभिर्बहूनि स्वपरायण्यस्त्राणि निर्ममे ।।१६
तमिन्द्रो वज्रमुद्यम्य वर्द्धित: शिववचसा ।
वृत्रमभ्यद्रवत्क्रुद्धो मुने रुद्र इवान्तकम् ।।२०
तत: शक्र सुसन्नद्धस्तेन वज्रेण संद्रुतम् ।
उच्चकर्त शिरो वात्रं गिरिश्रृङ्गमिवोजसा ।।२१
तदा समुत्सवस्नात वभूव त्रिदिवौकसाम् ।
तुष्टुवुर्निर्जरा: शक्रम्पेतु कुसुमवृष्टय: ।।२२

देवों की इस प्रार्थना को सुनते ही परोपकार में तत्पर दधीचि मुनि ने भगवान् शंकर के चरणों का ध्यान करके तुरन्त ही अपने शरीर का त्याग कर दिया ।१५। दधीचि मुनि समस्त बन्धनों से विमुक्त होकर शीघ्र ही ब्रह्मलोक में गये । उस समय आकाश से पुष्प वर्षा होने लगी और सब को बहुत अधिक आश्चर्य हुआ ।१६। उसी समय महेन्द्र ने कामधेनु को आज्ञा देकर ऋषि की सब अस्थियाँ निकलवा लीं और उनसे वज्रदण्ड का निर्माण करने के लिए त्वष्टा को आदेश दे दिया ।१७। विश्वकर्मा ने आज्ञा प्राप्त होते ही शिव के तेज से परिपूर्ण परम पुष्ट

वज्रमय अस्त्र उन अस्थियों से बना दिया ।१८। उसके वंश से समुत्पन्न हुआ वज्र तथा ब्रह्मा के शिर का त्राण हुआ और उन अस्थियों से अपने और पराये अस्त्र बनाये गये ।१६। हे मुने ! तब फिर इन्द्रदेव शिव के तेज से सुसम्पन्न होकर उस वज्र को उठाते हुए क्रोध में भरकर शिव के ही समान वृत्रासुर के मस्तक को पर्वत शिखर के तुल्य काटकर फैंक द्वारा शीघ्र ही वृत्रासुर के मस्तक को पर्वत शिखर के तुल्य काटकर फैंक दिया ।२१। हे तात ! वृत्रासुर का वध हो जाने पर देवगण अत्यन्त सन्तुष्ट होकर महाआनन्दोत्सव मनाने लगे और इन्द्रदेव के ऊपर अन्तरिक्ष से पुष्पों की वर्षा हुई ।२२।

।। पिप्पलाद का विवाह और शनि पीड़ा निवारण ।।

एवं लीलावतारो हि शंकरस्य महाप्रभोः ।
पिप्पलादो मुनिवरो नानालीलाकरः प्रभुः ।।१
येन दत्तो वरः प्रीत्या लोकेभ्यो हि दयालुना ।
दृष्ट्वा लोके शनेः पीडां सर्वेष मनिवारिणीम् ।।२
षोडशाब्दावधि नृणां जन्मतो न भवेच्च सा ।
तथा च शिवभक्तानां सत्यमेतद्धि मे वचः ।।३
अथानादृत्य मद्वाक्यं कुर्यात्पीडां शनिः क्वचित् ।
तेषां नृणां तदा स स्याद्भस्मसान्न हि संशयः ।।४
इति तद्भयतस्तात विकृतोऽपि शनैश्चरः ।
तेषां न कुरुते पीडां कदाचिद्ग्रहसत्तमः ।।५
इति लीलामनुष्यस्य पिप्पलादस्य सन्मुनेः ।
कथितं सुचरित्रं ते सर्वकामफलप्रदम् ।।६
गाधिश्च कौशिकश्चैव पिप्पलादो महामुनिः ।
शनैश्चरकृतां पीडां नाशतन्ति स्मृतास्त्रयः ।।७

यह महाप्रभु महेश्वर का पिप्पलाद के स्वरूप में लीलावतार हुआ क्योंकि वह नाना प्रकार की लीलाओं के करने वाला था ।१। दयालु पिप्पलाद ने संसार में किसी से भी निवारण न करने के योग्य शनि की

पीड़ा को देखते हुए परम प्रीति के साथ मनुष्य को वरदान दिया था ।२। पिप्पलाद ने वर यह दिया कि जन्म से आरम्भ कर सोलह वर्ष की अवस्था तक शिव की भक्ति करने वालों की शनैश्चर की कोई भी पीड़ा नहीं सतायेगी, ऐसा मेरा वचन सत्य है ।३। यदि मेरे वचन को न मानकर शनि किसी को भी पीड़ा देगा तो वह स्वयं भस्म हो जायगा इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।४। हे तात ! इस तरह इनके भय से विकृत होकर शनिग्रह उनको कभी भी भूल कर कोई पीड़ा नहीं दिया करता है ।५। हे मुनिवर ! मैंने यह पिप्पलाद भगवान की परम सुन्दर मानव लीला एवं रमणीय चरित्र तुमको सुना दिया है। यह समस्त कामनाओं के फल को प्रदान करने वाला है ।६। गधि, कौशिक और पिप्पलाद ये तीनों महामुनि हैं और उत्पन्न पीड़ा का उन्मूलन करने वाले होते हैं ।७।

।। शिव का ब्रह्मचारी रूप में अवतार ।।

सनत्कुमार सुप्रीत्या शिवस्य परमात्मनः ।
अवतारं शृणु विभोर्जटिलाख्यं सुपावनम् ।।१
पुरा सती दक्षकन्या त्यक्त्वा देहं पितुमखे ।
स्वपित्राऽनाहता जज्ञे मेनायां हिमभूधरात् ।।२
सा गत्वा गहनेऽरण्ये तेपे सुविमलं तपः ।
शकरं पतिमिच्छन्ती सखीभ्यां संयुता शिवा ।।३
तत्तपः सुपरीक्षार्थं सप्तर्षीन्प्रैषयच्छिवः ।
तपःस्थानं तु पार्वत्या नानालीलाविशारदः ।।४
ते गत्वा तत्र मुनयः परीक्षां चक्रुरादरात् ।
तस्याः सुयत्नतो नैव समर्था ह्यभवश्च ते ।।५
तत्रागत्य शिवं नत्वा वृत्तान्तं च निवेद्य तत् ।
तदाज्ञां समनुप्राप्य स्वर्लोकं जग्मुरादरात् ।।६
गतेषु तेषु मुनिषु स्वस्थानं शंकरः स्वयम् ।
परीक्षितुं शिवावृत्तमैच्छत्सूतिकरुः ।।७

नन्दीश्वर ने कहा—हे सनत्कुमार ! अब आप सर्वत्र व्यापक रहने

वाले परमात्मा शिव के जटिल नाम वाले परम पवित्र अवतार की कथा प्रीतिपूर्वक श्रवण करें ।१। पहिले सती नाम वाली दक्ष प्रजापति की पुत्री ने अपने ही पिता के द्वारा अनादर प्राप्त करने पर पिता के यहाँ पर ही यज्ञ-स्थली में अपने शरीर का त्याग कर दिया और पुनः हिमवान् पर्वतराज के द्वारा उनकी पत्नी मेना के कुक्षि से उत्पन्न हुई थी ।२। वह पार्वती अपने स्वामी शंकर को प्राप्त करने की इच्छा से सहेलियों के सहित घोर निर्जन एवं परम सघन वन में जाकर बहुत ही निर्मल तथा उग्र तपस्या करने में परायण हो गई ।३। उस समय विविध प्रकार की लीला करने में प्रवीण भगवान् शिव ने पार्वती की तश्चर्या का परीक्षण करने के लिए उस तपोवन में सप्त ऋषियों को भेजा था ।४। वे ऋषि शिवाज्ञा को स्वीकार कर वहाँ पहुँचे और बहुत ही यत्नों द्वारा पार्वती की परीक्षा करने लगे किन्तु वास्तविक रूप से उस कार्य में वे समर्थ एवं सफल न हो सके ।५। इसके अनन्तर वे सप्त-ऋषि वापिस शिव के पास लौट आये और प्रणामपूर्वक समस्त वृत्तान्त शिव को सुना दिया तथा शंकर की आज्ञा प्राप्त कर अपने-अपने स्थानों को चले गये ।६। उत्पत्तिकर्त्ता प्रभु शिव ने उस ऋषियों के यथास्थान चले जाने के अनन्तर स्वयं ही पार्वती के मनोभाव की जाँच करने की इच्छा की ।७।

सुप्रसन्नस्तपस्वीच्छाशमनादयमीश्वरः ।
ब्रह्मचर्य्य स्वरूपोऽभूत्तदाऽद्भुततरः प्रभुः ॥८
अतीव स्थविरो विप्रदेहधारी स्वतेजसा ।
प्रज्वलन्मनसा हृष्टो दण्डी छत्री महोज्ज्वलः ॥९
धृत्वैवं जाटिल रूप जगाम गिरिजावनम् ।
अतिप्रीतियुतः शम्भुः शङ्करो भक्तवत्सलः ॥१०
तत्रापश्यत्स्थितां देवी सखीभिः परिवारिताम् ।
वेदिकोपरि शुद्धान्तां शिवामिव विधोः कलाम् ॥११
शंभुर्निरीक्ष्य तां देवीं ब्रह्मचारिस्वरूपवान् ।
उपकण्क ययौ प्रीत्या चोत्मुखो भक्तवत्सलः ॥१२

आगतं सा तदा दृष्ट्वा ब्राह्मणं तेजसाऽद्भुतम् ।
अंगेषु लोमशं शांत दण्डचर्मसमन्वितम् ॥१३
ब्रह्मचर्य्यधरं वृद्धं जटिलं सकमण्डलुम् ।
अपूजयत्परप्रीत्या सर्वपूजोपहारकैः ॥१४

तब परम प्रसन्न चित्त तपस्वी प्रभु शङ्करने अपनी इच्छा के अनुसार शान्तिमय एक अति अद्भुत ब्रह्मचारी का स्वरूप धारण किया ।८। बहुत वृद्ध ब्राह्मण का शरीर धारण करते हुए अपने तेज के प्रकाश से प्रज्ज्वलित तथा मन से प्रसन्न दण्ड तथा छत्र धारण कर बहुत ही उज्ज्वल वेष के धारी हुए ।९। ऐसे जटिल स्वरूप को धारण कर भक्त-वत्सल-कल्याण करने वाले शम्भु प्रीतिपूर्वक पार्वती के निकट तपोवन में गये ।१०। उस तपोवन में तपस्विनी पार्वती को वेदी के ऊपर विराजमान सखियों से घिरी हुई परम शुद्ध चन्द्रमा की कला के तुल्य संस्थित भगवान् शिव ने देखा ।११। एक ब्रह्मचारी का स्वरूप धारण करने वाले भक्तों पर प्रेम करने वाले भगवान् महेश्वर अत्यन्त उत्कण्ठा रखते हुए वहाँ पार्वती को देखकर उसके समीप में पहुँच गये ।१२। उस समय जगदम्बा पार्वती ने अद्भुत तेजस्वी, रोमयुक्त अङ्गों वाले परम शान्त रूपधारी, मृग-चर्म और दण्ड से युक्त वहाँ आगमन करते हुए ब्राह्मण का दर्शन किया ।१३। पार्वती ने उस ब्राह्मण को ब्रह्मचर्य से युक्त-वृद्ध और जटा एवं मण्डलु धारण किये हुए देखकर अत्यन्त प्रीतिपूर्वक अर्चना की ओर समस्त सामग्री के द्वारा उसका समुचित सत्कार किया ।१४।

ततः सा पार्वती देवी पूजितं परया मुदा ।
कुशलं पर्यपृच्छत्तं ब्रह्मचारिणमादरात् ॥१५
ब्रह्मचारिस्वरूपेण कस्त्वं हि कुत आगतः ।
इदं वनं भासयसि वद वेदविदां वर ॥१६
इति पृष्टस्तु पार्वत्या ब्रह्मचारी स वै द्विजः ।
प्रत्युवाच द्रुतं प्रीत्या शिवाभावपरीक्षया ॥१७
अहामिच्छाभिगामी च ब्रह्मचारी द्विजश्च वै ।
तपस्वी सुखदोऽन्येषामुपकारी न संशयः ॥१८

इत्युक्त्वा ब्रह्मचारी च शङ्करो भक्तवत्सलः।
तस्थिवानुपकण्ठं स गोपायनुरूपमात्मनः ॥१६
किं ब्रवीमि महादेवि कथनीयं न विद्यते।
महानर्थकरं वृत्तं दृश्यते विकृतं महत् ॥२०
नो वयसि सद्भोगसाधने सुखकारणे।
महोपचारसद्भोगैर्वृथैव त्व तपस्यसि ॥२१
का त्वं कस्यासि तनया किमर्थं विजने वने।
तारश्चरसि दुर्धर्ष मुनिभिः प्रयतात्मभिः ॥२२

इसके अनन्तर पूजा में परायण होते हुए पार्वती ने आदरपूर्वक सादर उन समागत ब्रह्मचारी से कुशल प्रश्न किया।१५। पार्वती ने कहा-- हे वेदज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ ! आप इस ब्रह्मचारी के स्वरूप में कौन हैं और इस समय कहाँ से पदार्पण किया है, जोकि इस वन को प्रकाश वाला कर रहे हो ?।१६। नन्दीश्वर ने कहा इस रीति से पार्वती के द्वारा प्रश्न किये जाने पर उस ब्रह्मचारी ब्राह्मण ने पार्वती की परीक्षा करने के कारण से शीघ्र ही उत्तर दिया।१७। ब्रह्मचारी ने कहा—मैं स्वेच्छा से विचरण करने वाला तपस्वी तथा ब्रह्मचारी ब्राह्मण हूँ और दूसरों को सुखी बनाकर उनका उपचार किया करता हूँ।१८। नन्दीश्वर ने कहा— इस तरह से भगवान् शङ्कर ने भक्तवत्सल ब्रह्मचारी के स्वरूप में अपने सही रूप को छिपाकर पार्वती के सामीप में स्थिति की थी।१६। उस समय ब्रह्मचारी ने पार्वती से कहा—हे देवि ! क्या बतलाऊँ ? कहने के योग्य बात नहीं है। मुझे यहाँ पर बहुत ही अनर्थपूर्ण महान् विकृत वृत्तान्त दिखाई दे रहा है।२०। आप इस अपनी नई अवस्था में अत्यन्त सुन्दर एवं सुकोमल इस सुखोपभोगों के योग्य शरीर से महान् सुखोपचारों का त्याग कर व्यर्थ ही तपस्या कर रही हैं।२४। क्या आप यह बता सकेंगी कि आप कौन हैं और किस उद्देश्य को लेकर इस भयावह निर्जन बन में जितेन्द्रियों के तुल्य कठिन तप कर रही हो ?।२२।

इति तद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य परमेश्वरी।
उवाच वचनं प्रीत्या ब्रह्मचारिणमुत्तमम् ॥२३

शृणु विप्र ब्रह्मचारिन्मद्वृत्तमखिलं मुने ।
जन्म मे भारते वर्षे साम्प्रतं हिमवद्गृहे ॥२४
पूर्वं दक्षगृहे जन्म सती शङ्करकामिनी ।
योगेन त्यक्तदेहाऽहं तातेन पतिनिन्दिना ॥२५
अत्र जन्मनि संप्राप्तः सुपुण्येन येन शिवो द्विज ।
मां त्यक्त्वा भस्मसात्कृत्वा मन्मथं सं जगाम ह ॥२६
प्रयाते शङ्करे तापाद्व्रीडिताऽहं पितुर्गृहात् ।
आगच्छमत्र तपसे गुरुवाक्येन संयता ॥२७
मनसा वचसा साक्षात्कर्मणा पतिभावतः ।
सत्यं ब्रवीमि नोऽसत्यं संवृतः शङ्करो मया ॥२८

नन्दीश्वर ने कहा—इस प्रकार से ब्रह्मचारी के वेषधारी शङ्कर के इन वचनों को सुनकर पार्वती ने मुस्कराते हुए बड़े ही प्रेम के साथ ब्रह्मचारी को उत्तर देते हुए श्रेष्ठ वचन कहे ।२३। पार्वती ने कहा—हे ब्रह्मचारिन् ! हे मुनिवर ! आप जब सभी जानना चाहते हैं तो मैं अपना सभी पूरा हाल बताती हूँ । इस समय तो मेरे इस शरीर का जन्म गिरिराज हिमवान् के घर में हुआ है ।२४। इसके पूर्व मैं प्रजापति दक्ष की आत्मजा थी और भगवान् शंकर की पत्नी हुई थी । मेरे पतिदेव शिव की बुराई करने वाले पिता के यहाँ पर ही योग द्वारा अपने शरीर का त्याग मैंने कर दिया था ।२५। अब हे विप्रवर ! इस जन्म में परम महान् पुण्य से प्राप्त भगवान् शिव मुझे त्यागकर और कामदेव को भस्म करके चले गये हैं ।२६। शिव के त्याग से अति लज्जित होकर बहुत ही दुःखित मैं अपने पिता के घर को छोड़कर गुरु के वचनोपदेश से नियम लेकर इस वन में शिव-प्राप्ति के लिए यह तप कर रही हूँ ।२७। यह मेरी तपस्या मन-वचन और कर्म के द्वारा साक्षात् शिव स्वरूप पतिदेव को पाने के लिए ही है । मेरा यह कथन अक्षरशः सत्य है । इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है । इसके लिये मेरे साक्षी साक्षात् शिव ही हैं ।२८।

जानामि दुर्ल्लभं वस्तु कथं प्राप्यं मया भवेत् ।
तथापि मनसौत्सुक्यात्तप्यते मे तपोऽधुना ॥२९

हित्वेन्द्रप्रमुखान्देवान्विष्णुं ब्रह्माणमप्यहम् ।
पतिम्पिनाकरूपाणि वै प्राप्तुमिच्छामि सत्यतः ॥३०
इत्येव वचनं श्रुत्वा पार्वत्या हि सुनिश्चितम् ।
मुने स जटिलो रुद्रो विहसन्वाक्यमब्रवीत ॥३१
हिमाचलसुते देवि का बुद्धिः स्वीकृता त्वया ।
रुद्रार्थं विबुधान्हित्वा करोषि विपुलं तपः ॥३२
जानाम्यहं च तं रुद्रं शृणुत्व प्रवदामि ते ।
वृषध्वजः स रुद्रो हि विकृतात्मा जटाधरः ॥३३
एकाकी च सदा नित्यं विरागी च विशेषतः ।
तस्मात्वं तेन रुद्रेण मनो योक्तुं न चार्हसि ॥३४
सर्वं विरुद्धरूपादि तव देवि हरस्य च ।
मह्यं न रोचते ह्यं तद्यदीच्छसि तथा कुरु ॥३५

मैं खूब अच्छी तरह समझती हूँ कि वह परम दुर्लभ वस्तु मुझे कैसे प्राप्त हो सकेगी, तो भी मेरे मन में उत्कण्ठा है और मैं उसी के किए यह तपश्चर्या कर रही हूँ ।२९। मैं इन्द्र आदि समस्त देव, ब्रह्मा और विष्णु सबको त्याग कर केवल पिनाकधारी शिव को ही अपना पूज्य पति प्राप्त करने की उत्कट इच्छा रखती हूं ।३०। नन्दीश्वर ने कहा—हे मुने ! उस समय पार्वती के परम निश्चय से परिपूर्ण इन वचनों को सुनकर जटिल रूपधारी रुद्रदेव हँसकर कहने लगे ।३१। जटिल ने कहा—हे हिमवान् की पुत्रि ! हे देवि ! तूने यह क्या अपनी बुद्धि बनाई है कि समस्त ऐश्वर्य वाले देवों को छोड़कर केवल एक शिव को ही अपना पति बनाने के लिये ऐसी कठोर तपस्या कर रही हो ? ।३२। हे देवि ! मैं भली भाँति उस रुद्र को जानता हूँ । वह रुद्र बैल पर तो सदा सवारी किया करता है और बहुत विकृत आत्मा वाला तथा जटा-जूट धारण करके रहा करता है ।३३। वह तो हमेशा अकेला ही रहता है और परम विरक्त है । इसलिए तुझको ऐसे वैरागी में अपना मन लगाना उचित नहीं जान पड़ता है ।३४। हे भगवति ! शिव का स्वरूप आदि सभी कुछ

तुम्हारे रूप सौन्दर्य के बहुत विपरीत है मुझे तो बिल्कुल भी अच्छा नहीं प्रतीत होता है। आगे तुम्हारी जो भी इच्छा हो वही करो।३५।

इत्युक्त्वा च पुनः रुद्रो ब्रह्मचारिस्वरूपवान्।
निनिन्द बहुधात्मान तदग्रे तां परीक्षितुम् ॥३६
तच्छ्रुत्वा पार्वती देवी विप्रवाक्यं दुरासदम्।
प्रत्युवाच महाक्रुद्धा शिवनिन्दापरं च तम् ॥३७
एतावद्धि मया ज्ञातं कश्चिन्यो भविष्यति।
परन्तु सकलं ज्ञातमवध्यो दृश्यतेऽधुना ॥३८
ब्रह्मचारिस्वरूपेण कश्चित्वं धूर्त आगतः।
शिवनिन्दा कृता मूढ़त्वया मन्युरभून्मम ।३९
शिव त्वं च न जानासि शिवात्वं हि बहिर्मुखः।
त्वत्पूजा च कृता यन्मे तस्मात्तापयुताऽभवम् ॥४०

नन्दीश्वर ने कहा—इतना कहने के बाद भी ब्रह्मचारी के वेप में उपस्थित शिव ने प्रार्वती की ओर अधिक परीक्षा करने की इच्छा से अनेक प्रकार से अपनी खूब निन्दी से भरी बातें कहीं।३६। तब तो सर्वथा न सहन करने के योग्य निन्दापूर्ण ब्राह्मण के वचनों को सुनकर पार्वती को बड़ा भारी क्रोध आ गया अपने अभीष्ट देव शिव की निन्दा में तत्पर ब्राह्मण से पार्वती कहने लगी।३७। हे ब्राह्मण ! मैं तेरी इन बातों से इस निर्णय पर पहुँच गई हूँ कि तू मार देने के योग्य है किन्तु अब मैं बहुत कुछ विचार करके यह भी समझ गई हूँ कि इस समय तू अवध्य है।३८। हे मूर्ख ! ऐसा मालूम होता है कि तू कोई बड़ा धूर्त और ब्रह्मचारी बनकर यहाँ आ गया है। इस समय तूने भगवान् शिव की निन्दा की है अतएव इससे मुझे महान् क्रोध उत्पन्न हो गया।३९। तू शिव के सच्चे स्वरूप को बिल्कुल नहीं जानता है और शङ्कर से सर्वथा बहिर्मुख है। मैंने इस समय तेरी अर्चना एक ब्राह्मण समझकर की, इसका भी मेरे मन में बहुत ही सन्ताप हो रहा है।४०।

रेरे दुष्ट त्वया प्रोक्तमहं जानामि शङ्करम्।
निश्चयेन न विज्ञातः शिव एव परः प्रभुः ॥४१

यथा तथा भवेद्रुद्रो मायया बहुरूपवान् ।
मामाभीष्टप्रदोऽत्यन्तं निर्विकारः सताम्प्रियः ॥४२
इत्युक्त्वास्ते शिवा देवी शिवतत्वं जगाद सा ।
यत्र ब्रह्मतपा रुद्रः कथ्यते निर्गुणोऽव्ययः ॥४३
तदाकर्ण्य वचो देव्या ब्रह्मचारी स वै द्विजः ।
पुनर्वचनमादातं यावदेव प्रचक्रमे ॥४४
प्रोवाच गिरिजा तावत्स्वसखीं विजयां द्रुतम् ।
शिवासक्तमनोवृत्ति शिवनिन्दापराङ्मुखी ॥४५
वारणीयः प्रयत्नेन सख्ययं हि द्विजाधमः ।
पुनर्वक्तुमनाश्चायं शिवनिन्दां करिष्यति ॥४६
न केवलं भवेत्पापं निन्दातुः शिवस्य हि ।
यो वै शृणोति तन्निन्दां पापभाक्स भवेदिह ॥४७

अरे दुष्ट ! तूने यह बिल्कुल असत्य ही कहा था कि मैं शिव को जानता हूँ । मैं कहती हूँ कि तू शिव को नहीं जानता है । शिव तो सर्वोपरि सबके बड़े स्वामी हैं ।४१। जैसे-तैसे कुछ भी हों—रुद्रदेव अपनी माया से बहुत से रूप वाले हैं । मैं खूब समझती हूँ कि वे मनोरथों को पूर्ण करने वाले विकारों से रहित और सत्पुरुषों के परम प्रिय हैं ।४२। नन्दीश्वर ने कहा—यह कहकर फिर पार्वती ने शिव के उस तत्व का वर्णन करना आरम्भ किया जिसमें ब्रह्मरूप से रुद्रदेव निर्गुण और अविनाशी कहे जाते हैं ।४३। यह पार्वती के वचन सुनकर वह ब्रह्मचारी वेषधारी ब्राह्मण जैसे ही कुछ कहने को प्रस्तुत हुआ वैसे ही उस समय में शिव के चरणों में आसक्त मन वाली शिव की निन्दा से रहित होकर अपनी सखी विजया से पार्वती शीघ्रता से कहने लगी ।४४-४५। पार्वती ने कहा—हे सखि ! यह नीच ब्राह्मण यहाँ से हटा देने के योग्य है । यह फिर भी कुछ कहना चाहता है । मैं चाहती हूँ कि आगे और कुछ शिव की निन्दा करने का अवसर इसे नहीं देना चाहिये ।४६। भगवान् शिव की निन्दा करने वाला तो महापापी होता ही है, जो उस निन्दा को केवल कानों से सुनता है उसे भी पाप की भागी होना पड़ता है ।४७।

शिवनिन्दाकरो वध्यः सर्वथा शिवकिंकरैः ।
ब्राह्मणश्चेत्य वै त्याज्यो गन्तव्यं तत्स्थालम्द्रुतम् ॥४८
अयं दुष्टः पुनर्निन्दा करिष्यति शिवस्य हि ।
ब्राह्मणत्वादवध्यश्च त्याज्योऽदृच्यश्च सर्वथा ॥४९
स्थलतेतद्द्रुत हित्वा यास्यामोऽन्यत्रमाचिरम् ।
यथा संभाषणं न स्य दनेनाविदुषा पुनः ॥५०
इत्युक्त्वा चोमया यावत्पमुत्क्षिप्यते मुने ।
असौ तावच्छिवः साक्षादालम्बे पटं स्वयम् ॥५१
कृत्वा स्वरूपं दिव्यं च शिवाध्यानं यथा तथा ।
दर्शयित्वा शवायै तामुवाचाङ्मुखीं शिवः ॥५२
कुत्र त्वं यासि मां हित्वा न त्वं त्याज्या मया शिवे ।
मया परीक्षिमासित्वं दृढ़भक्तासि मेऽनघे ॥५३
ब्रह्मचारिस्वरूपेण भावमिच्छुस्त्वदायकम् ।
तवोपकण्ठमागत्य प्रोवाचं विविधं वचः ॥५४

जो शिव के सेवक हैं उनके द्वारा शिव की निन्दा करने वाले का वध कर देना चाहिए । हाँ, यदि दुर्भाग्य से ब्राह्मण जाति का हो तो उसे छोड़कर उस स्थान से जहाँ शिव की निन्दा होती हो अन्यत्र ही स्वयं शीघ्र चले जाना चाहिये ।४८। यह दुरात्मा फिर शिव की निन्दा करेगा क्योंकि यह विप्र है इसलिये वध करने योग्य नहीं है । यह त्याग देने के योग्य और सर्वथा दर्शन करने के लायक नहीं है ।४९। मैं अब इस स्थान का त्याग कर शीघ्र ही किसी अन्य स्थान पर जाना चाहती हूँ । जिससे फिर इस मूर्ख के साथ भाषण करने का कोई अवसर ही न आवे ।५०। नन्दीश्वर ने कहा हे मुने इतना कह कर पार्वती ने ज्यों ही स्थिति का त्याग करना चाहा वैसे ही भगवान् शिव ने उसके वस्त्र को धारण कर लिया ।५१। पार्वती जिस स्वरूप का ध्यान किया करती थी शिवजी ने उसी स्वरूप को धारण कर पार्वती को दर्शन दिया और भूमि की ओर नीचे देखती हुई पार्वती से बोले ।५२। शिवजी ने कहा– हे शिवे ! हे अनघे ! अब तुम मुझे छोड़कर कहाँ जा रही हो ? तुम अब

मेरे त्याग करने योग्य नहीं हो। मैंने तुम्हारी अच्छी तरह परीक्षा कर ली है कि तुम्हारी मुझ में बहुत ही दृढ़ भक्ति है।५३। मैं इसीलिए यह एक ब्रह्मचारी का रूप धारण कर तुम्हारे समीप में आया और अनेक वचन भी कहे।५४।

प्रसन्नोऽस्मि दृढं भक्त्या शिवे तव विशेषतः।
वित्तेप्सितं वरं ब्रूहि नादेयं विद्यते तव ॥५५
ततः प्रहृष्टा सा दृष्ट्वा दिव्यरूपं शिवस्य तत्।
प्रत्युवाच प्रभुं प्रीत्या लज्जाऽधोमुखी शिवा ॥५६
यदि प्रसन्नो देवेश करोषि च कृपां मयि।
पतिर्मे भव देवेश इत्युक्तः शिवया शिवः ॥५७
गृहीत्वा विधिवत्पाणिं कैलासं स तया ययौ।
पतिं तं गिरिजा प्राप्य देवकार्यं चकार सा ॥५८
इति प्रोक्तस्तु ते तात ब्रह्मचारिस्वरूपकः।
शिवावतारो हि मया शिवाभावपरीक्षकः ॥५९

हे पार्वती ! मैं तेरी अनुपम दृढ़ भक्ति से विशेष रूप से प्रसन्न हुआ हूँ। अब तू अपने मन चाहे वर को माँग ले। तुझे अब कोई भी अदेय वस्तु नहीं हैं।५५। परम प्रसन्न पार्वती शिव के दिव्य स्वरूप का दर्शन कर लज्जा से नीचे की ओर अपना मुख करती हुई प्रेमपूर्वक शिव से प्रार्थना करने लगी।५६। पार्वती ने कहा हे देवेश ! यदि परम प्रसन्न होकर मुझे पर कृपा करना चाहते हैं तो आप मुझको अङ्गीकार कीजिए।५७। उस समय शिवजी विधि-विधान के साथ पार्वती का पाणिग्रहण कर उन्हें अपने सङ्ग कैलाश पर्वत पर ले गये। पार्वती ने अपने अभीष्ट पति को पाकर देवों के कार्य सम्पन्न किये।५८। हे तात ! ब्रह्मचारी का स्वरूप धारण कर पार्वती की परीक्षा करने वाले शिवजी के जटिल अवतार का वर्णन मैंने किया है।५९।

॥ शिवपुराण प्रथम खण्ड समाप्त ॥







पुराणों का वृहद् प्रकाशन

सरल हिन्दी अनुवाद सहित

१—शिव पुराण	२ खण्ड	...	२०)
२—विष्णु पुराण	२ खण्ड	...	२०)
३—मार्कण्डेय पुराण	२ खण्ड	...	२०)
४—अग्नि पुराण	२ खण्ड	...	२०)
५—गरुड़ पुराण	२ खण्ड	...	२०)
६—हरिवंश पुराण	२ खण्ड	—	२०)
७—देवी भागवत पुराण	२ खण्ड	...	२०)
८—भविष्य पुराण	२ खण्ड	...	२०)
९—लिंग पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१०—पद्म पुराण	२ खण्ड	...	२०)
११—वामन पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१२—कूर्म पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१३—ब्रह्मवैवर्त पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१४—मत्स्य पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१५—स्कन्द पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१६—ब्रह्म पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१७—नारद पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१८—कालिका पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१९—वाराह पुराण	२ खण्ड	...	२०)
२०—कल्कि पुराण		...	२०)
२१—सूर्य पुराण		...	५)७५
२२—महाभारत (भाषा)		...	१०)
२३—श्रीमद्भागवत सप्ताह कथा		...	८)
		...	१४)

प्रकाशक : संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब वेदनगर
बरेली-२४३००१ (उ० प्र०)